जिनवंदनम्

(संस्कृत-प्राकृत के महत्त्वपूर्ण स्तोत्रों एवं ग्रन्थों का सार्थ संग्रह)

प्रस्तुति

ब्र॰ डॉ॰ भरत जैन

प्रकाशक

धर्मोदय विद्यापीठ

सागर (मध्यप्रदेश)

कृति : जिनवंदनम्

प्रेरणा : मुनि श्री निर्वेगसागरजी महाराज

प्रस्तुति : ब्र॰ डॉ॰ भरत जैन

संस्करण : जनवरी, २०१८

आवृत्ति : ११००

मूल्य : १२०/-

प्राप्तिस्थान : धर्मोदय विद्यापीठ
बाहुबली कॉलोनी, सागर (मध्यप्रदेश)
९४२४९-५१७७१

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स
भोपाल (मध्यप्रदेश)

प्रशस्त भावना

एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥

चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव को नरक एवं तिर्यञ्चगतिरूप दुर्गति से बचाने में एक मात्र जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति ही समर्थ है। इसी जिनभक्ति के फलस्वरूप भव्य जीव प्रशस्त पुण्य का संचय करता हुआ परम्परा से मोक्षरूपी लक्ष्मी का स्वामी बनता है अर्थात् सर्व दुखों से मुक्त हो जाता है। ऐसी अद्‌भुत जिनभक्ति की महिमा है।

जिनेन्द्र भगवान् वीतरागी हैं, वे न तो कुछ लेते हैं और न ही कुछ देते हैं। अतः सांसारिक सुखों की कामना रखने वालों को सरागी देवी-देवताओं की आराधना करनी चाहिए, ऐसी मिथ्या धारणा कभी भी नहीं बनानी चाहिए। यद्यपि वीतरागी भगवान् स्वयं कुछ नहीं देते फिर भी भाव भक्ति पूर्वक की गई स्तुति-वंदना लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के फलों को देने में समर्थ है। रत्नकरण्डकश्रावकाचार में स्वामी समन्तभद्रजी ने जिनपूजा को कामदुहि अर्थात् मनवांछित फल को देने वाली तथा कामदाहिनी-इच्छाओं को नष्ट करने वाली कहा है।

जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति मन की पवित्रता, अन्तःकरण की शुद्धि का अचूक साधन है। पवित्र मन अशुभ कर्मों के क्षय और पुण्य के संचय का कारण बनता है। फलस्वरूप सभी प्रकार की अनुकूलताएँ बनती चली जाती हैं, यही समीचीन जैन सिद्धान्त है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि श्रावक सांसारिक भोगों की आकांक्षा लेकर नहीं अपितु मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, इन्हीं प्रशस्त भावनाओं को लेकर ही जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति करता है, किन्तु इस भक्ति के फलस्वरूप स्वयं विशेष पुण्य का संचय करता हुआ लौकिक सुख-सामग्री भी प्राप्त कर ही लेता है।

जैनकुल में जन्म लेते ही प्रत्येक भव्यात्मा को णमोकार मंत्र के उच्चारण के साथ ही साथ अनेक प्रकार की जिनेन्द्र स्तुतियाँ, दर्शन पाठ इत्यादि संस्कारित

माता-पिता, परिवार जन द्वारा कंठस्थ कराये जाते हैं। जो उचित ही है। बढ़ती उम्र के साथ उन पाठों का सुव्यस्थित अर्थ ज्ञात न होने से आदतन रूप से पाठ होता रहता है किन्तु जिनेन्द्र भक्ति से उत्पन्न यथार्थ आनन्द को वह प्राप्त नहीं कर पाता है तथा सांसारिक दुखों से भी छुटकारा मिलता-सा प्रतीत नहीं होता, क्या कारण है? इसका उत्तर देते हुए कुमुदचन्द्राचार्य ने कल्याणमंदिर स्तोत्र के ३८ वें काव्य के अन्तिम चरण में कहा है–**यस्मात् क्रिया फलन्ति न भाव शून्यः**—चूँकि भाव से रहित कोई भी क्रिया पूर्ण फल को देने में समर्थ नहीं होती। इसीलिए बार-बार किया हुआ जिनेन्द्र दर्शन, स्तवन, पूजन, जिनवाणी का पाठ भी हमें दुखों से दूर नहीं करा सका।

हमारी धार्मिक क्रियाएँ भाव से शून्य क्यों होती हैं, इसके अनेक कारण हैं। जैसे–समीचीन श्रद्धा की कमी, भक्ति करते समय मन का अन्यत्र भटकना, स्तोत्र-पाठादि का अर्थ ज्ञात न होना, शीघ्रता से पाठ पूर्ण करने की आकुलता बनी रहना, शुद्ध उच्चारण नहीं बनना अथवा करना, लयबद्धता का ख्याल नहीं होना, बहुत सारे पाठों को कम समय में पूर्ण करने की आदत होना अथवा आदतन तरीके से पढ़ते रहना इत्यादि। स्तुति-पाठों का समीचीन अर्थ आपको ज्ञात हो सके, जिससे भाव की ओर मन की गति हो एवं भक्ति का समीचीन लाभ सभी को प्राप्त हो सके।

आचार्यश्री के ५० वें संयम स्वर्ण महोत्सव के पावन अवसर पर यह कृति आपके कर-कमलों में देते हुए हर्ष हो रहा है। पूज्य मुनि श्री निर्वेगसागरजी महाराज के हम हृदय के अंतस्थल से कोटिशः नमोऽस्तु निवेदित करते हुए आभार व्यक्त करते हैं, जिनकी बार-बार प्रेरणा से ही नाम परिवर्तित करके दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

ब्र॰ डॉ॰ भरत जैन

आभार

प्रस्तुत कृति के संकलन का श्रेय परम पूज्य मुनि श्री निर्वेगसागरजी महाराज को है, जिन्होंने प्रत्येक शीर्षक से सम्बन्धित भूमिका तैयार की तथा ग्रन्थ के संशोधन का कार्य किया। संशोधन कार्य में प्राकृत-संस्कृत भाषा में निष्णात परमपूज्य मुनि श्री मार्दवसागरजी महाराज का महनीय सहयोग रहा। साथ ही परम पूज्य प्रातःस्मरणीय आचार्य भगवन् के संस्कृत भाषा में निष्णात कुछ मुनिराज शिष्यों ने भी श्रमपूर्वक संशोधन कार्य किया है। एतदर्थ सभी मुनिराजों को त्रयबार भक्ति पूर्वक नमोऽस्तु करता हुआ कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिनके परिश्रम का फल आज हमें जिनवाणी के रसास्वादन के रूप में प्राप्त होता है, वे हैं राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर, जिन्होंने तत्त्वार्थसूत्र, स्वयंभू स्तोत्र, जिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्, पंचस्तोत्र का अन्वयार्थ किया है, वही अन्वयार्थ इस पुस्तक में साभार लिया गया है। एतदर्थ पण्डितजी के इस महनीय कार्य को कोटिशः नमन।

जिनवाणी की सेवा में सदैव तत्पर ब्र० विनोद भैया, अधारताल, जबलपुर, ब्र० डॉ० राजेन्द्र भैया, पठा, ब्र० संतोष भैया, दानपति, जबलपुर ने इस कृति के संशोधन में सहयोग दिया है, उन्हें साधुवाद ज्ञापित करते हैं।

प्रस्तुत कृति में शुद्धि का पूरा ध्यान रखा गया है, फिर भी प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ संभावित हैं। जिनवाणी का रसपान करने वाले सुधी श्रावकों, व्रतियों तथा महाव्रतियों से विनम्र अनुरोध है कि स्वाध्याय करते समय यदि कहीं त्रुटि नजर आये तो हमें संकेत अवश्य करें। जिससे अगले संस्करण में सुधार किया जा सके।

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

१. मंगलाचरण	१
२. दर्शनपाठ	३
३. मंगलाष्टकम्	७
४. सुप्रभातस्तोत्रम्	१२
५. गोम्मटेश थुदि	१८
६. महावीराष्टकम्	२१
७. शान्तिनाथ स्तवन	२५
८. पञ्चमहागुरु भक्ति	२७
९. तित्थयर भत्ति	३०
१०. वीतरागस्तोत्रम्	३३
११. परमानन्दस्तोत्रम्	३६
१२. सरस्वतीस्तोत्रम्	४२
१३. सरस्वतीनामस्तोत्रम्	४५
१४. चौबीस तीर्थंकर स्तुति	४७
१५. भक्तामरस्तोत्रम्	५४
१६. कल्याणमंदिरस्तोत्रम्	७४
१७. एकीभावस्तोत्रम्	९२
१८. विषापहारस्तोत्रम्	१०५
१९. भूपाल जिनचतुर्विंशतिका	११९
२०. पात्रकेसरीस्तोत्रम्	१३१
२१. भावना द्वात्रिंशतिका	१५३
२२. जिनसहस्रनामस्तोत्रम्	१६५
२३. रत्नकरण्डक श्रावकाचार	२११
२४. बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्	२५४
२५. स्वरूप सम्बोधन पञ्चविंशतिः	३०६
२६. इष्टोपदेश	३१४
२७. सिद्धिप्रियस्तोत्रम्	३२८
२८. द्रव्यसंग्रह	३३९
२९. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका	३५५
३०. समाधितंत्र	३६२
३१. मृत्यु महोत्सव	३९१
३२. रत्नाकर पञ्चविंशतिका	३९६
३३. आचार्य वंदना	४०४
३४. अभिषेक पाठ	४१०

अन्य उपयोगी

आत्मा हमारा	११
आत्मकीर्तन	१७
भावना दिन रात	२०
धर्म आराधना	२४
गुरु-वन्दना	२९
समाधिभावना	३२
इष्ट प्रार्थना	४१
जिनवाणी मोक्ष नसैनी	१०४
वीर हिमाचलतैं	११८
चरणों में आ पड़ा हूँ	१३०
संत साधु बनके विचरूँ	१५२
प्रायश्चित पाठ	१६४
क्षमा याचना	२१०
प्रभु शरण	३०५
दर्शन स्तुति	३२७
देवस्तुति	३३८
हे प्रभु आनंददाता	३५४
सदा संतोष कर प्राणी	४०९

मंगलाचरण

जिनेन्द्र भगवान् के असाधारण, पवित्र और पूज्य गुणों की प्राप्ति के लिए उनका स्मरण, चिन्तन, वन्दन तथा स्तवनादि रूप मंगलाचरण किया जाता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया गया मंगलाचरण निम्न चार प्रयोजनों को सिद्ध करता है। १. नास्तिकता का परिहार, २. शिष्टाचार का पालन, ३. पुण्य की प्राप्ति, ४. निर्विघ्न ग्रन्थ-स्वाध्याय की पूर्णता।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!!

अर्थ—(पाँचों परमेष्ठी सहित) सिद्धों को नमस्कार हो।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अर्थ—लोक के समस्त अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और साधुओं को नमस्कार हो।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः॥

अर्थ—योगीजन बिन्दु सहित ओम् (ॐ) अक्षर का सर्वदा ध्यान करते हैं, जो कि नियम से अभिलषित पदार्थ और मोक्ष को देने वाला है। ऐसे ओंकार को नमस्कार हो।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकल-भूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अर्थ—निरन्तर शब्दरूपी मेघों के समूह से धो दिया है सम्पूर्ण पृथ्वीतल के कलंक (मिथ्यात्व) को जिसने जिस तीर्थ की उपासना मुनियों ने की है, ऐसी सरस्वती-गंगा हम सबके पापों को हरे।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्थ—अज्ञानरूपी अन्धकार से ग्रस्त अन्धे पुरुष की आँखें जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जन की सलाई से खोल दी हैं, ऐसे उन श्री गुरु के लिए मेरा नमस्कार हो।

श्री परमगुरुभ्यो नमः, परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्द्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार -मासाद्य पूज्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं इदं शास्त्रं। श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

अर्थ—परम गुरुओं को नमस्कार हो तथा परम्परागत आचार्य गुरुओं को नमस्कार हो। सम्पूर्ण कर्मों का नाशक, कल्याणों का बढ़ाने वाला, धर्म से सम्बन्ध कराने वाला, भव्यजीवों के मन को जागृत करने वाला, यह शास्त्र (ग्रन्थ का नाम) है। इसके मूल ग्रन्थ बनाने वाले तो सर्वज्ञदेव हैं। उनके अनन्तर ग्रन्थ रचयिता गणधरदेव एवं प्रतिगणधरदेव हैं। आगे उन्हीं के वचन के अनुसार पूज्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्य के द्वारा प्राप्त कर रचा गया यह शास्त्र है। श्रोतागण सावधानी पूर्वक सुनें।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम्॥

अर्थ—श्री १००८ भगवान् महावीर मंगल-स्वरूप हों, गौतम गणधर मंगल-स्वरूप हों, सबमें प्रथम कुन्दकुन्दादि आचार्य प्रवर मंगल-स्वरूप हों, जैनधर्म मंगल-स्वरूप हो।

सर्वमङ्गलमाङ्ल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

अर्थ—सभी मंगलों में मंगल स्वरूप, सभी के कल्याण को करने वाला, सभी धर्मों में प्रधान जिनेन्द्र तीर्थंकरों द्वारा कहा गया यह जैनधर्म का शासन जयवन्त हो।

❑ ❑ ❑

दर्शनपाठ

वीतरागी जिनेन्द्रदेव की वंदना, भक्ति करते समय पढ़ा जाने वाला यह दर्शन पाठ अत्यन्त सरल, सुबोध संस्कृत भाषा में रचा गया है। इसमें जिनदर्शन का फल, जिनेन्द्र का स्वरूप तथा अपने अंतःकरण की भावना एवं अनुभूति को स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है।

देवाधिदेव का दर्शन

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्॥१॥

अन्वयार्थ—(देव देवस्य) देवों के भी देव देवाधिदेव का **(दर्शनं)** दर्शन/अवलोकन **(पाप-नाशनम्)** पापों का नाश करने वाला **(दर्शनं)** दर्शन **(स्वर्ग-सोपानं)** स्वर्ग की सीढ़ी और **(दर्शनं)** दर्शन **(मोक्ष-साधनम्)** मोक्ष का साधन है।

साधु की वंदना से

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठति पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्॥ २॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्राणां) जिनेन्द्रदेव के **(दर्शनेन)** दर्शन से **(च)** और **(साधूनां)** साधुओं की **(वन्दनेन)** वंदना से **(पापं)** पाप **(चिरं)** अधिक समय तक **(न तिष्ठति)** नहीं ठहरते **(यथा)** जिस प्रकार **(छिद्रहस्ते)** छिद्र सहित हाथों में **(उदकम्)** जल (ज्यादा देर तक नहीं ठहरता) अर्थात् नष्ट हो जाता है।

जन्म-जन्म के पाप

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्म-राग-समप्रभम्।
जन्मजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३॥

अन्वयार्थ—(पद्मरागसमप्रभम्) पद्मराग मणि के समान प्रभायुक्त **(वीतराग मुखं)** वीतराग भगवान् के मुख को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जन्मजन्मकृतं)** जन्म-जन्मान्तर में किए **(पापं)** पाप **(दर्शनेन)** दर्शन करने से **(विनश्यति)** नष्ट हो जाते हैं।

जिनेन्द्र सूर्य

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य,समस्तार्थप्रकाशनम्॥ ४॥

अन्वयार्थ—(जिनसूर्यस्य) जिनेन्द्ररूपी सूर्य का **(दर्शनं)** दर्शन **(संसारध्वान्त-नाशनम्)** संसार सम्बन्धी अंधकार का नाश करने वाला, **(चित्तपद्मस्य बोधनं)** मनरूपी कमल का विकासक तथा **(समस्तार्थप्रकाशनम्)** समस्त पदार्थों का प्रकाशक है।

जिन-चन्द्रमा

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥ ५॥

अन्वयार्थ—(जिनचन्द्रस्य) जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा का **(दर्शनं)** दर्शन **(जन्मदाह-विनाशाय)** जन्मरूपी ताप को नाश करने के लिए **(सुखवारिधेः)** सुखरूपी समुद्र की **(वर्धनम्)** वृद्धि करने वाला और **(सद्धर्मामृतवर्षणम्)** समीचीन-धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाला है।

दिगम्बर रूप

जीवादितत्त्व - प्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय) जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक **(सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय)** सम्यक्त्वादि आठ मुख्य गुणों के समुद्र **(प्रशान्तरूपाय)** प्रशान्तरूप **(दिगम्बराय)** दिगम्बर **(देवाधिदेवाय)** देवाधि अर्हन्त प्रभु **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

सिद्धात्मा

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः॥ ७॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्दैक-रूपाय) आत्मानन्द स्वरूप **(जिनाय)** कर्मों को जीतने वाले जिनेन्द्र **(परमात्मने)** उत्कृष्ट आत्मा **(परमात्म प्रकाशाय)** परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक **(सिद्धात्मने)** सिद्ध आत्मा के लिए **(नित्यं)** हमेशा

(नमः) नमस्कार हो ।

आप ही शरण

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन,रक्ष रक्ष जिनेश्वर!॥ ८॥

अन्वयार्थ– (अन्यथा) आपके सिवाय अन्य कोई **(शरणं नास्ति)** शरण नहीं है **(त्वम् एव)** आप ही **(मम शरणं)** मेरे लिए शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** दया भाव से **(मम रक्ष रक्ष जिनेश्वर)** हे जिनेन्द्र देव! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

अन्य रक्षक नहीं

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

अन्वयार्थ–(जगत्त्रये) तीन लोक में **(वीतरागत्परः देवः)** वीतराग अर्हन्त देव के सिवाय और कोई **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न भूतो)** न भूतकाल में हुआ **(न भविष्यति)** और न आगे होगा।

एक भावना

जिने भक्ति र्जिने भक्ति, र्जिने भक्ति र्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥

अन्वयार्थ–(दिने दिने भवे भवे) प्रतिदिन भव-भव में **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे।

जिनधर्म में निवास

जिनधर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

अन्वयार्थ–(जिनधर्म-विनिर्मुक्तः) जिनधर्म से रहित **(चक्रवर्त्यपि)** चक्रवर्ती

भी **(मा भवेत्)** नहीं होऊँ **(स्यात् चेटोऽपि)** भले ही दास भी हो जाऊँ **(दरिद्रोऽपि)** दरिद्र/गरीब भी हो जाऊँ, किन्तु मेरा जीवन **(जिनधर्मानु-वासितः)** जिनधर्म से सुवासित हो।

जिनदर्शन से

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोटि-मुपार्जितम् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं,हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अन्वयार्थ– (जिनदर्शनात्) जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से **(जन्म जन्म कृतम्)** जन्म-जन्मान्तर में किये गये **(जन्मकोटि-मुपार्जितम्)** करोड़ों जन्मों में उपार्जित **(पापम्)** पाप और **(जन्म-मृत्यु-जरारोग)** जन्म-मरण-बुढ़ापारूपी रोग को **(हन्यते)** नष्ट करता है।

नेत्रों की सफलता

अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य।
देव ! त्वदीय-चरणाम्बुज वीक्षणेन॥
अद्य त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे।
संसार-वारिधिरयं चुलुकप्रमाणः॥१३॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे जिनदेव! **(त्वदीय)** आपके **(चरणाम्बुजवीक्षणेन)** चरण कमल के देखने से **(अद्य)** आज **(मे नयनद्वयस्य)** मेरे दोनों नयन की **(सफलता अभवत्)** सफलता हुई **(त्रिलोक-तिलक)** हे तीन लोक के तिलक स्वरूप! **(अद्य मे)** आज मेरा **(अयं)** यह **(संसारवारिधिः)** संसाररूपी समुद्र **(चुलुकप्रमाणः)** चुल्लु प्रमाण **(प्रतिभासते)** लगता है/ प्रतिभासित होता है।

❑ ❑ ❑

मंगलाष्टकम्

प्रस्तावना एवं उपसंहार सहित १० छन्दों में संकलित मंगलाष्टक पूजन विधान आदि प्रत्येक मांगलिक कार्यों में पढ़ा जाता है। मंगल का अर्थ पुण्य प्रदाता एवं पापनाशक है। कुर्वन्तु मे (मेरा), ते (तेरा), नो (हम सबका), वो (तुम सबका) मंगल करें। ऐसी भावना इस पाठ में भायी जाती है।

[अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥]

अन्वयार्थ—(इन्द्र-महिताः) इन्द्रों द्वारा पूजित **(अर्हन्तः भगवन्तः)** अर्हन्त भगवान् **(च)** और **(सिद्धीश्वराः)** सिद्धि के स्वामी **(सिद्धाः)** सिद्ध भगवान् **(जिनशासनोन्नतिकराः)** जिनशासन की उन्नति करने वाले **(आचार्याः)** आचार्य परमेष्ठी **(श्रीसिद्धान्त-सुपाठकाः)** श्री युक्त सिद्धान्त को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले **(पूज्या उपाध्यायकाः)** पूज्य उपाध्याय परमेष्ठी **(रत्नत्रया-राधकाः)** रत्नत्रय के आराधक **(मुनिवराः)** साधु परमेष्ठी **(एते पञ्च)** ये पाँच **(परमेष्ठिनः)** परमेष्ठी **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र - मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-भास्वत्-पाद-नखेन्दवः) लक्ष्मी से संयुक्त नम्रीभूत देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से सुशोभित चरणों के नखरूपी चन्द्रमा हैं जिनके और **(प्रवचनाम्भोधीन्दवः)** जो प्रवचनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं **(स्थायिनः)** जो अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं **(योगिजनैः स्तुत्या)** योगीजनों के द्वारा स्तुति को प्राप्त **(जिनसिद्ध-सूरि-अनुगताः)** अर्हन्त,

सिद्ध,सूरि–आचार्य के अनुगामी **(पाठकाः)** उपाध्याय और **(साधवः)** साधुजन **(ये सर्वे)** ये सभी **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति-श्री- नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(अमलम्) निर्मल **(सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तं त्रिविधं)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तीन प्रकार का **(पावनम् रत्नत्रयम्)** पवित्र रत्नत्रय **(मुक्तिश्री नगराधिनाथ जिनपति उक्तः)** मुक्तिरूपी लक्ष्मी के नगर के स्वामी जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया **(अपवर्ग-प्रदः)** मोक्ष को देने वाला **(धर्मः)** जिनधर्म, **(सूक्तिसुधा)** शास्त्ररूपी अमृत/जिनागम, **(अखिलम् चैत्यम्)** समस्त जिन प्रतिमाएँ **(च)** और **(श्रयालयं चैत्यालयं)** वैभव/शोभा के स्थान चैत्यालय **(चतुर्विधम्)** चार प्रकार **(प्रोक्तं)** कहे गये **(अमी)** ये सभी **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोतरा विंशतिस्-
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(त्रिभुवनख्याताः) तीनों लोकों में विख्यात **(नाभेयादिजिनाधिपाः)** नाभिपुत्र ऋषभादि जिनस्वामी **(चतुर्विंशतिः)** चौबीस तीर्थङ्कर **(श्रीमन्तः)** लक्ष्मीवान **(यः)** जो **(भरतेश्वरप्रभृतयः)** भरतेश्वरादि **(द्वादश-चक्रिणः)** १२चक्रवर्ती **(यः विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः)** जो ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र **(सप्तोतराविंशतिः)** सात अधिक बीस अर्थात् सत्ताईस इस प्रकार **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में **(प्रथिताः)** प्रसिद्ध **(त्रिषष्टि पुरुषाः)** त्रेसठ शलाका पुरुष **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

ये सर्वौषधिऋद्धयः सुतपसो वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला येऽष्टौविधाश्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(ये सुतपसः) जो श्रेष्ठ तप से **(वृद्धिङ्गताः)** वृद्धि को प्राप्त **(पञ्च)** पाँच **(सर्वौषधि ऋद्धयः)** सर्वौषधि ऋद्धि के धारी **(च)** और **(यः अष्टाङ्ग-महानिमित्तकुशलाः)** जो अष्टांग महानिमित्तों में कुशल **(च अष्टौ)** और आठ **(विधाश्चारिणः)** आकाश आदि चारण ऋद्धियों के धारक **(पञ्च-ज्ञानधराः)** पाँच प्रकार के ज्ञानऋद्धिधारी **(त्रयः बलिनः अपि)** तीन प्रकार के बल ऋद्धि वाले **(यः बुद्धि-ऋद्धीश्वराः)** जो बुद्धि ऋद्धि के स्वामी **(एते सप्त)** ये सात **(सकलार्चिता गणभृतः)** सभी के द्वारा पूजित श्रेष्ठ गणधरदेव/मुनिजन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(कैलासे) कैलासपर्वत पर **(वृषभस्य)** ऋषभदेव की **(निर्वृतिमही)** निर्वाणभूमि है **(वीरस्य)** महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि **(पावापुरे)** पावापुर में है **(वसुपूज्यतुग्जिनपतेः)** वसुपूज्य राजा के पुत्र वासुपूज्य की निर्वाणभूमि **(चम्पायाम्)** चम्पापुर में है **(अर्हतः नेमीश्वरस्य)** अरिहंत नेमिनाथ भगवान् की निर्वाणभूमि **(ऊर्जयन्तशिखरे)** ऊर्जयन्तपर्वत पर **(च)** और **(शेषाणाम् अर्हताम् अपि)** शेष तीर्थंकरों की भी **(प्रसिद्धविभवाः)** प्रसिद्ध वैभववाली **(निर्वाण-अवनयः)** निर्वाणभूमियाँ **(सम्मेदशैले)** सम्मेदशिखर पर हैं **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(ज्योतिर्व्यन्तर-भावन-अमरगृहे) ज्योतिषियों, व्यन्तरों, भवनवासियों और वैमानिक देवों के निवास स्थान में **(मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः)** मेरुओं पर, कुलाचलों में स्थित **(जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु)** जम्बूवृक्ष, शाल्मलिवृक्ष, चैत्यवृक्ष की शाखाओं पर **(तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु)** तथा वक्षारगिरि, विजयार्ध

पर्वतों पर **(इष्वाकारगिरौ)** इष्वाकार/बाण के आकार वाले पर्वत पर **(च कुण्डलनगे)** और कुण्डल पर्वत पर **(च नन्दीश्वरे द्वीपे)** और नन्दीश्वर द्वीप में **(मनुजोत्तरे शैले)** मानुषोत्तर पर्वत पर **(ये जिनगृहाः)** जो जिन चैत्यालय हैं, **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

[सर्पो हारलता भवत्यसि-लता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥]

अन्वयार्थ—(धर्मात् एव) धर्म के प्रभाव से ही **(सर्पो हारलता)** सर्प गले का हार **(भवति)** हो जाता है। **(असिलता)** तलवार **(सत्पुष्पदामायते)** सुंदर पुष्पों की माला बन जाती है। **(विषं अपि)** विष भी **(रसायनं)** अमृत **(सम्पद्येत)** हो जाता है। **(रिपुः)** शत्रु **(प्रीतिं विधत्ते)** प्रीति को धारण करता है। **(प्रसन्नमनसः)** प्रसन्न मन से **(देवाः)** देवगण **(वशं)** वश में **(यान्ति)** हो जाते हैं। **(वा)** और **(किं बहु ब्रूमहे)** बहुत क्या कहें **(धर्मात्)** उस धर्म से **(नभः अपि)** आकाश भी **(नगैः)** रत्नों से **(वर्षति)** बरसता है अर्थात् आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है। वह धर्म **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(यः भगवताम्) जो भगवानों के **(गर्भावतरोत्सवः)** गर्भकल्याणक का उत्सव **(जन्माभिषेकोत्सवः)** जन्मकल्याणक का उत्सव **(यः परिनिष्क्रमेण विभवः जातः)** जो तपकल्याणक उत्सव के द्वारा वैभव हुआ **(यः केवल-ज्ञानभाक्)** जो केवलज्ञानकल्याणक को प्राप्त हुए **(च)** और **(यः कैवल्यपुर-प्रवेशमहिमा)** जो कैवल्यपुर मोक्ष में प्रवेश की महिमा अर्थात् निर्वाण कल्याणक **(स्वर्गिभिः)** देवों के द्वारा **(यः संभावितः)** जो पूजा की गई **(तानि पञ्च)** वे पाँचों **(कल्याणानि)** कल्याणक **(ते सततम्)** तुम्हारा हमेशा **(मङ्गलम्)** मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्चसुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥८॥

अन्वयार्थ–(इत्थम्) इस प्रकार **(सौभाग्य संपत्प्रदम्)** सौभाग्य रूपी सम्पत्ति के प्रदाता **(इदं श्री जिनमंगलाष्टकम्)** इस श्री जिन मंगलाष्टक को **(सुधियः)** विद्वान् **(तीर्थंकराणाम्)** तीर्थंकरों के **(कल्याणेषु महोत्सवेषु)** कल्याणक महोत्सवों में **(यः)** जो **(उषः)** प्रातःकाल **(शृण्वन्ति च पठन्ति)** सुनते और पढ़ते हैं **(तैः सुजनैः)** उन सज्जनों के द्वारा **(धर्मार्थकामान्विता)** धर्म, अर्थ और काम से सहित **(लक्ष्मीः आश्रयते)** लक्ष्मी प्राप्त की जाती है और **(व्यपायरहिता)** विनाश रहित अर्थात् अविनश्वर **(निर्वाणलक्ष्मीः अपि)** मोक्ष लक्ष्मी भी **(आश्रयते)** प्राप्त करते हैं।

❑ ❑ ❑

आत्मा हमारा

दुनिया में सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा।
सब देखन जानन हारा, यह आत्मा हमारा॥
यह जले नहीं अग्नि में, भींगे न कभी पानी में।
सूखे न पवन के द्वारा, यह आत्मा हमारा॥
शस्त्रों से कटे नहीं काटा, नहीं तोड़ सके कोई भाटा।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा॥
माँ बाप सुता सुत नारी, झूठे झगड़े संसारी।
नहीं देता कोई सहारा, यह आत्मा हमारा॥
मत फँसो मोह ममता में, मक्खन आजा आपा में।
तन धन कहु नाहिं तुम्हारा, यह आत्मा हमारा॥

सुप्रभातस्तोत्रम्

सुप्रभात शब्द प्रतीक है मंगल का, विकासशील जीवन के प्रारम्भ का। गर्भादि पंचकल्याणकों को जिन्होंने प्राप्त किया है, ऐसे वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति यहाँ की गई है एवं भावना भायी गई है कि आपके स्तवन से मेरा जीवन भी मंगलमय बने। सत्कार्यों में मेरा दिन व्यतीत हो। प्रातःकाल उठते ही इसे पढ़ने की परम्परा है।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः॥१॥

अन्वयार्थ—(जिनपतेः) जिनेन्द्र भगवान् के **(यत्स्वर्गावतरोत्सवे)** जो स्वर्ग से गर्भ में आने के समय किये गये उत्सव में **(यत् जन्माभिषेकोत्सवे)** जो जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में **(यत् दीक्षाग्रहणोत्सवे)** जो दीक्षा ग्रहण के समय किये गये उत्सव में **(यत् अखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे)** जो केवलज्ञान प्रकट होने के समय किये गये उत्सव में **(यत् निर्वाणगमोत्सवे)** तथा जो मोक्ष प्राप्ति के समय किये गये उत्सव में **(अद्भुतं पूजा अभवत्)** आश्चर्यकारी पूजा हुई थी **(तद्भवैः)** उसमें होने वाले **(सङ्गीतस्तुति- मङ्गलैः)** गाने, बजाने, नाचने वा गुणानुवादरूप मंगलों के द्वारा **(मे सुप्रभातोत्सवः)** मेरा सुप्रभात का उत्सव **(प्रसरतां)** विस्तार को प्राप्त हो।

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभि -
रालीढपादयुग! दुर्धर-कर्मदूर!
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! शम्भवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रीमन्नतामरकिरीटमणि-प्रभाभिः) श्रीमान् नम्रीभूत देवों के मुकुट-मणियों की कान्ति से **(आलीढपादयुग!)** व्याप्त दोनों चरण वाले **(दुर्धरकर्मदूर!)** दुर्धर कर्मों से दूर **(श्रीनाभिनन्दन!)** हे श्री नाभिराज के पुत्र आदिनाथ! **(जिनाजित!)** हे इन्द्रियविजयी अजितनाथ जिनेन्द्र! और **(सम्भ-**

वाख्य!) हे शंभव नाम वाले जिन! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

छत्रत्रय - प्रचल - चामर-वीज्यमान!,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र!
पद्मप्रभारुण - मणि - द्युति -भासुराङ्ग!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(छत्रत्रय-प्रचल-चामर-वीज्यमान) तीन छत्र और ढुरते हुए चञ्चल चँवरों वाले **(देव! अभिनंदनमुने!)** हे देवाधिदेव अभिनंदन मुनीन्द्र! **(सुमते जिनेन्द्र!)** हे सुमतिनाथ जिनेन्द्र भगवन्! तथा **(अरुण-मणि-द्युति-भासुराङ्ग!)** पद्मराग मणि की लाल कान्ति के समान चमकदार है शरीर जिनका ऐसे **(पद्मप्रभ!)** हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

अर्हन् ! सुपार्श्व ! कदलीदलवर्णगात्र!
प्रालेय - तार - गिरि-मौक्तिक-वर्णगौर!
चन्द्रप्रभ! स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(कदली-दल-वर्ण-गात्र!) केले के पत्ते के समान हरे रंग के शरीर वाले **(सुपार्श्व! अर्हन्!)** हे सुपार्श्वनाथ! अर्हन्! **(प्रालेय-तार-गिरि-मौक्तिक-वर्ण-गौर)** हिमगिरि रजतगिरि और मोती के समान सफेद रंग वाले **(चन्द्रप्रभ!)** हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! **(स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!)** स्फटिक के समान निर्मल सफेद रंग वाले हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

सन्तप्त-काञ्चनरुचे! जिनशीतलाख्य!
श्रेयन्! विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क!
बन्धूक-बन्धुरुचे! जिनवासुपूज्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(सन्तप्त-काञ्चनरुचे!) तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्ति के धारक **(जिनशीतलाख्य!)** हे इन्द्रियविजयी शीतलनाथ नामक जिनेन्द्र! **(विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क!)** नष्ट किया है पापरूप आठ प्रकार के कर्म-

कलंकरूपी कीचड़ को जिन्होंने ऐसे **(श्रेयन्!)** हे श्रेयोनाथ जिनेन्द्र! **(बन्धूक-बन्धुरुचे!)** तथा बन्धूक पुष्प/दुपहरी के फूल के समान लाल कान्ति वाले ऐसे **(जिन वासुपूज्य!)** हे इन्द्रियविजयी वासुपूज्य जिनेन्द्र! **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

उद्दण्ड-दर्पक-रिपो! विमलामलाङ्ग !,
स्थेमन्ननन्तजिदनन्त - सुखाम्बुराशे!
दुष्कर्म - कल्मष - विवर्जित - धर्मनाथ!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(उद्दण्ड-दर्पक-रिपो!) उद्दण्ड/अतिमानी कामदेव के शत्रु अर्थात् कामविजयी **(विमलामलाङ्ग!)** निर्मल शरीर के धारक हे विमलनाथ भगवन्! **(अनन्त-सुखाम्बुराशे!)** अनन्तसुख के समुद्र **(स्थेमन्ननन्तजित्!)** स्थिर/धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तजित् भगवन्! **(दुष्कर्मकल्मषविवर्जित-धर्मनाथ!)** दुष्टकर्मरूपी कालुषता से रहित ऐसे हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

देवामरीकुसुमसन्निभ! शान्तिनाथ!,
कुन्थो! दयागुण - विभूषण - भूषिताङ्ग!
देवाधिदेव! भगवन्नरतीर्थनाथ!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(अमरी-कुसुमसन्निभ!) अमरी नामक वृक्ष के फूल के समान पीतवर्ण वाले **(देव! शान्तिनाथ!)** हे देवाधिदेव! शान्तिनाथ भगवन्! **(दयागुण-विभूषण-भूषिताङ्ग !)** दयागुणरूपी भूषण से विभूषित है शरीर जिनका ऐसे **(कुन्थो!)** हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र! **(तीर्थनाथ!)** आगम व रत्नत्रय धर्मरूप तीर्थ के स्वामी **(देवाधिदेव!)** देवों के देव **(भगवन् अर!)** हे भगवन् अरनाथ! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

यन्मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!,
क्षेमङ्करावितथ - शासन - सुव्रताख्य!
सत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!)** मोहरूपी मल्ल के मद का नाश करने वाले ऐसे हे मल्लिनाथ भगवन्! **(क्षेमङ्करा-वितथ-शासन-सुव्रताख्य!)** कल्याणकारी सत्य-शासन है जिनका ऐसे हे मुनिसुव्रत नाम वाले भगवन्! **(सत्संपदा)** श्रेष्ठ सम्पत्ति से **(प्रशमितः)** परमशान्त अवस्था को प्राप्त **(नमिनामधेय)** हे नमिनाथ नामक तीर्थंकर! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

तापिच्छगुच्छ - रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!,
घोरोपसर्गविजयिन्! जिनपार्श्वनाथ!
स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण! वर्धमान!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(तापिच्छगुच्छ-रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!) तमालवृक्षों के समूह के समान सुन्दर कान्ति के धारक हे नेमिनाथ भगवन्! **(घोरोपसर्ग-विजयिन्)** भयंकर उपसर्ग को जीतने वाले **(जिन! पार्श्वनाथ!)** हे इन्द्रिय-विजयी पार्श्वनाथ भगवन्! तथा **(स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण!)** स्याद्वाद सिद्धान्त-रूपी मणिदर्पणस्वरूप **(वर्धमान!)** हे वर्द्धमान जिनेन्द्र! **(त्वद्- ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

प्रालेय - नील - हरितारुण - पीत-भासं,
यन्मूर्तिमव्यय-सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्तति-शतं जिनवल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अव्ययं) अविनाशी **(सुखावसथं)** सुख के स्थान **(सप्ततिशतं)** एक सौ सत्तर **(जिनवल्लभानां)** जिनेन्द्र तीर्थंकरों के **(यन्मूर्तिम्)** जिस शरीर को **(मुनीन्द्राः)** मुनिराज **(प्रालेय-नील-हरितारुण-पीत-भासं)** बर्फ के समान सफेद, नीले, हरे, लाल एवं पीली कांति वाले **(ध्यायन्ति)** ध्यान करते हैं ऐसे हे भगवन् **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥

अन्वयार्थ—(दिने दिने) प्रत्येक दिन **(चतुर्विंशतितीर्थानां)** चौबीस तीर्थंकरों का **(सुप्रभातं)** अच्छा प्रातःकाल हो **(सुप्रभातं)** वह प्रातःकाल **(सुनक्षत्रं)** उत्तम नक्षत्ररूप **(माङ्गल्यं)** मंगल स्वरूप **(परिकीर्तितम्)** कहा गया है।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥

अन्वयार्थ—सभी **(देवता)** अर्हन्त देव **(ऋषयः)** मुनिजन और **(सिद्धाः)** सिद्ध भगवान् **(दिने दिने)** प्रत्येक दिन **(सुप्रभातं)** सुप्रभात रूप हैं तथा **(सुप्रभातं)** वह सुप्रभात **(सुनक्षत्रं)** उत्तम नक्षत्ररूप तथा **(श्रेयः)** कल्याण-कारी **(प्रत्यभिनन्दितम्)** माना गया है।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्वसुखावहम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(भव्यसत्त्वसुखावहम्)** भव्यजीवों को सुख देने वाले **(तीर्थं प्रवर्तितं)** धर्मतीर्थ को चलाया **(तव एकस्य)** आप अद्वितीय/प्रधान **(महात्मनः वृषभस्य)** महान् आत्मा वृषभनाथ भगवान् का **(सुप्रभातं)** उत्तम प्रातःकाल हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषां ।
अज्ञानतिमिरान्धानां, नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(नित्यम्) हमेशा **(स्तमितः रविः)** अस्त हो गया है ज्ञानरूपी सूर्य जिनका ऐसे **(अज्ञानतिमिरान्धानां)** अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे मनुष्यों की **(ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्)** आँखों को ज्ञान से खोलने वाले **(जिनेन्द्राणां)** जिनेन्द्र भगवन्तों का **(सुप्रभातं)** सुप्रभात हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥

अन्वयार्थ—(कमललोचनः) कमल के समान नेत्र वाले **(वीरः)** महावीर प्रभु **(येन)** जिन्होंने **(शुक्लध्यानोग्रवह्निना)** शुक्लध्यानरूपी तेज/तीव्र अग्नि के द्वारा **(कर्माटवी दग्धा)** कर्मरूपी जंगल को जला दिया **(जिनेन्द्रस्य)** ऐसे उन जिनेन्द्र भगवान का **(सुप्रभातं)** सुप्रभात हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्यहितकर्तृणां) तीन लोक का हित करने वाले **(जिनानाम्)** जिनेन्द्र भगवान् का **(शासनम् एव)** शासन ही **(सुप्रभातं)** शुभ प्रभातरूप **(सुनक्षत्रं)** शुभ नक्षत्ररूप **(सुकल्याणं)** शुभ कल्याणरूप और **(सुमंगलम्)** शुभ मंगलरूप है।

❑ ❑ ❑

आत्म कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आतम राम॥
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥

सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहीं लेश निदान॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम॥

गोम्मटेस-थुदि

विश्व का आठवाँ आश्चर्य मानी जाने वाली श्रवणबेलगोल स्थित बाहुबली भगवान् की प्रतिमा निर्माण में जिनका आशीर्वाद प्राप्त था, ऐसे ही सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्रजी ने ईसा की १० वीं शताब्दी में गोम्मटेस थुदि के नाम से प्राकृत भाषा में यह रचना की।

उपेन्द्रवज्रा

विसट्ट-कंदोट्ट - दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण तुण्डं।
घोणा-जियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥१॥

अन्वयार्थ—जिनके **(सुलोयणं)** सुन्दर नेत्र **(विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं)** विकसित नीलकमल के दल (भीतरी भाग) का अनुशरण करने वाले हैं **(तुण्डं)** मुख **(चंद-समाण)** चन्द्रमा के समान सौम्य है तथा **(चम्पय-पुप्फसोहं)** चम्पक पुष्प की शोभा को जिनकी **(घोणा-जियं)** नासिका ने जीत लिया है **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्णपासं।
गइंद-सुण्डुज्जल बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

अन्वयार्थ—जिनके **(गंडं)** कपोल (गाल) **(जलकंत)** जल के समान स्वच्छ कान्ति वाले **(सुकण्ण-पासं)** सुन्दर दोनों कान **(आबाहु दोलंत)** कन्धों तक दोलायित/लम्बे **(बाहुदण्डं)** दोनों भुजाएँ **(गइंद-सुण्डुज्जल)** गजराज की सूंड़ के समान सुन्दर लंबी थी **(तं)** उन **(अच्छाय-सच्छं)** आकाश के समान निर्मल **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

सुकण्ठ-सोहा जियदिव्वसंखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

अन्वयार्थ—(सुकण्ठ-सोहा) मनोहारी कंठ की शोभा से जिन्होंने **(जिय-दिव्व संखं)** अनुपम शंख की शोभा को जीत लिया है **(हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं)** हिमालय के समान उन्नत कंधे और विशाल हृदय वाले हैं तथा जिनका **(सुट्ठुमज्झं)** सुन्दर मध्यभाग/कटिप्रदेश **(सुपेक्खणिज्जायल)** अच्छी तरह से

देखने योग्य और निश्चल है **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अन्वयार्थ—(सव्व-सुचेदियाणं) सभी सुन्दर चैत्यों के **(सिहामणि)** शिखामणि तथा **(विंज्झायलग्गे)** विन्ध्यगिरि के अग्रभाग/शिखर में **(पविभासमाणं)** प्रकाशमान/शोभायमान **(तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं)** तीन लोक के जीवों को आनन्द देने में पूर्ण चन्द्रमास्वरूप **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

लया - समक्कंत - महासरीरं, भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

अन्वयार्थ—(लया-समक्कंत-महासरीरं) लताओं से व्याप्त विशाल शरीर वाले **(भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं)** भव्यसमूह के लिये प्राप्त हुए श्रेष्ठ कल्पवृक्ष स्वरूप तथा **(देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं)** देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित/पूजित चरणकमल वाले **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दियंबरो जो ण च भीइजुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

अन्वयार्थ—(जो दियंबरो) जो दिगम्बर हैं **(भीइजुत्तो)** भय युक्त **(ण)** नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं **(च)** और **(अंबरे)** वस्त्र में **(सत्तमणो ण)** आसक्त मन वाले नहीं हैं **(विशुद्धो)** विशुद्ध हैं **(च)** और **(सप्पादि-जंतुप्फुसदो)** सर्पादि जंतुओं के स्पर्श से भी **(कंपो ण)** कम्पायमान नहीं हैं **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय)के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

अन्वयार्थ—(जो सच्छदिट्ठि) जो निर्मल समदृष्टि **(आसां)** आशा-तृष्णा को

(पोक्खदि ण) पुष्ट नहीं करते **(हयदोसमूलं)** दोषों के मूल कारण (मोह) को नष्ट करने वाले **(सोक्खे)** इन्द्रिय सुख में **(वंछा ण)** इच्छा रहित **(विरायभावं)** विरागभाव वाले और **(भरहे)** भरत (भाई) में **(विसल्लं)** शल्य रहित हैं **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

उपाहिमुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोह-हारयं।
वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

अन्वयार्थ—जो **(उपाहिमुत्तं)** उपाधियों/वस्त्राभूषणों/संयोगों से रहित **(धण-धाम-वज्जियं)** धन मकानादि बाह्य परिग्रह रहित **(सुसम्मजुत्तं)** समताभाव सहित **(मय-मोह-हारयं)** मद व मोह को हरण/नष्ट करने वाले तथा **(वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं)** एक वर्ष पर्यन्त उपवास धारण करने वाले **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

❑ ❑ ❑

भावना दिन रात मेरी

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर वार हो॥
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के आचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो॥
शान्ति सुख आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥
रोग दुख भय शोक ना हो, हे प्रभु ! परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥

महावीराष्टकस्तोत्रम्

वर्तमान शासननायक २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी की स्तुतिपरक यह रचना कविवर भागचन्द्रजी 'भागेन्दु' द्वारा आठ पद्यों में की गई है। महावीर के समग्र जीवन आदर्शों को प्रस्तुत करता यह संस्कृत काव्य शिखरिणी छन्द में लिखा गया है, प्रत्येक छन्द के अन्त में यह भावना भायी गई है कि महावीरस्वामी सदा मेरे नयन पथ पर गमन करते रहे अर्थात् आँखों में बसे रहें।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः।
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय- जनि लसन्तोऽन्तरहिताः॥
जगत्साक्षी मार्ग - प्रकटन - परो भानुरिव यो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

अन्वयार्थ—(यदीये) जिनके **(चैतन्ये)** चैतन्यरूप केवलज्ञान में **(ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तः)** ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद से शोभायमान **(अन्तरहिताः)** अनन्त **(चिदचितः भावाः)** चेतन और अचेतन पदार्थ **(मुकुरः इव)** दर्पण के समान **(समम् भान्ति)** एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हैं **(जगत्साक्षी)** जगत् के साक्षात्कार करने वाले अर्थात् वीतराग हैं **(भानुः इव)** सूर्य के समान **(यः)** जो **(मार्गप्रकटन परः)** मोक्षमार्ग को प्रकट करने में तत्पर अर्थात् हितोपदेशी हैं ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्द-रहितं।
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

अन्वयार्थ—(अताम्रम्) लालिमा रहित **(स्पन्द-रहितम्)** परिस्पन्दन रहित **(यच्चक्षुः कमलयुगलं)** जिनके दोनों नेत्ररूपी कमल **(जनान्)** मनुष्यों को **(आभ्यन्तरम्)** भीतरी **(वा)** अथवा (बाह्य) **(अपि)** भी **(कोपापायं)** क्रोध के अभाव को **(प्रकटयति)** प्रकट करते हैं और **(यस्य मूर्तिः)** जिनका शरीर/मुद्रा **(स्फुटम्)** स्पष्टरूप से **(प्रशमितमयी)** परम शान्ति का धारक **(वा)** और

(अतिविमला) अत्यन्त निर्मल है ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुटमणि-भा-जाल - जटिलं।
लसत्पादाम्भोज - द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्॥
भवज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

अन्वयार्थ—(नमत्) नमन करते हुये **(नाकेन्द्राली-मुकुटमणि-भा-जाल-जटिलं)** स्वर्ग के देवों के इन्द्रों की पंक्ति के मुकुटों की मणियों के प्रभापुंज से व्याप्त **(लसत्)** सुशोभित **(यदीयं)** जिनके **(स्मृतं)** स्मरण किए गये **(पादाम्भोजद्वयम्)** दोनों चरण **(अपि)** भी **(इह)** इस जगत् में **(तनुभृताम्)** संसारी जीवों के **(भवज्वाला-शान्त्यै)** संसार ज्वाला की शान्ति के लिए **(जलं वा)** जल के समान **(प्रभवति)** समर्थ हैं ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

यदर्चा - भावेन प्रमुदित - मना दर्दुर इह।
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगण-समृद्धः सुख-निधिः॥
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

अन्वयार्थ—(यदर्चा-भावेन) जिनकी पूजा के भाव से **(प्रमुदित-मना)** आनन्दित चित्त वाला **(दर्दुरः)** मेंढक **(इह)** इसलोक में **(क्षणात्)** क्षणभर में **(गुण-गण-समृद्धः)** गुणों के समुदाय से सम्पन्न **(सुख-निधिः)** सुख का निधान **(स्वर्गी)** स्वर्ग में निवास करने वाला देव **(आसीत्)** हुआ था **(तदा)** तब **(सद्भक्ताः)** आपके सच्चे भक्त **(शिवसुख-समाजम्)** मोक्ष के सुख समूह को **(लभन्ते)** पाते हैं **(किमु)** क्या आश्चर्य है? **(महावीरस्वामी)** ऐसे महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत -तनुर्ज्ञान - निवहो ।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुत - गति-
र्महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

अन्वयार्थ—(कनत्स्वर्णाभासः अपि) चमकते हुए स्वर्ण के समान कान्तिमान

होने पर भी **(अपगत-तनुः)** शरीर से रहित **(ज्ञान-निवहः)** ज्ञान शरीरी हैं **(विचित्र आत्मा अपि)** विशेष गुणों एवं पर्यायों की अपेक्षा अनेक रूप होकर भी **(एकः)** सामान्य की अपेक्षा से एकरूप हैं **(नृपतिवरसिद्धार्थतनयः)** श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थ के पुत्र होकर **(अपि)** भी **(अजन्मः)** जन्म रहित हैं **(श्रीमान् अपि)** लक्ष्मीवान होकर भी **(विगतभवरागः)** सांसारिक राग से रहित **(अद्भुत गतिः)** अद्भुत अवस्था के धारक ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

यदीया वाग्गङ्गा विविधनयकल्लोलविमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

अन्वयार्थ—(यदीया) जिनकी **(वाग्गङ्गा)** वाणीरूपी गंगा **(विविध-नय-कल्लोल-विमला)** अनेक नयरूप तरंगों से उज्ज्वल **(बृहत्)** विपुल **(ज्ञानाम्भोभिः)** ज्ञानरूप जल से **(जगति)** इसलोक में **(जनताम्)** प्राणियों को **(स्नपयति)** नहलाती है **(या)** जो **(इदानीम् अपि)** आज भी **(एषा)** यह जिनवाणी **(बुधजनमरालैः)** विद्वज्जनरूपी हंसों से **(परिचिता)** परिचित हो रही है ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

अनिर्वारोद्रेकस् - त्रिभुवनजयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।
स्फुरन् नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

अन्वयार्थ—(स्फुरन्) दमकते/जगमगाते/चमकते हुए **(नित्यानन्द-प्रशम-पदराज्याय)** नित्य आनन्द वाले प्रशान्त शिवपद के राज्य को पाने के लिये **(निजबलात्)** अपने आत्मबल से **(येन)** जिन्होंने **(कुमारावस्थायाम्)** कुमार अवस्था में **(अपि)** ही **(अनिर्वारोद्रेकः)** दुर्निवार वेग वाला **(त्रिभुवनजयी)** त्रिभुवन विजेता **(कामसुभटः)** कामरूपी महान् योद्धा **(विजितः)** जीता है **(सः)** वह **(जिनः)** इन्द्रियविजयी **(महावीरस्वामी)** महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

महामोहातङ्क-प्रशमन - पराकस्मिकभिषङ्;
निरापेक्षो बन्धुर्विदित - महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव - भयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

अन्वयार्थ—(महामोहातङ्क-प्रशमन-पराकस्मिकभिषक्) महामोहरूपी रोग को शान्त करने में तत्पर आकस्मिक (अकारण) वैद्य **(निरापेक्षः बन्धुः)** अपेक्षा रहित बन्धु **(विदित-महिमा)** जिनकी महिमा प्रकट/ज्ञात है **(मङ्गलकरः)** मंगलकारी **(भव-भयभृताम्)** संसार के भय से भरे हुए **(साधूनाम्)** साधु जनों को **(शरण्यः)** शरण देने वाले **(उत्तमगुणः)** उत्तमगुण वाले **(महावीर-स्वामी)** महावीरस्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतं।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्॥

अन्वयार्थ—(भागेन्दुना) भागचन्द्र कवि के द्वारा **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(कृतम्)** रचित **(महावीराष्टकम्)** महावीराष्टक **(स्तोत्रम्)** स्तोत्र को **(यः पठेत्)** जो पढ़ता है **(च)** और **(शृणुयात् अपि)** सुनता भी है **(स)** वह **(परमाम्)** परम (शिव) **(गतिम्)** गति को **(याति)** जाता/प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

धर्म आराधना

तन पिंजरे से, प्राण पखेरू , जब बाहर उड़ जावे।
घरवाली द्वारे तक जावे, बेटा अगनि लगावे॥
रोने वाले रोते जावें, जाने वाला जावे।
सुन्दर काया भी मरघट में, राख-राख हो जावे॥
आशा पल-पल बढ़ती जावे, आयु घटती जावे।
काया निशिदिन जर्जर होवे, माया बढ़ती जावे॥
आज सरीखा मंगल अवसर, कल आवे ना आवे।
किधर जिन्दगी के किस डग पर, क्या घटना घट जावे॥

शान्तिनाथ स्तवन

सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान् की स्तुतिपरक यह रचना संस्कृत भाषा के आठ छन्दों में पं० शिवचरण जैन, मैनपुरी द्वारा लिखी गई है। प्रभु के समग्र गुणों का संक्षिप्त में गुणगान करने वाली यह अत्यन्त सुमधुर एवं हृदय को छूने वाली रचना है।

समग्रतत्त्वदर्पणम्, विमुक्तिमार्गघोषकम्।
कषायमोहमोचकं,नमामि शान्तिजिनवरम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(समग्रतत्त्वदर्पणम्) सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करने में दर्पण के समान **(विमुक्तिमार्गघोषकम्)** मोक्षमार्ग का उद्घोष/उपदेश करने वाले **(कषायमोहमोचकं)** कषाय एवं मोह को छोड़ने वाले **(शान्तिजिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रिलोकवन्द्यभूषणं, भवाब्धिनीरशोषणं।
जितेन्द्रियमजं जिनं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(त्रिलोकवन्द्यभूषणं) तीनों लोकों में पूज्य आभूषणरूप **(भवाब्धि-नीरशोषणं)** संसाररूपी सागर के जल को सुखाने वाले **(जितेन्द्रियम्)** इन्द्रियविजयी **(अजं)** जन्म से रहित उन **(शान्तिजिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अखण्डखण्डगुणधरं, प्रचण्डकामखण्डनम्।
सुभव्यपद्मदिनकरं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(अखण्डखण्डगुणधरं) प्रमाण की अपेक्षा से अखण्ड/एक और निश्चय-व्यवहाररूप नयों की अपेक्षा से खण्ड/अनेक गुणों के धारक **(प्रचण्डकाम-खण्डनम्)** भीषण/उग्र काम का नाश करने वाले तथा **(सुभव्यपद्मदिनकरं)** भव्यजीवरूपी कमलों को विकसित करने में सूर्य स्वरूप **(शान्तिजिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

एकान्त-वाद-मत-हरं, सुस्याद्वाद-कौशलं।
मुनीन्द्र-वृन्द-सेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(एकान्तवादमतहरं) एकान्तवादरूपी मिथ्यामतों के नाशक

(सुस्याद्वादकौशलं) स्याद्वाद में कुशलता को धारण करने वाले **(मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं)** गणधर मुनियों के समूह से सेवित/पूजित **(शान्तिजिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

नृपेन्द्र-चक्रमण्डनं, प्रकर्मचक्रचूरणं।
सुधर्मचक्रचालकं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(नृपेन्द्रचक्रमण्डनं) प्रधान राजाओं के समूह में शोभास्वरूप **(प्रकर्म-चक्रचूरणं)** प्रचण्ड कर्मों के समूह को नष्ट करने वाले और **(सुधर्म-चक्रचालकं)** समीचीन धर्मचक्र के संचालक उन **(शान्ति-जिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अग्रन्थ-नग्न-केवलं, सुमोक्षधाम-केतनं।
अनिष्टघनप्रभञ्जनं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(अग्रन्थनग्नकेवलं) परिग्रह से रहित नग्नता मात्र को धारण करने वाले **(सुमोक्षधाम-केतनं)** सुन्दर मोक्षमहल के ध्वजास्वरूप **(अनिष्ट-घनप्रभञ्जनं)** अनिष्ट पापरूपी मेघों के लिए प्रचण्ड पवन समान **(शान्ति-जिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

महाश्रमणमकिञ्चनं, अकामकामपदधरं।
सुतीर्थकर्तृषोडशं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(महाश्रमणं) जो श्रमणों में महान् **(अकिञ्चनं)** सम्पूर्ण परिग्रह से रहित **(अकामकामपदधरं)** कामना रहित कामदेव पद के धारण करने वाले **(सुतीर्थकर्तृषोडशं)** रत्नत्रय व आगमरूप सच्चे धर्मतीर्थ को करने वाले सोलहवें तीर्थंकर **(शान्तिजिनवरम्)** श्री शान्तिनाथ जिनवर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

महाव्रतधरं वरं, दयाक्षमागुणाकरं।
सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(वरं) श्रेष्ठ **(महाव्रतन्धरं)** महाव्रतधारी **(दयाक्षमागुणाकरं)** दया-क्षमा आदि गुणों के भण्डार तथा **(सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं)** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक **(शान्तिजिनवरम्)** भगवान् शान्तिनाथ तीर्थंकर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

❑ ❑ ❑

पञ्चमहागुरु भक्ति

परम आध्यात्मिक श्रमणाचार्य कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा प्रथम शताब्दी में रचित यह पञ्चमहागुरुभक्ति है, जिसे प्राकृत भाषा के सात पद्यों में अत्यन्त सुमधुर छन्द में लिखा गया है। पञ्चपरमेष्ठी की स्तुति करते हुए ये हमारे लिए भव-भव में सुख प्रदान करें, ऐसी भावना की गई है।

मणुय - णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया,
पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥

अन्वयार्थ—(मणुयणाइंद-सुर-धरियछत्तत्तया) मनुजेन्द्र/चक्रवर्ती, नागेन्द्र/धरणेन्द्र और सुरेन्द्रों द्वारा जिन पर तीन छत्र लगाये गये हैं तथा **(पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया)** पंचकल्याणकों के सुख समूह को प्राप्त **(ते जिणा)** वे जिनवर अरहंत भगवान् **(अम्हं)** हमारे लिये **(वरं मंगलं)** श्रेष्ठ मंगलमय **(अणंतं दंसणं णाण बलं)** अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतबल और **(झाणं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान को **(दिंतु)** देवें।

जेहिं झाणग्गि-वाणेहिं अइ-दिड्ढयं(थड्ढयं),
जम्म - जर - मरण - णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥२॥

अन्वयार्थ—(जेहिं) जिन्होंने **(झाणग्गि-बाणेहिं)** ध्यानरूपी अग्निबाणों द्वारा **(अइ-दिड्ढयं**(थड्ढयं)) अत्यन्त दृढ़ **(जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं)** जन्म-जरा/बुढ़ापा और मरणरूपी तीनों नगरों को **(दड्ढयं)** जलाया **(जेहिं)** जिन्होंने **(सासयं सिवं)** शाश्वत शिव **(ठाणयं पत्तं)** स्थान को प्राप्त किया **(ते सिद्धा)** वे सिद्ध भगवान् **(महं)** मुझे **(वरं णाणयं)** उत्तम ज्ञान को **(दिंतु)** देवें।

पंचहाचार - पंचग्गि - संसाहया,
वारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया।

मोक्ख-लच्छी महंती महं ते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया ॥३॥

अन्वयार्थ—(पंचहाचार-पंचग्गि-संसाहया) जो पंचाचाररूपी पंचाग्नि तपों के सम्यक् साधक **(वारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया)** द्वादशांग आदि श्रुतरूपी सागर में अवगाहन करने वाले तथा **(गयासं मोक्खं गया)** सम्पूर्ण आशाओं परिग्रहों से रहित मोक्ष को प्राप्त **(ते सूरिणो)** वे आचार्य **(महं)** मुझे **(सया)** सदा **(महंती मोक्ख-लच्छी)** महान् मोक्षलक्ष्मी को **(दिंतु)** देवें।

घोर - संसार - भीमाडवी - काणणे,
तिक्ख - वियराल - णह - पाव-पंचाणणे।
णट्ठ - मग्गाण जीवाण पह - देसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥

अन्वयार्थ—(तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे) तीक्ष्ण विकराल नख सहित पैर वाले पापरूपी सिंहों से व्याप्त **(घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे)** घोर संसाररूपी भयंकर अटवी, बीहड़ वन में **(णट्ठ-मग्गाण)** मार्ग भूले हुए **(जीवाण)** जीवों को जो **(पह-देसिया)** मार्ग के उपदेशक/ मार्गदर्शक हैं **(ते उवज्झाय)** उन उपाध्याय परमेष्ठी की **(अम्हे)** हम **(सया)** सदा **(वंदिमो)** वंदना करते हैं।

उग्ग-तव-चरण-करणेहिं झीणंगया,
धम्म - वरझाण - सुक्केक्क - झाणंगया।
णिब्भरं तव-सिरीए समालिंगया,
साहवो ते महं मोक्ख-पह-मग्गया ॥५॥

अन्वयार्थ—(उग्ग-तव-चरण-करणेहिं) उग्र तपश्चरण तेरह प्रकार का चारित्र और तेरह प्रकार की क्रियाओं के करने से **(झीणंगया)** क्षीणता को प्राप्त शरीर वाले **(धम्मवरझाणसुक्केक्क-झाणंगया)** धर्मरूप उत्तमध्यान तथा शुक्लरूप मुख्य ध्यान को प्राप्त **(तव-सिरीए)** तपरूपी लक्ष्मी से **(णिब्भरं समालिंगया)** अत्यन्त आलिंगित **(ते साहवो)** वे साधुगण **(महं)** मेरे लिए **(मोक्ख-पह-मग्गया)** मोक्षमार्ग के मार्गदर्शक/देने वाले हों।

एण थोत्तेण जो पंच-गुरु वंदए,
गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए ।

लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वर (बहु) माणणं,
कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥६॥

अन्वयार्थ—(एण थोत्तेण) इस स्तोत्र के द्वारा **(जो)** जो **(पंच-गुरु)** पञ्च-गुरुओं/पञ्च-परमेष्ठियों की **(वंदए)** वंदना करता है **(सो)** वह **(गुरुय-संसार-घण-वेल्लि)** गुरु/भारी/अनन्त संसाररूपी सघन बेल को **(छिंदए)** काट डालता है और **(सो)** वह **(वरमाणणं)** उत्तम जनों के द्वारा मान्य **(सिद्धि-सोक्खाइं)** मोक्ष के सुखों को **(लहइ)** प्राप्त होता है तथा **(कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं)** कर्मरूपी ईंधन के समूह को भस्म **(कुणइ)** करता है।

अरुहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंच-परमेट्ठी।
एयाण (एदे पंच) णमोयारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥७॥

अन्वयार्थ—(अरुहा) जन्म से रहित अरहंत **(सिद्धाइरिया)** सिद्ध, आचार्य **(उवज्झाया)** उपाध्याय और **(साहु)** साधु ये **(पंच-परमेट्ठी)** पाँच परमेष्ठी हैं **(एयाण)** इनके **(णमोयारा)** नमस्कार **(मम)** मुझे **(भवे भवे)** भव-भव में **(सुहं)** सुख को **(दिंतु)** देवें।

❑ ❑ ❑

गुरु वन्दना

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है।
आनन्द उल्लसित होता है, हो-ऽ ऽ ऽ सम्यग्दर्शन होता है ॥
वास जिनका वन, उपवन में, गिरि शिखर के नदी तटे।
वास जिनका चित्त गुफा में, आतम आनन्द में रमें ॥
कंचन कामिनी के त्यागी, महातपस्वी ज्ञानी ध्यानी।
काया की माया के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी॥
परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ।
शान्त मूर्ति सौम्य मुद्रा, आतम आनन्द में रमूँ ॥
चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं है रमणी की।
चाह हृदय में एक यही है, शिवरमणी को वरने की॥
भेदज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं।
क्षण-क्षण में अर्न्तमुख होकर, सिद्धों से बातें करते हैं ॥

तित्थयर भत्ति

प्रथम शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी रचित चौबीस तीर्थंकर की स्तुति 'तित्थयर भत्ति' प्राकृत भाषा में रचित है। अंत में आरोग्य, ज्ञान का लाभ, समाधि एवं बोधि हमें प्रदान करें, ऐसी चौबीस तीर्थंकर अरिहंत सिद्धों से कामना की गई है।

आर्या छन्द

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थ-यरे केवली अणंतजिणे ।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ॥१॥

अन्वयार्थ—(जिणवरे) जो कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने में श्रेष्ठ **(केवली)** केवलज्ञान से युक्त **(अणंतजिणे)** अनन्तसंसार को जीतने वाले **(णर-पवर-लोय महिए)** मनुष्यों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि लोगों से पूजित **(विहुय-रय-मले)** ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज और मोहनीय-अन्तरायरूपी मल को दूर करने वाले तथा **(महप्पण्णे)** महाप्राज्ञ-उत्कृष्ट ज्ञानवान् ऐसे **(तित्थ-यरे)** तीर्थंकरों की **(हं थोस्सामि)** मैं स्तुति करता हूँ।

लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से,चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

अन्वयार्थ—(लोयस्सुज्जोय-यरे) केवलज्ञान के द्वारा लोक को प्रकाशित करने वाले **(धम्मं तित्थंकरे)** धर्मरूपी तीर्थ के कर्ता **(जिणे)** जिनेन्द्र प्रभु की मैं **(वंदे)** वन्दना करता हूँ **(च)** और **(अरहंते)** अरहंत पद को प्राप्त **(केवलिणो)** केवलज्ञानी **(चउवीसं)** चौबीस तीर्थंकरों का **(एव)** निश्चित ही **(कित्तिस्से)** कीर्तन/गुण स्तवन करता हूँ।

उसह-मजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥

अन्वयार्थ—मैं कुन्दकुन्दाचार्य **(उसहं)** ऋषभदेव **(अजियं)** अजितनाथ **(संभवं)** संभवनाथ **(अभिणंदणं)** अभिनंदननाथ **(च)** और **(सुमइं)** सुमतिनाथ की **(वंदे)** वंदना करता हूँ **(च)** और **(पउमप्पहं)** पद्मप्रभ देव **(सुपासं)** सुपार्श्वनाथ **(च)** और **(चंदप्पहं)** चन्द्रप्रभ देव **(जिणं)** जिनेन्द्र की

(वंदे) वंदना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

अन्वयार्थ—(च) और मैं **(सुविहिं)** सुविधि/सौभाग्यशाली **(पुप्फयंतं)** पुष्पदंत **(सीयल)** शीतलनाथ **(सेयं)** श्रेयोनाथ **(च)** और **(वासुपुज्जं)** वासुपूज्य **(विमलं)** विमलनाथ **(अणंतं)** अनंतनाथ **(धम्मं)** धर्मनाथ **(च)** और **(संतिं)** शान्तिनाथ **(भयवं)** भगवान् की **(वंदामि)** वंदना करता हूँ।

कुंथुं च जिणवरिदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं (वंदे अरिट्ठणेमिं), तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

अन्वयार्थ—मैं **(कुंथुं)** कुंथुनाथ **(अरं)** अरनाथ **(मल्लिं)** मल्लिनाथ **(सुव्वयं)** मुनिसुव्रतनाथ **(णमिं)** नमिनाथ **(अरिट्ठ-णेमिं)** अरिष्ट नेमिनाथ **(तह)** तथा **(पासं)** पार्श्वनाथ **(च)** और **(वड्ढमाणं)** वर्धमान स्वामी **(जिणवरिंदं)** जिनवरों में प्रधान तीर्थंकरों को **(वंदे)** नमस्कार करता हूँ ।

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थ-यरा मे पसीयंतु ॥६॥

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार **(मए)** मेरे द्वारा **(अभित्थुआ)** स्तुति किए गए **(विहुय-रय-मला)** ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज व मोहनीय-अन्तराय-रूपी मल को दूर करने वाले **(पहीण-जर-मरणा)** बुढ़ापा और मृत्यु से रहित **(जिणवरा)** गणधर आदि जिनवरों में प्रधान ऐसे **(चउवीसं)** चौबीस **(तित्थ-यरा)** तीर्थंकर भगवान् **(मे)** मेरे ऊपर **(पसीयंतु)** प्रसन्न हों।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

अन्वयार्थ—इस प्रकार मेरे द्वारा **(कित्तिय)** वचन से कीर्तन किए गए **(वंदिय)** मन से वंदना किए गए तथा **(महिया)** काय से पूजे गए **(एदे)** ये **(लोगोत्तमा)** लोक में उत्तम **(जिणा)** जिनवर अरहंत और **(सिद्धा)** सिद्धि को प्राप्त सिद्ध **(मे)** मेरे लिए **(आरोग्ग-णाणलाहं)** निरोगता और ज्ञान लाभ **(समाहिं)** समाधि **(च)** और **(बोहिं)** बोधि/रत्नत्रय को **(दिंतु)** देवें।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता ।
सायरमिव गम्भीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

अन्वयार्थ—जो **(चंदेहिं)** चन्द्रमा से **(णिम्मलयरा)** अधिक निर्मल **(आइच्चेहिं)** सूर्य से **(अहिय-पयासंता)** अधिक प्रभासम्पन्न/प्रकाशमान **(सायरं इव)** सागर के समान **(गंभीरा)** गम्भीर तथा **(सिद्धा)** सिद्ध पद को प्राप्त ऐसे चौबीस भगवान् **(मम)** मुझे **(सिद्धिं)** सिद्धि/मोक्ष को **(दिसंतु)** देवें।

❑ ❑ ❑

समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ॥
शत्रु अगर कोई हो संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊँ॥
त्यागूँ आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥
जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ॥
आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊँ॥
धर्मात्मा निकट हों चरचा धरम सुनावें।
वह सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ॥
जीने की हो न वांछा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ॥
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ॥
रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥

वीतरागस्तोत्रम्

दृश्यमान जगत् में जो भी शरीरादि पर पदार्थ दिख रहे हैं, वह तथा कर्म से उत्पन्न रागादि परिणाम स्वरूप मैं आत्मा नहीं हूँ। निश्चय से परम आनन्द स्वरूप वीतरागता ही मेरा स्वभाव है। ऐसे पर पदार्थों से ममत्व हटाकर निज स्वरूप में प्रीति जगाने हेतु इस वीतराग स्तोत्र की रचना की गई है। पर निमित्त से उत्पन्न होने वाली आकुलता दूर करने के लिए इसका पाठ, स्मरण, चिंतन रामबाण औषधि के समान कार्यकारी होता है।

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्त्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥१॥

अन्वयार्थ—जो **(न देवः)** न देव **(न बंधुः)** न कुटुम्बी **(न कर्मा)** न कर्म **(न कर्ता)** न कर्ता **(न अङ्गं)** न शरीर के अवयव **(न सङ्गं)** न परिग्रह **(न स्वेच्छा)** न अपनी इच्छा और **(न कायं)** न शरीररूप हैं ऐसे **(शिवं)** कल्याण स्वरूप **(शुद्धबुद्धं)** कर्मों से रहित निर्मल केवलज्ञान स्वरूप **(परं)** उत्कृष्ट और **(विश्वनाथं)** तीनों लोकों का स्वामी **(चिदानन्दरूपं)** आत्मानन्द स्वरूप **(वीतरागम् नमः)** वीतराग देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥२॥

अन्वयार्थ—जो **(न बन्धो)** न बन्ध **(न मोक्षो)** न मोक्ष **(न रागादिदोषः)** न राग आदि दोष **(न योगं)** न मनादि योग **(न भोगं)** न भोग **(न व्याधिः)** न रोग **(न शोकः)** न शोक **(न कोपं)** न क्रोध **(न मानं)** न मान **(न माया)** न माया **(न लोभं)** न लोभ स्वरूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥३॥

अन्वयार्थ—जो **(न हस्तौ)** न हाथ **(न पादौ)** न पैर **(न घ्राणं)** न नाक **(न जिह्वा)** न जीभ **(न चक्षुः)** न नेत्र **(न कर्णं)** न कान **(न वक्त्रं)** न मुँह **(न निद्रा)** न निद्रा स्वरूप हैं और **(न स्वामी)** न मालिक **(न भृत्यः)** न नौकर **(न देवः)** न देवगति के देव **(न मर्त्यः)** न मनुष्य हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा

के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न जन्म न मृत्यु र्न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥४॥

अन्वयार्थ—जो **(न जन्म)** न जन्म **(न मृत्युः)** न मरण **(न मोहं)** न मोह **(न चिंता)** न चिन्ता है **(न क्षुद्रो)** न छोटे **(न भीतो)** न भयभीत **(न कार्श्यं)** न कृश **(न तन्द्रा)** न प्रमादी **(न स्वेदं)** न पसीना **(न खेदं)** न दुखरूप **(न वर्णं)** न रंग व **(न मुद्रा)** न चिह्नरूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

त्रिदण्डे! त्रिखण्डे! हरे! विश्वनाथं, हृषीकेश! विध्वस्त-कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि-गात्रं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥५॥

अन्वयार्थ—**(त्रिदण्डे!)** हे तीन दण्ड के धारी **(त्रिखण्डे! हरे!)** तीन खण्ड के अधिपति सर्व दुखहारी नारायण **(हृषीकेश!)** इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय आप **(विश्वनाथं)** विश्व के स्वामी **(विध्वस्त-कर्मादि-जालम्)** कर्म के समूह को नाश करने वाले **(न पुण्यं)** न पुण्यरूप **(न पापं)** न पापरूप **(च)** और **(न अक्षादि-गात्रं)** न नेत्रादि शरीर स्वरूप हैं ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥६॥

अन्वयार्थ—जो **(न बालो)** न बालक **(न वृद्धो)** न वृद्ध **(न तुच्छो)** न हीन **(न मूढो)** न मूर्ख **(न स्वेदं)** न पसीना वाले **(न भेदं)** न भेदरूप **(न मूर्तिः)** न मूर्तिक **(न स्नेहः)** न स्नेह वाले **(न कृष्णं)** न काले **(न शुक्लं)** न गोरे **(न मोहं)** न मोही और **(न तंद्रा)** न तन्द्रारूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्,न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥७॥

अन्वयार्थ—जो **(न आद्यं)** न आदि **(न मध्यं)** न मध्य **(न अन्तं)** न अन्त स्वरूप **(न अन्यत्)** न दूसरे रूप **(न द्रव्यं)** न द्रव्य **(न क्षेत्रं)** न क्षेत्र **(न कालो)** न काल **(न भावः)** न भाव **(न शिष्यो)** न शिष्य **(न गुरु)** न गुरु **(अपि हीनं न दीनं)** न हीन न दीन ही हैं ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप

(वीतरागम्) वीतरागदेव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्य-स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥८॥

अन्वयार्थ–(इदं) यह आत्मा **(स्वयं)** स्वयं **(ज्ञानरूपं)** ज्ञान स्वरूप है **(तत्त्ववेदी)** तत्त्वों को जानने वाली है **(न पूर्णं)** न पूर्ण **(न शून्यं)** न शून्य **(न चैत्य-स्वरूपम्)** न प्रतिमारूप है **(च न अन्यो)** और न दूसरा **(न भिन्नं)** न अलग **(न परमार्थं)** न परमार्थरूप **(न एकं)** न एकरूप है ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार हो।

आत्माराम - गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूत-गतागते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे,
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायन्ति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष-हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(त्वयि सर्वगे) आप सर्वज्ञ में **(सर्वे भूत-गतागते)** सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल सम्बन्धी **(सुखदुःखे ज्ञाते)** सुख-दुख को जान लेने पर **(स्वयं)** स्वतः **(योगीश्वराः)** मुनीश्वर गणधर देव **(स्वमनसा)** अपने मन से **(ध्यायन्ति)** आपका ध्यान करते हैं **(आत्माराम-गुणाकरं)** आत्मारूपी बगीचे में गुणों की खान **(गुणनिधिं)** गुणों के भण्डार **(चैतन्य-रत्नाकरं)** चैतन्यरूपी समुद्र **(तं)** उन **(हरिवंश-हर्ष-हृदयं)** हरिवंश के हर्ष के हृदय/मुख्य कारण श्री मुनिसुव्रतनाथ और श्री नेमिनाथ वीतरागदेव की मैं **(हृदा)** हृदय से **(वंदे)** वन्दना/नमस्कार करता हूँ **(श्रीमान्)** अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी सम्पन्न **(त्रैलोक्याधिपते!)** हे तीनों लोकों के स्वामी **(अभ्युद्यताम्)** मुझे अपने निकटवर्ती करें।

❑ ❑ ❑

परमानन्दस्तोत्रम्

पर पदार्थों से भिन्न निज आत्मा का स्वरूप परम आनन्दमय है, जो व्यक्ति सम्यक् ध्यान का आलम्बन लेता है, वही उसे प्राप्त कर सकता है, वही पण्डित एवं ज्ञानी कहलाता है। इस प्रकार से आत्मा के स्वरूप, उसको प्राप्त करने का उपाय इत्यादि विषयों का संक्षिप्त बोध कराने में सक्षम यह परमानन्द स्तोत्र है।

परमानन्द-संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(परमानन्द-संयुक्तं) परम आनन्द से युक्त **(निर्विकारं)** राग-द्वेषादि विकारीभावों से रहित निर्विकार **(निरामयम्)** निरामय/जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोग से रहित **(निजदेहे व्यवस्थितम्)** स्वयं अपने शरीर में स्थित आत्मा को **(ध्यानहीनाः)** ध्यान से रहित व्यक्ति **(न पश्यन्ति)** नहीं देखते हैं।

अनन्तसुख-संपन्नं, ज्ञानामृत-पयोधरम्।
अनन्तवीर्य-सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥२॥

अन्वयार्थ—(परमात्मनः) उत्कृष्ट आत्मा/परमात्मा का **(दर्शनं)** देखना/अनुभव करना **(अनन्तसुखसंपन्नं)** अनन्तसुख सहित **(ज्ञानामृतपयोधरम्)** ज्ञानामृतरूपी मेघ वाला **(अनन्तवीर्यसम्पन्नं)** अनन्तबल से युक्त है।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसङ्गविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥३॥

अन्वयार्थ—वह परमात्मा **(निर्विकारं)** विकार से रहित **(निराबाधं)** बाधा से रहित **(सर्वसङ्ग-विवर्जितम्)** सम्पूर्ण बाह्य-अंतरंग परिग्रह से रहित (**परमानन्द-सम्पन्नं**) परमानन्द से संयुक्त और **(शुद्धचैतन्यलक्षणम्)** शुद्ध चैतन्यरूप लक्षणवाला है।

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्याद्, देह-चिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, पर-चिन्ताधमाधमा ॥४॥

अन्वयार्थ—(स्वात्मचिन्ता) अपने आत्मा की चिंता करना **(उत्तमा)** उत्कृष्ट है **(देह-चिन्ता)** शरीर की चिंता करना **(मध्यमा)** मध्यम है **(कामचिन्ता)** विषय-

भोग की चिन्ता करना **(अधमा)** जघन्य है **(पर-चिन्ता)** दूसरों की चिंता करना **(अधमाधमा)** जघन्य से जघन्य है।

निर्विकल्प - समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमञ्जलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥५॥

अन्वयार्थ– (तपस्विनः) साधुजन **(निर्विकल्पसमुत्पन्नं)** विकल्प से रहित होने पर उत्पन्न होने वाले **(तत्)** उस **(ज्ञानम् सुधारसम् एव)** ज्ञानरूपी अमृतरस को ही **(विवेकमञ्जलिं)** विवेकरूपी अञ्जुलि को **(कृत्वा)** बनाकर **(पिबन्ति)** पीते हैं।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥६॥

अन्वयार्थ–(यः) जो निश्चय से **(जीवं)** जीव को **(सदानन्दमयं)** सदा आनन्द में लीन **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वह पण्डित है **(सः)** वह **(परमानन्दकारणम्)** परम आनन्द का कारण **(निजात्मानं)** अपनी आत्मा का **(सेवते)** सेवन करता है।

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(नलिन्यां)** कमलिनी में **(नीरं)** जल **(सर्वदा)** हमेशा **(भिन्नं)** अलग रहता है उसी प्रकार **(अयं आत्मा स्वभावेन)** यह आत्मा स्वभाव से **(देहे)** शरीर में **(निर्मलः)** कर्ममल से स्वच्छ **(तिष्ठति)** रहता है।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं, भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८॥

अन्वयार्थ–(निश्चयेन) निश्चय से **(चिदात्मनः)** इस चेतन आत्मा का स्वरूप **(द्रव्यकर्म-मलैर्मुक्तं)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपी मलों से रहित **(भावकर्म-विवर्जितम्)** रागादि भावकर्मों से रहित और **(नोकर्मरहितं)** शरीरादि नोकर्मों से रहित **(विद्धि)** जानो।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(इव जात्यन्धाः) जैसे जन्म से अन्धे मनुष्य **(भास्करम्)** सूर्य को **(न**

पश्यन्ति) नहीं देखते/जानते हैं वैसे **(निजदेहे व्यवस्थितम्)** अपने शरीर में स्थित **(ब्रह्मणः)** आत्मा के **(आनन्दं रूपं)** आनन्द स्वरूप को **(ध्यानहीना न पश्यन्ति)** ध्यान से रहित जीव नहीं देखते/जानते हैं ।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यै,-र्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(भव्यैः) भव्यजीवों के द्वारा **(तद्ध्यानं)** उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान **(क्रियते)** किया जाता है **(येन)** जिससे **(मनः)** मन **(विलीयते)** उसी में विलीन हो जाता है और **(तत्क्षणं)** उसी समय **(चित्-चमत्कार-लक्षणम्)** चैतन्य चमत्कार लक्षण वाला **(शुद्धं)** शुद्ध आत्मतत्त्व **(दृश्यते)** दिखाई देता है/अनुभव में आता है।

ये ध्यानलीना मुनयः प्रधाना,-स्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११॥

अन्वयार्थ–(ये) जो **(प्रधानाः मुनयः)** श्रेष्ठ मुनि **(ध्यानलीनाः)** ध्यान में लीन होते हैं **(ते)** वे **(नियमात्)** नियम से **(दुखहीनाः)** दुखों से रहित **(भवन्ति)** होते हैं तथा **(शीघ्रं)** जल्दी से **(परमात्मतत्त्वं)** परमात्मतत्त्व को **(सम्प्राप्य)** प्राप्तकर **(एकं क्षणं एव)** एक क्षण में ही **(मोक्षं)** मोक्ष को **(व्रजन्ति)** प्राप्त करते हैं/जाते हैं।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त-संकल्प-विकल्प-मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेवतत्त्वम् ॥१२॥

अन्वयार्थ–(समस्त-संकल्प-विकल्प-मुक्तम्) सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों से रहित **(आनन्दरूपं)** आनन्दरूप **(परमात्मतत्त्वं)** परमात्मतत्त्व को **(योगी)** योगी **(नित्यं)** हमेशा **(जानाति)** जानता है इसलिए **(स्वभावलीनाः)** स्वभाव में लीन योगिजन **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(तत्त्वम्)** आत्मस्वभाव में **(निवसन्ति)** निवास करते हैं।

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम्।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥१३॥
लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ॥१४॥

अन्वयार्थ–(परमेश्वरैः) तीर्थंकर भगवन्तों के द्वारा **(अयं)** यह आत्मा

(निश्चये) निश्चयनय की विवक्षा में **(निराकारं)** आकार रहित **(निरामयम्)** व्याधि रहित **(अनन्तसुख-सम्पन्नं)** अनन्तसुख से युक्त **(सर्वसङ्गविवर्जितम्)** सम्पूर्ण अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह से रहित **(चिदानन्दमयं)** आत्मानन्दरूप **(शुद्धं)** समस्त कर्ममल से रहित पवित्र **(लोकमात्रप्रमाणः)** लोक के बराबर परिमाण वाला और **(व्यवहारे)** व्यवहारनय की विवक्षा में **(तनूमात्रः)** शरीर के बराबर **(कथितः)** कहा गया है इसमें **(हि)** नियम से **(न संशयः)** संशय नहीं है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ॥१५॥

अन्वयार्थ–(निर्विकल्पसमाधिना) विकल्प रहित ध्यान के द्वारा यह आत्मा **(यत्क्षणं)** जिस समय **(स्वस्थचित्तः)** स्वस्थ मन होता हुआ **(स्थिरीभूत्वा)** स्थिर होकर **(शुद्धं)** शुद्ध आत्मस्वरूप को **(दृश्यते)** देखता है **(तत्क्षणं)** उसी समय **(गतविभ्रमः)** आत्म विषयक भ्रम से दूर हो जाता है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सः) वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्म है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(जिनपुङ्गवः)** जिन श्रेष्ठ है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं तत्त्वं)** परम तत्त्वरूप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमः गुरुः)** उत्कृष्ट गुरु है।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः॥१७॥

अन्वयार्थ–(सः) वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ज्योतिः)** परमं ज्योति/केवलज्ञानस्वरूप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं तपः)** इच्छा निरोधरूप उत्कृष्ट तप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ध्यानं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमात्मनः)** परमात्मा का स्वरूप है।

स एव सर्व-कल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्ध-चिद्रूपं, स एव परमं शिवः ॥१८॥

अन्वयार्थ–(सः एव) वही आत्मा **(सर्व-कल्याणं)** सब कल्याणस्वरूप **(सः एव)** वही आत्मा **(सुखभाजनम्)** सुख प्राप्त करने वाली **(सः एव शुद्ध-चिद्रूपं)** वही शुद्ध ज्ञानदर्शन चेतनारूप है **(सः एव)** वही आत्मा **(परमं**

शिवः) उत्कृष्ट मोक्ष स्वरूप है।

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः ॥१९॥

अन्वयार्थ–(सः एव) वही आत्मा **(परमानन्दः)** उत्कृष्ट आनन्दरूप है **(सः एव)** वही आत्मा **(सुखदायकः)** सुखों को देने वाली है **(सः एव)** वही आत्मा **(परमज्ञानं)** उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप **(सः एव)** वही आत्मा **(गुण-सागरः)** गुणों का समुद्र है।

परमाह्लाद-सम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२०॥

अन्वयार्थ–(सः अहं) वह मैं **(परमाह्लाद-सम्पन्नं)** उत्कृष्ट आनन्द से युक्त **(रागद्वेषविवर्जितम्)** राग-द्वेष से रहित हूँ ऐसा **(यः)** जो **(देहमध्येषु)** कार्मण तैजस औदारिकादि शरीरों में स्थित **(तं)** उस आत्मा को **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वही पण्डित/ज्ञानी है।

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूप-व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥२१॥
तत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२२॥

अन्वयार्थ–(शुद्धं) द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित शुद्ध **(आकाररहितं)** आकार रहित **(स्व-स्वरूप-व्यवस्थितम्)** अपने स्वरूप में स्थित **(अष्टगुणोपेतं)** अष्ट गुणों से युक्त **(निर्विकारं)** विकार रहित **(निरंजनम्)** कर्म कालिमा से रहित निरंजन **(सिद्धं)** सिद्धों को **(महीयसे)** महान्/विशाल **(प्रकाशाय)** केवलज्ञानरूपी प्रकाश के लिए **(यः)** जो **(सहजानन्दचैतन्यं)** सहजानन्दरूप चैतन्य **(निजात्मानं)** अपनी आत्मा को **(तत्सदृशं)** उन सिद्धों समान **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वह पण्डित है ।

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे **(पाषाणेषु)** पत्थरों में **(हेम)** सोना **(यथा)** जैसे **(दुग्धमध्ये)** दूध में **(घृतम्)** घी **(यथा)** जैसे **(तिलमध्ये)** तिलों में (**तैलं**) तेल

(तथा) वैसे **(देहमध्ये)** शरीर में **(शिवः)** परमात्मा है ।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे **(काष्ठमध्ये)** लकड़ी में **(वह्निः)** अग्नि **(शक्ति-रूपेण)** शक्तिरूप से **(तिष्ठति)** रहती है वैसे ही **(अयं)** यह **(आत्मा)** आत्मा **(शरीरेषु)** शरीरों में **(तिष्ठति)** रहती है ऐसा **(यः)** जो **(जानाति)** जानता है **(स पण्डितः)** वह पण्डित/ज्ञानी है।

❑ ❑ ❑

इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी ॥१॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी ॥२॥
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी ॥३॥
बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी ॥४॥
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी ॥५॥
दुःखीं हो दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी ॥६॥
सभी पीछे रहें हमसे, नहीं यह भावना स्वामी।
बढ़े आगे हमी से हम, यही है भावना स्वामी ॥७॥
करें बर्ताव सब अच्छा, नहीं यह भावना स्वामी।
सुधर जायें स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी ॥८॥
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी ॥९॥

सरस्वतीस्तोत्रम्

चतुर्निकाय की देवियों में कोई ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी की यहाँ स्तुति नहीं की गई है, अपितु केवलज्ञान के धारी वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी प्रभु के मुख से निकलने वाली वाणी ही वागीश्वरी अथवा सरस्वती है, जिसकी स्तुति यहाँ प्रतीकात्मक रूप में की गई है।

चन्द्रार्क- कोटि-घटितोज्ज्वल-दिव्यमूर्ते!,
श्रीचन्द्रिका-कलित-निर्मल-शुभ्रवस्त्रे!।
कामार्थदायि! कलहंस-समाधि-रूढे!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥१॥

अन्वयार्थ—(चन्द्रार्क-कोटि-घटितोज्ज्वल-दिव्यमूर्ते!) सूर्य और चन्द्रमा की एकत्रित निर्मलता से अधिक मनोहर शरीर वाली **(श्रीचन्द्रिका-कलित-निर्मल-शुभ्रवस्त्रे!)** शोभा सम्पन्न चाँदनी से व्याप्त अत्यन्त स्वच्छ श्वेत वस्त्र को धारण करने वाली **(कामार्थदायि!)** इच्छित पदार्थ को देने वाली तथा **(कलहंस-समाधिरूढे!)** परमात्मारूपी राजहंस के ध्यानरूपी वाहन पर सवार **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें।

देवासुरेन्द्रनतमौलिमणि - प्ररोचि,
श्री-मंजरी निविड - रंजित - पादपद्मे!।
नीलालके! प्रमदहस्ति-समानयाने!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥२॥

अन्वयार्थ—(देवासुरेन्द्रनतमौलिमणि-प्ररोचि-श्रीमंजरी-निविड-रंजित-पादपद्मे!) देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के झुके हुए मुकुटों के मणियों की महान प्रभा से शोभायमान सघन कलिकाओं से व्याप्त चरणकमल वाली **(नीलालके!)** नीले/काले अक्षररूपी केशों वाली **(प्रमदहस्तिसमानयाने!)** मदोन्मत्त हाथी के समान मन्द/शुभ गमन करने वाली **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें ।

केयूर-हार - मणिकुण्डल - मुद्रिकाद्यैः,
सर्वाङ्ग- भूषण - नरेन्द्र - मुनीन्द्र - वंद्ये!।

नानासुरत्न - वर - निर्मल - मौलियुक्ते!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥३॥

अन्वयार्थ—(केयूरहार-मणिकुण्डल-मुद्रिकाद्यैः) बाजूबन्द, हार, रत्नों के कुण्डल और मुद्रिका/अंगूठी आदि से **(सर्वाङ्ग-भूषण-नरेन्द्रमुनीन्द्रवंद्ये!)** भूषित हैं शरीर के सम्पूर्ण अंग जिसके तथा चक्रवर्तियों आदि राजाओं और गणधर आदि मुनीन्द्रों से वन्दनीय **(नानासुरत्न-वर-निर्मलमौलियुक्ते!)** विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से युक्त श्रेष्ठ स्वच्छ मुकुट से सहित **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें।

मंजीरकोत्कनक - कङ्कण - किङ्किणीनां,
काञ्च्याश्च झंकृत-रवेण विराजमाने!।
सद्धर्म - वारि - निधि - संतति - वर्द्धमाने!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥४॥

अन्वयार्थ—(मंजीरकोत्कनक-कङ्कण-किङ्किणीनां) नुपूर, सोने के कंगने, घुँघरुओं **(च)** और **(काञ्च्याः)** करधनी की **(झंकृतरवेण)** झनझन/खनखन की आवाज से **(विराजमाने!)** सुशोभित **(सद्धर्म-वारिनिधि-संतति-वर्द्धमाने!)** अहिंसामयी जिनधर्मरूपी समुद्र को निरन्तर बढ़ाने वाली **(वागीश्वरि ! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें।

कङ्केलिपल्लव - विनिन्दित - पाणि-युग्मे!,
पद्मासने! दिवस - पद्म-समान - वक्त्रे!।
जैनेन्द्र-वक्त्र - भव-दिव्य - समस्त - भाषे!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!॥ ५॥

अन्वयार्थ—(कङ्केलिपल्लव-विनिन्दित-पाणि-युग्मे!) अशोक वृक्ष के पत्तों को तिरस्कृत करने वाले सुन्दर हाथों वाली **(पद्मासने!)** पद्मासन से युक्त **(दिवस-पद्मसमान-वक्त्रे!)** दिन में विकसित होने वाले कमल के समान मुख वाली **(जैनेन्द्र-वक्त्र-भव-दिव्य-समस्त-भाषे!)** भगवान् जिनेश्वर के मुख से उत्पन्न मनोहर सर्वभाषामयी **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें ।

अर्द्धेन्दु-मण्डित-जटा-ललितस्वरूपे!,
शास्त्रप्रकाशिनि! समस्तकलाधिनाथे!।
चिन्मुद्रिका जपसराभय - पुस्तकाङ्के!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥६॥

अन्वयार्थ—(अर्द्धेन्दु-मण्डित-जटाललितस्वरूपे!) अर्द्धचन्द्र से विभूषित जटा-जूट से मनोहर स्वरूपवाली **(शास्त्रप्रकाशिनि!)** पुराणों को प्रकट करने वाली **(समस्तकलाधिनाथे!)** सम्पूर्ण कलाओं की स्वामिनी **(चिन्मुद्रिका)** चैतन्य चिह्न वाली **(जपसराभय-पुस्तकाङ्के!)** जपमाला, अभयमुद्रा तथा शास्त्र को गोद में धारण करने वाली **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें ।

डिण्डीरपिण्ड - हिम - शङ्ख - सिताभ्र -हारे!,
पूर्णेन्दुबिम्ब - रुचि-शोभित-दिव्यगात्रे!।
चाञ्चल्यमान - मृगशाव - ललाट - नेत्रे!,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥७॥

अन्वयार्थ—(डिण्डीरपिण्ड-हिम-शङ्ख-सिताभ्र-हारे !) समुद्र के फेन, बर्फ और शंख के समान सफेद चमकीले हार वाली **(पूर्णेन्दुबिम्ब-रुचि-शोभित-दिव्यगात्रे!)** पूर्ण चन्द्रमण्डल की प्रभा के समान शोभायमान सुन्दर शरीर वाली **(चाञ्चल्यमान-मृगशाव-ललाट-नेत्रे!)** हिरण के बच्चे के समान चंचल मस्तक और नेत्र वाली **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें ।

पूज्ये पवित्रकरणोन्नतकामरूपे!,
नित्यं फणीन्द्रगरुडाधिप - किन्नरेन्द्रैः।
विद्याधरेन्द्र - सुरयक्ष - समस्त - वृन्दैः,
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि! ॥८॥

अन्वयार्थ—(पवित्रकरणोन्नतकामरूपे!) पवित्र करने वाली उच्च इच्छा स्वरूप **(फणीन्द्रगरुडाधिप-किन्नरेन्द्रैः)** धरणेन्द्र, गरुणेन्द्र, किन्नरेन्द्रों के द्वारा और **(विद्याधरेन्द्र-सुरयक्ष-समस्त-वृन्दैः)** विद्याधरों के राजाओं, देवों, यक्षों के सभी समूहों द्वारा **(नित्यं)** सदा **(पूज्ये)** पूजनीय **(वागीश्वरि! देवि!)** हे सरस्वती देवी! **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(मम)** मेरी **(रक्ष)** रक्षा करें।

सरस्वतीनामस्तोत्रम्

जैसे जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण में १००८ नामों से आदिनाथ भगवान् की स्तुति की है। वैसे ही जिनमुख से निकलने वाली जिनवाणी की १६ नामों से स्तुति की गई है। इस स्तोत्र को प्रतिदिन प्रातःकाल पढ़ने से बुद्धि का विकास, स्मरण करने की क्षमता विकसित होती है।

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल-भावेन, पूजनीया सरस्वती ॥१॥

अन्वयार्थ—(सरस्वत्याः) सरस्वती देवी की **(प्रसादेन)** कृपा से **(मानवाः)** विद्वज्जन **(काव्यं)** काव्य रचना **(कुर्वन्ति)** करते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(निश्चल-भावेन)** अटल भक्तिभाव से **(सरस्वती)** सरस्वती देवी **(पूजनीया)** पूज्यनीय है।

श्रीसर्वज्ञ-मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषिणी।
अज्ञानतिमिरं हन्ति, विद्या-बहु-विकासिनी ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रीसर्वज्ञ-मुखोत्पन्ना) श्री सर्वज्ञ प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न **(बहुभाषिणी)** अनेक भाषारूप **(विद्या-बहु-विकासिनी)** अनेक विद्याओं को प्रकट करने वाली **(भारती)** ऐसी सरस्वती देवी **(अज्ञानतिमिरं)** अज्ञानरूपी अन्धकार को **(हन्ति)** नाश करती है।

सरस्वती मया दृष्टा, दिव्या कमल-लोचना।
हंसस्कन्ध-समारूढा, वीणा-पुस्तक-धारिणी ॥३॥

अन्वयार्थ—(दिव्या) मनोहर **(कमल-लोचना)** कमल के समान सुन्दर दो नेत्रों वाली अर्थात् दो नयों वाली **(हंसस्कन्ध-समारूढा)** हंस के शरीर पर सवारी करने वाली अर्थात् भेदविज्ञानी आत्मा के ऊपर विराजमान **(वीणा-पुस्तक-धारिणी)** दिव्यध्वनिरूपी वीणा और आगमरूपी पुस्तक को कर कमलों में धारण करने वाली **(सरस्वती-मया दृष्टा)** सरस्वती देवी का मैंने दर्शन किया।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदादेवी, चतुर्थं हंसगामिनी ॥४॥

अन्वयार्थ—सरस्वती देवी का **(प्रथमं भारती नाम)** पहला नाम भारती **(द्वितीयं सरस्वती)** दूसरा सरस्वती **(तृतीयं शारदादेवी)** तीसरा शारदादेवी **(च)** और **(चतुर्थं हंसगामिनी)** चौथा हंसगामिनी (क्षीरनीर विवेकशीला) है।

पंचमं विदुषां माता, षष्ठं वागीश्वरी तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी॥ ५॥

अन्वयार्थ–(पंचमं विदुषां माता) पाँचवाँ विद्वानों की माता **(षष्ठं वागीश्वरी)** छठवाँ नाम वागीश्वरी **(सप्तमं कुमारी)** सातवाँ कुमारी **(तथा)** और **(अष्टमं ब्रह्मचारिणी)** आठवाँ नाम ब्रह्मचारिणी **(प्रोक्तं)** कहा गया है।

नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्॥ ६॥

अन्वयार्थ–(नवमं जगन्माता) नववाँ जगत् की माता/जगदम्बा माता **(च)** और **(दशमं ब्राह्मिणी)** दशवाँ ब्राह्मिणी **(तथा)** तथा **(एकादशं ब्रह्माणी)** ग्यारहवाँ ब्रह्माणी **(तु**)और **(द्वादशं वरदा)** बारहवाँ नाम वरदा/वरदान देने वाली **(भवेत्)** है।

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा चैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते ॥७॥

अन्वयार्थ–(त्रयोदशं नाम वाणी) तेरहवाँ नाम वाणी **(चतुर्दशं भाषा)** चौदहवाँ भाषा **(च)** और **(पंचदशं श्रुतदेवी)** पंद्रहवाँ श्रुतदेवी **(षोडशं गौः)** सोलहवाँ नाम गौ **(निगद्यते)** कहा गया है **(एव)** वास्तव में ये सोलह सरस्वती देवी के नाम हैं।

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत् ॥८॥

अन्वयार्थ–(यः) जो भव्यपुरुष **(प्रातः उत्थाय)** प्रातःकाल उठकर **(एतानि)** इन **(श्रुतनामानि)** जिनशास्त्र/सरस्वती के नामों को **(पठेत्)** पढ़ता है **(तस्य)** उस पर **(माता शारदा)** जिनवाणी/सरस्वती माता **(संतुष्यति)** प्रसन्न होती है और **(वरदा)** वर प्रदान करने वाली **(भवेत्)** होती है।

सरस्वति! नमस्तुभ्यं, वरदे! काम-रूपिणी।
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥९॥

अन्वयार्थ–(वरदे!) हे वरदायिनी! **(काम-रूपिणी)** इच्छित रूप को धारण करने वाली **(सरस्वति!)** हे सरस्वती! **(तुभ्यं)** तेरे लिए **(नमः)** नमस्कार हो **(विद्यारंभं)** मैं विद्या का प्रारम्भ **(करिष्यामि)** करूँगा **(मे)** मुझे विद्या प्राप्ति में **(सदा)** हमेशा **(सिद्धिः)** सिद्धि/सफलता/समृद्धि **(भवतु)** हो।

❑ ❑ ❑

चौबीस तीर्थंकर स्तुति

वृषभादि चौबीस तीर्थंकर की स्तुतिपरक संस्कृत भाषा के उपजाति छन्द के २४ काव्य तथा अंतिम काव्य शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में अज्ञात कवि द्वारा रची गयी है। संक्षेप में तीर्थंकरों का गुणगान करने वाली यह रचना प्रतिदिन पठनीय है।

उपजातिछन्दः

येन स्वयं बोधमयेन लोका, आश्वासिताः केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिताः केचन मोक्षमार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्वयं बोधमयेन) स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञान से **(येन)** जिन्होंने **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(वित्तकार्ये)** आजीविका के कार्यों में **(आश्वासिताः)** आश्वस्त/प्रोत्साहित किया **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(प्रबोधिताः)** प्रबुद्ध/जागृत किया **(तम्)** उन **(आदिनाथं)** आदिनाथ जिनेन्द्र को **(नित्यम्)** सदा **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम/नमस्कार करता हूँ।

इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्र-तोयैः, संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्रः।
यः कामजेता जनसौख्यकारी, तं शुद्ध-भावादजितं नमामि ॥२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(कामजेता)** काम को जीतने वाले **(जन-सौख्यकारी)** प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने वाले **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् **(इन्द्रादिभिः)** इन्द्र आदि के द्वारा **(क्षीरसमुद्र-तोयैः)** क्षीरसागर के जल से **(मेरुगिरौ)** सुमेरुपर्वत पर **(संस्नापितः)** अभिषेक को प्राप्त हुए **(तं)** उन **(अजितम्)** अजितनाथ भगवान् को **(शुद्धभावात्)** शुद्धभाव से **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन येन, निहत्य कर्म-प्रकृतीः समस्ताः।
मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं प्रपेदे, तं संभवं नौमि महानुरागात् ॥३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन)** ध्यान के निरन्तर प्रभाव से **(समस्ताः कर्म-प्रकृतीः)** सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियों को **(निहत्य)** नष्ट करके **(मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं)** मोक्षस्वरूप पदवी/स्थान को **(प्रपेदे)** प्राप्त किया

(तं) उन **(संभवं)** संभवनाथ जिनवर को **(महानुरागात्)** बड़े अनुराग से **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि-वह्नयन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं, नौमि प्रमोदादभिनन्दनं तम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(यदीया) जिनकी **(जननी)** माता ने **(क्षपायां)** रात्रि में **(स्वप्ने)** स्वप्न में **(इदम् गजादि-वह्नयन्तम्)** ये हाथी से लेकर अग्नि तक सोलह स्वप्ने **(ददर्श)** देखे **(यत् तातः)** जिनके पिता ने **(अयं)** ये **(परः गुरुः)** श्रेष्ठ गुरु हैं **(इति आह)** इस प्रकार बतलाया था **(तं अभिनंदनं)** उन अभिनंदननाथ जिनेश्वर को **(प्रमोदात्)** हर्ष से **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

कुवादि-वादं जयतः महान्तं, नय-प्रमाणैर्वचनै-र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देव-देवं सुमतिं नमामि ॥५॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(महान्तं)** बड़े-बड़े **(कुवादि-वादं)** कुवादियों के वादों को **(नय-प्रमाणैः)** नय और प्रमाणरूपी **(वचनैः)** वचनों के द्वारा **(जयतः)** विजय से **(च)** और **(जगत्सु)** त्रिलोकों में **(जैनं मतं)** जिनशासन को **(विस्तरितं)** विस्तारित किया **(तं देवदेवम्)** उन देवों के देव/देवाधिदेव **(सुमतिं)** सुमतिनाथ जिन को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात्।
धनाधिपः षण्णव-मासपूर्वं, पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(अवतारे सति)** जन्म होने पर **(हरेः निदेशात्)** इन्द्र की आज्ञा से **(धनाधिपः)** धन के अधिपति कुबेर ने **(पितृधिष्ण्ये)** पिता के घर के प्रांगण में **(षण्णव-मासपूर्वं)** पन्द्रह महीने पहले **(रत्नानि)** रत्नों को **(ववर्ष)** वर्षाया **(तं)** उन **(पद्मप्रभं)** पद्मप्रभ भगवान् को **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथाः(थैः), वाणीं भवन्तीं जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभाया,-महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥७॥

अन्वयार्थ—(भवन्तीं) जिनकी **(वाणीं)** दिव्यध्वनि को **(नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथाः(थैः))** नरेन्द्र, धरणेन्द्र और देवेन्द्रों ने **(स्वचित्ते)** अपने चित्त में **(जगृहे)** ग्रहण/धारण किया और **(यस्य)** जिनका **(आत्मबोधः)** आत्मज्ञान **(सभायाम्)** समवसरण सभा में **(प्रथितः)** विस्तरित/प्रसिद्ध हुआ **(ननु)**

निश्चय से **(तं सुपार्श्वं)** उन सुपार्श्वनाथ जिन को **(अहं नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्प्रातिहार्यातिशय-प्रपन्नो, गुण-प्रवीणो हत-दोष-सङ्गः।
यो लोक-मोहान्धतमःप्रदीपः, चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नः)** सुन्दर प्रातिहार्यरूप अतिशयों को प्राप्त **(गुणप्रवीणः)** गुणों में चतुर **(हतदोष-सङ्गः)** दोषों की संगति को नष्ट करने वाले **(लोक-मोहान्धतमःप्रदीपः)** जीवों के मोहरूपी महान अंधकार को दूर करने के लिए अलौकिक दीपक स्वरूप केवलज्ञानी **(तं चन्द्रप्रभं)** उन चन्द्रप्रभ भगवान् को **(भावात्)** भावपूर्वक **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

गुप्तित्रयं पञ्च-महाव्रतानि, पञ्चोपदिष्टाः समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(गुप्तित्रयं)** तीन गुप्तियाँ **(पञ्च-महाव्रतानि)** पाँच महाव्रत **(पञ्च समितिः)** पाँच समितियाँ **(उपदिष्टाः)** कहीं और **(यः)** जिन्होंने **(द्वादशधा)** बारह प्रकार के **(तपांसि)** तपों को **(बभाण)** कहा **(तं)** उन **(पुष्पदंतं देवम्)** पुष्पदंत देव को **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्म-व्रतान्तो जिन-नायकेनोत्तम-क्षमादिर्दशधापि धर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रत-बन्ध-बुद्ध्या, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥१०॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन **(जिननायकेन)** जिनों में प्रधान/जिनवर ने **(व्रत-बन्ध-बुद्ध्या)** व्रतों को धारण की बुद्धि से **(उत्तमक्षमादिः)** उत्तमक्षमा आदि **(ब्रह्म-व्रतान्तः)** ब्रह्मचर्यव्रत पर्यन्त **(दशधा धर्मः अपि)** दश प्रकार का धर्म भी **(प्रयुक्तः)** प्रयोग में लाए **(तं)** उन **(शीतलं)** शीतलनाथ **(तीर्थकरं)** तीर्थंकर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

गणे जनानंदकरे धरान्ते, विध्वस्त-कोपे प्रशमैक-चित्ते।
यो द्वादशाङ्ग-श्रुतमादिदेश, श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(विध्वस्त-कोपे)** क्रोध के नाश होने पर अर्थात् क्षमाशील होने पर और **(प्रशमैक-चित्ते)** प्रशान्तरूप एकाग्रचित्त होने पर **(धरान्ते)** पृथ्वी के मध्य में **(जनानन्दकरे)** प्राणियों को आनन्द करने वाले **(गणे)** बारहगण से युक्त समवसरण सभा में **(द्वादशाङ्गश्रुतम्)** बारह अंगरूप

श्रुत को **(आदिदेशः)** उपदेशित किया/कहा **(तं)** उन **(श्रेयांसं ईशम्)** श्रेयोनाथ **(जिनं)** जिनेश्वर को **(आनौमि)** मैं सब ओर से नमस्कार करता हूँ।

मुक्त्यङ्गनायै रचिता विशाला, रत्नत्रयी-शेखरता च येन।
यत्कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा, तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(मुक्त्यङ्गनायैः)** मुक्तिरूपी वधू के लिये **(विशाला)** विशाल **(रत्नत्रयी-शेखरता)** रत्नत्रयरूपी मुकुट **(रचिता)** निर्मित किया/ बनाया **(च)** और **(यत्कण्ठं)** जिनके कण्ठ को **(आसाद्य)** प्राप्तकर **(श्रेष्ठा)** वह मुक्तिरूपी वधु श्रेष्ठ/उत्तम **(बभूव)** हो गई **(तं)** उन **(वासुपूज्यं)** वासुपूज्य जिनेन्द्र को **(वेगात्)** शीघ्रता से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी, ध्यानी व्रती प्राणि-हितोपदेशी।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी, बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥१३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(ज्ञानी)** ज्ञानवान् **(विवेकी)** विवेकवान् **(परम-स्वरूपी)** उत्कृष्ट आत्मस्वरूप के धारी **(ध्यानी)** ध्यानी **(व्रती)** व्रतधारी **(प्राणि-हितोपदेशी)** प्राणियों के हितोपदेशक **(मिथ्यात्वघाती)** मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले और **(शिवसौख्यभोजी)** मोक्षसुख के भोगी **(बभूव)** हुए **(तं)** उन **(विमलं)** विमलनाथ को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

आभ्यन्तरं बाह्यमनेकधा यः, परिग्रहं सर्वमपाचकार।
यो मार्ग-मुद्दिश्य हितं जनानां,वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनन्तम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(जनानां हितं)** सब जीवों के हितरूप **(मार्गम् उद्दिश्य)** मार्ग को लक्ष्य कर **(आभ्यन्तरं)** आभ्यन्तर/भीतरी और **(बाह्यम्)** बाह्य/बाहरी **(अनेकधा)** अनेक प्रकार के **(सर्वपरिग्रहं)** सभी परिग्रह को **(अपाचकार)** त्यागा **(तं)** उन **(अनन्तं जिनं)** अनन्तनाथ जिनेन्द्र को **(प्रणमामि वन्दे)** मैं प्रणाम व वन्दना करता हूँ।

सार्द्धं पदार्था नव-सप्त-तत्त्वैः, पञ्चास्तिकायाश्च न कालकायाः।
षड्द्रव्यनिर्णीति-रलोकयुक्ति-र्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(सप्त-तत्त्वैः)** सात तत्त्वों के **(सार्द्धं)** साथ **(नव पदार्थाः)** नौ पदार्थों **(पञ्चास्तिकायाः)** पाँच अस्तिकायों **(कालकायाः न)** काल द्रव्यें काय वाली नहीं हैं अर्थात् एक प्रदेशी हैं ऐसी **(षड्द्रव्यनिर्णीतिः)**

छह द्रव्यों का निर्णय **(च)** और **(अलोकयुक्तिः)** अलोकाकाश का औचित्य **(उदिता)** कहा **(तं)** उन **(धर्मम्)** धर्मनाथ जिन को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

यः चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्छ्रीनन्दनो द्वादशको गुणानाम्।
निधिः प्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्तं शान्तिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(भुवि)** पृथ्वी पर **(गुणानाम्)** अनेक गुणों के और **(निधि-प्रभुः)** निधियों के स्वामी **(पञ्चमः)** पाँचवें **(चक्रवर्ती)** चक्रवर्ती **(द्वादशकः)** बारहवें **(श्रीनन्दनः)** कामदेव **(षोडशकः)** सोलहवें **(जिनेन्द्रः)** कषाय और इन्द्रिय विजेता तीर्थंकर **(अभूत्)** हुए **(तं)** उन **(शान्तिनाथं)** शान्तिनाथ को **(भेदात्)** तीर्थंकर आदि पदों के अनुसार पृथक्-पृथक् **(प्रणमामि)** प्रणाम करता हूँ।

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं, विरोधितो यो न करोति रोषम्।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥१७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(प्रशंसितः)** प्रशंसित होते हुए **(हर्षं)** हर्ष को **(न बिभर्ति)** धारण नहीं करते और **(विरोधितः)** निन्दित होते हुए **(रोषं)** क्रोध को **(न करोति)** नहीं करते तथा **(यः)** जो **(शीलव्रताद्)** शीलव्रत से **(ब्रह्मपदं)** ब्रह्म/मोक्षपद को **(गतः)** प्राप्त हुए **(तं)** उन **(कुन्थुनाथं)** कुन्थुनाथ को **(हर्षात्)** आनन्द से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां, यः सेवितोऽन्तर्गणपूरणाय।
पदाच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सभायां)** समवसरण सभा में **(पदाच्युतैः)** अविनाशी पद प्राप्त **(केवलिभिः)** अन्य केवली भगवन्तों के द्वारा **(न संस्तुतः)** न स्तुति को प्राप्त हुए **(न प्रणतः)** न नमस्कृत हुए किन्तु **(अन्तर्गणपूरणाय)** अन्तर्गण की पूर्ति के लिए **(जिनस्य)** तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव का **(सेवितः)** सेवन/आश्रय हुआ **(तं)** उन **(देवाधिदेवं)** देवाधिदेव **(अरं)** अरनाथ जिन को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

रत्नत्रयं पूर्व-भवान्तरे यो, व्रतं पवित्रं कृतवानशेषम्।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥१९॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(पूर्व-भवान्तरे)** पूर्वभव में **(मनसा वाचा**

कायेन) मन, वचन, काय से **(विशुद्धया)** विशुद्धि द्वारा **(पवित्रं)** पवित्र **(रत्नत्रयं व्रतं)** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप व्रत को **(अशेषम्)** पूरी तरह **(कृतवान्)** पालन किया **(तं मल्लिनाथं)** उन मल्लिनाथ भगवान् को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदाय वाक्य-मित्य-ग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम्।
लौकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य,वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम् ॥२०॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(लौकान्तिकेभ्यः)** लौकान्तिक देवों के द्वारा **(स्तवनं)** स्तुति को **(निशम्य)** सुनकर **(सिद्ध-पदाय)** सिद्धपद के वास्ते सिद्ध पद के धारी सिद्धों के लिए **(नमः)** नमस्कार हो **(इति)** इस प्रकार **(वाक्यम् ब्रुवन्)** वाक्य को बोलते हुए **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(लोचम्)** केशलोंच को **(अग्रहीत्)** ग्रहण किया **(तं मुनिसुव्रतं)** उन मुनिसुव्रतनाथ **(जिनेशं)** जिनेश्वर को **(वन्दे)** मैं प्रणाम करता हूँ।

विद्यावते तीर्थकराय तस्मादाहार-दानं ददतो विशेषात्।
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रमाणान्नयतो नमिं तम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(विद्यावते) चार ज्ञानधारी **(तीर्थकराय)** तीर्थंकर के लिए **(विशेषात्)** श्रावक के श्रद्धा आदि सात गुण और पड़गाहन आदि नवधाभक्ति की विशेषता से **(आहारदानं)** आहारदान को **(ददतः)** देते हुए **(नृपस्य)** राजा के **(गृहे)** घर में **(रत्नवृष्टिः)** रत्नों की वर्षा **(अजनि)** हुई **(तस्मात्)** इसलिए **(तं)** उन **(नमिं)** नमिनाथ भगवान् की **(प्रमाणात्)** प्रमाण/ सामान्य/समग्ररूप से और **(नयतः)** नय/विशेष/ पृथक्रूप से **(अहं)** मैं **(स्तौमि)** स्तुति करता हूँ।

राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥२२॥

अन्वयार्थ—(सर्वेषु) सभी **(जीवेषु)** जीवों पर **(दयां दधानः)** दया को धारण करते हुए **(यः)** जिन्होंने **(अपुनरागमाय)** पुनरागमन से रहित मोक्ष के लिये **(राजीमतीं)** सुन्दर राजमति को **(प्रविहाय)** छोड़कर **(मोक्षे)** मोक्ष में **(स्थितिं)** स्थिरतारूप निवास को **(चकार)** किया **(तं)** उन **(नेमिनाथं)** नेमिनाथ भगवान् को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्पाधिराजः कमठारितो यै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥२३॥

अन्वयार्थ—(ध्यानस्थितस्य) ध्यान में बैठे हुए **(यस्य)** जिनके**(कमठारितः)** कमठ वैरी के द्वारा किए गए **(उपसर्गं)** उपसर्ग को **(सर्पाधिराजः)** नागेन्द्र/धरणेन्द्र ने **(यैः फणावितानैः)** जिन फणों के विस्तार/फैलाव द्वारा **(एव)** ही **(निरवर्तयत्)** निवारण किया **(तं)** उन **(पार्श्वं)** पार्श्वनाथ भगवान् को **(महता आदरेण)** बड़े आदरभाव से **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

भवार्णवे जन्तु-समूह-मेन-माकर्षयामास हि धर्म-पोतात्।
मज्जन्तमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्री-वर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(एनसा) पाप से **(भवार्णवे)** संसाररूपी समुद्र में **(मज्जन्तं)** डूबते हुए **(एनम् जन्तु-समूहं)** इस प्राणी समूह को **(उद्वीक्ष्य)** देखकर **(धर्म-पोतात्)** धर्मरूपी जहाज से **(यः)** जिन्होंने **(हि)** निश्चित ही **(आकर्षया-मास)** खींच लिया/बाहर निकाल लिया **(तं)** उन **(श्री वर्द्धमानं)** अन्तरंग व बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त वर्द्धमान भगवान् को **(अपि)** भी **(अहं)** मैं **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः, स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञ-ध्वनि-संभवं त्रिकरण,-व्यापार-शुद्ध्यानिशम्।
भव्यानां जयमालया विमलया, पुष्पाञ्जलिं दापयन्,
नित्यं स श्रियमातनोति सकलां, स्वर्गापवर्ग-स्थितिम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(यः पुरुषः वा स्त्री) जो पुरुष या स्त्री **(भव्यानां कृतोपस्कृतं)** भव्यपुरुषों के किए गये उपकार को **(नित्यं)** सदा **(विमलया जय-मालया)** निर्मल गुणानुवाद के साथ **(पुष्पाञ्जलिं दापयन्)** पुष्पाञ्जलि समर्पण करता हुआ **(त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्या)** मन, वचन और काय की प्रवृत्ति की शुद्धि से **(सर्वज्ञध्वनि-संभवं)** सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि से उत्पन्न **(दशधा धर्मम्)** दस प्रकार के धर्म को **(अनिशं करोति)** निरन्तर करता है/पालता है **(सः)** वह **(स्वर्गापवर्ग-स्थितम्)** स्वर्ग और मोक्ष में स्थित **(सकलां श्रियम्)** समस्त लक्ष्मी को **(आतनोति)** विस्तारित करता है/प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

भक्तामरस्तोत्रम्

ईसा की सातवीं शताब्दी में आचार्य मानतुंगजी द्वारा आदिनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए रचित यह भक्तिपूर्ण काव्य-रचना है, इसमें ४८ काव्य वसंततिलका छन्द में रचे गए हैं। यह पाठ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नाय में समान रूप से समादृत है। इतिहास के अनुसार आचार्य मानतुंग ने भक्तामरस्तोत्र के प्रभाव से अड़तालीस कोठरियों के तालों को तोड़कर जिनशासन की प्रभावना की थी।

जिनपदवन्दन की महिमा

(वसन्ततिलका छन्द)

भक्तामर-प्रणतमौलि -मणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्॥१॥

स्तुति का संकल्प

यः संस्तुतः सकल -वाङ्मय - तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि - पटुभिः सुर - लोक- नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्- त्रितय - चित्त - हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥
(युग्मं)

अन्वयार्थ—(भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणाम्) भक्त देवों के झुके हुए मुकुटों के रत्नों की कान्ति के **(उद्योतकम्)** बढ़ाने वाले **(दलितपाप-तमोवितानम्)** नष्ट कर दिया पापरूपी अन्धकार के विस्तार को जिन्होंने **(च)** और **(युगादौ)** युग के प्रारम्भ में **(भवजले)** संसाररूप जल में **(पतताम्)** गिरते हुए **(जनानाम्)** प्राणियों के **(आलम्बनम्)** सहारा देने वाले **(जिनपाद-युगम्)** जिनेन्द्र भगवान् के दोनों चरणों को **(सम्यक्)** भली भाँति **(प्रणम्य)** नमस्कार करके **(यः)** जो **(सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधात्)** समस्त द्वादशांग के यथार्थ ज्ञान से **(उद्भूत-बुद्धिपटुभिः)** उत्पन्न हुई बुद्धि से चतुर **(सुरलोक-**

नाथैः) इन्द्रों के द्वारा **(जगत्-त्रितय-चित्त-हरैः)** तीन लोक के प्राणियों के चित्त को हरने वाले **(च)** और **(उदारैः)** उत्कृष्ट **(स्तोत्रैः)** स्तोत्रों से **(संस्तुतः)** स्तुत किए गए थे **(तम्)** उन **(प्रथमम्)** प्रथम **(जिनेन्द्रम्)** जिनेन्द्र आदिनाथ की **(अहम् अपि)** मैं भी **(किल)** निश्चय से **(स्तोष्ये)** स्तुति करूँगा।

आचार्य का लाघव प्रदर्शन

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ !
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(विबुधार्चित-पादपीठ!) देवों के द्वारा पूजित है पादपीठ-पैरों के रखने की चौकी / सिंहासन जिनकी ऐसे हे जिनेश! **(विगतत्रपः)** निर्लज्ज/लज्जा रहित **(अहम्)** मैं **(बुद्ध्या विना अपि)** बुद्धि के बिना भी **(स्तोतुम्)** स्तुति करने के लिए **(समुद्यतमतिः)** तत्पर बुद्धि वाला हो रहा हूँ **(यतः)** क्योंकि **(बालम्)** बालक-मूर्ख को **(विहाय)** छोड़कर **(अन्यः)** दूसरा **(कः जनः)** कौन मनुष्य **(जलसंस्थितम्)** जल में प्रतिबिम्बित **(इन्दुबिम्बम्)** चन्द्रमण्डल को **(सहसा)** बिना विचारे शीघ्रता से **(ग्रहीतुम्)** पकड़ने की **(इच्छति)** इच्छा करता है अर्थात् कोई भी नहीं।

अवर्णनीय जिनवर गुण

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान् ,
कस्ते क्षमः सुरगुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त -काल - पवनोद्धत- नक्र- चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥४॥

अन्वयार्थ—(गुण-समुद्र!) हे गुणों के सागर! **(बुद्ध्या)** बुद्धि के द्वारा **(सुरगुरु-प्रतिमः अपि)** बृहस्पति के समान भी **(कः)** कौन पुरुष **(ते)** आपके **(शशाङ्क-कान्तान्)** चन्द्रमा के समान सुन्दर **(गुणान्)** गुणों को **(वक्तुम्)** कहने के लिए **(क्षमः)** समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं **(वा)** अथवा **(कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्रचक्रम्)** प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें ऐसे **(अम्बुनिधिम्)** समुद्र को **(भुजाभ्याम्)** भुजाओं के द्वारा **(तरीतुम्)** तैरने के लिए/पार करने के लिए **(कः अलम्)** कौन समर्थ है?

अर्थात् कोई नहीं।

उमड़ती हुई भक्ति प्रेरणा

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत - शक्ति - रपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म - वीर्य - मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनियों के ईश! **(तथापि)** तो भी **(सः अहम्)** वह मैं अल्पज्ञ **(विगतशक्तिः अपि)** शक्तिरहित होता हुआ भी **(भक्ति-वशात्)** भक्ति के वश से **(तव)** आपकी **(स्तवम्)** स्तुति को **(कर्तुम्)** करने के लिए **(प्रवृत्तः)** तैयार हुआ हूँ **(यथा)** जैसे **(मृगी)** हिरणी **(आत्मवीर्यम् अविचार्य)** अपनी शक्ति का विचार न कर केवल **(प्रीत्या)** स्नेह के द्वारा **(निजशिशोः)** अपने बच्चे की **(परिपालनार्थम्)** रक्षा के लिए **(किम्)** क्या **(मृगेन्द्रम् न अभ्येति)** सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात् जाती है।

स्तवन में मात्र भक्ति ही कारण

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्-भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र - चारु -कलिका-निकरैक-हेतु॥६॥

अन्वयार्थ—(अल्पश्रुतम्) अल्पज्ञानी अतएव **(श्रुतवताम्)** विद्वानों की **(परिहासधाम)** हँसी के स्थानरूप **(माम्)** मुझको **(त्वद्भक्तिः एव)** आपकी भक्ति ही **(बलात्)** बलपूर्वक **(मुखरी-कुरुते)** वाचाल कर रही है **(किल)** निश्चय से **(मधौ)** वसन्त ऋतु में **(कोकिलः)** कोयल **(यत्)** जो **(मधुरम् विरौति)** मीठे शब्द करती है **(तत्)** वह **(आम्रचारु-कलिका-निकरैक-हेतु)** आम की सुन्दर मँजरी के समूह के कारण ही करती है।

पापक्षयी जिनवर स्तुति

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोक- मलि-नील-मशेष-माशु,
सुर्यांशु- भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम्॥७॥

अन्वयार्थ—(त्वत्संस्तवेन) आपकी स्तुति से **(शरीरभाजाम्)** प्राणियों के **(भवसन्तति-सन्निबद्धम्)** अनेक भवों के बँधे हुए **(पापम्)** पाप कर्म, **(आक्रान्तलोकम्)** सम्पूर्ण लोक में व्याप्त **(अलिनीलम्)** भौंरे के समान काले **(सूर्यांशुभिन्नम्)** सूर्य की किरणों से खण्डित **(शार्वरम्)** रात्रि सम्बन्धी **(अशेषम्)** समस्त **(अन्धकारम् इव)** अन्धकार की तरह **(क्षणात्)** क्षण भर में **(आशु)** शीघ्र ही **(क्षयम्)** विनाश को **(उपैति)** प्राप्त हो जाते हैं।

प्रभु की प्रभुता का प्रभाव

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः॥८॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! **(इति मत्वा)** ऐसा मानकर **(मया तनुधिया अपि)** मुझ मन्द बुद्धि के द्वारा भी **(तव)** आपका **(इदम्)** यह **(संस्तवनम्)** सम्यक् स्तवन **(आरभ्यते)** प्रारम्भ किया जाता है जो कि **(तव प्रभावात्)** आपके प्रभाव से **(सताम्)** सज्जनों के **(चेतः)** चित्त को **(हरिष्यति)** हरेगा **(ननु)** निश्चय से **(उदबिन्दुः)** जल की बूँद **(नलिनी-दलेषु)** कमलिनी के पत्तों पर **(मुक्ताफलद्युतिम् उपैति)** मोती जैसी कान्ति को प्राप्त होती है।

कथा भी पापनाशक है

आस्तां तव स्तवन-मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

अन्वयार्थ—(अस्तसमस्तदोषम्) सम्पूर्ण दोषों से रहित **(तव स्तवनम्)** आपका स्तवन **(आस्ताम्)** दूर रहे, किन्तु **(त्वत्सङ्कथा अपि)** आपकी पवित्र कथा भी **(जगताम्)** जगत् के जीवों के **(दुरितानि)** पापों को **(हन्ति)** नष्ट कर देती है **(सहस्त्रकिरणः)** सूर्य **(दूरे 'अस्ति')** दूर रहता है, पर उसकी **(प्रभा एव)** प्रभा ही **(पद्माकरेषु)** तालाबों में **(जलजानि)** कमलों को **(विकासभाञ्जि)** विकसित **(कुरुते)** कर देती है।

भगवत् पददातृ भक्ति

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूत - नाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(भुवनभूषण!) हे संसार के भूषण! **(भूतनाथ!)** हे प्राणियों के स्वामी! **(भूतैः)** सच्चे **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(भवन्तम् अभिष्टु-वन्तः)** आपकी स्तुति करने वाले पुरुष **(भुवि)** पृथ्वी पर **(भवतः)** आपके **(तुल्याः)** बराबर **(भवन्ति)** हो जाते हैं **('इदम्' अत्यद्-भुतम् न)** यह अति आश्चर्य की बात नहीं है **(वा)** अथवा **(ननु)** निश्चय से **(तेन)** उस स्वामी से **(किम्)** क्या प्रयोजन है? **(यः)** जो **(इह)** इसलोक में **(आश्रितम्)** अपने आधीन पुरुष को **(भूत्या)** सम्पत्ति के द्वारा **(आत्मसमम्)** अपने बराबर **(न करोति)** नहीं करता।

परम दर्शनीय परमात्म प्रभु

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र - तोष - मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति -दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत्?॥११॥

अन्वयार्थ—(अनिमेषविलोकनीयम्) बिना पलक झपकाये एकटक देखने के योग्य **(भवन्तम्)** आपको **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जनस्य)** मनुष्यों के **(चक्षुः)** नेत्र **(अन्यत्र)** दूसरी जगह **(तोषम्)** सन्तोष को **(न उपयाति)** प्राप्त नहीं होते **(शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः)** चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति वाले क्षीरसमुद्र के **(पयः)** पानी को **(पीत्वा)** पीकर **(कः)** कौन पुरुष **(जलनिधेः)** समुद्र के **(क्षारम्)** खारे **(जलम्)** पानी को **(रसितुम् इच्छेत्)** पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

अद्वितीय अनुपम सुन्दरता

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्,
निर्मापितस् - त्रिभुवनैक - ललाम -भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान-मपरं न हि रूप-मस्ति॥१२॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवनैकललामभूत!) हे त्रिभुवन के एक आभूषण! **(त्वम्)** आप **(यैः)** जिन **(शान्तरागरुचिभिः)** शान्त हो गई है रागादि दोषों की इच्छा जिनकी ऐसे **(परमाणुभिः)** परमाणुओं के द्वारा **(निर्मापितः)** रचे गये हैं **(खलु)** निश्चय से **(पृथिव्याम्)** पृथ्वी पर **(ते अणवः अपि)** वे अणु भी **(तावन्तः एव 'बभूवुः')** उतने ही थे **(यत्)** क्योंकि **(ते समानम्)** आपके समान **(अपरम्)** दूसरा **(रूपम्)** रूप **(नहि)** नहीं **(अस्ति)** है।

मुख निर्दोषी चन्द्रवत्

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग - नेत्र - हारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्-त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम्॥१३॥

अन्वयार्थ—(सुरनरोरगनेत्रहारि) देव, मनुष्य तथा धरणेन्द्रों के नेत्रों को हरण करने वाला एवं **(निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम्)** सम्पूर्णरूप से जीत लिया है तीनों जगत् की उपमाओं को जिसने ऐसा **(ते वक्त्रम्)** आपका मुख **(क्व)** कहाँ? और **(कलङ्कमलिनम्)** कलंक से मलीन **(निशाकरस्य)** चन्द्रमा का **('तद्' बिम्बम्)** वह मण्डल **(क्व)** कहाँ? **(यत्)** जो **(वासरे)** दिन में **(पलाशकल्पम्)** ढाक के पत्ते की तरह **(पाण्डु)** फीका **(भवति)** हो जाता है।

लोकव्यापी गुण वर्णन

सम्पूर्ण-मण्डल - शशाङ्क - कलाकलाप-
शुभ्रा गुणास् - त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वरनाथ - मेकम्,
कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम्॥१४॥

अन्वयार्थ—(सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क-कलाकलाप-शुभ्राः) पूर्ण चन्द्रबिम्ब की कलाओं के समूह के समान स्वच्छ **(तव)** आपके **(गुणाः)** गुण **(त्रिभुवनम्)** तीनों लोकों को **(लङ्घयन्ति)** लाँघ रहे हैं सो ठीक ही है, क्योंकि **(ये)** जो **(एकम्)** मुख्य **(त्रिजगदीश्वर-नाथम्)** तीनों लोकों के नाथों के नाथ के **(संश्रिताः)** आश्रित हैं **(तान्)** उन्हें **(यथेष्टम्)** इच्छानुसार **(संचरतः)** घूमते हुए **(कः)** कौन **(निवारयति)** रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

अचल मेरु सी प्रभु की थिरता

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग -नाभिर्-
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम् ।
कल्पान्त -काल - मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्॥१५॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(ते)** आपका **(मनः)** मन **(त्रिदशाङ्ग-नाभिः)** देवांगनाओं के द्वारा **(मनाक् अपि)** थोड़ा भी **(विकारमार्गम्)** विकार भाव को **(न नीतम्)** प्राप्त नहीं कराया जा सका है **(तर्हि)** तो **(अत्र)** इस विषय में **(चित्रम् किम्)** आश्चर्य ही क्या है? **(चलिता-चलेन)** पहाड़ों को हिला देने वाली **(कल्पान्तकाल-मरुता)** प्रलयकाल की पवन के द्वारा **(किम्)** क्या? **(कदाचित्)** कभी **(मन्दराद्रिशिखरम्)** मेरुपर्वत का शिखर **(चलितम्)** हिलाया गया है? अर्थात् नहीं।

प्रभु आप अनोखे दीपक हो

निर्धूम - वर्ति - रपवर्जित-तैल - पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रय - मिदं प्रकटी-करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानाम्,
दीपोऽपरस्त्व-मसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥१६॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! आप **(निर्धूमवर्तिः)** धुँआ तथा बत्ती से रहित निर्दोष प्रवृत्ति वाले और **(अपवर्जिततैलपूरः)** तैल से शून्य **(भूत्वा अपि)** होकर भी **(इदम्)** इस **(कृत्स्नम्)** समस्त **(जगत् त्रयम्)** त्रिभुवन को **(प्रकटीकरोषि)** प्रकाशित कर रहे हो तथा **(चलिताचलानाम्)** पहाड़ों को हिला देने वाली **(मरुताम्)** वायु के भी **(जातु)** कभी **(गम्यः न)** गम्य नहीं हो अर्थात् वायु बुझा नहीं सकती इस तरह **(त्वम्)** आप **(जगत्प्रकाशः)** संसार को प्रकाशित करने वाले **(अपरः दीपः)** अपूर्व दीपक **(असि)** हो।

सूर्य से भी अधिक महिमावन्त

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज् - जगन्ति।
नाम्भोधरोदर -निरुद्ध - महा - प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके॥१७॥

अन्वयार्थ—(मुनीन्द्र!) हे मुनियों के इन्द्र **(त्वम्)** तुम **(कदाचित्)** कभी **(न अस्तम् उपयासि)** न अस्त होते हो **(न राहुगम्यः)** न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हो और **(न अम्भोधरोदर-निरुद्धमहा-प्रभावः)** न मेघों के द्वारा आपका महाप्रभाव निरुद्ध होता है तथा **(युगपत्)** एक साथ **(जगन्ति)** तीनों लोकों को **(सहसा)** शीघ्र ही **(स्पष्टीकरोषि)** प्रकाशित करते हो **(इति)** इस तरह आप **(लोके)** इस संसार में **(सूर्यातिशायिमहिमा असि)** सूर्य से भी अधिक महिमा वाले हो।

अद्‌भुत है आपका मुखचन्द्र

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्ति,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥१८॥

अन्वयार्थ—(नित्योदयम्) हमेशा उदय रहने वाला **(दलितमोहमहान्धकारम्)** मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला **(राहुवदनस्य न गम्यम्)** राहु के मुख के द्वारा ग्रसे जाने के अयोग्य **(वारिदानां न गम्यम्)** मेघों के द्वारा छिपाने के अयोग्य **(अनल्पकान्ति)** अधिक कान्ति वाला और **(जगत्)** संसार को **(विद्योतयत्)** प्रकाशित करने वाला **(तव)** आपका **(मुखाब्जम्)** मुखकमलरूपी **(अपूर्व-शशाङ्कबिम्बम्)** अपूर्व चन्द्रमण्डल **(विभ्राजते)** शोभित होता है।

तमहारी मुखचन्द्र ही

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमःसु नाथ!
निष्पन्न -शालि-वन -शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जल-धरै-र्जलभार-नम्रैः॥१९॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! **(तमःसु)** अन्धकार के **(युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु)** आपके मुखचन्द्र द्वारा नष्ट हो जाने पर **(शर्वरीषु)** रात में **(शशिना)** चन्द्रमा से **(वा)** अथवा **(अह्नि)** दिन में **(विवस्वता)** सूर्य से **(किम्)** क्या प्रयोजन है? **(निष्पन्नशालिवनशालिनि)** पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान **(जीव-लोके)** संसार में **(जलभारनम्रैः)** पानी के भार से झुके हुए **(जलधरैः)** मेघों से **(कियत्)** कितना **(कार्यम्)** काम रह जाता है।

प्रभु का ज्ञानातिशय

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि - हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि॥२०॥

अन्वयार्थ—(कृतावकाशम्) अवकाश को प्राप्त **(ज्ञानम्)** ज्ञान **(यथा)** जिस तरह **(त्वयि)** आपमें **(विभाति)** शोभायमान होता है **(एवं तथा)** उस तरह **(हरिहरादिषु)** विष्णु, शंकर आदि **(नायकेषु)** देवों में **(न 'विभाति')** शोभायमान नहीं होता **(तेजः)** तेज **(स्फुरन्मणिषु)** चमकते हुए मणियों में **(यथा)** जैसे **(महत्त्वम्)** महत्त्व को **(याति)** प्राप्त होता है **(तु)** निश्चय से **(एवं)** वैसे महत्त्व को **(किरणाकुले अपि)** किरणों से व्याप्त भी **(काचशकले)** काँच के टुकड़े में **(न 'याति')** नहीं प्राप्त होता।

पूर्ण संतुष्टिदायक प्रभुदर्शन

मन्ये वरं हरि - हरा - दय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि॥२१॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन् ! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(दृष्टाः)** देखे गये **(हरिहरादयः एव)** विष्णु, महादेव आदि देव ही **(वरम्)** अच्छे हैं **(येषु दृष्टेषु 'सत्सु')** जिनके देखे जाने पर **(हृदयम्)** मन **(त्वयि)** आपके विषय में **(तोषम्)** सन्तोष को **(एति)** प्राप्त हो जाता है **(वीक्षितेन)** देखे गये **(भवता)** आपसे **(किम्)** क्या लाभ है? **(येन)** जिससे कि **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अन्यः कश्चित्)** कोई दूसरा देव **(भवान्तरे अपि)** जन्मान्तर में भी **(मनः)** चित्त को **(न हरति)** नहीं हर पाता।

आपकी माँ धन्य हैं

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(स्त्रीणाम् शतानि) स्त्रियों के शतक अर्थात् सैकड़ों स्त्रियाँ **(शतशः)** सैकड़ों **(पुत्रान्)** पुत्रों को **(जनयन्ति)** पैदा करती हैं, परन्तु **(त्वदुपमम्)** आप जैसे **(सुतम्)** पुत्र को **(अन्या)** दूसरी **(जननी)** माँ **(न प्रसूता)** पैदा नहीं कर सकी **(भानि)** नक्षत्रों को **(सर्वाः दिशः)** सब दिशाएँ **(दधति)** धारण करती हैं, परन्तु **(स्फुरदंशुजालम्)** चमक रहा है किरणों का समूह जिसका ऐसे **(सहस्ररश्मिम्)** सूर्य को **(प्राची दिक् एव)** पूर्व दिशा ही **(जनयति)** प्रकट करती है।

मृत्युंजयी श्रेयस पथ जिनदेव ही

त्वामा-मनन्ति मुनयः परमं पुमान्स-
मादित्य - वर्ण - ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्य - गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥२३॥

अन्वयार्थ—(मुनीन्द्र!) हे मुनियों के नाथ! **(मुनयः)** तपस्वीजन! **(त्वाम्)** आपको **(आदित्यवर्णं अमलम्)** सूर्य की तरह तेजस्वी, निर्मल और **(तमसः पुरस्तात्)** मोहान्धकार से परे रहने वाले **(परमं पुमांसम्)** परम पुरुष **(आमनन्ति)** मानते हैं वे **(त्वाम् एव)** आपको ही **(सम्यक्)** अच्छी तरह से **(उपलभ्य)** प्राप्त कर **(मृत्युम्)** मृत्यु को **(जयन्ति)** जीतते हैं इसके सिवाय **(शिवपदस्य)** मोक्षपद का **(अन्यः)** दूसरा **(शिवः)** अच्छा **(पन्थाः)** रास्ता **(न अस्ति)** नहीं है।

विभिन्न नाम आपके ही

त्वा - मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर - मनंत - मनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित - योग - मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

अन्वयार्थ—(सन्तः) सज्जन-पुरुष **(त्वाम्)** आपको **(अव्ययम्)** अविनाशी **(विभुम्)** विभु, **(अचिन्त्यम्)** अचिन्त्य, (**असंख्यम्**) असंख्य, **(आद्यम्)** आद्य **(ब्रह्माणम्)** ब्रह्मा, **(ईश्वरम्)** ईश्वर, **(अनंतम्)** अनन्त, **(अनङ्गकेतुम्)** अनंगकेतु **(योगीश्वरम्)** योगीश्वर **(विदितयोगम्)** विदित योग, **(अनेकम्)** अनेक, **(एकम्)** एक **(ज्ञानस्वरूपम्)** ज्ञानस्वरूप और **(अमलम्)** अमल **(प्रवदन्ति)** कहते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और बुद्ध आप ही है

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित - बुद्धि - बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय - शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिव - मार्ग-विधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

अन्वयार्थ—(विबुधार्चितबुद्धिबोधात्) देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित बुद्धि-ज्ञान वाले होने से **(त्वम् एव)** आप ही **(बुद्धः)** बुद्ध हैं। **(भुवनत्रय-शङ्करत्वात्)** तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण **(त्वम् एव)** आप ही **(शङ्करः असि)** शंकर हो **(धीर!)** हे धीर! **(शिवमार्ग-विधेर्विधानात्)** मोक्षमार्ग की विधि के करने से **(त्वमेव)** आप ही **(धाता असि)** ब्रह्मा हो और **(भगवन् !)** हे स्वामिन्! **(त्वमेव)** आप ही **(व्यक्तम्)** स्पष्ट रूप से **(पुरुषोत्तमः असि)** मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हो।

आपको नमस्कार हो

तुभ्यं नमस् - त्रिभुवनार्ति - हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति - तलामल - भूषणाय।
तुभ्यं नमस् - त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय॥२६॥

अन्वयार्थ— (नाथ!) हे स्वामिन्! **(त्रिभुवनार्तिहराय)** तीनों लोकों के दुःखों के हरने वाले **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो, **(क्षिति-तलामलभूषणाय)** पृथ्वी तल के निर्मल आभूषण स्वरूप **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो, **(त्रिजगतः)** तीनों जगत् के **(परमेश्वराय)** परमेश्वरस्वरूप **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो और **(जिन!)** हे जिनेन्द्रदेव! **(भवोदधि-शोषणाय)** संसार समुद्र के सुखाने वाले **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो।

दोष रहित गुणों के स्वामी

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्,
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त - विविधा-श्रय-जातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनियों के स्वामी **(यदि नाम)** यदि **(निरवकाशतया)** अन्य जगह स्थान न मिलने के कारण **(त्वम्)** आप **(अशेषैः)** समस्त **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(संश्रितः)** आश्रित हुए हो और **(उपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः)** प्राप्त हुए अनेक आधार से उत्पन्न हुआ है अहंकार जिनको ऐसे **(दोषैः)** दोषों के द्वारा **(स्वप्नान्तरे अपि)** स्वप्न के मध्य में भी **(कदाचित् अपि)** कभी भी **(न ईक्षितः असि)** नहीं देखे गये हो **[तर्हि]** तो **(अत्र)** इस विषय में **(कः विस्मयः)** क्या आश्चर्य है? कुछ नहीं।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य

उच्चै - रशोक - तरु - संश्रितमुन्मयूख -
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्,
बिम्बं रवेरिव पयोधर - पार्श्ववर्ति ॥२८॥

अन्वयार्थ—(उच्चैरशोकतरुसंश्रितम्) ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित तथा **(उन्मयूखम्)** जिसकी किरणें ऊपर को फैल रही हैं, ऐसा **(भवतः)** आपका **(अमलम् रूपम्)** उज्ज्वल रूप **(स्पष्टोल्लसत्किरणम्)** स्पष्टरूप से शोभायमान हैं किरणें जिसकी और **(अस्त-तमो-वितानम्)** नष्ट कर दिया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे **(पयोधर-पार्श्ववर्ति)** मेघ के पास में स्थित **(रवेः बिम्बम् इव)** सूर्य के बिम्ब की तरह **(नितान्तम्)** अत्यन्त **(आभाति)** शोभित होता है।

सिंहासन प्रातिहार्य

सिंहासने मणि - मयूख - शिखा - विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद् - विलस - दंशुलता - वितानं।
तुङ्गोदयाद्रि - शिरसीव सहस्त्र-रश्मेः ॥२९॥

अन्वयार्थ—(मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे) रत्नों की किरणों के अग्रभाग से चित्र विचित्र **(सिंहासने)** सिंहासन पर **(तव)** आपका **(कनकावदातम्)** सुवर्ण की तरह उज्ज्वल **(वपुः)** शरीर **(तुङ्गोदयाद्रि-शिरसि)** ऊँचे उदयाचल के शिखर पर **(वियद्-विलसदंशुलता-वितानम्)** आकाश में शोभायमान है किरणरूपी लताओं का समूह है जिसका ऐसे **(सहस्त्ररश्मेः)** सूर्य के **(बिम्बम्**

इव) मण्डल की तरह **(विभ्राजते)** शोभायमान हो रहा है।

चँवर प्रातिहार्य

कुन्दावदात -चल -चामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत - कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क- शुचिनिर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(कुन्दावदात-चलचामर-चारुशोभम्) कुन्द के फूल के समान स्वच्छ हिलते हुए चँवरों की सुन्दर शोभा से युक्त **(कलधौत-कान्तम्)** सुवर्ण के समान कान्ति वाला **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारिधारम्)** उदीयमान चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा से युक्त **(सुरगिरेः)** सुमेरु पर्वत के **(शात-कौम्भम्)** स्वर्णमयी **(उच्चैस्तटम् इव)** ऊँचे तट के समान **(विभ्राजते)** शोभायमान होता है।

छत्रत्रय प्रातिहार्य

छत्र - त्रयं तव विभाति शशाङ्क - कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल -प्रकर -जाल - विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥३१॥

अन्वयार्थ—(शशाङ्ककान्तम्) चन्द्रमा के समान सुन्दर **(स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्)** रोक दिया है सूर्य की किरणों के सन्ताप को जिसने तथा **(मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्)** मोतियों के समूह वाली झालर से बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे **(तव उच्चैः स्थितम्)** आपके ऊपर स्थित **(छत्र-त्रयम्)** तीन छत्र **(त्रिजगतः)** तीन जगत् के **(परमेश्वरत्वम्)** स्वामित्व को **(प्रख्यापयत् 'इव')** प्रकट करते हुए की तरह **(विभाति)** शोभायमान होते हैं।

देव-दुन्दुभि प्रातिहार्य

गम्भीर - तार - रव - पूरित - दिग्विभागस्-
त्रैलोक्यलोक-शुभ - सङ्गम - भूति - दक्षः।
सद्धर्म- राज-जय - घोषण- घोषकः सन्,
खे दुंदुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२॥

अन्वयार्थ—(गम्भीर-तार-रव-पूरित दिग्विभागः) गम्भीर और उच्च शब्द

से पूर दिया है दिशाओं के विभाग को जिसने, ऐसा **(त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूतिदक्षः)** तीनों लोकों के जीवों को शुभ समागम की सम्पत्ति देने में समर्थ और **(सद्धर्म-राज-जय घोषण-घोषकः)** समीचीन जैनधर्म के स्वामी की जयघोषणा को घोषित करने वाला **(दुन्दुभिः)** दुन्दुभि बाजा **(ते)** आपके **(यशसः)** यश का **(प्रवादी सन्)** कथन करता हुआ **(खे)** आकाश में **(ध्वनति)** शब्द करता है।

पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा।
गन्धोद - बिन्दु - शुभ-मन्द - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥३३॥

अन्वयार्थ—(गन्धोदबिन्दु-शुभमन्दमरुत्प्रपाता) सुगन्धित जल की बूँदों और सुखकर मन्द हवा के साथ गिरने वाली **(उद्धा)** श्रेष्ठ और **(दिव्या)** मनोहर **(मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिः)** मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फूलों के समूहों की वर्षा **(ते)** आपके **(वचसाम्)** वचनों की **(ततिः वा)** पंक्ति की तरह **(दिवः)** आकाश से **(पतति)** पड़ती है/ गिरती है।

भामण्डल प्रातिहार्य

शुम्भत्-प्रभा - वलय-भूरि-विभा-विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युति - माक्षिपन्ती।
प्रोद्यद् - दिवाकर - निरन्तर - भूरि - संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

अन्वयार्थ—(लोकत्रये) तीनों लोकों में **(द्युतिमताम्)** कान्तिमान् पदार्थों की **(द्युतिम्)** कान्ति को **(आक्षिपन्ती)** तिरस्कृत करने वाली **(प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरिसंख्या)** उदित होते हुए सूर्यों की निरन्तर भारी संख्या वाली **(दीप्त्या अपि)** कान्ति से भी और **(सोमसौम्याम्)** चन्द्रमा के समान सुन्दर **(ते विभोः!)** हे प्रभो! आपके **(शुम्भत्-प्रभावलय-भूरिविभा)** देदीप्यमान भामण्डल की विशाल कान्ति **(निशाम् अपि)** रात्रि को भी **(जयति)** जीत रही है।

दिव्यध्वनि प्रातिहार्य

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व - कथनैक-पटुस् - त्रिलोक्याः।
दिव्य - ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ - सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः॥३५॥

अन्वयार्थ—(ते) आपकी **(दिव्यध्वनिः)** दिव्यध्वनि **(स्वर्गापवर्ग-गममार्ग-विमार्गणेष्टः)** स्वर्ग और मोक्ष को जाने वाले मार्ग के खोजने के लिए इष्ट **(त्रिलोक्याः)** तीनों लोकों के जीवों को **(सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः)** समीचीन धर्मतत्त्व के कथन करने में अत्यन्त समर्थ और **(विशदार्थ-सर्वभाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः)** स्पष्ट अर्थ वाली सम्पूर्ण भाषाओं में परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुण से सहित **(भवति)** होती है।

विहार में स्वर्ण कमलों की रचना

उन्निद्र - हेम -नव - पङ्कज-पुञ्ज - कान्ति-,
पर्युल् -लसन् - नख -मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥३६॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्-नखमयूख-शिखाभिरामौ)** खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के समान कान्ति के द्वारा सब ओर से शोभायमान नखों की किरणों के अग्रभाग से सुन्दर **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण **(यत्र)** जहाँ **(पदानि)** कदम **(धत्तः)** रखते हैं **(तत्र)** वहाँ **(विबुधाः)** देव गण **(पद्मानि)** कमलों को **(परिकल्पयन्ति)** रच देते हैं।

आप जैसी विभूति अन्यों में नहीं

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज् - जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनदेव! **(इत्थं)** इस प्रकार **(धर्मोपदेशन-विधौ)** धर्मोपदेश के कार्य में **(यथा)** जैसी **(तव)** आपकी **(विभूतिः)** विभूति **(अभूत्)**

हुई **(तथा)** वैसी **(परस्य)** किसी दूसरे की **(न 'अभूत्')** नहीं हुई **(प्रहतान्धकारा)** अन्धकार को नष्ट करने वाली **(यादृक्)** जैसी **(प्रभा)** कान्ति **(दिनकृतः)** सूर्य की **('भवति')** होती है **(तादृक्)** वैसी **(विकाशिनः अपि)** प्रकाशमान भी **(ग्रहगणस्य)** अन्य ग्रहों की **(कुतः)** कहाँ से हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

हस्तिभय निवारक भक्ति

श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त- भ्रमद् - भ्रमर - नाद -विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभ - मुद्धत - मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥

अन्वयार्थ—(भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित मनुष्यों को **(श्च्योतन्-मदा-विल-विलोल-कपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्)** झरते हुए मद जल से मलिन और चञ्चल गालों के मूल भाग में पागल हो घूमते हुए भौंरों के शब्द से बढ़ गया है क्रोध जिसका ऐसे **(ऐरावताभम्)** ऐरावत की तरह **(उद्धतम्)** उद्दण्ड **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(इभम्)** हाथी को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(भयम्)** डर **(नो भवति)** नहीं होता।

सिंहभय मुक्त जिनेन्द्र भक्त

भिन्नेभ -कुम्भ -गल -दुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता - फल-प्रकर-भूषित - भूमि - भागः।
बद्ध - क्रमः क्रम - गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥३९॥

अन्वयार्थ—(भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः) विदारे हुए हाथी के गण्डस्थल से गिरते हुए उज्ज्वल तथा खून से भीगे हुए मोतियों के समूह के द्वारा भूषित किया है पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा तथा **(बद्धक्रमः)** छलांग मारने के लिए तैयार **(हरिणाधिपः अपि)** सिंह भी **(क्रमगतम्)** अपने पाँवों के बीच आये हुए **(ते)** आपके **(क्रम-युगाचल-संश्रितम्)** चरण युगलरूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर **(न आक्रामति)** आक्रमण नहीं करता।

नाम स्मरण से दावाग्नि शमन

कल्पान्त - काल-पवनोद्धत - वह्नि - कल्पं,
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख - मापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥४०॥

अन्वयार्थ—(त्वन्नामकीर्तनजलम्) आपके नाम का यशोगानरूपी जल **(कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पम्)** प्रलयकाल की वायु से प्रचण्ड अग्नि के तुल्य **(ज्वलितम्)** प्रज्वलित **(उज्ज्वलम्)** उज्ज्वल और **(उत्स्फुलिङ्गम्)** जिससे तिलंगे ऊपर की ओर निकल रहे हैं, ऐसी तथा **(विश्वं जिघत्सुम् इव)** संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह **(सम्मुखम्)** सामने **(आपतन्तम्)** आती हुई **(दावानलम्)** वन की अग्नि को **(अशेषम्)** सम्पूर्ण रूप से **(शमयति)** बुझा देता है।

भुजंग भयहारी नाम नागदमनी

रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ - नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन - मुत्फण - मापतन्तम्।
आक्रामति क्रम - युगेण निरस्त-शङ्कस्,
त्वन्नाम -नाग - दमनी हृदि यस्य पुंसः॥४१॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस **(पुंसः)** पुरुष के **(हृदि)** हृदय में **(त्वन्नाम-नागदमनी)** आपके नामरूपी नागदमनी-नागवशीकरण औषध **[अस्ति]** मौजूद है **[सः]** वह पुरुष **(रक्तेक्षणम्)** लाल-लाल आँखों वाले **(समद-कोकिल-कण्ठ-नीलम्)** मद युक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले **(क्रोधोद्धतम्)** क्रोध से उद्दण्ड और **(उत्फणम्)** ऊपर को फण उठाये हुए **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(फणिनम्)** साँप को **(निरस्तशङ्कः 'सन्')** शंका रहित होता हुआ **(क्रमयुगेण)** दोनों पाँवों से **(आक्रामति)** लाँघ जाता है।

संग्रामभय विनाशक जिनकीर्तन

वल्गत् - तुरङ्ग - गज - गर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवता - मपि भूपतीनाम्।
उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम - इवाशु भिदामुपैति॥४२॥

अन्वयार्थ—(त्वत्कीर्तनात्) आपके यशोगान से **(आजौ)** युद्धक्षेत्र में **(वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जित-भीमनादम्)** उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से भयंकर है शब्द जिसमें ऐसी **(बलवताम्)** पराक्रमी **(भूपतीनाम् अपि)** राजाओं की भी **(बलम्)** सेना **(उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखा-पविद्धम्)** उगते हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग से वेधे गये **(तमः इव)** अन्धकार की तरह **(आशु)** शीघ्र ही **(भिदाम्)** विनाश को **(उपैति)** प्राप्त हो जाती है।

शरणागत की युद्ध में विजय

कुन्ताग्र - भिन्न -गज - शोणित - वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षास्,
त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अन्वयार्थ—(त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणः) आपके चरणरूप कमलों के वन का आश्रय लेने वाले पुरुष **(कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे)** भालों के अग्रभाग से विदारे गये हाथियों के खूनरूपी जल के प्रवाह को वेग से उतरने और तैरने में व्यग्र योद्धाओं के द्वारा भयंकर **(युद्धे)** युद्ध में **(विजित-दुर्जय-जेय-पक्षाः)** जीत लिया है कठिनाई से जीतने योग्य शत्रुओं के पक्ष को जिन्होंने ऐसे होते हुए **(जयम्)** विजय **(लभन्ते)** पाते हैं।

नाम स्मरण से निर्विघ्न समुद्र यात्रा

अम्भोनिधौ क्षुभित - भीषण - नक्र - चक्र-
पाठीन-पीठ - भय - दोल्वण - वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग - शिखर - स्थित - यान - पात्रास्,
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

अन्वयार्थ—(क्षुभितभीषणनक्रचक्र पाठीनपीठभय-दोल्वण-वाडवाग्नौ) क्षोभ को प्राप्त हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भय पैदा करने वाले तथा विकराल है बड़वानल जिसमें ऐसे **(अम्भोनिधौ)** समुद्र में **(रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थित-यानपात्राः)** चञ्चल लहरों के अग्रभाग पर स्थित है जहाज जिनका ऐसे मनुष्य **(भवतः)** आपके **(स्मरणात्)** स्मरण से **(त्रासम्)** भय को **(विहाय)** छोड़कर **(व्रजन्ति)** गमन/यात्रा करते हैं।

व्याधि विनाशक चरणरज

उद्भूत - भीषण-जलोदर - भार - भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुपगताश्-च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद - पङ्कज - रजोऽमृत - दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्यरूपाः॥४५॥

अन्वयार्थ—(उद्भूत-भीषण-जलोदर-भारभुग्नाः) उत्पन्न हुए भयंकर जलोदर रोग के भार से झुके हुए **(शोच्यां दशाम्)** शोचनीय अवस्था को **(उपगताः)** प्राप्त और **(च्युतजीविताशाः)** छोड़ दी है जीवन की आशा जिन्होंने ऐसे **(मर्त्याः)** मनुष्य **(त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्धदेहाः)** आपके चरण कमलों की धूलिरूप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए **(मकरध्वज-तुल्यरूपाः)** कामदेव के समान रूप वाले **(भवन्ति)** हो जाते हैं।

नाम जाप से बंधन मुक्ति

आपाद - कण्ठमुरु - शृङ्खल - वेष्टिताङ्गा,
गाढम् बृहन् - निगड - कोटिनिघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्-नाम-मन्त्र-मनिशम् मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति॥४६॥

अन्वयार्थ—(आपादकण्ठम्) पाँव से लेकर कण्ठपर्यन्त **(उरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गाः)** बड़ी-बड़ी साँकलों से जकड़ा हुआ है शरीर जिनका ऐसे और **(गाढं)** अत्यन्त कसकर बाँधी गईं **(बृहन्-निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः)** बड़ी-बड़ी बेड़ियों के अग्रभाग से घिस गई हैं जाँघें जिनकी ऐसे **(मनुजाः)** मनुष्य **(अनिशम्)** निरन्तर **(त्वन्नाम-मन्त्रम्)** आपके नामरूपी मन्त्र को **(स्मरन्तः)** स्मरण करते हुए **(सद्यः)** शीघ्र ही **(स्वयम्)** अपने आप **(विगत-बन्धभयाः)** बंधन के भय से रहित **(भवन्ति)** हो जाते हैं।

सर्व भय निवारक जिन स्तवन

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्राम - वारिधि - महोदर -बन्ध-नोत्थम्।
तस्याशु नाश - मुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमान-धीते॥४७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(मतिमान्)** बुद्धिमान् मनुष्य **(तावकम्)** आपके **(इमम्)** इस **(स्तवम्)** स्तोत्र को **(अधीते)** पढ़ता है **(तस्य)** उसका **(मत्तद्विपेन्द्र -**

मृगराज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्) मत्त हाथी, सिंह, वनाग्नि, साँप, युद्ध, समुद्र, जलोदर और बन्धन आदि से उत्पन्न हुआ **(भयम्)** डर **(भिया इव)** मानों भय से ही **(आशु)** शीघ्र **(नाशम्)** विनाश को **(उपयाति)** प्राप्त हो जाता है।

स्तुति का फल

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं 'मानतुङ्ग'-मवशा समुपैति लक्ष्मीः॥४८॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(इह)** इस संसार में **(यः जनः)** जो मनुष्य **(मया)** मेरे द्वारा **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(गुणैः)** प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणों से [माला के पक्ष में-डोरे से] **(निबद्धाम्)** रची गई [माला पक्ष में-गूँथी गई] **(विविधवर्ण-विचित्रपुष्पाम्)** अनेक प्रकार के सुन्दर वर्णरूपी विविध प्रकार के पुष्पों वाली [माला पक्ष में-अच्छे रंग वाले कई तरह के फूलों से सहित] **(तव)** आपकी **(स्तोत्रस्त्रजम्)** स्तोत्ररूपी माला को **(अजस्रम्)** हमेशा **(कण्ठगताम् धत्ते)** कण्ठ में धारण करता है **(तम्)** उस **(मानतुङ्गम्)** सम्मान से उन्नत पुरुष को [अथवा स्तोत्र के रचने वाले मानतुंग आचार्य को] **(अवशा लक्ष्मीः)** स्वतन्त्र स्वर्ग-मोक्षादि की विभूति **(समुपैति)** प्राप्त होती है।

❑ ❑ ❑

गुरुवर विद्यासागर जी हो, पंचम युग में हितकारी।
संकट में जो विषम विश्व के, जीवों के मंगलकारी॥
प्रेम सुधा मकरन्द लुटाते, सबके मन को हरते हो।
आज समय में समयधार बन, समयसार को वरते हो॥
धुराधार वात्सल्यमयी तुम, हम सबका परित्राण करो।
महासमर को क्षण में रोको, सत्य धर्म जय नाद करो॥
उपदेशों से गुरुवर तेरे, विश्व नाश से बच सकता।
जिनवर जैसी सूरत लखकर, युग प्रकाश में आ सकता॥

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्

६वीं शताब्दी में आचार्य कुमुदचन्द्र अपरनाम सिद्धसेन द्वारा पार्श्वनाथ भगवान् की भक्ति में रची गई यह काव्य रचना है। इसमें कुल ४४ काव्य हैं, जिसमें से ४३ काव्य वसंततलिका छन्द में रचे गए हैं, यह स्तोत्र अत्यन्त सरल और भावमय है, प्रत्येक पद्य में भक्तिरस निस्यूत होता है।

मंगलाचरण

कल्याण - मन्दिर - मुदार - मवद्य भेदि,
भीताभय - प्रदमनिन्दित - मङ्घ्रि-पद्मम्।
संसार - सागर - निमज्जदशेष - जन्तु-,
पोतायमान - मभिनम्य जिनेश्वरस्य॥१॥
यस्य स्वयं सुरगुरु - र्गरिमाम्बु-राशेः।
स्तोत्रं सुविस्तृत-मति-र्न विभु-र्विधातुम्॥
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय - धूमकेतोस्-।
तस्याह-मेष किल संस्तवनं करिष्ये॥२॥

अन्वयार्थ—(कल्याणमंदिरम्) कल्याणों के मंदिर **(उदारम्)** दाता या महान् **(अवद्यभेदि)** पापों को नष्ट करने वाले **(भीताभयप्रदम्)** संसार से डरे हुए जीवों को अभयपद देने वाले **(अनिन्दितं)** प्रशंसनीय **(संसार-सागर-निमज्ज-दशेषजन्तुपोतायमानम्)** संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए समस्त जीवों के लिए जहाज के समान **(जिनेश्वरस्य)** जिनेन्द्र भगवान् के **(अङ्घ्रिपद्मम्)** चरण-कमलों को **(अभिनम्य)** नमस्कार करके **(गरिमाम्बुराशेः)** गौरव के समुद्र-स्वरूप **(यस्य)** जिन पार्श्वनाथ की **(स्तोत्रम् विधातुम्)** स्तुति करने के लिए **(स्वयं सुविस्तृतमतिः)** स्वयं विशाल बुद्धि वाले **(सुरगुरुः)** बृहस्पति भी **(विभुः)** समर्थ **(न 'अस्ति')** नहीं है **(कमठ-स्मयधूमकेतोः)** कमठ का मान भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप **(तस्य तीर्थेश्वरस्य)** उन पार्श्वनाथ भगवान् की **(किल)** आश्चर्य है कि **(एषः अहं)** यह मैं **(संस्तवनम् करिष्ये)** स्तुति करूँगा।

लघुता अभिव्यक्ति

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म-रश्मेः?॥३॥

अन्वयार्थ—(अधीश!) हे स्वामिन्! **(सामान्यतः अपि)** साधारण रीति से भी **(तव)** आपके **(स्वरूपं)** स्वरूप को **(वर्णयितुं)** वर्णन करने के लिए **(अस्मादृशाः)** मुझ जैसे मनुष्य **(कथम्)** कैसे **(अधीशा)** समर्थ **(भवन्ति)** हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं **(यदि वा)** अथवा **(दिवान्धः)** दिन में अन्धा रहने वाला **(कौशिकशिशुः)** उल्लू का बच्चा **(धृष्टः अपि 'सन्')** धीठ होता हुआ भी **(किम्)** क्या **(घर्मरश्मेः)** सूर्य के **(रूपम्)** रूप की **(प्ररूपयति किल)** वर्णन कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता।

अनिर्वचनीय गुणमहिमा

मोह - क्षयादनुभवन् - नपि नाथ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्,
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥४॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(मर्त्यः)** मनुष्य **(मोहक्षयात्)** मोहनीयकर्म के क्षय से **(अनुभवन् अपि)** अनुभव करता हुआ भी **(तव)** आपके **(गुणान्)** गुणों को **(गणयितुम्)** गिनने के लिए **(नूनम्)** निश्चय करके **(न क्षमेत)** समर्थ नहीं हो सकता **(यस्मात्)** क्योंकि **(कल्पान्त-वान्तपयसः)** प्रलयकाल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है ऐसे **(जलधेः)** समुद्र की **(प्रकटः अपि)** प्रकट हुई भी **(रत्नराशिः)** रत्नों की राशि **(ननु केन मीयेत)** किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

अल्पज्ञता प्रदर्शन

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडा-शयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य - गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः॥५॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे नाथ! **('अहम्' जडाशयः अपि)** मैं मूर्ख भी **(लस-दसंख्यगुणाकरस्य)** सुशोभित असंख्यात गुणों की खानि स्वरूप **(तव)** आपके **(स्तवम् कर्तुम्)** स्तवन करने के लिए **(अभ्युद्यतः अस्मि)** तैयार हुआ हूँ, क्योंकि **(बालः अपि)** बालक भी **(स्वधिया)** अपनी बुद्धि के अनुसार **(निजबाहुयुगम्)** अपने दोनों हाथों को **(वितत्य)** फैलाकर **(किम्)** क्या **(अम्बुराशेः)** समुद्र के **(विस्तीर्णताम्)** विस्तार को **(न कथयति)** नहीं कहता? अर्थात् कहता है।

अविचारित कार्य

ये योगिना-मपि न यान्ति, गुणास्तवेश!,
वक्तुं कथं भवति तेषु ममाव-काशः?।
जाता तदेव-मसमीक्षित - कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि॥६॥

अन्वयार्थ—(ईश!) हे भगवन्! **(तव)** आपके **(ये गुणाः)** जो गुण **(योगिनाम् अपि)** योगियों को भी **(वक्तुम्)** कहने के लिए **(न यान्ति)** नहीं प्राप्त होते अर्थात् जिनका कथन योगीजन भी नहीं कर सकते **(तेषु)** उनमें **(मम)** मेरा **(अवकाशः)** अवकाश **(कथम् भवति)** कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं उन्हें कैसे वर्णन कर सकता हूँ? **(तत्)** इसलिए **(एवम् इयम्)** इस प्रकार मेरा यह **(असमीक्षितकारिता जाता)** बिना विचारे काम करता हुआ **(वा)** अथवा **(पक्षिणः अपि)** पक्षी भी **(निजगिरा)** अपनी वाणी से **(जल्पन्ति ननु)** बोला करते हैं।

प्रभु नाम

आस्ता-मचिन्त्य-महिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत - पान्थजनान् निदाघे-
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि॥७॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(अचिन्त्यमहिमा)** अचिन्त्य है महिमा जिसकी, ऐसा **(ते)** आपका **(संस्तवः)** स्तवन **(आस्ताम्)** दूर रहे, **(भवतः)** आपका **(नाम अपि)** नाम भी **(जगन्ति)** जीवों को **(भवतः)** संसार से **(पाति)** बचा लेता है, क्योंकि **(निदाघे)** ग्रीष्मकाल में **(तीव्रातपोपहत-पान्थजनान्)** तीव्र

घाम से सताये हुए पथिकजनों को **(पद्मसरसः)** कमलों के सरोवर का **(सरसः)** शीतल **(अनिलः अपि)** पवन भी **(प्रीणाति)** संतुष्ट करता है।

जिन भक्ति से कर्मनाश

हृद्-वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली-भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजङ्गम-मया इव मध्यभाग-,
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

अन्वयार्थ—(विभो!) हे स्वामिन्! **(त्वयि)** आपके **(हृद्वर्तिनि 'सति')** हृदय में मौजूद रहते हुए **(जन्तोः)** जीवों के **(निबिडाः कर्मबन्धाः अपि)** सघन कर्मों के बन्धन भी **(क्षणेन)** क्षणभर में **(वनशिखण्डिनि अभ्यागते)** वन मयूर के आने पर **(चन्दनस्य मध्यभागम् 'सति')** चन्दनवृक्ष के मध्यभाग में **(भुजङ्गम-मयाः इव)** सर्पों के बंधनरूप कुण्डलियों के समान **(सद्यः)** शीघ्र ही **(शिथिलीभवन्ति)** ढीले पड़ जाते हैं।

प्रभु दर्शन की महिमा

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रव - शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो-स्वामिनि स्फुरित - तेजसि दृष्टमात्रैः,
चौरै-रिवाशु पशवः प्रपलायमानैः॥९॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(स्फुरिततेजसि)** पराक्रमी **(गोस्वामिनि दृष्टमात्रे)** राजा के दिखते ही **(आशु)** शीघ्र ही **(प्रपलाय-मानैः)** भागते हुए **(चौरैः)** चोरों के द्वारा **(पशवः इव)** पशुओं की तरह **(त्वयि वीक्षिते अपि)** आपके दिखते ही/आपके दर्शन करते ही **(मनुजाः)** मनुष्य **(रौद्रैः)** भयङ्कर **(उपद्रवशतैः)** सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा **(सहसा एव)** शीघ्र ही **(मुच्यन्ते)** छोड़ दिये जाते हैं।

भवसिन्धु तारक जिन

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव,
त्वामुद् - वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जल-मेष नून-,
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः॥१०॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्रदेव! **(त्वम्)** आप **(भविनाम्)** संसारी जीवों के **(तारकः कथम्)** तारने वाले कैसे हो सकते हैं ? **(यत्)** क्योंकि **(उत्तरन्तः)** संसार-समुद्र से पार होते हुए **(ते एव)** वे संसारी जीव ही **(हृदयेन)** हृदय से **(त्वाम्)** आपको **(उद्वहन्ति)** तिरा ले जाते हैं। **(यद्वा)** अथवा ठीक ही है **(दृतिः)** मसक **(यत्)** जो **(जलम् तरति)** जल में तैरती है **(सः एषः)** वह यह **(नूनम्)** निश्चय से **(अन्तर्गतस्य)** भीतर स्थित **(मरुतः)** हवा का **(किल अनुभावः)** निश्चित ही प्रभाव है।

मदन विजेता पार्श्वनाथ

यस्मिन् हर - प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन॥११॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिसके विषय में **(हरप्रभृतयः अपि)** विष्णु-महादेव आदि भी **(हतप्रभावाः 'जाताः')** प्रभाव रहित हो गए हैं **(सः)** वह **(रतिपतिः अपि)** कामदेव भी **(त्वया)** आपके द्वारा **(क्षणेन)** क्षणमात्र में **(क्षपितः)** नष्ट कर दिया गया **(अथ)** अथवा ठीक है कि **(येन पयसा)** जिस जल के द्वारा **(हुतभुजः विध्यापिताः)** अग्नि बुझायी जाती है **(तत् अपि)** वह जल भी **(दुर्द्धरवाडवेन)** प्रचण्ड बड़वानल से **(किम्)** क्या **(न पीतम्)** नहीं पिया गया? अर्थात् पिया गया।

महापुरुषों का अचिन्त्य प्रभाव

स्वामिन्! - ननल्प - गरिमाणमपि प्रपन्नाः,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति - लाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः॥१२॥

अन्वयार्थ—(स्वामिन्!) हे प्रभो! **(अहो)** आश्चर्य है कि **(अनल्प-गरिमाणम् अपि)** अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में—अत्यन्त वजनदार **(त्वाम्)** आपको **(प्रपन्नाः)** प्राप्त हो **(हृदये दधानाः)** हृदय में धारण करने वाले **(जन्तवः)** प्राणी **(जन्मोदधिम्)** संसार-समुद्र को **(अतिलाघवेन)** बहुत ही लघुता से **(कथम्)** कैसे **(लघु तरन्ति)** शीघ्र तर जाते हैं **(यदि वा)** अथवा **(हन्त)** हर्ष है

कि **(महताम्)** महापुरुषों का **(प्रभावः)** प्रभाव **(चिन्त्यः)** चिन्तन के योग्य **(न भवति)** नहीं होता है।

क्रोध के अभाव का प्रभाव

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी॥१३॥

अन्वयार्थ—(विभो) हे प्रभो! **(यदि)** यदि **(त्वया)** आपके द्वारा **(क्रोधः)** क्रोध **(प्रथमम्)** पहले ही **(निरस्तः)** नष्ट कर दिया गया था, **(तदा)** तो फिर **(वद)** कहिए कि आपने **(कर्मचौराः)** कर्मरूपी चोर **(कथम्)** कैसे **(ध्वस्ताः किल)** नष्ट किए? **(यदि वा)** अथवा **(अमुत्र लोके)** इसलोक में **(हिमानी)** बर्फ-तुषार **(शिशिरापि)** ठण्डा होने पर भी **(किम्)** क्या **(नीलद्रुमाणि)** हरे-हरे हैं वृक्ष जिनमें ऐसे **(विपिनानि)** वनों को **(न प्लोषति)** नहीं जला देता है? अर्थात् जला देता है/मुरझा देता है।

आत्मा की खोज

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप,
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज - कोशदेशे॥
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य,
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः॥१४॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिन! **(योगिनः)** ध्यान करने वाले मुनीश्वर **(सदा)** हमेशा **(परमात्मरूपम्)** परमात्म-स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(हृदयाम्बुज-कोशदेशे)** अपने हृदयरूप कमल के मध्यभाग में **(अन्वेष-यन्ति)** खोजते हैं **(यदि वा)** अथवा ठीक है कि **(पूतस्य निर्मलरुचेः)** पवित्र और निर्मल कान्ति वाले **(अक्षस्य)** कमल के बीज का अथवा शुद्धात्मा का **(सम्भवपदम्)** उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान **(कर्णिकायाः अन्यत्)** कमल की कर्णिका/डण्ठल को छोड़कर अथवा हृदय-कमल की कर्णिका को छोड़कर **(अन्यत् किम् ननु)** दूसरा क्या हो सकता है?

परमात्म ध्यान का लाभ

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति॥

तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः॥१५॥

अन्वयार्थ—(जिनेश!) हे जिनेश! **(लोके)** लोक में **(इव)** जैसे **(तीव्रानलात्)** तीव्र अग्नि के सम्बन्ध से **(धातुभेदाः)** अनेक धातुएँ **(उपलभावम्)** पत्थररूप पूर्वपर्याय को **(अपास्य)** छोड़कर **(अचिरात्)** शीघ्र ही **(चामीकरत्वम्)** सुवर्ण पर्याय को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होती हैं उसी तरह **(भविनः)** संसार के प्राणी **(भवतः)** आपके **(ध्यानात्)** ध्यान से **(देहम्)** शरीर को **(विहाय)** छोड़कर **(क्षणेन)** क्षणभर में **(परमात्म-दशाम्)** परमात्मा की अवस्था को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

ध्यान से बन्धन मुक्ति

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वम्,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्?।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः॥१६॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(भव्यैः)** भव्यजीवों के द्वारा **(यस्य)** जिस शरीर के **(अन्तः)** भीतर **(त्वम्)** आप **(सदैव)** हमेशा **(विभाव्यसे)** ध्याये जाते हैं **(तत्)** उस **(शरीरम् अपि)** शरीर को ही आप **(कथम्)** क्यों **(नाशयसे)** नष्ट करा देते हैं? **(अथ)** अथवा **(एतत् स्वरूपम्)** यह स्वभाव ही है **(यत्)** कि **(मध्यविवर्तिनः)** मध्यस्थ-बीच में रहने वाले और राग-द्वेष से रहित **(महानुभावाः)** महापुरुष **(विग्रहम्)** विग्रह शरीर और द्वेष को **(प्रशमयन्ति)** शान्त करते हैं।

परमात्म स्वरूप का अनुभव

आत्मा मनीषिभि-रयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीय - मप्यमृत - मित्यनुचिन्त्यमानं,
किन्नाम नो विष-विकार-मपाकरोति॥१७॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(मनीषिभिः)** बुद्धिमानों के द्वारा **(त्वदभेद-बुद्ध्या)** ''आपसे अभिन्न है'' ऐसी बुद्धि से **(ध्यातः)** ध्यान किया गया **(अयम् आत्मा)** यह आत्मा **(भवत्प्रभावः)** आप ही के समान प्रभाव वाला

(भवति) हो जाता है **(अमृतम् इति अनुचिन्त्यमानम्)** यह अमृत है, इस तरह निरन्तर चिन्तन किया जाने वाला **(पानीयम् अपि)** पानी भी **(किम्)** क्या **(विषविकारम्)** विष के विकार को **(नो अपाकरोति नाम)** दूर नहीं करता? अर्थात् करता है?

सर्वमान्य वीतराग जिन

त्वामेव वीत - तमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काच-कामलिभिरीश! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण॥१८॥

अन्वयार्थ—(विभो!) हे स्वामिन्! **(परवादिनः अपि)** अन्य मतावलम्बी पुरुष भी **(वीततमसम्)** अज्ञान अन्धकार से रहित **(त्वाम् एव)** आपको ही **(नूनम्)** निश्चय से **(हरिहरादिधिया)** विष्णु, महादेवादि की कल्पना से **(प्रपन्नाः)** प्राप्त होते हैं/पूजते हैं **(किम्)** क्या **(ईश!)** हे विभो! **(काचकामलिभिः)** जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है, ऐसे पुरुषों के द्वारा **(शङ्खः सितः अपि)** शंख सफेद होने पर भी **(विविधवर्ण-विपर्ययेण)** अनेक प्रकार के विपरीत वर्णों से **(नो गृह्यते)** ग्रहण नहीं किया जाता है? अर्थात् किया जाता है।

अशोक प्रातिहार्य

धर्मोपदेश - समये सविधानु - भावा-,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि।
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः॥१९॥

अन्वयार्थ—(धर्मोपदेशसमये) धर्मोपदेश के समय **(ते)** आपकी **(सविधानु-भावात्)** समीपता के प्रभाव से **(जनः आस्ताम्)** मनुष्य तो दूर रहे **(तरुः अपि)** वृक्ष भी **(अशोकः)** अशोक/शोक रहित **(भवति)** हो जाता है। **(वा)** अथवा **(दिनपतौ अभ्युद्गते 'सति')** सूर्य के उदय होने पर **(समहीरुहः अपि जीवलोकः)** वृक्षों सहित समस्त जीवलोक **(किम्)** क्या **(विबोधम्)** विकास/विशेष ज्ञान को **(न उपयाति)** नहीं प्राप्त होते अर्थात् होते हैं।

पुष्प वृष्टि प्रातिहार्य

चित्रं विभो! कथमवाङ्मुख - वृन्तमेव।
विष्वक् पतत्य-विरला सुर-पुष्प-वृष्टिः॥
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि॥२०॥

अन्वयार्थ—(विभो!) हे स्वामिन्! **(चित्रम्)** आश्चर्य है कि **(विष्वक्)** सब ओर **(अविरला)** व्यवधान रहित **(सुरपुष्पवृष्टिः)** देवों के द्वारा की हुई पुष्पों की वर्षा **(अवाङ्मुखवृन्तम् एव)** नीचे डण्ठल और ऊपर को है पांखुरी जिसकी ऐसी ही **(कथम्)** क्यों **(पतति)** गिरती है? **(यदि वा)** अथवा ठीक ही है कि **(मुनीश!)** हे मुनियों के नाथ! **(त्वद्गोचरे)** आपके समीप **(सुमनसाम्)** पुष्पों अथवा विद्वानों के **(बन्धनानि)** डंठल अथवा कर्मों के बन्धन **(नूनम् हि)** निश्चय से **(अधः एव गच्छन्ति)** नीचे को ही जाते हैं।

दिव्यध्वनि प्रातिहार्य

स्थाने गभीर - हृदयोदधि - सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परम - सम्मद - सङ्ग - भाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरा-मरत्वम्॥२१॥

अन्वयार्थ—(गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः) गम्भीर हृदयरूपी समुद्र से पैदा हुई **(तव)** आपकी **(गिरः)** वाणी के **(पीयूषताम्)** अमृतपने को लोग **(स्थाने)** ठीक ही **(समुदीरयन्ति)** प्रकट करते हैं **(यतः)** क्योंकि **(भव्याः)** भव्यजीव **(ताम् पीत्वा)** उसे पीकर **(परमसम्मदसङ्गभाजः 'सन्तः')** परमसुख के भागी होते हुए **(तरसा अपि)** बहुत ही शीघ्र **(अजरामरत्वम्)** अजर-अमरपने को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

चँवर प्रातिहार्य

स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नून मूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः॥२२॥

अन्वयार्थ—(स्वामिन्!) हे स्वामिन्! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(सुदूरम्)** नीचे

को बहुत दूर तक **(अवनम्य)** नम्रीभूत होकर **(समुत्पतन्तः)** ऊपर को आते हुए **(शुचयः)** पवित्र **(सुरचामरौघाः)** देवों के चँवर-समूह **(वदन्ति)** लोगों से कह रहे हैं कि **(ये)** जो **(अस्मै मुनिपुङ्गवाय)** इन श्रेष्ठ मुनीन्द्र को **(नतिम्)** नमस्कार **(विदधते)** करते हैं, **(ते)** वे **(नूनम्)** निश्चय से **(शुद्धभावाः)** विशुद्ध परिणाम वाले होकर **(ऊर्ध्वगतयः)** ऊर्ध्वगति वाले **(खलु भवन्ति)** सचमुच हो जाते हैं अर्थात् स्वर्ग/मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

सिंहासन प्रातिहार्य

श्यामं गभीर - गिर - मुज्ज्वल - हेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य - शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्त - मुच्चैश्-,
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम्॥२३॥

अन्वयार्थ—(इह) इसलोक में **(श्यामम्)** श्याम वर्ण **(गभीर-गिरम्)** गम्भीर दिव्यध्वनि युक्त और **(उज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थं)** उज्ज्वल स्वर्ण से निर्मित रत्नों से जड़ित सिंहासन पर स्थित **(त्वाम्)** आपको **(भव्य-शिखण्डिनः)** भव्यजीवरूपी मयूर **(चामीकराद्रिशिरसि)** सुवर्णमय मेरुपर्वत के शिखर पर **(उच्चैः नदन्तम्)** उच्च स्वर से गरजते हुए **(नवाम्बुवाहम् इव)** नूतन मेघ की तरह **(रभसेन)** अति उत्सुकता से **(आलोकयन्ति)** देखते हैं।

भामण्डल प्रातिहार्य

उद्गच्छता तव शिति - द्युति - मण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छवि - रशोक - तरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि॥२४॥

अन्वयार्थ—(उद्गच्छता) स्फुरायमान **(तव)** आपके **(शितिद्युति-मण्डलेन)** श्याम प्रभामण्डल के द्वारा **(अशोकतरुः)** अशोकवृक्ष **(लुप्तच्छदच्छविः)** कान्तिहीन पत्रों वाला **(बभूव)** हो गया **(यदि वा)** अथवा **(वीतराग!)** हे राग-द्वेष रहित देव! **(तव सान्निध्यतः अपि)** आपकी समीपता मात्र से ही **(कः सचेतनः अपि)** कौन पुरुष सचेतन भी **(नीरागताम्)** राग/ललाई से रहितपने अथवा अनुराग के अभाव को **(न व्रजति)** नहीं प्राप्त होता? अर्थात् प्राप्त होता है।

दुन्दुभि प्रातिहार्य

भो भोः प्रमाद-मवधूय भजध्वमेन-,
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन् निवेदयति देव! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुर दुन्दुभिस्ते॥२५॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(मन्ये)** मैं समझता हूँ कि **(अभिनभः)** आकाश में सब ओर **(नदन्)** शब्द करती हुई **(ते)** आपकी **(सुर दुन्दुभिः)** देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि **(जगत्त्रयाय)** तीन लोकों के जीवों को **(एतत् निवेदयति)** यह सूचित करती है कि **(भोः भोः)** रे प्राणियों! **(प्रमादम् अवधूय)** प्रमाद को छोड़कर **(निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्)** मोक्षपुरी को जाने में अगुवा **(एनं)** इन पार्श्वनाथ भगवान् को **(आगत्य)** आकर **(भजध्वम्)** भजो/सेवा करो।

छत्रत्रय प्रातिहार्य

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता - कलाप - कलितोल्लसितातपत्र-,
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥२६॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(भवता भुवनेषु उद्योतितेषु 'सत्सु')** आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर **(विहताधिकारः)** अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा **(मुक्ताकलाप-कलितोल्लसितातपत्र-व्याजात्)** मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से **(तारान्वितः)** ताराओं से वेष्टित **(अयम् विधुः)** यह चन्द्रमा **(त्रिधा धृततनुः)** तीन-तीन शरीर धारण कर **(ध्रुवम्)** निश्चय से **(त्वाम् अभ्युपेतः)** आपकी सेवाओं में प्राप्त हुआ है।

समवसरण में तीन प्रकोट

स्वेन प्रपूरित - जगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्ति - प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्य हेम-रजत - प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥२७॥

अन्वयार्थ—(भगवन्) हे भगवन्! आप **(अभितः)** चहुँ ओर **(प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन)** भरे हुए तीनों जगत् के पिण्ड अवस्था को प्राप्त **(स्वेन कान्ति-**

प्रताप-यशसाम् सञ्चयेन इव) अपने कान्ति, प्रताप और यश के समूह के समान **(माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन)** माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी से बने हुए **(सालत्रयेण)** तीनों कोटों से **(विभासि)** शोभायमान होते हैं।

इन्द्रों द्वारा वन्दनीय

दिव्यस्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधि पाना-
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव॥२८॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(दिव्यस्रजः)** दिव्य पुष्पों की मालाएँ **(नमत् त्रिदशाधिपानाम्)** नमस्कार करते हुए इन्द्रों के **(रत्नरचितान् अपि मौलि-बन्धान्)** रत्नों से बने हुए मुकुटों के बंधनों को भी **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(भवतः पादौ श्रयन्ति)** आपके चरणों का आश्रय लेती हैं **(यदि वा)** अथवा ठीक है कि **(त्वत्सङ्गमे 'सति')** आपका समागम होने पर **(सुमनसः)** पुष्प मालाएँ या उत्तम हृदय वाले मनुष्य **(परत्र)** किसी दूसरी जगह **(न एव रमन्ते)** नहीं रमण करते हैं।

संसार समुद्र तारक विभु

त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिवनृपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥२९॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(त्वम्)** आप **(जन्म-जलधेः)** संसाररूप समुद्र से **(विपराङ्मुखः अपि सन्)** पराङ्मुख होते हुए भी **(यत्)** जो **(निज-पृष्ठलग्नान्)** अपने पीछे लगे हुए अनुयायी **(असुमतः)** जीवों को **(तारयसि)** तार देते हो **('तत्')** वह **(पार्थिवनृपस्य सतः)** राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाले **(तव)** आपको **(युक्तम् एव)** उचित ही है, परन्तु **(विभो)** हे प्रभो! **(तत् चित्रम्)** वह आश्चर्य की बात है **(यत्)** जो आप **(कर्मविपाकशून्यः असि)** कर्मों के उदयरूप पाक क्रिया से रहित हो।

विरोधाभास गुण स्तुति

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वम्,
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश!।
अज्ञान - वत्यपि सदैव कथञ्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः॥३०॥

अन्वयार्थ—(जनपालक!) हे जीवों के रक्षक! **(त्वम्)** आप **(विश्वेश्वरः अपि दुर्गतः)** तीन लोक के स्वामी होकर भी दरिद्र हैं, **(किं वा)** और **(अक्षर-प्रकृतिः अपि त्वम् अलिपिः)** अक्षरस्वभाव होकर भी लेखन क्रिया से रहित हैं **(ईश!)** हे स्वामिन्! **(कथञ्चित्)** किसी प्रकार से **(अज्ञानवति अपि त्वयि)** अज्ञानवान् होने पर भी आपमें **(विश्व-विकासहेतुः ज्ञानम् सदा एव स्फुरति)** सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान हमेशा स्फुरायमान रहता है।

उपसर्ग विजेता पार्श्वनाथ

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषा-,
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा॥३१॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! **(शठेन कमठेन)** दुष्ट कमठ के द्वारा **(रोषात्)** क्रोध से **(प्राग्भार-सम्भृतनभांसि)** सम्पूर्णरूप से आकाश को व्याप्त करने वाली **(यानि)** जो **(रजांसि)** धूल **(उत्थापितानि)** आपके ऊपर उड़ाई गई थी **(तैः तु)** उससे तो **(तव)** आपकी **(छाया अपि)** छाया भी **(न हता)** नहीं नष्ट हुई थी **(परम्)** किन्तु **(अयमेव दुरात्मा)** यही दुष्ट **(हताशः)** हताश हो **(अमीभिः)** इन कर्मरूप रजों से **(ग्रस्तः)** जकड़ा गया था।

जलवृष्टि उपसर्ग

यद्गर्जदूर्जित - घनौघ - मदभ्रभीम्,
भ्रश्यत्तडिन्मुसल - मांसल - घोरधारम्॥
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(अथ) और **(जिन!)** हे जिनेश्वर! **(दैत्येन)** उस कमठ ने **(गर्जदूर्जितघनौघम्)** खूब गरज रहे हैं बलिष्ठ-मेघ-समूह जिसमें **(भ्रश्यत्-तडित्)** गिर रही है बिजली जिसमें और **(मुसलमांसल-घोर-धारम्)** मूसल के समान बड़ी मोटी है धारा जिसमें ऐसा तथा **(अदभ्रभीमम्)** अत्यन्त भयंकर **(यत्)** जो **(दुस्तर-वारि)** अथाह जल **(मुक्तम्)** वर्षाया था, **(तेन)** उस जलवृष्टि से **(तस्य एव)** उस कमठ ने ही अपने लिए **(दुस्तरवारिकृत्यम् दध्रे)** तीक्ष्ण तलवार के कार्य को धारण किया अर्थात् उससे वह कमठ स्वयं ही घायल हो गया।

भूत पिशाचों के द्वारा उपसर्ग

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति - मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयद - वक्त्र - विनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः॥३३॥

अन्वयार्थ—(ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड-प्रालम्बभृद्) मुंडे हुए तथा विकृत आकृति वाले नर कपालों की माला को धारण करने वाला और **(भयद-वक्त्रविनिर्यदग्निः)** जिसके भयंकर मुख से अग्नि निकल रही है, ऐसा **(यः)** जो **(प्रेतव्रजः)** पिशाचों का समूह **(भवन्तम् प्रति)** आपके प्रति **(ईरितः)** प्रेरित किया गया था-दौड़ाया गया था **(सः)** वह **(अस्य)** उस असुर को **(प्रतिभवम्)** प्रत्येक भव में **(भव-दुःखहेतुः)** संसार के दुखों का कारण **(अभवत्)** हुआ था।

प्रभु भक्त धन्यवाद का पात्र

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य-कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक - पक्ष्मल - देह - देशाः,
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः॥३४॥

अन्वयार्थ—(भुवनाधिप!) हे त्रिलोकीनाथ! **(ये)** जो **(जन्म-भाजः)** प्राणी, **(विधुतान्यकृत्याः)** जिन्होंने अन्य काम छोड़ दिए हैं और **(भक्त्या)** भक्ति से **(उल्लसत्-पुलक-पक्ष्मल-देहदेशाः 'सन्तः')** प्रकट हुए रोमाञ्चों से जिनके शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त है, ऐसे होते हुए **(विधिवत्)** विधिपूर्वक

(त्रिसन्ध्यम्) तीनों कालों में **(तव)** आपके **(पादद्वयम् आराधयन्ति)** चरणयुगल की आराधना करते हैं **(विभो!)** हे स्वामिन्! **(भुवि)** संसार में **(ते एव)** वे ही **(धन्याः)** धन्य हैं।

प्रभु नाम श्रवण से विपदा मुक्ति

अस्मिन्नपार - भव - वारि - निधौ मुनीश!,
मन्ये न मे श्रवण - गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र - पवित्र - मन्त्रे,
किं वा विपद्-विषधरी सविधं समेति॥३५॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनीन्द्र! **(मन्ये)** मैं समझता हूँ कि **(अस्मिन् अपारभव-वारिनिधौ)** इस अपार संसाररूप समुद्र में कभी भी आप **(मे)** मेरे **(श्रवणगोचरतां न गतः असि)** कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो क्योंकि **(तु)** निश्चय से **(तव गोत्रपवित्रमन्त्रे आकर्णिते 'सति')** आपके नामरूपी पवित्र मन्त्र के सुने जाने पर **(विपद्-विषधरी)** विपत्तिरूपी नागिन **(किम् वा)** क्या **(सविधम्)** समीप **(समेति)** आती है? अर्थात् नहीं।

प्रभुपद पूजे बिन मिले विपद

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!,
मन्ये मया महितमीहित - दान - दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्॥३६॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि मैंने **(जन्मान्तरे अपि)** दूसरे जन्म में भी **(ईहितदानदक्षम्)** मनोवांछित फल देने में समर्थ **(तव पादयुगम्)** आपके चरणयुगल **(न महितम्)** नहीं पूजे, **(तेन)** उसी से **(इह जन्मनि)** इस भव में **(मुनीश!)** हे मुनीश! **(अहम्)** मैं **(मथिताशयानाम्)** हृदयभेदी-मनोरथों को नष्ट करने वाले **(पराभवानाम्)** तिरस्कारों का **(निकेतनम्)** घर **(जातः)** हुआ हूँ।

दर्शन बिन दुख पाये

नूनं न मोह - तिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध - गतयः कथमन्यथैते॥३७॥

अन्वयार्थ—(विभो) हे स्वामिन्! **(मोहतिमिरावृतलोचनेन)** मोहरूपी अन्धकार से आच्छादित हैं नेत्र जिसके ऐसे **(मया)** मेरे द्वारा आप **(पूर्वम्)** पहले कभी **(सकृद् अपि)** एक बार भी **(नूनम्)** निश्चय से **(प्रविलोकितः न असि)** अच्छी तरह अवलोकित नहीं हुए हो अर्थात् मैंने आपके दर्शन नहीं किए **(अन्यथा हि)** नहीं तो जो **(प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः)** जिनमें कर्मबन्ध की गति बढ़ रही है ऐसे **(एते)** ये **(मर्माविधः)** मर्मभेदी **(अनर्थाः)** अनर्थ **(माम्)** मुझे **(कथम्)** क्यों **(विधुरयन्ति)** दुखी करते ?

भाव शून्य करनी फलदायक नहीं

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥३८॥

अन्वयार्थ—अथवा **(जनबान्धव!)** हे जगत् बन्धु! **(मया)** मेरे द्वारा आप **(आकर्णितः अपि)** सुने हुए भी हैं **(महितः अपि)** पूजित भी हुए हैं और **(निरीक्षितः अपि)** अवलोकित भी हुए हैं अर्थात् मैंने आपका नाम भी सुना है, पूजा भी की है और दर्शन भी किए हैं, फिर भी **(नूनम्)** निश्चय है कि **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(चेतसि)** चित्त में **(न विधृतः असि)** धारण नहीं किए गए हो **(तेन)** उसी से मैं **(दुःखपात्रम् जातः अस्मि)** दुखों का पात्र हो रहा हूँ **(यस्मात्)** क्योंकि **(भावशून्याः)** भाव रहित **(क्रियाः)** क्रियाएँ **(न प्रतिफलन्ति)** सफल नहीं होतीं।

दुख नाशक प्रार्थना

त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य!।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय,
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(दुःखिजनवत्सल!)** दुखियों पर प्रेम करने वाले! **(हे शरण्य!)** हे शरणागत प्रतिपालक! **(कारुण्य-पुण्यवसते!)** हे दया की पवित्र भूमि! **(वशिनाम् वरेण्य!)** हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और **(महेश!)** हे महेश्वर! **(भक्त्या)** भक्ति में **(नते मयि)** नम्रीभूत मुझ पर **(दयाम् विधाय)** दया करके **(दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परताम्)** मेरे दुखांकुर के नाश करने में तत्परता/

तल्लीनता **(विधेहि)** कीजिए।

प्रभु चिन्तन बिन जीवन निस्सार

निःसंख्य - सार - शरणं शरणं शरण्य-,
मासाद्य सादित - रिपुः प्रथिता वदानम्!
त्वत्पाद - पङ्कजमपि प्रणिधान - वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन-पावन! हा हतोऽस्मि॥४०॥

अन्वयार्थ—(भुवनपावन!) हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! **(निःसंख्य-सारशरणम्)** असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थों के घर की **(शरणम्)** रक्षा करने वाले **(शरण्यम्)** शरणागत प्रतिपालक और **(सादितरिपु प्रथिता-वदानम्)** कर्म-शत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है पराक्रम जिनका ऐसे **(त्वत्पाद-पङ्कजम्)** आपके चरणकमलों को **(आसाद्य अपि)** पाकर भी **(प्रणिधान-वन्ध्यः)** उनके ध्यान से रहित हुआ मैं **(वन्ध्यः अस्मि)** अभागा-फलहीन हूँ और **(तत्)** उससे **(हा)** खेद है कि मैं **(हतः अस्मि)** नष्ट हुआ जा रहा हूँ/कर्म मुझे दुखी कर रहे हैं।

रक्षा प्रार्थना

देवेन्द्रवंद्य! विदिताखिल - वस्तुसार!
संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करुणा-ह्रद! मां पुनीहि,
सीदन्त-मद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः॥४१॥

अन्वयार्थ—(देवेन्द्रवन्द्य!) हे इन्द्रों के वन्दनीय! **(विदिताखिल-वस्तुसार!)** हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले **(संसारतारक!)** संसार सागर से तारने वाले! **(विभो)** हे प्रभो! **(भुवनाधिनाथ!)** हे तीनों लोक के स्वामिन्! **(करुणाह्रद!)** हे दया के सरोवर! **(देव!)** देव! **(अद्य)** आज **(सीदन्तम्)** दुखी होते हुए **(माम्)** मुझको **(भयद-व्यसनाम्बुराशेः)** भयंकर दुखों के सागर से **(त्रायस्व)** बचाओ और **(पुनीहि)** पवित्र करो।

भक्ति फल की याचना

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि - सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत - सञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी! त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि॥४२॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(त्वदेकशरणस्य)** केवल आप ही की है शरण जिसको ऐसे **(मे)** मुझे **(सन्ततसञ्चिताया:)** चिरकाल से एकत्रित हुई **(भवद् अङ्घ्रिसरोरुहाणाम्)** आपके चरण कमलों की **(भक्ते:)** भक्ति का **(यदि)** यदि **(किमपि फलम् अस्ति)** कुछ भी फल है **(तत्)** तो उससे **(शरण्य!)** हे शरणागत प्रतिपालक! **(त्वम् एव)** आप ही **(अत्र भुवने)** इहलोक में और **(भवान्तरे अपि)** परलोक में भी **(मे स्वामी)** मेरे स्वामी **(भूया:)** होवें।

भक्ति की विधि

इत्थं समाहित - धियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्ग - भागा:।
त्वद्बिम्ब - निर्मल-मुखाम्बुज - बद्धलक्ष्या:,
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्या:॥४३॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(ये भव्या:)** जो भव्यजन **(इत्थम्)** इस तरह **(समाहितधिय:)** सावधान बुद्धि से युक्त हो **(त्वद् बिम्बनिर्मल-मुखाम्बुजबद्धलक्ष्या:)** आपके निर्मल मुखकमल की ओर अपलक लक्ष्य करके **(सान्द्र-उल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागा:)** सघन-रूप से उठे हुए रोमांचों से व्याप्त शरीर के अवयव जिनके ऐसे **(सन्त:)** होते हुए **(विधिवत्)** विधिपूर्वक **(तव)** आपका **(संस्तवम्)** स्तवन **(रचयन्ति)** रचते हैं।

भक्ति का फल स्वर्ग मोक्षसंपद

जननयनकुमुदचन्द्र! प्रभास्वरा: स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित-मल-निचया अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते॥४४॥

अन्वयार्थ—(ते) वे **(जननयनकुमुदचन्द्र!)** हे प्राणियों के नेत्ररूपी कुमुदों-कमलों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! **(प्रभास्वरा:)** देदीप्यमान **(स्वर्गसम्पद:)** स्वर्ग की विभूतियों को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(विगलितमलनिचया: 'सन्त:')** कर्मरूपी मल-समूह से रहित हो **(अचिरात्)** शीघ्र ही **(मोक्षम् प्रपद्यन्ते)** मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

❑ ❑ ❑

एकीभावस्तोत्रम्

ईसा की ११ वीं शताब्दी में आचार्य वादिराजजी द्वारा भगवत् भक्ति में रची गई यह उत्तम रचना है। इस स्तोत्र में २५ पद्य मन्दाकान्ता छन्द में है और एक अंतिम छन्द उनकी प्रशंसा में किन्हीं ने उनकी स्तुति में लिखा है जो स्वागता छन्द में। भक्तिभावना की विशिष्टता को लिए यह स्तोत्र सरस और प्रौढ़ है। प्रचलित कथानुसार इस स्तोत्र के प्रभाव से आचार्य का कुष्ठरोग से आक्रान्त शरीर स्वर्ण कांतिमय हो गया था।

सन्ताप हारक : जिनभक्ति

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः॥१॥

अन्वयार्थ–(जिनरवे) हे जिनसूर्य! **(मया-सह)** मेरी आत्मा के साथ **(स्वयं)** अपने आप **(एकीभावं)** तन्मयता को **(गत इव)** प्राप्त हुए की तरह **(दुर्निवारः)** बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य **(यः)** जो **(कर्मबन्धः)** कर्मबंध **(भव-भवगतः 'सन्')** प्रत्येक पर्याय में साथ जाता हुआ **(घोरम्)** भयानक **(दुःखम्)** दुख को **(करोति)** करता है। **(त्वयि)** आपके विषय में होने वाली **(भक्तिः)** भक्ति अनुराग विशेष **(चेत्)** यदि **(तस्य अपि अस्य उन्मुक्तये)** उस कर्मबन्ध और इस दुख के भी छुड़ाने–दूर करने के लिए है **(तर्हि)** तो फिर **(तया)** उस भक्ति के द्वारा **(अपरः)** दूसरा **(कः)** कौन **(तापहेतुः)** सन्ताप का कारण **(जेतुं शक्यः न भवति)** जीता नहीं जा सकता ? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है।

ज्योति स्वरूप : जिनवर

ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वन्सहेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥२॥

अन्वयार्थ–(हे जिनवर!) कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हे जिनेन्द्र! जबकि **(तत्त्वविद्याभियुक्ताः)** तत्त्व विद्या को जानने वाले ऋषि गण **(चिरं)**

बहुत समय से **(त्वाम् एव)** आपको ही **(दुरित-निवहध्वान्त-विध्वन्सहेतुम्)** पापसमूहरूपी अन्धकार के नाश करने में कारणभूत **(ज्योती-रूपम्)** तेजरूप ज्ञानस्वरूप **(आहुः)** कहते हैं **(च)** और आप **(मम)** मेरे **(चेतोवासे)** मनरूपी मन्दिर में **(स्फारं)** अत्यन्तरूप से निरन्तर **(उद्भासमानः)** प्रकाशमान **(भवसि)** हो रहे हो तब **(तस्मिन्)** उस मन मन्दिर में **(वस्तुतः)** निश्चय से **(अंहः तमः)** पापरूपी अन्धकार **(वस्तुं)** निवास करने के लिए–ठहरने के लिए **(कथं इव)** किस तरह **(ईष्टे)** समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

विषमव्याधि निवारक

आनन्दाश्रु-स्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्-
निष्कास्यन्ते विविध-विषमव्याधयः काद्रवेयाः॥३॥

अन्वयार्थ–हे जिनेन्द्र! **(आनन्दाश्रुस्नपितवदनं च गद्गदं)** आनन्दाश्रुओं–हर्षरूपी आँसुओं से मुख को प्रक्षालित करता हुआ और अव्यक्त ध्वनि से **(अभिजल्पन्)** स्तुति करता हुआ **(यः)** जो मनुष्य **(स्वयं)** आपमें **(दृढमनाः)** स्थिर चित्त होकर **(स्तोत्रमन्त्रैः)** स्तवनरूप मंत्रों से **(भवन्तम्)** आपको **(अयेत्)** पूजता है–स्तुति करता है। **(तस्य)** उसके **(सुचिरम्)** चिरकाल से **(अभ्यस्तात् अपि)** परिचित भी **(देहवल्मीकमध्यात्)** शरीररूपी वामी के मध्य से–बीच से **(विविध-विषमव्याधयः)** अनेकप्रकार के कठिन रोगरूपी **(काद्रवेयाः)** साँप **(निष्कास्यन्ते)** बाहर निकाल दिए जाते हैं।

देह बनी सुवर्णमय

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्-
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव! निन्येत्वयेदम्।
ध्यानद्वारं ममरुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टस्-
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी-करोषि॥४॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे भगवन्! **(भव्यपुण्यात्)** भव्य जीवों के पुण्य के द्वारा **(इह)** यहाँ पर **(त्रिदिवभवनात्)** स्वर्ग लोक से माता के गर्भ में **(एष्यता)** आने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(प्राक्एव)** पहले ही जब **(इदम्)** यह **(पृथ्वीचक्रम्)** भूमण्डल पृथ्वी–मण्डल **(कनकमयतां)** सुवर्णमयता को **(निन्ये)** प्राप्त कराया

गया था। तब **(जिन!)** हे जिनेन्द्र! **(ध्यानद्वारं)** ध्यानरूपी दरवाजे से युक्त **(मम)** मेरे **(रुचिकरम्)** सुन्दर **(स्वान्तगेहं)** मनरूप मन्दिर में **(प्रविष्टः)** प्रविष्ट हुए **(इदं वपुः)** कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को **(यत्)** जो **('त्वम्')** आप **(सुवर्णीकरोषि)** सुवर्णमय कर रहे हो **(तत्किंचित्रम्)** उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ नहीं।

अकारण बन्धु

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्! निर्निमित्तेन बन्धुस्-
त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः॥५॥

अन्वयार्थ–(भगवन्!) हे भगवन्! जब **(त्वम्)** आप **(लोकस्य)** संसार के प्राणियों के **(निर्निमित्तेन)** स्वार्थ रहित–बिना किसी प्रयोजन के **(एकः)** अद्वितीय **(बन्धुः असि)** बन्धु–हित करने वाले हो और **(असौ)** यह **(सकल-विषयाशक्तिः)** सब पदार्थों को विषय करने वाली शक्ति भी **(त्वयि)** आपमें ही **(अप्रत्यनीका)** बाधा रहित है। **(ततः)** तब **(भक्तिस्फीताम्)** भक्ति के द्वारा विस्तृत **(मामिकां)** मेरी **(चित्तशय्याम्)** मनरूपी पवित्र शय्या पर **(अधिवसन्)** निवास करने वाले आप **(मयि उत्पन्नम्)** मुझमें उत्पन्न हुए **(क्लेशयूथम्)** दुख समूह को **(कथं एव)** किस तरह **(सहेथाः)** सहन करोगे अर्थात् नहीं करोगे।

नयकथारूपी अमृतवापी

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिमव्यूहशीतेनितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः॥६॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे स्वामिन्! **(मया)** मेरे द्वारा **(जन्माटव्यां)** संसाररूपी अटवी में **(दीर्घं)** बहुत काल तक **(भ्रमित्वा)** घूमकर अथवा घूमने के बाद **(तव)** आपकी **(इयम्)** यह **(नयकथा)** स्याद्वादनय कथारूपी **(स्फार-पीयूषवापी)** बड़ी भारी अमृत रस से भरी हुई बावड़ी **(कथं अपि)** किसी तरह बड़े कष्ट से **(प्राप्ता एव)** प्राप्त ही कर ली गई है। फिर भी **(हिमकर-**

हिमव्यूहशीते) चन्द्रमा और बर्फ के समूह से भी शीतल **(तस्याः)** उसके **(मध्ये)** बीच में **(नितान्तम्)** अत्यन्तरूप से **(निर्मग्नं)** डूबे हुए **(माम्)** मुझको **(दुःख-दावोपतापाः)** दुखरूपी दावानल के सन्ताप **(कथं न जहति)** क्यों नहीं छोड़ते हैं?

कल्याणकारक : प्रभु स्पर्श

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्नमामभ्युपैति॥७॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(यात्रया)** विहार के द्वारा **(त्रिलोकीम्)** तीनों लोकों को **(पुनतः)** पवित्र करने वाले **(ते)** आपके **(पादन्यासात् अपि)** चरणों के रखने मात्र से ही जब **(पद्म)** कमल **(हेमाभासः)** सुवर्ण-सी कान्ति वाला **(सुरभिः)** सुगन्धित **(च)** और **(श्रीनिवासः)** लक्ष्मी का गृह—शोभा का स्थान हो जाता है। तब **(हे भगवन्!)** हे स्वामिन्! **(त्वयि मे अशेषम् मनः सर्वाङ्गेण स्पृशति 'सति')** आप में मेरे समस्त मन को सर्व अंगों के द्वारा स्पर्श करने पर **(तत्)** वह **(किं श्रेयः?)** कौन-सा कल्याण है **(यत्)** जो **(माम्)** मुझे **(अहरहः)** प्रतिदिन **(स्वयं)** अपने आप **(न अभ्युपैति)** प्राप्त नहीं होता है।

वचनरूपी अमृत

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्-पुरुष-मसमानन्दधाम प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैक भूमिं-,
क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुठन्ति॥८॥

अन्वयार्थ—हे नाथ! **(कर्मारण्यात्)** कर्मरूपी वन से **(असमानन्द-धाम-प्रविष्टम्)** अनुपम सुख के स्थान मोक्ष में प्रविष्ट हुए तथा **(दुर्वारस्मर-मदहरं)** दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले आपको **(पश्यन्तं)** देखने वाले और **(भक्तिपात्र्या)** भक्तिरूपी कटोरों से **(त्वद्वचनं अमृतं पिबन्तं)** आपके वचनरूपी अमृत को पीने वाले अतएव **(त्वत्प्रसादैकभूमिम्)** आपकी प्रसन्नता के स्थानभूत **(पुरुषं)** पुरुष को **(क्रूराकाराः)** भयंकर आकार वाले **(रुजाकण्टकाः)** रोगरूपी काँटें **(कथमिव?)** किस तरह **(निर्लुठन्ति)** सता सकते हैं—पीड़ा दे सकते हैं?

अर्थात् नहीं दे सकते।

अपूर्व शक्ति प्रदाता

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः॥९॥

अन्वयार्थ—हे देव! **(पाषाणात्मा)** पत्थररूप **(मानस्तम्भः)** मानस्तम्भ **(तदितरसमः)** अन्य पत्थर के स्तम्भ समान ही है **(केवलम्)** सिर्फ **(रत्नमूर्तिः)** रत्नमयी है परन्तु **(परः रत्नवर्गः)** दूसरे रत्नों का समूह वैसा ही है—ऐसा होने पर **(यदि)** अगर **(तस्य)** उस मानस्तम्भ की **(तत्शक्तिहेतुः)** वैसी शक्ति में कारण-स्वरूप **(भवतः)** आपकी **(प्रत्यासत्तिः)** निकटता न होती तो **(सः)** वह मानस्तम्भ **(दृष्टिप्राप्तः)** देखने मात्र से ही **(नराणाम्)** मनुष्यों के **(मानरोगं)** मान—अहंकाररूपी रोग को **(कथं हरति?)** कैसे हर सकता है? अर्थात् नहीं हर सकता।

सर्वोपकारी शक्ति

ह्रद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधिरुजा धूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्-
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥१०॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे स्वामिन्! जब **(भवन्मूर्तिशैलोपवाही)** आपके शरीररूपी पर्वत के पास से बहने वाली **(ह्रद्यः)** मनोहर **(मरुत् अपि)** हवा भी **(प्राप्तः 'सन्')** प्राप्त होती हुई **(पुंसां)** पुरुषों के **(निरवधिरुजा-धूलिबन्धम्)** अपरिमित रोगरूपी धूली के संसर्ग को **(सद्यः)** शीघ्र ही **(धुनोति)** दूर कर देती है। **(तु)** तब **(ध्यानाहूतः)** ध्यान के द्वारा बुलाये गए **(त्वम्)** आप **(यस्य)** जिसके **(हृदयकमलं)** हृदयरूपी कमल में **(प्रविष्टः)** प्रविष्ट हुए हैं **(तस्य)** उस पुरुष को **(इहभुवने)** इस संसार में **(कः)** कौन-सा **(लोकोपकारः)** लोगों का उपकार **(अशक्यः)** अशक्य है—नहीं करने योग्य है। अर्थात् कोई भी नहीं।

तुम ही ज्ञाता

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।

त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम्॥११॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे भगवन्! **(मम)** मुझे **(भवभवे)** प्रत्येक पर्याय में **(यत् च यादृक् च)** जो और जैसा—जिस तरह का **(दुःखम्)** दुख—कष्ट **(जातम्)** प्राप्त हुआ है **(तत् त्वं जानासि)** उसको आप जानते ही हैं और **(यस्य)** जिसका **(स्मरणं अपि)** स्मरण भी **(मे)** मेरे लिए **(शस्त्रवत्)** शस्त्र के समान—तलवार आदि अस्त्र के घात समान **(निष्पिनष्टि)** दुख देता है और हे नाथ! **(त्वम्)** आप **(सर्वेशः)** सबके स्वामी **(च)** और **(सकृपः)** दया से युक्त हैं—दयालु हैं। **(इति)** इसलिए **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(त्वाम् उपेतः अस्मि)** आपके पास आया हूँ—आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ। अतः अब **(इह विषये)** इस विषय में **(यत् कर्तव्यं)** जो करना चाहिए उसमें **(देवः एव प्रमाणम्)** आप देव ही प्रमाण हैं। अर्थात् जैसा आप चाहें वैसा करें।

श्री प्रदाता : नमस्कार मन्त्र

प्रापद्वैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं,
जल्पन् जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥१२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! जबकि **(मरणसमये)** मृत्यु के समय में **(जीवकेन)** जीवन्धरकुमार के द्वारा **(उपदिष्टैः)** बताये गए **(तव नुतिपदैः)** आपके नमस्कार मंत्र के पदों से **(पापाचारी)** पापरूप प्रवृत्ति करने वाला **(सारमेयः अपि)** कुत्ता भी **(दैवं)** देव—स्वर्गलोक सम्बन्धी **(सौख्यम्)** सुख को **(प्रापत्)** प्राप्त हुआ था। तब **(अमलैः जाप्यैः मणिभिः)** निर्मल जपने योग्य माला की मणियों के द्वारा **(त्वन्नमस्कारचक्रम्)** आपके नमस्कारमंत्र के समूह को **(जल्पन्)** जपता हुआ **(यत्)** जो मनुष्य **(वासवश्रीप्रभुत्वम्)** इन्द्र की विभूति के अधिपतित्व को—स्वामीपने को **(लभते)** प्राप्त होता है। इस विषय में **(कः सन्देहः)** क्या सन्देह है ?

मोक्षद्वार उद्घाटक

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।

शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो-
मुक्तिद्वारं परिदृढ़-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे नाथ **(शुद्धे ज्ञाने)** शुद्ध ज्ञान और **(शुचिनि चरिते)** निर्मल चारित्र के **(सतिअपि)** रहते हुए भी **(चेत्)** यदि **(त्वयि)** आपके विषय में होने वाली **(इयम्)** यह **(अनीचा भक्तिः)** उत्कृष्ट भक्तिरूपी **(अनवधिसुखा-वञ्चिका)** असीम सुख प्राप्त कराने वाली **(कुञ्चिका)** कुञ्जी-चाबी **(नो चेत्)** नहीं होवे, तो **(हि)** सचमुच में **(मुक्तिकामस्य पुंसः)** मोक्ष के अभिलाषी पुरुष के **(परिदृढमहामोहमुद्राकवाटम्)** अत्यन्त मजबूत महामोहरूपी मुहरबन्द ताले से युक्त हैं किवाड़ जिसमें ऐसे **(मुक्तिद्वारम्)** मोक्ष के द्वार को **(कथम्?)** किस तरह **(शक्योद्घाटम्)** खोला जा सकता है? अर्थात् नहीं खोला जा सकता।

आपकी मोक्षमार्ग प्रदर्शक : भारती

प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयै-रन्धकारैः समन्तात्-
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्-भारतीरत्न-दीपः॥१४॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे स्वामिन्! **(खलु)** निश्चय से **(अयम्)** यह **(मुक्तेः पन्थाः)** मोक्ष का मार्ग **(अघमयैः अन्धकारैः)** पापरूपी अन्धकार के द्वारा **(समन्तात्)** सब ओर से **(प्रच्छन्नः)** ढका हुआ है और **(अगाधैः)** गहरे **(क्लेशगर्तैः)** दुखरूपी गड्ढों से **(स्थपुटितपदः)** ऊँचे-नीचे स्थान वाला **(यदि)** अगर **(तत्त्वावभासी)** सप्ततत्त्वों को प्रकाशित करने वाला **(भवद्भारती-रत्नदीपः)** आपकी दिव्यध्वनिरूपी रत्नों का दीपक **(अग्रे-अग्रे)** आगे-आगे **(न भवति)** न होता **(तत्)** तो **(तेन)** उस मार्ग से **(कः)** कौन मनुष्य **(सुखतः)** सुखपूर्वक **(व्रजति)** गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

आत्म सम्पदा : पवित्र स्तवन से

आत्मज्योति - र्निधि - रनवधि - र्द्रष्टुरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्ध प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः॥१५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(आत्मज्योतिर्निधिः)** यह आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति **(कर्मक्षोणीपटलपिहितः)** ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पटलों से आच्छादित है—ढकी हुई है और **(यः द्रष्टुः आनन्दहेतुः)** जो ज्ञानी पुरुष को आनन्द का कारण है इसलिए **(परेषां अनवाप्यः)** मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अप्राप्त है, उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती, किन्तु **(भवद्भक्तिभाजः)** आपकी भक्ति करने वाले भव्य पुरुष **(तं)** उस आत्म ज्ञानरूप सम्पत्ति को **(बन्ध-प्रकृतिपरुषोद्दामधात्री खनित्रैः)** प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्धरूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप **(स्तोत्रैः)** आपके स्तवनों के द्वारा **(अनतिचिरतः)** शीघ्र ही **(हस्ते कुर्वन्ति)** अपने हाथ में कर लेते हैं—उसे प्राप्त कर लेते हैं।

मोक्ष समुद्र तक लम्बी

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः,
या देव त्वत्पद-कमलयोः सङ्गता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद् भवति किमियं देव! सन्देहभूमिः॥१६॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे नाथ! **(नयहिमगिरेः)** स्याद्वाद नयरूप हिमालय पर्वत से **(प्रत्युत्पन्ना)** उत्पन्न हुई **(च)** और **(अमृताब्धेः)** मोक्षरूपी समुद्र तक **(आयता)** लम्बी **(या)** जो यह **(त्वत्पदकमलयोः)** आपके चरण कमल सम्बन्धी **(भक्तिगङ्गा)** भक्तिरूपी गंगानदी **(सङ्गता)** प्राप्त हुई है **(तस्यां)** उसमें **(रुचिवशात्)** प्रेम के वश **(आप्लुतम्)** डूबा हुआ **(मम)** मेरा **(चेतः)** मन **(यत्)** जो **(क्षालितांहः कल्माषं)** जिसकी पापरूपी कालिमा धुल गई है—ऐसा पापरूपी रज से रहित **(भवति)** हो जाता है। **(देव!)** हे नाथ! **(इयम्)** यह **(किम्)** क्या कोई **(सन्देहभूमिः)** सन्देह का स्थान है? अर्थात् नहीं है।

अभिमत फल प्रदाता

प्रादुर्भूत-स्थिर - पद -सुखं! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपाम्
दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति॥१७॥

अन्वयार्थ—(प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख!) जिनके स्थायी सुख प्रकट हुआ है ऐसे (हे वीतरागदेव) **(त्वाम अनुध्यायतः मे)** आपका बार-बार ध्यान करने वाले

मेरे हृदय में **(त्वयि)** आपमें अथवा आपके विषय में **(अहं सः एव)** जो आप हैं वही मैं हूँ **(इति)** ऐसी जो **(निर्विकल्पा)** विकल्प रहित **(मतिः)** बुद्धि **(उत्पद्यते)** उत्पन्न होती है यद्यपि **(इयम् मिथ्या एव)** यह बुद्धि असत्य ही है **(तदपि)** तो भी **(अभ्रेषरूपां तृप्तिं)** निश्चल अविनाशी सन्तोष सुख को **(तनुते)** विस्तृत करती है। सच है **(त्वत्प्रसादात्)** आपके प्रसाद से **(दोषात्मानः अपि)** सदोषी पुरुष भी **(अभिमतफलाः)** इच्छित फल को प्राप्त **(भवन्ति)** होते हैं।

सप्तभंग रूप लहर

मिथ्यावादं मल - मपनुदन् - सप्तभङ्गीतरङ्गैः-
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव ! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवया तृप्नुवन्ति॥१८॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे स्वामिन्! **(ते)** आपका **(यः)** जो **(वागम्भोधिः)** दिव्यध्वनिरूपी समुद्र **(सप्तभङ्गीतरङ्गैः)** सप्तभंग रूप लहरों के द्वारा [स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य] **(मिथ्यावादं मलं)** सर्वथा एकान्त कदाग्रह मिथ्यात्वरूप मल को **(अपनुदन्)** हटाता हुआ **(अखिलं भुवनं)** समस्त संसार को **(पर्येति)** घेरे हुए हैं—समस्त संसार में व्याप्त है। **(विबुधाः)** देव अथवा बुद्धिमान **(चेतसा एव अचलेन)** मनरूपी मन्दारगिरि के द्वारा **(तस्य)** उस वचनरूप समुद्र का **(आवृत्तिम्)** मन्थन क्रिया अथवा बार-बार अभ्यास को **(व्यातन्वन्तः)** विस्तृत करते हुए **(सपदि)** शीघ्र ही **(अमृतासेवया)** अमृत के सेवन से—मोक्ष प्राप्ति से **(सुचिरं)** चिरकाल तक **(तृप्नुवन्ति)** संतुष्ट हो जाते हैं।

सर्वांग सुन्दर : प्रभु हमारे

आहार्य्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किञ्च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥१९॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यः)** जो **(स्वभावात्)** स्वभाव से **(अहृद्यः स्यात्)** अमनोज्ञ-कुरूप होता है **(स एव)** वह ही **(आहार्य्येभ्यः)** वस्त्राभूषणादि के

द्वारा शरीर को अलंकृत करने की **(स्पृहयति)** इच्छा करता है। **(च)** और **(यः)** जो **(वैरिणा)** शत्रु के द्वारा **(शक्यः)** जीतने योग्य होता है, वही **(शस्त्रग्राही भवति)** शस्त्रों को ग्रहण करने वाला होता है–उसे ही त्रिशूल–गदा–भाला–बरछी–तलवार आदि शस्त्रों की आवश्यकता होती है, किन्तु हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सर्वाङ्गेषु सुभगः असिः)** सर्वांग रूप से सुन्दर हो, और **(त्वं परेषां न शक्यः)** न आप शत्रुओं के द्वारा जीते जा सकने योग्य हो, **(तत्)** इस कारण **(तव)** आपको **(भूषावसनकुसुमैः)** आभूषण, वस्त्र तथा फूलों से **(च)** और **(उदस्त्रैः अस्त्रैः किं)** ऊपर उठाये हुए अस्त्र–शस्त्रों से क्या प्रयोजन है?

पुण्य प्रदायी : जिनवर सेवा

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यता–मातनोति।
त्वं निस्तारी जनन–जलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(इन्द्रः)** इन्द्र **(तव)** आपकी **(सेवाम्)** सेवा को **(सुकुरुताम्)** अच्छी तरह से करे, **(तया)** उसके द्वारा **(ते)** आपकी **(किं श्लाघनं)** क्या प्रशंसा है? **(इयम्)** यह सेवा तो **(तस्य एव)** उस इन्द्र की ही **(भवलयकरी)** संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली **(श्लाघ्यताम्)** प्रशंसा को **(आतनोति)** विस्तृत करती है **(त्वं)** आप **(जननजलधेः)** संसार–समुद्र से **(निस्तारी)** तारने वाले हैं तथा **(त्वं)** आप **(सिद्धिकान्ता पतिः)** मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हैं और **(त्वं)** आप **(लोकानां)** तीनों लोकों के **(प्रभुः)** निग्रह–अनुग्रह में समर्थ हैं, **(इत्थम्)** इस प्रकार **(इति)** यह **(तव)** आपका **(स्तोत्रम्)** स्तोत्र–स्तवन **(श्लाघ्यते)** प्रशंसनीय है।

कल्पवृक्ष सम फल प्रदाता

वृत्तिर्वाचामपर - सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततः त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्–भक्ति–पीयूष–पुष्टास्–
ते भव्यानामभिमत–फलाः पारिजाता भवन्ति॥२१॥

अन्वयार्थ—(भगवन्!) हे स्वामिन्! **(वाचां वृत्तिः)** आपके वचनों की प्रवृत्ति **(अपरसदृशी न)** दूसरे के समान नहीं है **(न त्वं अन्येना तुल्यः)** न आप भी

अन्य के सदृश हैं **(ततः)** इसलिए **(नः)** हमारे **(अमी)** ये **(स्तुत्युद्गाराः)** स्तुति-वाक्य **(त्वयि)** आपके विषय में **(कथं इव)** किस तरह **(क्रमन्ते)** संगत हो सकते हैं–पहुँच सकते हैं **(तदपि)** तो भी **(भक्तिपीयूषपुष्टाः)** भक्तिरूपी अमृत से परिपुष्ट हुए **(ते)** वे स्तुति के वाक्य **(भव्यानाम्)** भव्यजीवों के लिए **(अभिमतफलाः)** इच्छित फल के देने वाले **(पारिजाताः)** कल्पवृक्ष **(भवन्ति)** होते हैं।

अतुलनीय प्रभावक

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-वैर-हारी,
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥२२॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे नाथ! **(तव)** आपका **(क्वापि)** किसी पर भी **(कोपावेशः)** क्रोधभाव **(न अस्ति)** नहीं है और **(न तव)** न आपकी **(क्वापि)** किसी पर **(प्रसादो)** प्रसन्नता है **(हि)** निश्चय से **(अनपेक्षम्)** स्वार्थरहित **(तव)** आपका **(चेतः)** मन **(परम उपेक्षया एव)** अत्यन्त उदासीनता से ही **(व्याप्तम्)** व्याप्त है **(तदपि)** तो भी **(भुवनं)** संसार **(आज्ञावश्यं)** आपकी आज्ञा के आधीन है और आपकी **(सन्निधिः)** समीपता/निकटता **(वैरहारी)** परस्पर के वैर-विरोध को हरने वाली है और इस तरह **(भुवनतिलक!)** तीनों लोकों में श्रेष्ठ हे देव! **(एवम्भूतं)** ऐसा **(प्राभवं)** प्रभाव **(त्वत्)** आपसे **(परेषु)** भिन्न–दूसरे हरि-हरादिक देवों में **(क्व भवेत्?)** कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

क्षेम पद प्रदाता

देव! स्तोतुं त्रिदिवगणिका-मण्डलीगीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥२३॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे देव! **(त्रिदिवगणिका-मण्डलीगीत-कीर्तिं)** स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गाई गई है, ऐसे तथा **(सकल-विषयज्ञानमूर्तिः)** समस्त पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्ति स्वरूप **(त्वां)** आपकी **(स्तोतुं)** स्तुत करने के लिए **(यः जनः)** जो मनुष्य **(तोतूर्तिः)**

शीघ्रता करता है वह **(क्षेमं पदं अटतः)** कल्याणकारी स्थान अर्थात् मोक्ष को जाते हुए **(तस्य)** उस मनुष्य का **(पन्थाः)** मार्ग **(जातु)** कभी भी **(न जोहूर्ति)** कुटिल नहीं होता और **(न एषः मर्त्यः)** न यह मनुष्य **(तत्त्वग्रन्थ-स्मरणविषये)** तत्त्व ग्रन्थों के स्मरण के विषय में **(मोमूर्ति)** मूर्च्छित होता है।

पञ्चकल्याणक पद प्रदायी

चित्ते कुर्वन् निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं,
देव! त्वां यः समय - नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधापञ्चितानाम्॥२४॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे जिनेन्द्र! **(यः)** जो मनुष्य **(निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्यरूपम्)** अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्य स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(चित्ते कुर्वन्)** मन/हृदय में धारण करता हुआ **(समय-नियमात्)** समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक **(आदरेण)** विनयपूर्वक **(स्तवीति)** आपकी स्तुति करता है। **(खलु)** निश्चय से **(सः)** वह **(सुकृति)** पुण्यवान् **(तावता)** उस स्तवन मात्र से **(श्रेयोमार्गं)** मोक्षमार्ग को **(पूरयित्वा)** पूर्ण करके **(पञ्चधा पञ्चितानाम्)** पाँच प्रकार से विस्तृत **(कल्याणानाम्)** कल्याणकों का—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाणरूप पञ्चकल्याणकों का **(विषयः भवति)** पात्र होता है।

गुणानुराग : आत्मोन्नति साधक

भक्ति-प्रह्वमहेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः-
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते,
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः॥२५॥

अन्वयार्थ—(भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद!) भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं, ऐसे हे जिनेन्द्र! **(सूक्ष्मज्ञानदृशः)** सूक्ष्मज्ञान ही जिनके नेत्र हैं, ऐसे **(संयमभृतः अपि)** तपस्वी भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानादि के धारक संयमी योगीश्वर भी **(त्वत्कीर्तिने)** आपके गुणगान में जब **(क्षमाः न 'सन्ति')** समर्थ नहीं हैं, तब **(हन्त)** खेद है कि **(वयं मन्दाः के)** हम जैसे मन्दबुद्धि पुरुष आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? **(तु)** किन्तु

(स्तवनच्छलेन) स्तवन के छल से **(अस्माभिः)** हमारे द्वारा **(त्वयि)** आपमें **(परः)** उत्कृष्ट **(आदरः)** सम्मान **(तन्यते)** विस्तृत किया जाता है। **(खलु)** निश्चय से **(सः)** वह सम्मान ही **(स्वात्माधीनसुखैषिणां)** निजात्मा के आश्रित सुख के चाहने वाले **(नः)** हम लोगों के लिए **(कल्याणकल्पद्रुमः)** कल्याण करने वाला कल्पवृक्ष होवे।

[१]**[वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किकसिंहः।**
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य-सहायः॥]

अन्वयार्थ—(शाब्दिकलोकः) वैयाकरण-व्याकरण शास्त्र के वेत्ता **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं **(तार्किकसिंहः)** श्रेष्ठ नैयायिक **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं, और **(ते काव्यकृतः)** प्रसिद्ध कवि लोग **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं **(भव्यसहायः)** सज्जनगण भी **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं।

❑ ❑ ❑

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी।
जीव कर्म के जुदा करन को, ये ही पैनी छैनी है जिनवाणी।
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी॥
जो जिनवाणी नित अभ्यासे, वो ही सच्चा जैनी है जिनवाणी।
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी॥
जो जिनवाणी उर न धरत है सैनी होके असैनी है जिनवाणी।
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी॥
पढ़ो सुनो ध्यावो जिनवाणी, यदि सुख शांति लेनी है जिनवाणी।
जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी॥

---

१. इस श्लोक में आचार्य वादिराज की आत्म-प्रशंसा है। विदित होता है कि यह श्लोक आचार्य की विद्वत्ता पर मुग्ध हो, उनके भक्त ने रचकर स्तोत्र के नीचे लिख दिया है और वह बाद में मूल रूप में होकर स्तोत्र में शामिल कर लिया गया है।

विषापहारस्तोत्रम्

ईसा की आठवीं शताब्दी में महाकवि धनञ्जय द्वारा जिनेन्द्रभक्ति में रची गई श्रेष्ठ रचना है। इस स्तोत्र में ४० काव्य हैं। इस स्तोत्र के सम्बन्ध में कहा जाता है कि कवि के पुत्र को सर्प ने डँस लिया था, अतः सर्पविष को दूर करने के लिए ही इस स्तोत्र की रचना की गई थी।

(उपजाति छन्द)

आप ही शरण

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः।
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥१॥

अन्वयार्थ–(स्वात्मस्थितः अपि सर्वगतः) आत्मस्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक, **(समस्तव्यापारवेदी अपि)** सब व्यापारों के जानकार होकर भी **(विनिवृत्तसङ्गः)** परिग्रह से रहित, **(प्रवृद्धकालः अपि अजरः)** दीर्घ आयु वाले होकर भी बुढ़ापे से रहित हैं ऐसे **(वरेण्यः)** श्रेष्ठ **(पुराणः पुरुषः)** प्राचीन पुरुष–भगवान् वृषभनाथ **[नः]** हम सबको **(अपायात्)** विनाश से **(पायात्)** बचावें–रक्षित करें।

अचिन्त्य योगी

परैरचिन्त्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः॥२॥

अन्वयार्थ–(परैः) दूसरों के द्वारा **(अचिन्त्यम्)** चिन्तन करने के अयोग्य **(युगभारम्)** कर्मयुग के भार को **(एकः)** अकेले ही **(वहन्)** धारण किये हुए तथा **(योगिभिः अपि)** मुनियों के द्वारा भी **(स्तोतुम् अशक्यः)** जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है ऐसे **(असौ वृषभः)** वे भगवान् वृषभनाथ! **(अद्य)** आज **(मे स्तुत्यः)** मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ। सो ठीक है **(भानोः)** सूर्य का **(अप्रवेशे)** प्रवेश नहीं होने पर **(किम्)** क्या **(प्रदीपः)** दीपक **(न विशति)** प्रवेश नहीं करता? अर्थात् करता है।

मेरे स्तुत्य

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि॥३॥

अन्वयार्थ—(शक्रः) इन्द्र ने **(शकनाभिमानं)** स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान **(तत्याज)** छोड़ दिया था, किन्तु **(अहम्)** मैं **(स्तवनानुबन्धं)** स्तुति के उद्योग को **(न त्यजामि)** नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं **(वातायनेन इव)** झरोखे की तरह **(स्वल्पेन बोधेन)** थोड़े से ज्ञान के द्वारा **(ततः)** उस झरोखे और ज्ञान से **(अधिकार्थम्)** अधिक अर्थ को **(निरूपयामि)** निरूपित कर रहा हूँ।

वचन अगोचर

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥४॥

अन्वयार्थ—(त्वम्) आप **(विश्वदृश्वा 'अपि')** सबको देखने वाले होकर भी **(सकलैः)** सबके द्वारा **(अदृश्यः)** नहीं देखे जाते, आप **(अशेषम् विद्वान्)** सबको जानते हैं पर **(निखिलैः अवेद्यः)** सबके द्वारा नहीं जाने जाते। आप **(कियान् कीदृशः)** कितने और कैसे हैं **(इति)** यह भी **(वक्तुम् अशक्यः)** कहने को असमर्थ हैं **(ततः)** उससे **(तव स्तुतिः)** आपकी स्तुति **(अशक्ति-कथा)** मेरी असामर्थ्य की कहानी ही **(अस्तु)** हो।

निःस्वार्थ बालवैद्य

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै- रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः॥५॥

अन्वयार्थ—(त्वम्) आपने **(बालम् इव)** बालक की तरह **(आत्मदोषैः)** अपने द्वारा किये गये अपराधों से **(व्यापीडितम्)** अत्यन्त पीड़ित **(लोकम्)** संसारी मनुष्यों को **(उल्लाघताम्)** नीरोगता **(अवापिपः)** प्राप्त कराई है। निश्चय से आप **(हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः)** भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए **(सर्वस्य जन्तोः)** सब प्राणियों के **(बालवैद्यः)** बालवैद्य हैं।

शीघ्र फल प्रदाता

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युत! दर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय॥६॥

अन्वयार्थ—(अच्युत!) अपने उदारता आदि गुणों से कभी च्युत न होने वाले हे

अच्युत! **(विवस्वान्)** सूर्य **(न दाता 'न' हर्ता)** न देता है न अपहरण करता है सिर्फ **(अद्य श्वः)** आजकल **(इति)** इस तरह **(दर्शिताशः)** आशा [दूसरे पक्ष में दिशा को] दिखाता हुआ **(अशक्तः 'सन्')** असमर्थ होता हुआ **(एवम्)** ऐसे ही–बिना लिए दिये ही **(सव्याजम्)** कपट सहित **(दिवसम्)** दिन को **(गमयति)** बिता देता है, किन्तु आप **(नताय)** नम्र मनुष्य के लिए **(क्षणेन)** क्षणभर में **(अभिमतम्)** इच्छित वस्तु **(दत्से)** दे देते हैं।

दर्पणवत् वीतरागता

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं।
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

अन्वयार्थ–(त्वयि सुमुखः) आपके अनुकूल चलने वाला पुरुष **(भक्त्या)** भक्ति से **(सुखानि)** सुखों को **(उपैति)** प्राप्त होता है **(च)** और **(विमुखः)** प्रतिकूल चलने वाला पुरुष **(स्वभावात्)** स्वभाव से ही **(दुःखम् 'उपैति')** दुख पाता है, किन्तु **(त्वम्)** आप **(तयोः)** उन दोनों के आगे **(आदर्श इव)** दर्पण की तरह **(सदा)** हमेशा **(अवदातद्युतिः)** उज्ज्वल कान्तियुक्त तथा **(एकरूपः)** एक सदृश **(अवभासि)** शोभायमान रहते हैं।

सर्वव्यापी

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव व्यापत्वदीया भुवनान्तराणि॥८॥

अन्वयार्थ–(अब्धेः) समुद्र की **(अगाधता)** गहराई [**तत्र अस्ति**] वहाँ है **(यतः सः पयोधिः)** जहाँ वह समुद्र है। **(मेरोः)** सुमेरुपर्वत की **(तुङ्गा प्रकृतिः)** उन्नत प्रकृति–ऊँचाई **(तत्र)** वहाँ है **(यत्र सः)** जहाँ वह सुमेरु पर्वत है **(च)** और **(द्यावापृथिव्योः)** आकाश-पृथ्वी की **(पृथुता)** विशालता भी **(तथैव)** उसी प्रकार है अर्थात् जहाँ आकाश और पृथ्वी है, वहीं उनकी विशालता है। परन्तु **(त्वदीया अगाधता)** आपकी गहराई **(तुङ्गा प्रकृतिः)** उन्नत प्रकृति **(च पृथुता)** और हृदय की विशालता ने **(भुवनान्तराणि)** तीनों लोकों के मध्यभाग को **(व्याप)** व्याप्त कर लिया है।

यथार्थ वस्तु प्रतिपादक

तवानवस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वं ॥९॥

अन्वयार्थ–(अनवस्था) भ्रमणशीलता–परिवर्तनशीलता **(तव)** आपका **(परमार्थतत्त्वम्)** वास्तविक सिद्धान्त है **(च)** और **(त्वया)** आपके द्वारा **(पुनरागमः न गीतः)** मोक्ष से वापस आने का उपदेश दिया नहीं गया है तथा **(त्वम्)** आप **(दृष्टम्)** प्रत्यक्ष इस लोक सम्बन्धी सुख **(विहाय)** छोड़कर **(अदृष्टम्)** परलोक सम्बन्धी सुख को **(ऐषीः)** चाहते हैं; इस तरह **(त्वम्)** आप **(विरुद्धवृत्तः अपि)** विपरीत प्रवृत्ति युक्त होने पर भी **(समञ्जसः)** उचितता से युक्त हैं।

काम विजयी

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन् उद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः॥१०॥

अन्वयार्थ–(स्मरः) काम **(भवता एव)** आपके द्वारा ही **(सुदग्धः)** अच्छी तरह भस्म किया गया है **(यदि नाम शम्भुः)** यदि आप कहें कि महादेव ने भी तो भस्म किया था तो वह कहना ठीक नहीं क्योंकि बाद में वह **(तस्मिन्)** उस काम के विषय में **(उद्धूलितात्मा)** कलंकित हो गया था और **(विष्णु अपि)** विष्णु ने भी **(वृन्दोपहतः 'सन्')** वृन्दा–लक्ष्मी नामक स्त्री से प्रेरित हो अथवा **वृन्द**–स्त्री पुत्रादि समस्त परिग्रह के समूह से पीड़ित हो। **(अशेत)** शयन किया था। **(येन)** जिस कारण से **(भवान् अजागः)** आप जागृत रहे अर्थात् कामनिद्रा में अचेत नहीं हुए। इसलिए **(किं गृह्यते)** कामदेव के द्वारा आपकी कौन-सी वस्तु ग्रहण की जाती है अर्थात् क्यों भी नहीं?

स्वतः गुणवान्

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव! स्तोकापवादेन जलाशयस्य॥११॥

अन्वयार्थ–(वा) अथवा **(स)** वह ब्रह्मादि देवों का समूह **(नीरजाः)** पाप रहित **(स्यात्)** हो और **(अपरः)** दूसरा देव **(अघवान् 'स्यात्')** पाप सहित हो, इस तरह **(तद्दोषकीर्त्या एव)** उनके दोषों के वर्णन करने मात्र से ही **(ते)** आपकी **(गुणित्वम् न)** गुण सहितता नहीं है। **(देव!)** हे देव! **(अम्बुराशेः)** समुद्र की **(महिमा)** विशालता **(स्वतः 'स्यात्')** स्वभाव से ही होती है **(जलाशयस्य स्तोकापवादने न)** तालाब के 'छोटा है' ऐसी निन्दा करने से नहीं होती।

कार्य-कारणज्ञ

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक भूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौनाविकयोरिवाख्यः॥१२॥

अन्वयार्थ—(जन्तुः) जीव **(कर्मस्थितिम्)** कर्मों की स्थिति को **(अनेक भूमिम्)** अनेक जगह **(नयति)** ले जाता है **(च)** और **(सा)** वह कर्मों की स्थिति **(अमुम्)** उस जीव को **(अनेकभूमिम्)** अनेक जगह ले जाती है। इस तरह **(जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्रदेव! **(त्वम्)** आपने **(भवाब्धौ)** संसाररूप समुद्र में **(नौनाविकयो इव)** नाव और नाविक की तरह **(तयोः)** उन दोनों में **(हि)** निश्चय से **(परस्परस्य)** एक-दूसरे का **(नेतृभावम्)** नेतृत्व **(आख्यः)** कहा है।

अज्ञ चेष्टा

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान् धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः॥१३॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार **(बालाः)** बालक **(तैलाय)** तेल के लिए **(सिकता-समूहम्)** बालू के समूह को **(निपीडयन्ति)** पेलते हैं **(स्फुटम्)** ठीक उसी प्रकार **(अत्वदीयाः)** आपके प्रतिकूल चलने वाले पुरुष **(सुखाय)** सुख के लिए **(दुःखानि)** दुखों को **(गुणाय)** गुण के लिए **(दोषान्)** दोषों को और **(धर्माय)** धर्म के लिए **(पापानि)** पापों को **(समाचरन्ति)** आचरित करते हैं।

विष हरता

विषापहारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥१४॥

अन्वयार्थ—(अहो) आश्चर्य है कि लोग **(विषापहारम्)** विष को दूर करने वाले **(मणिम्)** मणि को **(औषधानि)** औषधियों को **(मन्त्रम्)** मन्त्र को **(च)** और **(रसायनम्)** रसायन को **(समुद्दिश्य)** उद्देश्य कर **(भ्राम्यन्ति)** यहाँ वहाँ घूमते हैं, किन्तु **(त्वम्)** आप ही मणि, औषधि, मन्त्र और रसायन हैं **(इति)** ऐसा **(न स्मरन्ति)** ख्याल नहीं करते, क्योंकि **(तानि)** वे मणि आदि **(तव एव)** आपके ही **(पर्यायनामानि)** पर्यायवाची नाम हैं।

समदृष्टि वीतरागी

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः॥१५॥

अन्वयार्थ—(देवः) हे देव! **(त्वम्)** आप **(चित्ते)** अपने हृदय में **(किञ्चित्)** कुछ भी **(न कृतवान् असि)** नहीं करते हैं—रखते हैं, किन्तु **(येन)** जिसके द्वारा आप **(चेतसि)** हृदय में **(कृतः)** धारण किए हैं **(तेन)** उसके द्वारा **(सर्वम्)** समस्त **(जगत्)** संसार **(हस्ते कृतम्)** हाथ में कर लिया गया है अर्थात् उसने सब कुछ पा लिया है यह **(विचित्रम्)** आश्चर्य की बात है और आप **(चित्तबाह्यः अपि)** मन से चिन्तन करने के अयोग्य होते हुए भी **(सुखेन जीवति)** अनन्त सुख से जीवित हैं, यह आश्चर्य है।

त्रिकालज्ञ

त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी स्वामीति संख्यानियतेरमीषाम्।
बोधाधिपत्यं प्रतिनाभविष्यत् तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम्॥१६॥

अन्वयार्थ—(त्वम्) आप **(त्रिकालतत्त्वम्)** तीनों कालों के पदार्थों को **(अवैः)** जानते हैं तथा **(त्रिलोकी स्वामी)** तीनों लोकों के स्वामी हैं, **(इति संख्या)** इस प्रकार की संख्या **(अमीषां नियतेः)** उन पदार्थों के निश्चित संख्या वाले होने से **(युज्यते)** ठीक हो सकती है, परन्तु **(बोधाधिपत्यं प्रति न)** ज्ञान के साम्राज्य के प्रति पूर्वोक्त प्रकार की संख्या ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि **(इदम्)** यह ज्ञान **(चेत्)** यदि **(ते अन्ये अपि अभविष्यन्)** वे तथा और भी पदार्थ होते **(तर्हि)** तो **(अमून् अपि)** उन्हें भी **(व्याप्स्यत्)** व्याप्त कर लेता—जान लेता।

शुभकारी सेवा

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतश्छत्रमिवादरेण ॥१७॥

अन्वयार्थ—(नाकस्य पत्युः) स्वर्ग के पति इन्द्र की **(रम्यम्)** मनोहर **(परिकर्म)** सेवा **(अगम्यरूपस्य)** अज्ञेयस्वरूप वाले **(तव)** आपका **(उपकारि न)** उपकार करने वाली नहीं है, किन्तु जिसका स्वरूप ज्ञात है ऐसे **(भानोः)** सूर्य के लिए **(आदरेण)** आदरपूर्वक **(छत्रम् उद्बिभ्रतः इव)** छत्र को धारण करने वाले की तरह **(तस्य एव)** उस इन्द्र के ही **(स्वसुखस्य)** आत्मसुख का **(हेतुः)** कारण है।

अगम्य स्वरूप

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते॥१८॥

अन्वयार्थ—(उपेक्षकः त्वम् क्व) रागद्वेष रहित आप कहाँ? और **(सुखोपदेशः क्व)** सुख का उपदेश देना कहाँ? **(चेत्)** यदि **(सः)** वह सुख का उपदेश आप देते हैं **(तर्हि)** तो **(इच्छाप्रतिकूलवादः क्व)** इच्छा के विरुद्ध बोलना ही कहाँ है? अर्थात् आपके इच्छा नहीं है ऐसा कथन क्यों किया जाता है? **(असौ क्व)** इच्छा के प्रतिकूल बोलना कहाँ? **(वा)** और **(सर्वजगत्प्रियत्वम् क्व)** सब जीवों को प्रिय होना कहाँ? इस तरह जिस कारण से आपकी प्रत्येक बात में विरोध है **(तत्)** उस कारण से मैं **(ते यथातथ्यम् नो अवेविचं)** आपकी वास्तविकता—असली रूप का विवेचन नहीं कर सकता।

उन्नत गुण वाले

तुङ्गात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः॥१९॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(तुङ्गात् अकिञ्चनात् च)** उन्नत—उदार और अकिंचन—परिग्रह रहित आपसे **(यत्फलं)** जो फल **(प्राप्यं 'अस्ति')** प्राप्त हो सकता है **(तत्)** वह **(समृद्धात् धनेश्वरादेः न)** वह सम्पत्तिशाली धनाढ्य कुबेर आदि से प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक ही तो है **(इव)** जैसे **(निरम्भसः अपि उच्चतमात् अद्रेः)** पानी से शून्य होने पर भी अत्यन्त ऊँचे पहाड़ से नदी निकलती है किन्तु **(पयोधेः)** समुद्र से **(एका अपि धुनी)** एक भी नदी **(न निर्याति)** नहीं निकलती है।

पुण्यातिशय का प्रभाव

त्रैलोक्यसेवानियमाय दण्डं दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु॥२०॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस कारण से **(इन्द्रः)** इन्द्र ने **(विनयेन)** विनयपूर्वक **(त्रैलोक्यसेवानियमाय)** तीन लोक के जीवों की सेवा के नियम के लिए अर्थात् मैं त्रिलोक के जीवों की सेवा करूँगा और उन्हें धर्म के मार्ग पर लगाऊँगा, इस उद्देश्य से **(दण्डम्)** दण्ड **(दध्रे)** धारण किया था। **(तत्)** उस कारण से **(प्रातिहार्यम्)** प्रतीहारपना **(तस्य स्यात्)** उस इन्द्र के ही हो **(भवतः कुतस्त्यम्)** आपके कहाँ से आया? **(यदि वा)** अथवा **(तत्कर्म-योगात्)** तीर्थंकर नामकर्म का संयोग होने से या इन्द्र के उस कार्य में प्रेरक होने से **(तव अस्तु)** आपके भी प्रातिहार्य-प्रतिहारपना हो।

सम द्रष्टा

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम्॥२१॥

अन्वयार्थ—(निःस्वः) निर्धन पुरुष **(श्रिया परम्)** लक्ष्मी से श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को **(साधु)** अच्छी तरह—आदरभाव से **(पश्यति)** देखता है, किन्तु **(त्वदन्यः)** आपसे भिन्न **(कश्चित्)** कोई **(श्रीमान्)** सम्पत्तिशाली पुरुष **(कृपणम्)** निर्धन को **(साधु न पश्यति)** अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है **(अन्धकारस्थायी)** अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य **(प्रकाशस्थितम्)** उजाले में ठहरे हुए पुरुष को **(यथा)** जिस प्रकार **(ईक्षते)** देख लेता है **(तथा)** उस प्रकार **(असौ)** यह उजाले में स्थित पुरुष **(तमःस्थम्)** अँधेरे में स्थित पुरुष को **(न ईक्षते)** नहीं देख पाता।

इन्द्रिय अगोचर

स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥२२॥

अन्वयार्थ—(प्रत्यक्षं) यह प्रकट है कि **[यः]** जो मनुष्य **(स्ववृद्धि-निःश्वास-निमेषभाजि)** अपनी वृद्धि, श्वासोच्छ्वास और आँखों की टिमकार को प्राप्त **(आत्मानुभवे अपि)** अपने आपके अनुभव करने में **(मूढः)** मूर्ख है **(स लोकः)** वह मनुष्य **(अखिलज्ञेयविवर्तिबोधस्वरूपं)** सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसे **(अध्यक्षं)** अध्यात्मस्वरूप आपको **(किं च अवैति)** कैसे जान सकता है ?

स्वरूप अनभिज्ञ अज्ञानी

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव! त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति॥२३॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे नाथ! **(ये)** जो मनुष्य, आप **(तस्य आत्मजः)** उसके पुत्र हो और **(तस्य पिता)** उसके पिता हो **(इति)** इस प्रकार **(कुलम् प्रकाश्य)** कुल का वर्णन कर **(त्वाम् अवगायन्ति)** आपका अपमान करते हैं **(ते)** वे **(अद्य अपि)** अब भी **(पाणौ कृतम्)** हाथ में आये हुए **(हेम)** सुवर्ण को **(आश्मनम्)** पत्थर से पैदा हुआ है, **(इति)** इस हेतु से **(पुनः)** फिर **(अवश्यं त्यजन्ति)** अवश्य ही छोड़ देते हैं ?

मोहविजयी भगवन्

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुम् मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः॥२४॥

अन्वयार्थ—मोह के द्वारा **(त्रिलोक्याम्)** तीनों लोकों में **(पटहः)** विजय का नगाड़ा **(दत्तः)** दिया गया/बजाया गया उससे जो **(सुरासुराः)** सुर और असुर **(अभिभूताः)** तिरस्कृत हुए **(सः)** वह **(तस्य)** उस मोह का **(महान् लाभः)** बड़ा लाभ हुआ किन्तु **(त्वयि)** आपके विषय में **(विरोद्धुम्)** विरोध करने के लिए **(मोहस्य)** मोह का **(कः)** कौन-सा **(मोहः)** भ्रम हो सकता था अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि **(बलवद्विरोधः)** बलवान् के साथ विरोध करना **(मूलस्य नाशः)** मानो मूल का नाश करना है।

अभिमान रहित भगवन्

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचित् भुजमालुलोकः॥२५॥

अन्वयार्थ—**(त्वया)** आपके द्वारा **(एकः)** एक **(विमुक्तेः)** मोक्ष का ही **(मार्गः)** मार्ग **(ददृशे)** देखा गया है और **(परेण)** दूसरों के द्वारा **(चतुर्गतीनाम्)** चारों गतियों का **(गहनम्)** सघन वन **(ददृशे)** देखा गया है, मानो इसीलिए **(त्वम्)** आपने **(मया सर्वं दृष्टम्)** मैंने सब कुछ देखा है **(इति स्मयेन)** इस अभिमान से **(कदाचित्)** कभी भी **(भुजम्)** अपनी भुजा को **(मा आलुलोके)** नहीं देखा था।

विरोधी रहित अविनाशी

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।
संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥२६॥

अन्वयार्थ—जैसे **(अर्कस्य)** सूर्य का **(स्वर्भानुः)** राहु, **(हविर्भुजः)** अग्नि का **(अम्भः)** पानी, **(अम्बुनिधेः)** समुद्र का **(कल्पान्तवातः)** प्रलयकालीनवायु तथा **(संसारभोगस्य)** संसार के भोग का **(वियोगभावः)** विरहभाव, **(विघातः)** नाश करने वाले हैं, इस तरह **(त्वदन्ये)** आपसे भिन्न सब पदार्थ **(विपक्ष-पूर्वाभ्युदयाः 'सन्ति')** अपने विपक्ष रूप शत्रु युक्त अभ्युदय वाले हैं। अर्थात् विनाश के साथ ही उदय होते हैं।

आपको नमस्कार निष्फल नहीं

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत् तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधानः तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥

अन्वयार्थ—(त्वाम्) आपको **(अजानतः)** बिना जाने ही **(नमतः)** नमस्कार करने वाले पुरुष को **(यत् फलम्)** जो फल होता है, **(तत्)** वह फल **(अन्यं देवता इति जानतः)** दूसरे को 'देवता है' इस तरह जानने वाले पुरुष को **(न तु)** नहीं होता। क्योंकि **(हरिन्मणिम्)** हरे मणि को **(काचधिया)** काच की बुद्धि से **(दधानः)** धारण करने वाला पुरुष **(तं तस्य बुद्ध्या वहतः)** हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करने वाले पुरुष की अपेक्षा **(रिक्तःन)** दरिद्र नहीं है।

अज्ञानियों की मान्यता

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैः दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(प्रशस्तवाचः) सुन्दर वचन बोलने वाले **(चतुराः)** चतुर मनुष्य **(कषायैः दग्धस्य)** कषायों से जले हुए पुरुष के भी **(देवव्यवहारं आहुः)** देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है **(हि)** क्योंकि **(गतस्य दीपस्य)** बुझे हुए दीपक का **(नन्दितत्वं)** बढ़ना **(च)** और **(कपालस्य)** फूटे हुए घड़े का **(मङ्गलत्वं)** मंगलपन **(दृष्टम्)** देखा गया है।

हितकारी निर्दोष उपदेशक

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशम्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥

अन्वयार्थ—(नानार्थम्) अनेक अर्थों के प्रतिपादक तथा **(एकार्थम्)** एक ही प्रयोजन युक्त **(त्वदुक्तम्)** आपके कहे हुए **(अदः हितं वचः)** इन हितकारी वचनों को **(निशम्य)** सुनकर **(के)** कौन मनुष्य **(ते वक्तुः)** आपके जैसे वक्ता की **(निर्दोषताम्)** निर्दोषता को **(न विभावयन्ति)** नहीं अनुभव करते हैं अर्थात् सभी करते हैं। जैसे [**यः**] जो **(ज्वरेण मुक्तः 'भवति')** ज्वर से मुक्त हो जाता है **(सः)** वह **(स्वरेण सुगमः 'भवति')** स्वर से सुगम हो जाता है। अर्थात् स्वर से उसकी अच्छी तरह पहचान हो जाती है।

स्वभाव से उपकारी

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥

अन्वयार्थ—(ते) आपकी **(क्वापि)** किसी भी वस्तु में **(वाञ्छा न)** इच्छा नहीं है **(च)** और **(वाक् ववृते)** वचन प्रवृत्त होते हैं। सचमुच में **(क्वचित् काले)** किसी काल में **(तथा)** वैसा **(कः अपि नियोगः)** कोई नियोग–नियम ही होता है। **(हि)** क्योंकि **(शीतद्युतिः)** चन्द्रमा **(अम्बुधिम् पूरयामि)** मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ **(इति)** इसलिए **(उदंशुः न भवति)** उदित नहीं होता किन्तु **(स्वयम् अभ्युदेति)** स्वभाव से उदित होता है।

अनन्त गुणधारी

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्तवेति।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवनेन तेषां गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१॥

अन्वयार्थ—(तव) आपके **(गुणाः)** गुण **(गभीराः)** गम्भीर **(परमाः)** उत्कृष्ट **(प्रसन्नाः)** उज्ज्वल **(बहुप्रकाराः)** अनेक प्रकार के और **(बहवः)** बहुत हैं **(इति)** इस प्रकार **(अयम्)** यह **(स्तवनेन)** स्तुति के द्वारा ही **(तेषाम् गुणानाम्)** उन गुणों का **(अन्तः दृष्टः)** अन्त देखा गया है **(अतः परः गुणानाम् अन्तः किम् अस्ति)** इसके सिवाय गुणों का अन्त क्या होता है ? अर्थात् नहीं।

सर्वसिद्धि प्रदायी उपासना

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्॥३२॥

अन्वयार्थ—(स्तुत्या हि) स्तुति के द्वारा ही **(अभिमतम् न)** इच्छित वस्तु की सिद्धि नहीं होती **(परम्)** किन्तु **(भक्त्या स्मृत्या च प्रणत्या)** भक्ति, स्मृति और नमस्कृति से भी होती है **(ततः)** इसलिए मैं **(नित्यम्)** हमेशा **(देवम् भजामि-स्मरामि-प्रणमामि)** आप देव को भजता हूँ/भक्ति करता हूँ, स्मरण करता हूँ और प्रणाम करता हूँ **(हि)** क्योंकि **(फलम्)** इच्छित वस्तु की प्राप्ति रूप फल को **(केन अपि उपायेन)** किसी भी उपाय से **(साध्यम्)** सिद्ध कर लेना चाहिए।

पुण्य के प्रधान कारण

ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनन्तशक्तिम्।
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम्॥३३॥

अन्वयार्थ—(ततः) इसलिए **(अहम्)** मैं **(त्रिलोकी नगराधिदेवम्)** तीन लोक रूप नगर के अधिपति, **(नित्यम्)** विनाशरहित, **(परम्)** श्रेष्ठ **(ज्योतिः)** ज्ञान-ज्योति स्वरूप **(अनन्तशक्तिम्)** अनन्तवीर्य/अनन्तशक्ति से सहित, **(अपुण्य-पापम्)** स्वयं पुण्य और पाप से रहित होकर भी **(परपुण्यहेतुम्)** दूसरे के पुण्य के कारण तथा **(वन्द्यम्)** वन्दना करने के योग्य होकर भी स्वयं **(अवन्दितारम्)** किसी की भी वन्दना नहीं करने वाले [**भवन्तम्**] आपको **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

सदा स्मरणीय

अशब्दमस्पर्शमरूपगन्धं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम्।
सर्वस्य मातारममेयमन्यैर् जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि॥३४॥

अन्वयार्थ—(अशब्दम्) शब्दरहित, **(अस्पर्शं)** स्पर्शरहित **(अरूप-गन्धं)** रूप और गन्धरहित तथा **(नीरसं)** रसरहित होकर भी **(तद्विषयाव-बोधं)** उनके ज्ञान से सहित, **(सर्वस्य मातारं)** सबके जानने वाले होकर भी **(अन्यैः)** दूसरों के द्वारा **(अमेयं)** नहीं जानने के योग्य तथा **(अस्मार्यं)** जिनका स्मरण नहीं किया जा सकता ऐसे **(जिनेन्द्रं त्वां अनुस्मरामि)** जिनेन्द्र भगवान् आपका प्रतिक्षण मैं स्मरण करता हूँ—ध्यान करता हूँ।

सत्य शरण रूप

अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥

अन्वयार्थ—(अगाधं) गम्भीर **(अन्यैः)** दूसरों के द्वारा **(मनसा अपि अलंघ्यं)** मन से भी उल्लंघन करने के अयोग्य अर्थात् अचिन्त्य **(निष्किञ्चनं)** निर्धन होने पर भी **(अर्थवद्भिः)** धनाढ्यों के द्वारा **(प्रार्थितं)** याचित **(विश्वस्य पारं)** सबके पारस्वरूप होने पर भी **(अदृष्टपारं)** जिनका पार/अन्त कोई नहीं देख सका है, ऐसे **(तम् जिनानां पतिं)** उन जिनेन्द्रदेव की मैं **(शरणम् व्रजामि)** शरण को प्राप्त होता हूँ।

स्वाभाविक गुणों से उन्नत

त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्नमेरुः कुलपर्वतोऽभूत्॥३६॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्यदीक्षागुरवे ते नमः) त्रिभुवन के जीवों के दीक्षागुरुस्वरूप आपके लिए नमस्कार हो **(यः)** जो आप **(वर्धमानः अपि)** क्रम से उन्नति को प्राप्त होते हुए भी **(निजोन्नतः)** स्वयमेव उन्नत **(अभूत्)** हुए थे। **(मेरुः)** मेरुपर्वत **(प्राक्)** पहले **(गण्डशैलः)** गोल पत्थरों का ढेर, **(पुनः)** फिर **(अद्रिकल्पः)** पहाड़ तुल्य (पश्चात्) फिर **(कुलपर्वतः)** कुलाचल **(न अभूत्)** नहीं हुआ था किन्तु स्वभाव से ही वैसा था।

काल विजयी

स्वयं प्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेकरूपं वन्दे विभुं कालकलामतीतम्॥३७॥

अन्वयार्थ—(स्वयं प्रकाशस्य यस्य) स्वयं प्रकाशमान रहने वाले जिसके **(दिवा निशा वा)** दिन और रात की तरह **(न बाध्यता न बाधकत्वं)** न बाध्यता है और न बाधकपना भी। इसी प्रकार जिनके **(न लाघवं गौरवं)** न लाघव है न गौरव भी, उन **(एकरूपं)** एक रूप रहने वाले और **(काल-कलां अतीतं)** क्षण आदि काल की पर्याय से रहित अर्थात् अन्तरहित **(विभुं वन्दे)** परमेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

अयाचित फल प्रदाता

इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः॥३८॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(इति स्तुतिं विधाय)** इस प्रकार स्तुति करके मैं **(दैन्यात्)** दीनभाव से **(वरं न याचे)** वरदान नहीं माँगता, क्योंकि **(त्वं उपेक्षकः असि)** आप उपेक्षक—रागद्वेष रहित हो जैसे **(तरुं संश्रयतः)** वृक्ष का आश्रय करने वाले पुरुष को **(छाया स्वतः स्यात्)** छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। **(याचितया छायया कः आत्मलाभः)** छाया की याचना से अपना क्या लाभ है?

सद्बुद्धि प्रदाता श्रेष्ठ गुरु

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिम्।
करिष्यते देव तथा कृपां मे कोवात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः॥३९॥

अन्वयार्थ—(अथ दित्सा अस्ति) यदि आपकी कुछ देने की इच्छा है **(यदि**

वा) अथवा वरदान माँगो ऐसा **(उपरोधः 'अस्ति')** आग्रह है तो **(त्वयि एव सक्तां)** आपमें ही लीन **(भक्तिबुद्धिं)** भक्तिमयी बुद्धि को **(दिश)** देओ। मेरा विश्वास है कि **(देव)** हे देव! आप **(मे)** मुझ पर **(तथा)** वैसी **(कृपां करिष्यते)** दया करेंगे **(आत्मपोष्ये)** अपने द्वारा पोषण करने के योग्य शिष्य पर **(को वा सूरिः)** कौन आचार्य **(सुमुखो न 'भवति')** अनुकूल नहीं होता! अर्थात् सभी होते हैं।

पुष्पिताग्रा छन्द

भक्ति का वैशिष्ट्य

वितरति विहिता यथाकथञ्चिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो धनं जयं च॥४०॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे जिनेन्द्र! **(यथाकथञ्चित्)** जिस किसी तरह **(विहिता)** की गई **(भक्तिः)** भक्ति **(विनताय)** नम्र मनुष्य के लिए **(मनीषितानि)** इच्छित वस्तुएँ **(वितरति)** देती हैं **(पुनः)** फिर **(त्वयि)** आपके विषय में की गई **(नुतिविषया)** स्तुति विषयक भक्ति **(विशेषात्)** विशेष रूप से **(सुखानि)** सुख **(यशः)** कीर्ति **(धनं)** धन–सम्पत्ति **(च)** और **(जयम्)** जीत को **(दिशति)** देती है।

❑ ❑ ❑

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुखकुण्ड ढ़री है।
मोह महाचल भेदचली, जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि माँहिं रली, बहुभंगतरंगनि सों उछरी है।
ता शुचिशारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलि करि शीश धरी है॥
या जगमन्दिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयौ अति भारी।
श्री जिनकी धुनिदीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥
तो किस भाँति पदारथ-पांति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि सन्त कहैं, धनि हैं, धनि हैं जिन-बैन बड़े उपकारी।

भूपाल जिनचतुर्विंशतिका

काशी नगरी में हेमवान नाम के प्रसिद्ध जैनधर्मानुयायी उदारचरित राजा के पुत्र भूपाल थे। लेकिन ज्ञान बिल्कुल भी नहीं था। हर जगह तिरस्कार ही मिलता था। अपनी अशिक्षित दशा से खेदखिन्न हो भूपाल अपने छोटे भाई से ज्ञानवृद्धि का उपाय पूछते हैं। लघु भ्राता भुजपाल कहते हैं– भैया! भक्तामर स्तोत्र का ६वाँ काव्य ऋद्धि-मंत्र सहित सीखकर आराधना कीजिए। भूपाल ने गंगा नदी के किनारे विधिपूर्वक मन्त्र की आराधना की। मन्त्र जाप्य के प्रभाव से ब्राह्मी देवी ने प्रकट होकर भूपाल पर विद्या इस तरह प्रसन्न हुई कि वे संस्कृत, व्याकरण, न्याय-अलंकार आदि के धुरन्धर विद्वान् हो गये। काशी नगर में उनकी बराबरी करने वाला कोई विद्वान् नहीं था। वे महाकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। 'भूपाल चतुर्विंशतिका' स्तोत्र की रचना कर आपने जिनदर्शन की महिमा का अपूर्व फल जनमानस के स्मृति-पटल पर अंकित करने का महाप्रयास किया है। इसमें २६ श्लोक की भक्ति प्रधान मालिका है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं,
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
सः स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं,
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनाङ्घ्रिद्वयम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(यः) जो मनुष्य **(प्रातः)** प्रभात के समय **(प्रार्थितार्थ-प्रदम्)** इच्छित वस्तुओं को देने वाले तथा **(कल्पपादपदलच्छायम्)** कल्पवृक्ष के पल्लव समान कान्ति के धारक **(जिनाङ्घ्रिद्वयम्)** जिनेन्द्र भगवान् के चरण-युगल को **(पश्यति)** देखता है अर्थात् उनके दर्शन करता है **(सः)** वह **(श्रीलीलायतनम्)** लक्ष्मी का क्रीड़ागृह, **(महीकुल-गृहम्)** पृथ्वी का कुल भवन, **(कीर्तिप्रमोदास्पदम्)** यश और हर्ष का स्थान **(वाग्देवी-रतिकेतनम्)** सरस्वती का क्रीड़ा-मन्दिर **(महत् जयरमा-क्रीडानिधानम्)** विजयलक्ष्मी का विशाल क्रीड़ास्थान और **(सर्व-महोत्सवैकभवनम्)** सब बड़े बड़े उत्सवों का मुख्य घर **(स्यात्)** होता है।

वसन्ततिलका छन्द

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं,
सर्वोपकारि तव देव! ततः श्रुतज्ञाः।
संसारमारवमहास्थलरुन्दसान्द्र –
च्छायामहीरुह! भवन्तमुपाश्रयन्ते॥२॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(शान्तम्)** शान्त है, **(वचः)** वचन **(श्रवणहारि)** कानों को प्रिय हैं और **(चरित्रम्)** चारित्र **(सर्वोपकारि)** सबका भला करने वाला है **(ततः)** इसलिए **(संसार-मारव-महास्थलरुन्दसान्द्रच्छायामहीरुह!)** हे संसार रूप मरुस्थल में विस्तृत सघन छायावृक्ष! **(श्रुतज्ञाः)** शास्त्रों के जानने वाले विद्वान् पुरुष **(भवन्तम् उपाश्रयन्ते)** आपका आश्रय करते हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्धकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटम्।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुममृतस्यन्दिप्रभाचन्द्रिकम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(स्वामिन्) हे नाथ! **(यत्)** जिस कारण से **(अहम्)** मैंने **(लोकत्रयी-नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुम्)** त्रिभुवन के जीवों के नेत्ररूपी कुमुदवन को विकसित करने के लिए चन्द्रमा रूप तथा **(अमृतस्यन्दि-प्रभाचन्द्रिकम्)** जिनकी कान्तिरूपी चाँदनी अमृत को प्रवाहित करती है ऐसे **(त्वाम्)** आपको **(अक्षय-पदानन्दाय)** अविनाशी पद के आनन्द के लिए **(अद्राक्षम्)** देखा अर्थात् आपके दर्शन किये **(तत्)** उस कारण से **(स्पष्टम्)** स्पष्ट है कि **(अद्य)** आज मैं **(जननीगर्भान्धकूपोदरात्)** माता के गर्भरूप अन्धेरे कुए से **(विनिर्गतः अस्मि)** निकला हूँ, **(अद्य उद्घाटितदृष्टि अस्मि)** आज प्रकट हुई है दृष्टि जिसकी ऐसा हुआ हूँ **(च)** और **(अद्य फलवज्जन्म अस्मि)** आज सफल जन्म हुआ हूँ।

निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखर शिखा रत्नप्रदीपावली-
सान्द्रीभूतमृगेन्द्रविष्टरतटी माणिक्यदीपावलिः।
क्वेयंश्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश! लोकोत्तरः॥४॥

अन्वयार्थ—(निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावलीसान्द्रीभूतमृगेन्द्र-विष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः) समस्त इन्द्रों के मुकुटों के अग्र भाग पर लगे हुए रत्नरूप दीपकों की पंक्ति से सघन है सिंहासन के तटपर लगे हुए मणिमय दीपकों की पंक्ति जिसमें ऐसी **(इदम् श्रीः)** यह लक्ष्मी **(क्व)** कहाँ? **(च)** और **(इदम्)** यह **(निःस्पृहत्वम्)** निःस्पृहता-इच्छा का अभाव **(क्व)** कहाँ? **(इति)** इस प्रकार **(लोकेश)** हे त्रिभुवन के स्वामिन्! **(त्वादृशः)** आप जैसे सर्वज्ञानी सर्वदर्शी की **(लोकोत्तरः)** सर्वश्रेष्ठ **(चरित्रमाहिमा)** चारित्र की महिमा **(ऊहातिगः 'अस्ति')** तर्क के अगोचर है।

राज्यं शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया,
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुर स्यान्तः कृतं यत्त्वया।
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र सम्भाव्यते ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिनवर) हे जिनेन्द्र! **(शासनकारिनाकपति)** आज्ञाकारी है इन्द्र जिसमें ऐसा राज्य **(यत्)** जो **(त्वया)** आपके द्वारा **(तृणावज्ञया)** तृण जैसी अनादर बुद्धि से **(त्यक्तम्)** छोड़ दिया गया है, **(हेला निर्दलित-त्रिलोकमहिमा)** अनायास ही खण्डित कर दी है तीन लोक के जीवों की महिमा जिसने ऐसा **(मोहमल्लः)** मोहरूपी मल्ल **(यत्)** जो **(जितः)** जीता गया है तथा **(यत्)** जो **(लोकालोकम् अपि)** लोक अलोक का समाहार-समूह भी **(स्वबोधमुकुरस्य अन्तः कृतम्)** अपने ज्ञानरूप दर्पण के भीतर किया गया है सो **(एषा सा आश्चर्यपरम्परा)** यह प्रसिद्ध आश्चर्य की परिपाटी **(अन्यत्र क्व)** आपको छोड़कर दूसरी जगह कहाँ **(संभाव्यते)** संभव हो सकती है।

दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये,
चीर्णान्युग्रतपान्सि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्र! **(दृष्टिसुभगः)** आँखों को प्यारे लगने वाले **(त्वम्)** आप **(येन श्रद्धापरेण)** जिस श्रद्धालु के द्वारा **(क्षणम्)** एक क्षणभर भी **(दृष्टः)** देखे गये हो मानों **(तेन)** उसने **(ज्ञानधनाय)** ज्ञान ही है धन जिसका ऐसे तथा **(सद्वृत्तये)** सदाचारी **(पात्राय)** पात्र के लिए **(असकृत्)**

कई बार **(दानम्)** दान **(दत्तम्)** दिया है, **(उग्रतपांसि चीर्णानि)** कठिन तपस्याओं का संचय किया है, **(सुचिरम्)** चिरकाल तक **(बह्व्यः पूजाः कृता)** अनेक पूजाएँ की हैं और **(अमलगुणैः सह)** निर्मल गुणों के साथ **(शीलानां सर्वः निचयः समासादितः)** शीलव्रतों का सब समूह प्राप्त कर लिया है।

प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-,
स्कन्धाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं।
नीयन्ते जिन येन कर्णहृदयालङ्कारतां त्वद्गुणाः,
संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥७॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्यचूडामणे! जिन!) हे त्रिभुवन के चूड़ामणि स्वरूप! जिनेन्द्रदेव! **(संसाराहिविषापहारमणयः)** संसाररूपी साँप के विष को हरने के लिए मणिस्वरूप **(त्वद्गुणाः)** आपके गुण **(येन)** जिसके द्वारा **(कर्ण-हृदयालङ्कारताम्)** कान तथा मन के आभूषणपने को **(नीयन्ते)** प्राप्त कराये जाते हैं **(ध्रुवम्)** निश्चय से **(सः एव)** वही **(प्रज्ञापारम् इतः)** बुद्धि के पार को प्राप्त हुआ **(भगवान्)** भगवान्-ऐश्वर्यवान् है **(सः एव श्रुतस्कन्धाब्धेः पारम्)** वही शास्त्र-समुद्र का अन्तिम तट है और **(सः एव)** वही **(गुणरत्नभूषणः)** गुणरूपी रत्न ही हैं आभूषण जिसके **(इति)** इस तरह **(श्लाघ्यः)** प्रशंसनीय है।

मालिनी छन्द

जयति दिविजवृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचि-
र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी -
युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः॥८॥

अन्वयार्थ—(दिविजवृन्दान्दोलितैः) देवसमूह के द्वारा संचालित, **(इन्दुरोचि-र्निचयरुचिभिः)** चन्द्रमा की किरण-समूह के समान उज्ज्वल कान्ति के धारी तथा **(अनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मीयुवतिकटाक्ष-क्षेपलीलाम् दधानैः)** अनुराग करने वाली मोक्षनगर की राज्यलक्ष्मी रूप तरुण स्त्री के कटाक्ष-संचार की शोभा को धारण किये हुए **(उच्चैः)** उन्नत **(चामरैः)** चँवरों के द्वारा **(वीज्यमानः)** ढोरे जाने वाले **(जिनपतिः)** जिनेन्द्र भगवान् **(जयति)** जयवन्त हैं-सबसे उत्कृष्ट हैं।

स्रग्धरा छन्द

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुरमनुजसभाम्भोजिनी भानुमाली
पायान्नःपादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेन्द्रः ॥९॥

अन्वयार्थ—(साश्चर्यैः) आश्चर्ययुक्त **(श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोक-भाश्चक्र भाषापुरष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैः)** सफेद छत्रत्रय, चँवर, अशोक-वृक्ष, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्प-समूह की वृष्टि, सिंहासन और देव दुन्दुभिरूप **(अष्टभिः प्रातिहार्यैः)** आठ प्रतिहार्यों के द्वारा **(भ्राजमानः)** शोभायमान **(सुरमनुजसभाम्भोजिनीभानुमाली)** देव और मनुष्यों की सभा को विकसित करने के लिए सूर्य तथा **(पादपीठीकृत-सकल-जगत्पालमौलिः)** जिन्होंने सब राजाओं के मुकुटों को अपने पाँवों का पीठ-आसन बनाया है ऐसे **(जिनेन्द्रः देवः)** जिनेन्द्रदेव **(नः पायात्)** हम सबकी रक्षा करें।

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः,
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः।
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजा विधिषु विजयते देव देवागमस्ते॥१०॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(ते)** आपके **(कल्याणपूजाविधिषु)** पञ्च-कल्याणकों के पूजा कार्य में **(नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवन-नटन्नाकनारी-निकायः)** नृत्य करते हुए ऐरावत हाथी के दाँतों पर स्थित कमल वनमें नृत्य कर रहा है देवांगनाओं का समूह जिसमें ऐसा, **(सद्यः)** शीघ्र ही **(त्रैलोक्य यात्रोत्सव-करनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः)** त्रिभुवन में यात्रा के उत्सव को करने वाली है ध्वनि जिसकी ऐसे बाजों से हर्षित हो रहे हैं देव जिसमें ऐसा तथा **(हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनो-दामरम्यामरस्त्रीकाम्यः)** हस्त-कमलों के द्वारा क्रीड़ापूर्वक धारण की गई फूलों की मालाओं से रमणीय देवियों के द्वारा सुन्दर **(देवागमः)** देवागमन **(विजयते)** जयवन्त है—सर्वोत्कृष्ट है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने, नेत्रामृतस्यन्दिनं
त्वद्वक्त्रेन्दुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितम् ।

तेनालोकयता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(येन)** जिस कारण से **(नेत्रामृतस्य-न्दिनम्)** आँखों में अमृत झराने वाले तथा **(अतिप्रसादसुभगैः)** अत्यन्त प्रसन्नता से सुन्दर **(तेजोभिः)** तेज के द्वारा **(उद्भासितम्)** शोभायमान् **(त्वद्वक्त्रेन्दुम्)** आपके मुखचन्द्र को **(आलोकयता)** देखते हुए **(मया)** मैंने **(द्रष्टव्यावधि-वीक्षण-व्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम्)** दर्शनीय वस्तुओं की सीमा के देखने रूप व्यापार से बढ़ रहा है उत्सव जिनका ऐसी **(चक्षुः)** आँखों को **(अनति-चिरात्)** शीघ्र ही **(कृतार्थीकृतम्)** कृतार्थ किया है **(तेन)** उस कारण से **(भुवने)** संसार में **(अहम् एव)** मैं ही **(चक्षुष्मान् 'अस्मि')** नेत्रवान् हूँ।

वसन्ततिलका छन्द

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चि-
न्मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम्।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपात -
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराज! मल्लः॥१२॥

अन्वयार्थ—(जिनराज) हे जिनेन्द्र! **(कश्चित् मुग्धः)** कोई मूर्ख **(कन्तोः)** कामदेव के विषय में **(मुकुन्दम्)** श्रीकृष्ण **(अरविन्दजम्)** ब्रह्मा और **(इन्दु-मौलिम्)** महादेव को **(सकान्तम् अपि)** स्त्रियों से सहित होने पर भी **(मल्लम्)** मल्ल **(अवैति)** मानता है, किन्तु **(मोघीकृतत्रिदशयोषिद-पाङ्गपातः)** व्यर्थ कर दिया है देवांगनाओं का कटाक्षपात जिनने ऐसे **(त्वम् एव)** आप ही **(तस्य)** उस काम के **(विजयी)** जीतने वाले **(मल्लः)** शूरवीर हैं।

मालिनी छन्द

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्-
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीम्
नयनपथमवाप्ताद्वेव पुण्यद्रुमेण ॥१३॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव **(मम)** मेरा **(पुण्यद्रुमेण)** पुण्यरूपी वृक्ष, **(त्वद्विलोक अभिलाषात्)** आपके दर्शन करने की इच्छा से **(अनल्पम्)** अत्यधिक **(किसलयितम्)** पल्लवों से व्याप्त हुआ था, **(त्वत्समीप-प्रयाणात्)** आपके

पास जाने से **(अतिसान्द्रम्)** अतिसघन **(कुसुमितम्)** फूलों से व्याप्त हुआ और **(इदानीम्)** इस समय **(त्वन्मुखेन्द्रोः)** आपके मुख चन्द्रमा से **(अमन्दम्)** अत्यन्त **(फलितम्)** फलों से व्याप्त हुआ है।

त्रिभुवनवनपुष्यत्पुष्पकोदण्डदर्प -
प्रसरदवनवाम्भोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः।
स जयति जिनराजव्रातजीमूतसङ्घः
शतमखशिखिनृत्यारम्भनिर्बन्धबन्धुः॥१४॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवनवनपुष्यत्पुष्पकोदण्डदर्प-प्रसरदवन-वाम्भो-मुक्ति-सूक्ति-प्रसूतिः) तीनलोकरूपी वन में बढ़ते हुए कामदेव सम्बन्धी अहंकार के प्रसाररूपी दावानल को बुझाने के लिए नूतन जलवृष्टिरूप सुन्दर उपदेश की है उत्पत्ति जिससे ऐसे तथा **(शतमख-शिखिनृत्यारम्भ-निर्बन्ध-बन्धुः)** इन्द्ररूपी मयूर के नृत्य प्रारम्भ करने में आग्रहकारी बन्धुस्वरूप **(सः)** वह **(जिनराज-व्रातजीमूतसङ्घः)** जिनेन्द्र समूहरूप मेघों का समुदाय (जयति) जयवन्त है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट है।

भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला -
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलस्त्रिः परीत्य
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोस्मीव मुक्तिम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला - लीला-चैत्यस्य) चक्रवर्ती और इन्द्र हैं प्रधान जिनमें ऐसे मनुष्य और देवसमूह के नेत्ररूपी भ्रमर पंक्ति की क्रीड़ा के लिए चैत्यवृक्ष तथा **(अखिल-जगत्-कौमुदीन्दोः)** सम्पूर्ण संसाररूप कुमुद समूह के लिए चन्द्रमा स्वरूप **(जिनस्य)** जिनेन्द्र देव के **(चैत्यालयं त्रिःपरीत्य)** मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा देकर **(उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुट-नलिनीकुड्मलः)** आभरणरूप किया है सेवा से वह अञ्जलिपुटरूप कमलिनी के मुकुल **(बौंडी)** जिसने ऐसा तथा **(श्रीपादच्छायया)** आपके श्री चरण की छाया के द्वारा **(अपस्थित-भवदवथुः)** दूर हो गया है संसार का सन्ताप जिसका ऐसा मैं **(मुक्तिम् इव संश्रितः अस्मि)** मानो मुक्ति को ही प्राप्त हो गया हूँ।

वसन्ततिलका छन्द

देव त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणेस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।
श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि ॥१६॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव **(अर्घ्ये)** प्रशंसनीय और **(निसर्गरुचिरे)** स्वभाव से सुन्दर **(अस्मिन् त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणे)** आपके इस नखमण्डलरूपी दर्पण में **(चिरदृष्टवक्त्रः)** बहुत समय तक देखा है मुख जिसने ऐसा **(भव्यः)** भव्यजीव **(श्री कीर्तिकान्तिधृतिसङ्गम-कारणानि)** लक्ष्मी, यश, कान्ति और धीरज की प्राप्ति के कारणस्वरूप **(कानि शुभमङ्गलानि)** किन शुभ मंगलों को **(न लभते)** नहीं प्राप्त होता ? अर्थात् सभी को होता है।

मालिनि छन्द

जयति सुरनरेन्द्रश्री सुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल -
प्रसरशिखरशुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः॥१७॥

अन्वयार्थ—(सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः) देवेन्द्र और राजाओं की लक्ष्मीरूप अमृत के झरनों की उत्पत्ति के लिए **(कुलधरणिधरः)** कुलाचल तथा **(प्रविपुल-फलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-प्रसरशिखर-शुम्भत्केतनः)** अत्यधिक फल वाले धर्मरूप वृक्ष के अग्रभाग पर स्थित किसलय समूह की शिखर की तरह शोभायमान है पताका जिस पर ऐसा **(श्रीनिकेतः)** लक्ष्मी का गृह स्वरूप **(अयम्)** यह **(जैनचैत्याभिरामः)** जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं से सुंदर चैत्यालय **(जयति)** जयवन्त है-सबसे उत्कृष्ट है।

विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्ति -
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः ।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्तिस्फुरितनखमयूख-द्योति-ताशान्तरालः) नमस्कार करती हुई देवांगनाओं के केशों से प्रतिबिम्बित कांति

से शोभायमान नखचन्द्र की किरणों से प्रकाशित कर दिया है दिशाओं का मध्य भाग जिनने ऐसे तथा **(दिविज-मनुजराजव्रात-पूज्यक्रमाब्जः)** देव और मनुष्यों के राजसमूह से पूजने योग्य हैं चरणकमल जिनके ऐसे और **(विजित-कर्मारातिजालः)** जीत लिया है कर्मरूपी शत्रुओं का समूह जिनने ऐसे **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्रदेव **(जयति)** जयवन्त है-सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान हैं।

वसन्ततिलका छन्द

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय,
दृष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं,
त्रैलोक्यमङ्गलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन् **(सुप्तोत्थितेन)** सोकर उठे हुए **(सुमुखेन)** सुन्दर मुख वाले पुरुष के द्वारा **(सुमङ्गलाय)** कल्याण की प्राप्ति के लिए **(यदि मङ्गलम् एव वस्तु द्रष्टव्यम् अस्ति)** यदि मंगलरूप ही वस्तु देखी जानी चाहिए **(तत्)** तो **(अन्येन किम्)** और से क्या? **(त्रैलोक्यमङ्गल-निकेतनम्)** तीनों लोकों के मंगलों के घर स्वरूप **(तव वक्त्रम् एव)** आपका मुख ही **(ईक्षणीयम्)** देखना चाहिए।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम-
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः।
त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसी - हंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल! न धार्यसे गुणमणिस्त्रङ्मालिभिर्मौलिभिः॥२०॥

अन्वयार्थ—(भूपाल) हे जगत्पालक ! **(त्वम्)**आप **(धर्मोदयताप-साश्रम-शुकः)** धर्म के अभ्युदयरूपी तपोवन के तोता हैं **(त्वम्)** आप **(काव्यबन्धक्रम-क्रीडानन्दनकोकिलः)** काव्यरचना की क्रमक्रीड़ा रूप नंदनवन के कोकिल हैं। **(त्वम्)** आप **(पुन्नागकथारविंदसरसीहंसः)** श्रेष्ठ पुरुषों की कथारूपी कमल सरोवर के हंस हैं और **(त्वम्)** आप **(उत्तंसकैः)** अपने आपको भूषित करने सजाने वाले **(कैः)** किन पुरुषों के द्वारा **(गुणमणिस्त्रङ्मालिभिः)** गुणरूप मणियों की माला के समूह से उपलक्षित **(मौलिभिः)** मुकुटों के द्वारा **(न धार्यसे)** धारण नहीं किये जाते? अर्थात् सभी के द्वारा धारण किये जाते हैं?

मालिनी

शिवसुखमजरश्रीसङ्गमं चाभिलष्य
स्वमभिनियमयन्ति क्लेशपाशेन केचित्।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्त-
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः॥२१॥

अन्वयार्थ—(केचित्) कितने ही मनुष्य **(शिवसुखम्)** मोक्ष-सुख **(च)** और **(अजरश्रीसंगमम्)** देवों की लक्ष्मी के संगम को **(अभिलष्य)** चाहकर **(स्वम् अभि)** अपने आपको **(क्लेशपाशेन)** दुखों के समूह **(नियमयन्ति)** नियमित करते हैं अर्थात् तरह-तरह की तपस्याओं और व्रत आदि के कठिन नियमों से अपने आपको दुखी करते हैं **(तु)** किन्तु **(वयम्)** हम लोग **(शश्वत्)** हमेशा **(इह)** इस संसार में **(ते भूपतेः)** आप जगत्पालक के **(वचः भावयन्तः)** वचनों की भावना करते हुए **(लीलया)** अनायास ही **(तदुभयम् अपि)** उन दोनों अर्थात् मोक्ष और स्वर्ग को **(निर्विशामः)** प्राप्त हो जाते हैं।

शार्दूलविक्रीडित

देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गना मङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्वदेवा जगुः।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते॥२२॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(देवेन्द्राः)** इन्द्रों ने **(तव)** आपका **(मज्जनानि विदधुः)** अभिषेक किया, **(देवाङ्गनाः मङ्गलानि आपेठुः)** देवांगनाओं ने मंगलपाठ पढ़े, **(गन्धर्वदेवाः)** गन्धर्व देवों ने **(शरदिन्दु-निर्मलयशः जगुः)** शरद्ऋतु के चन्द्रमा की तरह उज्ज्वल यश गाया **(च)** और **(शेषाः अपि अखिलाः सुरा)** बाकी बचे हुए समस्त देवों ने **(यथानियोगम्)** अपने कर्तव्य के अनुसार **(सेवाम् चक्रिरे)** सेवा की **(तत् वयं तु किं विदध्मः)** अब हमलोग क्या करें **(इति)** इस प्रकार **(नः)** हमारा **(चित्तम्)** मन **(दोलायते)** चञ्चल हो रहा है।

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमाञ्चसत्कञ्चुकै-
र्देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्त्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटम्।

किञ्चान्यत्सुरसुन्दरीकुचतटप्रान्तावनद्धोत्तम -
प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ्कृतमहो तत्केन संवर्ण्यते॥२३॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(त्वज्जननाभिषेकसमये)** आपके जन्माभिषेक के समय **(नर्तनविधौ)** नृत्य कार्य में **(लब्धप्रभावैः)** प्राप्त किया है प्रभाव जिन्होंने ऐसे **(देवेन्द्रैः)** इन्द्रों ने **(रोमाञ्चसत्कञ्चुकैः)** रोमांचरूप कंचुक वस्त्र को धारण करते हुए **(यत् स्फुटम् अनर्ति)** जो स्पष्ट नृत्य किया गया था **(किं च अन्यत्)** और जो **(सुरसुन्दरी-कुचतटप्रान्त-वनद्धोत्तम प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ्कृतम्)** देवांगनाओं के स्तन तट के समीप बन्धी हुई उत्तम शब्द करती हुई वीणा के शब्द की झंकार हुई थी **(अहो तत् केन वर्ण्यते)** आश्चर्य है कि उस सबका वर्णन किससे हो सकता है? अर्थात् किसी से नहीं।

देव त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुजदलस्मेरेक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टेरियान्वर्तते।
साक्षात्तत्र भवन्तमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा
देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः सः किं वर्ण्यते ॥२४॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(अम्बुजदलस्मेरेक्षणम्)** कमल की पांखुड़ी की तरह विकसित है नेत्र जिसमें ऐसे **(त्वत्प्रतिबिम्बम्)** आपके प्रतिबिम्ब-प्रतिमा को देखने वाले हम लोगों की आँखों को **(यत्र)** जहाँ **(अहो)** आश्चर्यकारक **(इयान्)** इतना **(महोत्सवरसः)** महान् आनन्द **(वर्तते)** हो रहा है **(तत्र)** वहाँ **(तदा)** उस समय **(कल्याणकाले)** पञ्चकल्याणकों के काल में **(अनिमेष-लोचनतया)** टिमकार रहित नेत्रों से **(भवन्तम्)** आपको **(साक्षात्)** साक्षात् रूप से **(ईक्षितवताम्)** देखने वाले **(देवानाम्)** देवों के **(वृत्तः)** प्रकट हुआ **(सः)** वह आनंद **(किम्)** क्या **(वर्ण्यते)** वर्णित किया जा सकता है अर्थात् नहीं किया जा सकता।

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिन्तामणेः।
किं दृष्टेरथवानुषङ्गिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमङ्गलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जिनश्रीगृहे) जिनमन्दिर अथवा जिनेन्द्ररूप लक्ष्मीगृह के **(दृष्टे**

'सति') देखे जाने पर **(मया)** मैंने **(रसायनस्य धाम दृष्टम्)** रसायन का घर देख लिया **(महतां निधीनाम् पदं दृष्टम्)** बड़ी-बड़ी निधियों का स्थान देख लिया **(सिद्धरसस्य)** सिद्ध हुए रस-औषधि विशेष का **(सद्म दृष्टम्)** घर देख लिया **(च)** और **(चिन्तामणेः)** चिन्तामणि रत्न का **(सदनम् दृष्टम्)** घर देख लिया।

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र! विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते
देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(जिनराजचन्द्र) हे जिनेन्द्रचन्द्र! **(मया त्वम् दृष्टः)** मैंने आपके दर्शन किये तथा **(विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले)** जिसमें राजाओं के नेत्ररूपी कुमुद फूल रहे हैं ऐसे तथा **(भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे)** जिसमें विद्वान् रूप-चकोर पक्षियों को आनन्द हो रहा है ऐसे **(त्वन्नुति-चन्द्रिकाम्भसि)** आपकी स्तुति रूप जल में **(स्नातं)** स्नान किया **(च)** और **(अद्य)** आज **(निदाघजः)** सन्ताप से उत्पन्न हुआ **(क्लमभरः)** खेद का समूह **(शान्तिम् नीतः)** शान्ति को प्राप्त कराया **(देव)** हे देव! **(त्वद्गतचेतसा एव मया गम्यते)** अब मैं आप में ही चित्त लगाता हुआ जाता हूँ **(भवतः दर्शनम् पुनः भूयात्)** आपके दर्शन फिर भी हों।

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥टेक॥
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा पराया भासा, हो भानु के समानी ॥१॥
षड् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ॥२॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे हैं मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी ॥३॥
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेरी सानी ॥४॥

पात्रकेसरीस्तोत्रम्

इस स्तोत्र का दूसरा नाम 'जिनेन्द्रगुणसंस्तुति' भी है। आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्रों के समान यह स्तोत्र भी न्यायशास्त्र का ग्रन्थ है। आचार्य पात्रकेसरी द्वारा रचित इस स्तोत्र में ५० पद्य हैं। अर्हन्त भगवान् की सयोगकेवली अवस्था का बहुत ही गवेषणापूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है।

पृथ्वी छन्द

समस्त कर्मविनाशक प्रभु की स्तुति

जिनेन्द्र! गुणसंस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता,
भवत्यखिलकर्मणां प्रहतये परं कारणम्।
इति व्यवसिता मतिर्मम ततोऽह-मत्यादरात्,
स्फुटार्थ-नयपेशलां सुगत! संविधास्ये स्तुतिम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र भगवन्! **(तव)** आपके **(गुण-संस्तुतिः)** गुणों की स्तुति **(मनागपि)** थोड़ी भी **(प्रस्तुता)** अच्छी तरह की हुई **(अखिलकर्मणां)** समस्त कर्मों के **(प्रहतये)** नाश के लिए **(परं कारणं)** उत्कृष्ट कारण **(भवति)** होती है। **(इति)** इस प्रकार **(मम)** मेरी **(मतिः)** बुद्धि **(व्यवसिता)** निश्चयात्मक हुई है **(ततः)** इसलिए **(अहम्)** मैं **(अति-आदरात्)** अत्यधिक आदर के साथ **(सुगत!)** हे सुगत! **(स्फुटार्थ-नय-पेशलां)** स्पष्ट अर्थ और नयों से कुशल **(स्तुतिम्)** आपकी स्तुति को **(संविधास्ये)** करूँगा।

भगवान् स्वयम्भू हैं

मतिःश्रुत-मथावधिश्च सहजं प्रमाणं हि ते,
ततः स्वय-मबोधि मोक्षपदवीं स्वयंभूर्भवान्।
न चैतदिह दिव्यचक्षु-रधुनेक्ष्यतेऽस्मादृशां,
यथा सुकृतकर्मणां सकलराज्य-लक्ष्म्यादयः ॥२॥

अन्वयार्थ—(ते) हे भगवन्! आपके लिए **(मतिः)** मतिज्ञान **(श्रुतम्)** श्रुतज्ञान **(अथ)** और **(अवधिः)** अवधिज्ञान **(सहजं)** साथ उत्पन्न हुए **(प्रमाणं)** प्रमाण **(हि)** ही हैं **(ततः)** इसलिए **(भवान्)** आप **(स्वयम्भूः)** स्वयम्भू भगवान् ने **(मोक्षपदवीं)** मोक्षपदवी को **(स्वयं)** स्वयं **(अबोधि)** जान लिया **(च एतत्)**

और यह **(दिव्यचक्षुः)** दिव्य ज्ञान नेत्र **(इह)** इस लोक में **(अधुना)** वर्तमान में **(अस्मादृशां)** हम जैसे लोगों के **(न ईक्ष्यते)** नहीं दिखाई देता है **(यथा)** जैसे **(सुकृतकर्मणां)** पुण्य कर्मों के **(सकल-राज्य-लक्ष्म्यादयः)** समस्त राज्य की लक्ष्मी आदि फल होते हैं।

विरोधाभास अलंकार युक्त स्तुति

वीतरागी होने पर भी जगद्बन्धुत्व

व्रतेषु परिरज्यसे निरुपमे च सौख्ये स्पृहा,
विभेष्यपि च संसृते-रसुभृतां वधं द्वेक्ष्यपि।
कदाचि-ददयोदयो विगतचित्तकोऽप्यञ्जसा,
तथाऽपि गुरुरिष्यते त्रिभुवनैक-बन्धुर्जिनः ॥३॥

अन्वयार्थ—(व्रतेषु) आप व्रतों में **(परिरज्यसे)** लीन रहते हो **(च)** और **(निरुपमे सौख्ये)** निरुपम सुख में **(स्पृहा)** आपकी अभिलाषा है। **(च)** तथा **(संसृतेः)** संसार से **(विभेषि अपि)** डरते भी हैं **(असुभृतां)** प्राणियों के **(वधं)** वध से **(द्वेक्षि अपि)** द्वेष भी करते हैं। **(कदाचिद्)** कदाचित् **(अदयोदयः)** अदया का उदय है **(विगतचित्तकः अपि)** आप चित्तरहित भी हैं **(अञ्जसा)** स्पष्ट रूप से **(तथाऽपि)** फिर भी **(गुरुः)** आप गुरु, **(त्रिभुवनैकबन्धुः)** तीन लोक के एकमात्र बन्धु, **(जिनः)** जिन **(इष्यते)** कहे जाते हैं।

भगवान् के केवलज्ञान की स्तुति

तपः परमुपश्चितस्य भवतोऽभवत्केवलं,
समस्तविषयं निरक्ष-मपुनश्च्युति स्वात्मजम्।
निरावरणमक्रमं व्यतिकरादपेतात्मकं,
तदेव पुरुषार्थसार-मभिसम्मतं योगिनाम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(परं तपः) उत्कृष्ट तप को **(उपश्चितस्य)** करने वाले **(भवतः)** आपको **(केवलं)** केवलज्ञान **(अभवत्)** हुआ **(समस्तविषयं)** जो समस्त विषयवाला है **(निरक्षं)** इन्द्रियरहित है **(अपुनश्च्युति)** पुनश्च्युति से रहित है **(स्वात्मजं)** अपने आत्मा से उत्पन्न है **(निरावरणं)** आवरण रहित है **(अक्रमं)** क्रमरहित है **(व्यतिकरात् अपेतात्मकं)** व्यतिकर से रहित है **(तदेव)** वह ही **(पुरुषार्थसारं)** पुरुषार्थ का सार **(योगिनां)** योगियों को **(अभिसम्मतं)** मान्य है।

जिनशासन की स्तुति

परस्परविरोधवद् - विविधभङ्गशाखाकुलं,
पृथग्जनसुदुर्गमं तव निरर्थकं शासनम्।
तथापि जिन! सम्मतं सुविदुषां न चात्यद्भुतं,
भवन्ति हि महात्मनां दुरुदितान्यपि ख्यातये ॥५॥

अन्वयार्थ–(तव) आपका **(शासनं)** शासन **(परस्परविरोधवद्-विविध-भङ्गशाखाकुलं)** परस्पर विरोध वाले अनेक भंगों की शाखाओं से युक्त है **(पृथग्जनसुदुर्गमं)** मूर्ख जनों को अति दुर्गम है और **(निरर्थकं)** निरर्थक है **(तथापि)** फिर भी **(जिन!)** हे जिन! **(सुविदुषां)** श्रेष्ठ ज्ञानवानों को **(सम्मतं)** अच्छी तरह स्वीकृत है। **(अत्यद्भुतं)** अति आश्चर्य **(न च)** इसमें नहीं है **(महात्मनां)** महात्माओं के **(दुरुदितानि अपि)** कठिन वचन भी **(हि)** निश्चित ही **(ख्यातये)** प्रसिद्धि के लिए **(भवन्ति)** होते हैं।

असंगत तथ्य भी आपमें संगत हैं

सुरेन्द्र-परिकल्पितं बृहदनर्घ्यसिंहासनं,
तथाऽऽतपनिवारण- त्रयमथोल्लसच्चामरम्।
वशं च भुवनत्रयं निरुपमा च निःसंगता,
न संगतमिदं द्वयं त्वयि तथाऽपि संगच्छते ॥६॥

अन्वयार्थ–(सुरेन्द्रपरिकल्पितं) सुरेन्द्र के द्वारा बनाया हुआ **(बृहद्-अनर्घ्य-सिंहासनं)** विशाल, बहुमूल्य सिंहासन **(तथा)** तथा **(आतपनिवारणत्रयं)** छत्रत्रय **(अथ)** और **(उल्लसच्चामरम्)** ढुरते हुए चँवर **(च)** तथा **(भुवनत्रयं वशं)** तीन लोक का वश में होना **(च)** फिर भी **(निरुपमा)** अनुपम **(निःसंगता)** निष्परिग्रहता है। **(इदं)** यह **(द्वयं)** दोनों बातें **(संगतं)** संगत **(न)** नहीं हैं **(तथाऽपि)** फिर भी **(त्वयि)** आपमें **(संगच्छते)** उचित हैं।

समस्त जीवों के रक्षक आप ही हैं

त्वमिन्द्रियविनिग्रह-प्रवणनिष्ठुरं भाषसे,
तपस्यपि च यातयस्य-नघदुष्करे संश्रितान्।
अनन्य-परिदृष्टया षडसु-कायसंरक्षया-
स्वनुग्रहपरोऽप्यहो त्रिभुवनात्मनां नापरः ॥७॥

अन्वयार्थ–(त्वं) आप **(इन्द्रिय-विनिग्रह-प्रवण-निष्ठुरं)** इन्द्रियनिग्रह में प्रवण

होने की निष्ठुरता **(भाषसे)** कहते हो **(च)** और **(अनघदुष्करे)** पापरहित कठिन **(तपसि)** तप में **(संश्रितान्)** स्थित जीवों को **(अपि)** भी **(यातयसि)** परेशान करते हो **(अहो!)** आश्चर्य है कि **(अनन्यपरिदृष्टया)** समान दृष्टि से **(षडसुकाय-संरक्षयासु)** छह काय के जीवों की रक्षा में **(अनुग्रहपरः अपि)** अनुग्रह से तत्पर होकर भी **(त्रिभुवनात्मनां)** तीन लोक की आत्माओं का **(अपरः)** अन्य **(न)** अनुग्रह करने वाला नहीं है।

सुख और दुख प्रदाता आप ही हैं

ददास्यनुपमं सुखं स्तुतिपरेष्वतुष्यन्नपि,
क्षिपस्य-कुपितोऽपि च ध्रुवमसूयकान् दुर्गतौ।
न चेश! परमेष्ठिता तव विरुध्यते यद्भवान्,
न कुप्यति न तुष्यति प्रकृति-माश्रितो मध्यमाम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(स्तुतिपरेषु) स्तुति में तत्पर रहने वालों में आप **(अतुष्यन् अपि)** सन्तुष्ट नहीं होकर भी **(अनुपमं सुखं)** अनुपम सुख **(ददासि)** देते हो **(च)** तथा **(अकुपितः अपि)** कुपित हुए बिना भी **(ध्रुवम्)** निश्चित ही **(असूयकान्)** ईर्ष्या करने वालों को **(दुर्गतौ)** दुर्गति में **(क्षिपसि)** रख देते हो। **(ईश!)** हे ईश्वर! **(तव)** आपकी **(परमेष्ठिता)** परमेष्ठिता **(न च विरुध्यते)** विरोध को प्राप्त नहीं होती है **(यत्)** क्योंकि **(भवान्)** आप **(न कुप्यति)** न क्रोध करते हैं **(न)** और न **(तुष्यति)** सन्तुष्ट होते हैं **(मध्यमां प्रकृतिं)** आप मध्यम प्रकृति का **(आश्रितः)** आश्रय लिये हो।

अतीन्द्रिय ज्ञानी की स्तुति

परिक्षपित-कर्मणस्तव न जातु रागादयो,
न चेन्द्रिय-विवृत्तयो न च मनस्कृता व्यावृतिः।
तथाऽपि सकलं जगद् युगपदञ्जसा वेत्सि च,
प्रपश्यसि च केवलाभ्युदितदिव्य-सच्चक्षुषा ॥९॥

अन्वयार्थ—(तव) आप **(परिक्षपितकर्मणः)** क्षीण कर्म भगवान् के पास **(रागादयः)** राग आदि **(न जातु)** कुछ भी नहीं है **(इन्द्रियविवृत्तयः)** इन्द्रियों की वृत्तियाँ **(न च)** नहीं हैं **(न च)** और न ही **(मनस्कृता)** मन से की गई **(व्यावृत्तिः)** प्रवृत्ति है **(तथाऽपि)** फिर भी **(सकलं जगत्)** सम्पूर्ण संसार को **(युगपत्)** एक साथ **(अञ्जसा)** स्पष्टरूप से **(वेत्सि च)** जानते हो **(च)** और

(केवलाभ्युदित-दिव्य-सच्चक्षुषा) केवलज्ञान के द्वारा उदित हुए दिव्य समीचीन चक्षु के द्वारा **(प्रपश्यसि)** देखते हो।

आप मुनि सम्प्रदाय से संस्तुत्य हैं

क्षयाच्च रतिराग-मोहभय-कारिणां कर्मणां,
कषायरिपु-निर्जयः सकल-तत्त्वविद्योदयः।
अनन्य-सदृशं सुखं त्रिभुवनाधिपत्यं च ते,
सुनिश्चितमिदं विभो! सुमुनि-सम्प्रदायादिभिः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(रतिरागमोहभयकारिणां) रति, राग, मोह और भय करने वाले **(कर्मणां)** कर्मों के **(क्षयात्)** क्षय से **(कषाय-रिपु-निर्जयः)** आपने कषाय शत्रुओं को जीत लिया **(च)** और **(सकलतत्त्व-विद्योदयः)** समस्त तत्त्वविद्या का उदय हुआ है। **(विभो!)** हे विभो! **(ते)** आपका **(अनन्यसदृशं)** अतुलनीय **(सुखं)** सुख **(च)** और **(त्रिभुवनाधिपत्यं)** तीन लोक का आधिपत्य **(सुमुनि-सम्प्रदायादिभिः)** श्रेष्ठ मुनियों के सम्प्रदाय आदि के द्वारा **(इदं)** यह **(सुनिश्चितम्)** अच्छी तरह निश्चित है।

भगवान् के वचन भी परमेष्ठिता के द्योतक हैं

न हीन्द्रियधिया विरोधि न च लिङ्गबुद्ध्या वचो,
न चाप्यनुमतेन ते सुनय-सप्तधा योजितम्।
व्यपेत-परिशङ्कनं वितथकारणा-दर्शना-
दतोऽपि भगवंस्त्वमेव परमेष्ठितायाः पदम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(ते) आपके **(वचः)** वचन **(इन्द्रियधिया)** इन्द्रिय ज्ञान से **(विरोधि)** विरुद्ध **(न हि)** नहीं है **(लिङ्गबुद्ध्या)** लिंगज्ञान से भी विरुद्ध नहीं है **(अनुमतेन)** अनुमान ज्ञान से **(अपि)** भी **(न च)** विरुद्ध नहीं हैं **(सुनयसप्तधा)** समीचीन सात प्रकार के नयों से **(योजितम्)** युक्त हैं **(अतः)** इसलिए **(वितथ-कारणादर्शनात्)** असत्य का कारण नहीं दिखने से **(व्यपेत परिशङ्कनम्)** शंका से रहित हैं **(अपि)** भी **(भगवन्)** हे भगवन्! **(त्वं एव)** आप ही **(परमेष्ठितायाः)** परमेष्ठिता के **(पदम्)** स्थान हैं।

भगवान् की निर्दोषता का कथन

न लुब्ध इति गम्यसे सकलसङ्ग-संन्यासतो,
न चाऽपि तव मूढता विगतदोषवाग्यद्भवान्।

अनेकविध-रक्षणादसुभृतां न च द्वेषिता,
निरायुधतयाऽपि च व्यपगतं तथा ते भयम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(सकल-सङ्ग-संन्यासतः) समस्त परिग्रह के संन्यास से आप **(लुब्धः)** लुब्ध **(न)** नहीं हैं **(इति)** इस प्रकार **(गम्यसे)** जाने जाते हो **(यत्)** चूँकि **(भगवान्)** आप **(विगतदोषवाक्)** वचन के दोषों से रहित हैं इसलिए **(तव)** आपके **(मूढता)** मूढ़ता **(न च अपि)** भी नहीं है। **(असुभृतां)** प्राणियों की **(अनेक-विध-रक्षणात्)** अनेक प्रकार की रक्षा करने से **(द्वेषिता)** द्वेषपना **(च न)** नहीं है। **(तथा)** तथा **(निरायुधतया अपि च)** आयुध से रहित होने से भी **(ते)** आपका **(भयं)** भय **(व्यपगतं)** चला गया है, यह जाना जाता है।

पुनर्जन्म की सिद्धि

यदि त्वमपि भाषसे वितथमेवमाप्तोऽपि सन्,
परेषु जिन! का कथा प्रकृतिलुब्ध-मुग्धादिषु।
न चाऽप्यकृतकात्मिका वचनसंहतिर्दृश्यते,
पुनर्जननमप्यहो! न हि विरुध्यते युक्तिभिः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(त्वम्)** आप **(अपि)** भी **(आप्तः अपि सन्)** आप्त होकर भी **(एवं वितथं)** इस प्रकार असत्य **(भाषसे)** कहने लगे तो **(जिन)** हे जिनेन्द्र भगवन्! **(परेषु)** अन्य **(प्रकृतिलुब्ध-मुग्धादिषु)** स्वभाव से लुब्ध, मुग्ध आदि जनों की **(का कथा)** क्या बात हो? **(च)** और **(अकृतकात्मिका)** स्वयं उत्पन्न हुआ **(अपि)** भी **(वचनसंहतिः)** वचनों का समूह **(न दृश्यते)** नहीं देखा जाता है। **(अहो!)** आश्चर्य है कि **(पुनर्जननम् अपि)** पुनर्जन्म भी **(युक्तिभिः)** युक्तियों के द्वारा **(विरुध्यते न हि)** विरोध प्राप्त नहीं है।

श्रुति पौरुषेय है

सजन्ममरणर्षि - गोत्र - चरणादिनाम-श्रुते-
रनेकपद - संहति - प्रतिनियामसन्दर्शनात्।
फलार्थि - पुरुषप्रवृत्ति - विनिवृत्ति - हेत्वात्मनां,
श्रुतेश्च मनुसूत्रवत्पुरुषकर्तृकैव श्रुतिः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(सजन्म-मरणर्षि-गोत्र-चरणादिनाम-श्रुतेः) जन्म, मरण से सहित ऋषियों के गोत्र, आचरण आदि नाम का सुनना और **(अनेकपद-संहति-प्रतिनियाम-सन्दर्शनात्)** अनेक पदसमूह का प्रतिनियम देखा जाने से

(फलार्थि-पुरुषप्रवृत्ति-विनिवृत्ति-हेत्वात्मनां) फल के इच्छुक पुरुष की प्रवृत्ति और विनिवृत्ति के हेतुभूत आत्माओं को **(श्रुतेः)** श्रुति से होती है **(च मनुसूत्रवत्)** मनुसूत्र की तरह **(श्रुतिः)** श्रुति **(पुरुषकर्त्तृका इव)** पुरुषकर्तृक है।

परलोक की सिद्धि

स्मृतिश्च परजन्मनः स्फुट - मिहेक्ष्यते कस्यचित्,
तथाप्तवचनान्तरात् - प्रसृतलोकवादादपि।
न चाऽप्यसत उद्भवो न च सतो निमूलात्क्षयः,
कथं हि परलोकिना-मसुभृता-मसत्तोह्यते ॥१५॥

अन्वयार्थ—(कस्यचित्) किसी को **(परजन्मनः)** परजन्म की **(स्मृतिः)** स्मृति **(च स्फुटं)** स्पष्ट रूप से **(इह)** इस लोक में **(ईक्ष्यते)** देखी जाती है **(तथा)** उसी प्रकार **(आप्तवचनान्तरात्)** आप्त के वचनान्तर से और **(प्रसृत-लोकवादात् अपि)** प्रचलित लोकवाद से भी देखा जाता है **(असतः)** असत् का **(उद्भवो)** जन्म **(न च)** नहीं होता है **(च)** और **(सतः)** सत् का **(निमूलात्)** मूल से **(क्षयः न)** विनाश नहीं होता है **(हि)** इसलिए **(परलोकिनां असुभृतां)** परलोक के प्राणियों की **(असत्ता)** असत्ता **(कथं)** कैसे **(ऊह्यते)** विचारी जा सकती है?

चार्वाक मत खण्डन

न चाऽप्यसदुदीयते न च सदेव वा व्यज्यते,
सुराङ्गमदवत्तथा शिखिकलापवैचित्र्यवत्।
क्वचिन्मृतकरन्धनार्थपिठरादिके नेक्ष्यते,
कथं क्षितिजलादिसङ्गगुण इष्यते चेतना ॥१६॥

अन्वयार्थ—(असत्) असत्तारूप पदार्थ **(उदीयते न च अपि)** उदय को भी प्राप्त नहीं होता है **(च वा)** अथवा **(सत् एव)** सत् पदार्थ ही **(न व्यज्यते)** प्रकट नहीं रहता है। **(सुराङ्गमदवत्)** शराब के अवयव से मद की तरह **(तथा)** तथा **(शिखिकलाप-वैचित्र्यवत्)** मयूर के पंखों की विचित्रता की तरह **(क्वचित्)** कभी भी **(मृतक-रन्धनार्थ-पिठरादिके)** मृतक को पकाने के लिए किसी बर्तन आदि में जीव **(न ईक्ष्यते)** नहीं देखा जाता है **(कथं)** फिर कैसे **(क्षितिजलादिसङ्गगुणः)** पृथ्वी, जल आदि की संगति का गुण **(चेतना)** चेतना **(इष्यते)** स्वीकारी जाये ?

आपका रूप आनन्ददायक है

प्रशान्तकरणं वपुर्विगतभूषणं चाऽपि ते,
समस्तजनचित्तनेत्र-परमोत्सवत्वं गतम्।
विनाऽऽयुधपरिग्रहाज्जिन! जितास्त्वया दुर्जयाः,
कषायरिपवोऽपरैर्न तु गृहीत-शस्त्रैरपि ॥१७॥

अन्वयार्थ—(ते) आपका **(वपुः)** शरीर **(प्रशान्तकरणं)** प्रशान्त इन्द्रिय वाला है **(च)** और **(विगतभूषणं)** आभूषण से रहित है **(अपि)** तो भी **(समस्तजन-चित्त-नेत्रपरमोत्सवं)** सभी जनों के चित्त और नेत्र को अत्यधिक आनन्दपने को **(गतं)** प्राप्त हुआ है **(जिन)** हे जिनेन्द्र! **(त्वया)** आपने **(आयुध-परिग्रहात्)** अस्त्र ग्रहण के बिना ही **(दुर्जयाः)** दुर्जय **(कषाय-रिपवः)** कषायरूपी शत्रुओं को **(जिताः)** जीता है **(तु)** किन्तु **(परैः)** अन्य **(गृहीतशस्त्रैः)** शस्त्रग्रहण करने वालों ने **(अपि)** भी **(न)** नहीं जीता है।

भगवान् के सर्वज्ञत्व की सिद्धि

धियान्तरतमार्थवद् गतिसमन्वयान्वीक्षणाद्-
भवेत्खपरिमाणवत्-क्वचिदिह प्रतिष्ठा परा।
प्रहाणमपि दृश्यते क्षयवतो निमूलात्क्वचित्,
तथाऽयमपि युज्यते ज्वलनवत्कषायक्षयः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(धिया) बुद्धि से **(अन्तरतमार्थवद्-गति-समन्वयान्वीक्षणात्)** अति घनिष्ठ पदार्थवानों की परिणति का समन्वय अच्छी तरह देखने से **(ख-परिमाणवत्)** आकाश के परिमाण के समान **(क्वचित्)** किसी जगह **(इह)** इस लोक में **(परा)** उत्कृष्ट **(प्रतिष्ठा)** प्रतिष्ठा **(भवेत्)** होती है **(क्षयवतः)** विनाशशील पदार्थ की **(क्वचित्)** कहीं **(निमूलात्)** जड़ से **(प्रहाणं अपि)** प्रकृष्ट हानि भी **(दृश्यते)** देखी जाती है **(तथा)** उसी प्रकार **(अयं)** यह **(कषायक्षयः)** कषायों का क्षय **(अपि)** भी **(ज्वलनवत्)** अग्नि के समान **(युज्यते)** घटित होता है।

सर्वज्ञ के पास पाप कैसे हो ?

अशेषविदिहेक्ष्यते सदसदात्म-सामान्यवि-
ज्जिन! प्रकृतिमानुषोऽपि किमुताखिलज्ञानवान्।

कदाचिदिह कस्यचित्क्वचिदपेतरागादिता,
स्फुटं समुपलभ्यते किमुत ते व्यपेतैनसः ॥१९॥

अन्वयार्थ—(सदसदात्म-सामान्यवित्) सत् असत् आत्मा सामान्य को जानने वाला **(अशेषवित्)** सर्वज्ञ है **(इह)** इस लोक में **(ईक्ष्यते)** ऐसा देखा जाता है **(जिन!)** हे जिन! **(प्रकृतिमानुषः अपि)** प्रकृति से मनुष्य होकर भी **(किमुत)** क्या **(अखिलज्ञानवान्)** आप समस्त ज्ञान वाले न होवे। **(कदाचित्)** कभी **(इह)** यहाँ **(कस्यचित्)** किसी को **(क्व चित्)** कहीं **(अपेतरागादिता)** राग आदि का अभाव **(स्फुटं)** स्पष्ट रूप से **(समुपलभ्यते)** प्राप्त होता है तो **(ते)** आप **(व्यपेतैनसः)** पाप से रहित को **(किमुत)** क्या वह रागादि प्राप्त हो सकता है?

आप्त का लक्षण अन्यत्र नहीं

अशेषपुरुषादितत्त्व - गतदेशनाकौशलं,
त्वदन्यपुरुषान्तरानुचित-माप्तता लाञ्छनम्।
कणादकपिलाक्षपाद मुनिशाक्यपुत्रोक्तयः,
स्खलन्ति हि सुचक्षुरादि-परिनिश्चितार्थेष्वपि ॥२०॥

अन्वयार्थ—(आप्तता-लाञ्छनं) आप्तपने का लक्षण **(अशेषपुरुषादि-तत्त्वगत-देशना-कौशलं)** समस्त पुरुष आदि तत्त्वगत देशना का कौशल है **(त्वदन्य-पुरुषान्तरानुचितं)** वह आपसे अन्य दूसरे आप्त पुरुषों को अनुचित है। **(कणाद-कपिलाक्षपाद-मुनि-शाक्य-पुत्रोक्तयः)** कणाद, कपिल, अक्षपाद मुनि, शाक्यपुत्र के वचन **(सुचक्षुरादि-परिनिश्चितार्थेषु अपि)** अच्छी तरह चक्षु आदि से निश्चित हुए पदार्थों में भी **(हि)** निश्चित रूप से **(स्खलन्ति)** स्खलन करते हैं।

एकान्तवादी का निर्वाण कैसे हो ?

परैरपरिणामकः पुरुष इष्यते सर्वथा,
प्रमाणविषयादितत्त्वपरिलोपनं स्यात्ततः।
कषायविरहान्न चाऽस्य विनिबन्धनं कर्मभिः,
कुतश्च परिनिर्वृतिः क्षणिकरूपतायां तथा ॥२१॥

अन्वयार्थ—(सर्वथा) एकान्तरूप से **(परैः)** अन्य किसी से **(अपरिणामकः)** परिणमन न करने वाला **(पुरुषः)** पुरुष **(इष्यते)** स्वीकारा जाता है तो **(ततः)**

उससे **(प्रमाणविषयादि-तत्त्वपरिलोपनं स्यात्)** प्रमाण का विषय आदि तत्त्वों का लोप हो जायेगा **(अस्य)** इस पुरुष/आत्मा का **(कर्मभिः)** कर्मों से **(विनिबन्धनं)** बन्धन **(कषायविरहात्)** कषाय से रहित होने से **(न च)** नहीं होता है **(तथा)** वैसा मानने पर **(क्षणिकरूपतायां)** क्षणिकरूपता में **(परि-निर्वृतिः)** निर्वाण **(कुतः च)** कैसे होवे ?

एकान्तमत में मुक्ति का अभाव है

मनो विपरिणामकं यदिह संसृतिं चाश्नुते,
तदेव व विमुच्यते पुरुषकल्पना स्याद् वृथा।
न चाऽस्य मनसो विकार उपपद्यते सर्वथा,
ध्रुवं तदिति हीष्यते द्वितयवादिता कोपिनी ॥२२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(विपरिणामकं)** परिणमन स्वभाव वाला **(मनः)** मन है **(इह)** वही इस जगत् में **(संसृतिं च)** संसार को **(अश्नुते)** प्राप्त करता है **(तत् एव च)** और वह मन ही **(विमुच्यते)** मुक्त होता है तो **(पुरुषकल्पना)** पुरुष की कल्पना ही **(वृथा)** व्यर्थ **(स्यात्)** होगी। **(अस्य)** इस पुरुष को **(मनसः)** मन का **(विकारः)** विकार **(सर्वथा)** एकान्ततः **(न च उपपद्यते)** उत्पन्न नहीं होता है **(तत्)** तो वह **(ध्रुवं)** ध्रुव है **(हि)** निश्चित ही **(इति)** इस प्रकार **(इष्यते)** माना जाता है **(द्वितयवादिता)** दोनों ही प्रकार का कथन **(कोपिनी)** कोप पैदा करने वाला है।

आपका शासन ही सुसंस्कृत है

पृथग्जनमनोनुकूल-मपरैः कृतं शासनम्,
सुखेन सुखमाप्यते न तपसेत्यवश्येन्द्रियैः।
प्रतिक्षणविभङ्गुरं सकलसंस्कृतं चेष्यते,
ननु स्वमतलोकलिङ्गपरिनिश्चयैर्व्याहितम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अपरैः) अन्य पुरुषों के द्वारा **(कृतं)** किया गया **(शासनं)** शासन **(पृथग्जनमनोनुकूलं)** असभ्यजनों के मन के अनुकूल है **(इति)** इस प्रकार **(अवश्येन्द्रियैः)** इन्द्रियों को वश में न करने वालों के द्वारा **(सुखेन)** सुख से **(सुखं)** सुख **(आप्यते)** प्राप्त किया जाता है। **(न तपसा)** तप के द्वारा नहीं। **(प्रतिक्षणं विभङ्गुरं)** प्रतिसमय भंगुर स्वभाव वाला है **(च)** किन्तु **(सकल-संस्कृतं)** पूर्ण संस्कृत शासन **(इष्यते)** माना जाता है **(स्वमत-लोक-लिंग-**

परिनिश्चयैः) अपने मत, लोक, लिंग के निश्चय से **(व्याहितं ननु)** क्या वह दोषपूर्ण नहीं है?

बौद्धमत खण्डन

न सन्ततिरनश्वरी न हि च नश्वरी नो द्विधा,
वनादिवदभाव एव यत इष्यते तत्त्वतः।
वृथैव कृषिदानशीलमुनिवन्दनादिक्रियाः,
कथञ्चिदविनश्वरी यदि भवेत्प्रतिज्ञाक्षतिः ॥२४॥

अन्वयार्थ–(सन्ततिः) वह सन्तति **(अनश्वरी न)** स्थायी नहीं है **(न हि च नश्वरी)** और वह नश्वर भी नहीं है **(नो)** और न **(द्विधा)** दोनों प्रकार की है **(यतः)** क्योंकि **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(वनादिवत्)** वन आदि की तरह **(अभाव एव)** उसका अभाव ही **(इष्यते)** माना है। **(कृषि-दान-शील-मुनिवन्दनादि-क्रियाः)** कृषि, दान, शील, मुनि की वन्दना आदि क्रियाएँ **(वृथा एव)** व्यर्थ ही हैं। **(यदि कथंचित्)** यदि वह सन्तति कथंचित् **(अविनश्वरी)** स्थायी है तो **(प्रतिज्ञाक्षतिः)** आपकी प्रतिज्ञा का भंग **(भवेत्)** होगा।

आपका स्वरूप मनुष्यों से विलक्षण है

अनन्यपुरुषोत्तमो मनुजतामतीतोऽपि स-
मनुष्य इति शस्यसे त्वमधुना नरैर्बालिशैः।
क्व ते मनुजगर्भिता क्व च विरागसर्वज्ञता
न जन्ममरणात्मता हि तव विद्यते तत्त्वतः ॥२५॥

अन्वयार्थ–(अनन्यपुरुषोत्तमः) आप विलक्षण श्रेष्ठ पुरुष हैं**(मनुजतां अतीतः अपि)** मनुष्यता से रहित होकर भी **(सः)** वह **(मनुष्यः)** मनुष्य है **(इति)** इस प्रकार **(बालिशैः)** मूर्ख **(नरैः)** मनुष्यों के द्वारा **(अधुना)** अभी **(त्वं)** आप **(शस्यसे)** कहे जाते हैं। **(क्व)** कहाँ **(ते)** आपका **(मनुजगर्भिता)** मनुष्यों में गर्भित होना **(क्व च)** और कहाँ **(विराग-सर्वज्ञता)** वीतराग, सर्वज्ञपना। **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(हि)** निश्चय से **(तव)** आपका **(जन्ममरणात्मता)** जन्म-मरणपना **(न विद्यते)** नहीं है।

भगवान् मनुष्यमात्र क्यों नहीं है?

स्वमातुरिह यद्यपि प्रभव इष्यते गर्भतो,
मलैरनुपसंप्लुतो वरसरोजपत्रेऽम्बुवत्।

हिताहितविवेक-शून्यहृदयो न गर्भेऽप्यभूः,
कथं तव मनुष्यमात्रसदृशत्वमाशङ्क्यते ॥२६॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में **(स्वमातुः)** अपनी माता के **(गर्भतः)** गर्भ से **(यद्यपि)** यद्यपि **(प्रभवः)** उत्पत्ति **(इष्यते)** आपकी मानी जाती है **(वर-सरोजपत्रे)** श्रेष्ठ कमल के पत्ते पर **(अम्बुवत्)** जल की तरह **(मलैः)** मल के द्वारा **(अनुपसंप्लुतः)** आप लिप्त नहीं हुए **(हिताहित-विवेक-शून्यहृदयः)** हित-अहित के विवेक से शून्य हृदय वाले आप **(गर्भे)** गर्भ में **(अपि)** भी **(न अभूः)** नहीं हुए **(कथं)** कैसे **(तव)** आपकी **(मनुष्यमात्र-सदृशत्वं)** मनुष्यमात्र के साथ समानपने को **(आशङ्क्यते)** आशंका की जा सकती है?

भगवान् के मृत्यु व बुढ़ापा नहीं है

न मृत्युरपि विद्यते प्रकृति-मानुषस्येव ते,
मृतस्य परिनिर्वृतिर्न मरणं पुनर्जन्मवत्।
जरा च न हि यद् वपुर्विमलकेवलोत्पत्तितः,
प्रभृत्यरुजमेकरूपमवतिष्ठते प्राङ् मृतेः ॥२७॥

अन्वयार्थ—(ते) आपकी **(प्रकृतिमानुषस्य इव)** प्रकृति से मनुष्य की तरह **(मृत्युः)** मृत्यु **(अपि)** भी **(न विद्यते)** नहीं है **(मृतस्य)** मृत पुरुष का **(परि-निर्वृतिः)** परिनिर्वाण **(न)** नहीं होता, किन्तु **(पुनर्जन्मवत्)** पुनर्जन्म की तरह **(मरणं)** मरण होता है। **(यत्)** चूँकि **(विमल केवलोत्पत्तितः)** निर्मल केवलज्ञान की उत्पत्ति से **(प्रभृति)** आगे **(मृतेः प्राङ्)** मरण से पहले **(वपुः)** आपका शरीर **(अरुजं)** रोगरहित **(एकरूपं)** एक समान **(अवतिष्ठते)** रहता है **(जरा च न हि)** इसलिए आपके बुढ़ापा नहीं है।

भगवान् का सुख कैसा है?

परः कृपणदेवकैः स्वयमसत्सुखैः प्रार्थ्यते,
सुखं युवतिसेवनादिपरसन्निधिप्रत्ययम्।
त्वया तु परमात्मना न परतो यतस्ते सुखं,
व्यपेतपरिणामकं निरुपमं ध्रुवं स्वात्मजम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(कृपणदेवकैः) दीन देव लोग **(स्वयं)** स्वयं **(असत्सुखैः)** जो सुखी नहीं हैं, वे **(परः)** पर की **(प्रार्थ्यते)** प्रार्थना करते हैं **(सुखं)** सुख **(युवतिसेवनादि-परसन्निधिप्रत्ययम्)** स्त्री सेवन आदि पर पदार्थ की सन्निधि

प्रत्यय से है। **(त्वया)** आप **(परमात्मना)** परमात्मा का **(सुखं)** सुख **(तु)** तो **(यतः)** चूँकि **(परतः)** पर से **(न)** नहीं है। **(ते)** आपका सुख **(व्यपेत परिणामकं)** वह सुख परिणमन से रहित **(निरुपमं)** निरुपम **(ध्रुवं)** ध्रुव **(स्वात्मजं)** अपनी आत्मा से उत्पन्न होता है।

नृत्य आदि करने वाला भगवान् नहीं होता

पिशाचपरिवारितः पितृवने नरीनृत्यते,
क्षरद्रुधिर- भीषणद्विरदकृत्तिहेलापटः।
हरो हसति चायतं कहकहाट्टहासोल्वणं,
कथं परमदेवतेति परिपूज्यते पण्डितैः ॥२९॥

अन्वयार्थ—(पिशाचपरिवारितः) पिशाचों से घिरा हुआ **(पितृवने)** श्मशान में **(नरीनृत्यते)** जो खूब नाचता है **(क्षरद्-रुधिर-भीषण-द्विरद-कृत्ति-हेलापटः)** निरन्तर भयानक खून रिसते हुए दाँतों से मृगचर्म पर प्रेमालिंगन करता है **(हरः)** वह हर **(कहकहाट्टहासोल्वणं)** कहकहा कर अट्टहास से **(च)** और **(आयतं)** मुँह फाड़कर **(हसति)** हँसता है। **(इति)** इस तरह **(कथं)** कैसे **(परमदेवता)** वह परमदेवता हो, जो **(पण्डितैः)** पण्डितों से **(परिपूज्यते)** पूजा जाये ?

मांसादिसेवी भगवान् नहीं होता ?

मुखेन किल दक्षिणेन पृथुनाऽखिल-प्राणिनां,
समत्ति शवपूतिमज्जरुधिरान्त्रमांसानि च।
गणैः स्वसदृशैर्भृशं रतिमुपैति रात्रिंदिवं,
पिबत्यपि च यः सुरां स कथमाप्ततापात्रम् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(पृथुना) विशाल **(दक्षिणेन)** दक्षिण **(मुखेन)** मुख से **(किल)** निश्चित ही **(अखिलप्राणिनां)** समस्त प्राणियों के **(शव-पूति-मज्ज-रुधिरान्त्रमांसानि)** शव, दुर्गन्ध युक्त मज्जा, रक्त, आँत, मांस को जो **(समत्ति)** खाता है **(च)** और **(स्वसदृशैः)** अपने जैसे ही **(गणैः)** गणों के साथ **(रात्रिंदिवं)** दिनरात **(भृशं)** खूब **(रतिम्)** रति को **(उपैति)** प्राप्त करता है **(च)** और **(यः)** जो **(सुरां)** शराब **(अपि)** भी **(पिबति)** पीता है **(सः)** वह **(आप्ततापात्रं)** आप्तपने का पात्र **(कथम्)** कैसे हो ?

पूर्वोक्त दोषों से सहित भगवान् नहीं है

अनादिनिधनात्मकं सकलतत्त्वसंबोधनं,
समस्तजगदाधिपत्यमथ तस्य सन्तृप्तता।
तथा विगतदोषता च किल विद्यते यन्मृषा,
सुयुक्तिविरहान्न चाऽस्ति परिशुद्धतत्त्वागमः ॥३१॥

अन्वयार्थ—(तस्य) उस हर के **(अथ)** यदि **(संतृप्तता)** सन्तुष्टि है **(तथा विगतदोषता)** तथा दोषों से रहितपना **(विद्यते)** विद्यमान है, जो **(अनादि-निधनात्मकं)** अनादि-अनिधन रूप है **(सकलतत्त्वसंबोधनं)** समस्त तत्त्वों को जानता है, **(समस्तजगदाधिपत्यं)** समस्त संसार पर जो आधिपत्य रखता है **(किल च)** निश्चित ही **(यत् मृषा)** यह झूठ है **(सुयुक्तिविरहात्)** यह तथ्य श्रेष्ठ युक्तियों से रहित होने से **(परिशुद्धतत्त्वागमः)** शुद्ध तत्त्व का ज्ञान **(न च अस्ति)** यह नहीं है।

भगवान् के पास परिग्रह नहीं होता है

कमण्डलुमृगाजिनाक्षवलयादिभिर्ब्रह्मणः,
शुचित्वविरहादिदोषकलुषत्वमभ्यूह्यते।
भयं विघृणता च विष्णुहरयोः सशस्त्रत्वतः,
स्वतो न रमणीयता च परिमूढता भूषणात् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्मणः) ब्रह्मा को **(कमण्डलु-मृगाजिनाक्षवलयादिभिः)** कमण्डलु, मृगचर्म, अक्षवलय आदि के द्वारा **(शुचित्व-विरहादि-दोष-कलुषत्वम्)** शुचिपना, विरह आदि दोष और कलुषपना **(अभ्यूह्यते)** विचारे जाते हैं **(च)** और **(विष्णुहरयोः)** विष्णु और हर की **(भयं)** भय **(विघृणता)** घृणा **(सशस्त्रत्वतः)** सशस्त्र होने से जानी जाती है **(स्वतः)** स्वयं से **(रमणीयता)** सुन्दरता **(न)** नहीं है **(च भूषणात्)** तो आभूषणों से **(परिमूढता)** मूढ़ता होती है।

भगवान् सृष्टि का संहारक / उत्पादक नहीं

स्वयं सृजति चेत्प्रजाः किमिति दैत्यविध्वंसनं,
सुदुष्टजननिग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम्।
कृतात्मकरणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला,
स्वभाव इति चेन्मृषा स हि सुदुष्ट एवाऽऽप्यते ॥३३॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि ब्रह्मा **(प्रजाः)** प्रजा का **(स्वयं)** स्वयं **(सृजति)** सृजन करता है **(किमिति)** तो क्यों **(दैत्यविध्वंसनं)** दैत्यों का नाश करता है **(सुदुष्टजननिग्रहार्थं)** बहुत दुष्ट जनों का निग्रह करने के लिए **(इति चेत्)** यदि ऐसा करता है तो **(असृष्टिः)** नहीं बनाना ही **(वरम्)** ठीक था **(कृतात्म-करणीयकस्य)** स्वयं करणीय को करने वाले ब्रह्मा का **(जगतां)** संसार की **(कृतिः)** रचना **(निष्फला)** निष्फल करना **(इति चेत्)** इस प्रकार यदि **(स्वभावः)** स्वभाव है **(मृषा)** तो यह झूठ है **(स हि सुदुष्टः एव)** वह तो निश्चित ही बहुत दुष्ट ही **(आप्यते)** प्राप्त होता है।

आपसे भिन्न कोई आप्त नहीं

प्रसन्नकुपितात्मनां नियमतो भवेद्दुःखिता,
तथैव परिमोहिता भयमुपद्रुतिश्चामयैः।
तृषाऽपि च बुभुक्षया च न च संसृतिश्छिद्यते,
जिनेन्द्र! भवतोऽपरेषु कथमाप्तता युज्यते ॥३४॥

अन्वयार्थ—(प्रसन्न-कुपितात्मनां) प्रसन्न और कुपित आत्माओं को **(नियमतः)** नियम से **(दुःखिता)** दुखीपना **(भवेत्)** होता है **(तथैव)** उसी प्रकार **(परिमोहिता)** सबको मोहित करना **(भयं)** डर होना **(च)** और **(आमयैः)** रोगों से **(उपद्रुतिः)** परेशान होना **(बुभुक्षया)** बुभुक्षा होने से **(तृषा अपि)** प्यास भी होना **(संसृतिः)** संसार का **(च न छिद्यते)** नाश नहीं करता है **(जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्र! **(भवतः)** आपसे **(अपरेषु)** भिन्न अन्य जनों में **(आप्तता)** आप्तता **(कथं)** कैसे **(युज्यते)** बन सकती है ?

अनायतन की सेवा नरक का कारण

कथं स्वयमुपद्रुताः परसुखोदये कारणं,
स्वयं रिपुभयार्दिताश्च शरणं कथं बिभ्यताम्।
गतानुगतिकैरहो त्वदपरत्र भक्तैर्जनै-
रनायतनसेवनं निरय - हेतुरङ्गीकृतम् ॥३५॥

अन्वयार्थ—(स्वयं) स्वयं **(उपद्रुताः)** जो पीड़ित हैं वे **(कथं)** कैसे **(परसुखोदये)** दूसरों के सुख के उदय में **(कारणं)** कारण हों? **(स्वयं)** जो स्वयं **(रिपुभयार्दिताः च)** शत्रु और भय से पीड़ित हैं वे **(कथं)** कैसे **(बिभ्यतां)** डरे हुओं को **(शरणं)** शरण दें **(अहो!)** आश्चर्य है कि **(गतानुगतिकैः)** गतानुगतिक **(भक्तैः**

जनैः) भक्त जनों ने **(त्वत् अपरत्र)** आपसे भिन्न अन्य जनों में **(अनायतन-सेवनम्)** अनायतन की सेवा **(निरयहेतुः)** नरक के लिए कारण **(अङ्गीकृतम्)** स्वीकार की है।

शुभ-अशुभ-प्रवृत्ति कर्मबन्ध का कारण

सदा हननघातनाद्यनुमतिप्रवृत्तात्मनां,
प्रदुष्टचरितोदितेषु परिहृष्यतां देहिनाम्।
अवश्यमनुषज्यते दुरितबन्धनं तत्त्वतः,
शुभेऽपि परिनिश्चितस्त्रिविधबन्धहेतुर्भवेत् ॥३६॥

अन्वयार्थ—(सदा) सदा **(हनन-घातनाद्यनुमति-प्रवृत्तात्मनां)** नाश करना, घात करना आदि की अनुमति में प्रवृत्त आत्माओं को और **(प्रदुष्टचरितोदितेषु)** प्रकृष्ट रूप से दुष्ट चरित्र का जिनमें उदय है उनमें **(परिहृष्यतां)** प्रसन्न रहने वाले **(देहिनां)** प्राणियों को **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(दुरितबन्धनं)** पाप का बन्ध **(अवश्यं)** अवश्य **(अनुषज्यते)** होता है **(शुभे अपि)** शुभ में भी **(त्रिविध-बन्धहेतुः)** तीन प्रकार के बन्ध का कारण **(परिनिश्चितः)** निश्चित **(भवेत्)** होता है।

क्या भगवान् ने स्वर्ग, मोक्ष की क्रियाओं का उपदेश दिया है?

विमोक्षसुखचैत्यदानपरिपूजनाद्यात्मिकाः,
क्रिया बहुविधासुभृन्मरणपीडना हेतवः।
त्वया ज्वलितकेवलेन न हि देशिताः किं नु ताः,
त्वयि प्रसृतभक्तिभिः स्वयमनुष्ठिताः श्रावकैः ॥३७॥

अन्वयार्थ—(विमोक्ष-सुख-चैत्यदान-परिपूजनाद्यात्मिकाः) मोक्ष, सुख, चैत्य, दान, पूजन आदि रूप **(क्रियाः)** क्रियाएँ **(बहुविधासुभृन्मरण-पीडनाः)** बहुत प्रकार के जीवों के मरण और उनकी पीड़ा वाली **(हेतवः)** तथा उसमें कारणरूप हैं **(त्वया)** आप **(ज्वलितकेवलेन)** केवलज्ञान से प्रकाशित आत्मा ने वे क्रियाएँ **(किं नु)** क्या **(न हि देशिताः)** नहीं कही हैं? **(ताः)** वे क्रियाएँ **(त्वयि)** आपमें **(प्रसृतभक्तिभिः)** भक्ति रखने वाले **(श्रावकैः)** श्रावकों ने **(स्वयं अनुष्ठिताः)** स्वयं अनुष्ठान में कर ली हैं।

श्रुतप्रमाण से सब क्रियाएँ जानी जाती हैं

त्वया त्वदुपदेशकारि-पुरुषेण वा केनचित्,
कथंचिदुपदिश्यते स्म जिन! चैत्यदान-क्रिया।
अनाशकविधिश्च केशपरिलुञ्चनं चाऽथवा,
श्रुतादनिधनात्मका-दधिगतं प्रमाणान्तरात् ॥३८॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(त्वया)** आपने **(वा)** अथवा **(केनचित्)** किसी **(त्वदुपदेशकारिपुरुषेण)** आपका उपदेश करने वाले पुरुष ने **(कथंचित्)** कथंचित् **(चैत्यदानक्रिया)** चैत्य, दान क्रिया **(उपदिश्यते स्म)** कही है **(च)** और **(अनाशकविधिः)** आत्मा की विधि **(केशपरिलुंचनं)** केशलुंचन **(अथवा)** अथवा **(प्रमाणान्तरात्)** किसी अन्य प्रमाण से **(अनिधनात्मकात्)** अविनाशी **(श्रुतात्)** श्रुत से **(अधिगतं)** जानी है।

आपका मत बहुत गहन है

न चासुपरिपीडनं नियमतोऽशुभायेष्यते
त्वया न च शुभाय वा न हि च सर्वथा सत्यवाक्।
न चाऽपि दमदानयोः कुशलहेतुतैकान्ततो
विचित्र-नयभङ्गजाल-गहनं त्वदीयं मतम् ॥३९॥

अन्वयार्थ—(असुपरिपीडनं) किसी के प्राणों को दुख पहुँचाना **(नियमतः)** नियम से **(अशुभाय)** अशुभ के लिए **(न च)** भी नहीं **(इष्यते)** स्वीकारा है **(त्वया)** आपने **(शुभाय)** शुभ के लिए **(न च)** नहीं कहा है **(वा)** तथा **(सर्वथा)** एकान्त से **(सत्यवाक्)** सत्यवचन बोलना **(न हि च)** शुभ के लिए नहीं है **(एकान्ततः)** एकान्त रूप से **(दम-दानयोः)** दम, दान में **(अपि)** भी **(कुशलहेतुता)** पुण्य की कारणता **(न च)** नहीं है। **(त्वदीयं)** आपका **(मतं)** मत **(विचित्रनयभङ्गजालगहनं)** विचित्र नयों के भंगसमूह से बड़ा गहन है।

'जिन' आप ही हैं

त्वयाऽपि सुखजीवनार्थ-मिह शासनं चेत्कृतं,
कथं सकलसंग्रह-त्यजनशासिता युज्यते।
तथा निरशनार्द्ध-भुक्तिरसवर्जनाद्-युक्तिर्भि-
जितेन्द्रियतया त्वमेव जिन इत्यभिख्यां गतः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(त्वया अपि) आपने भी **(चेत्)** यदि **(इह)** यहाँ **(सुख-जीवनार्थं)**

सुख से जीवन चलाने के लिए **(शासनं)** शासन **(कृतं)** बनाया है तो **(सकल-संग्रह-त्यजनशासिता)** समस्त परिग्रह के त्याग का उपदेश **(कथं)** कैसे **(युज्यते)** उचित होता **(तथा)** तथा **(निरशनार्द्धभुक्ति-रसवर्जनाद्युक्तिभिः)** अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग आदि कथन के द्वारा **(जितेन्द्रियतया)** जितेन्द्रियपना होने से **(त्वम् एव)** आप ही **(जिन)** 'जिन' **(इति)** इस प्रकार **(अभिख्यां गतः)** संज्ञा को प्राप्त हुए हैं।

श्वेताम्बर मत खण्डन

जिनेश्वर! न ते मतं पटकवस्त्र-पात्रग्रहो,
विमृश्य सुखकारणं स्वय-मशक्तकैः कल्पितः॥
अथायमपि सत्पथस्तव भवेद् वृथा नग्नता,
न हस्तसुलभे फले सति तरुः समारुह्यते ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जिनेश्वर!) हे जिनेश्वर! **(ते)** आपके **(मतं)** मत में **(पटक-वस्त्र-पात्रग्रहः)** रुई का कपड़ा, वस्त्र, पात्र का ग्रहण **(न)** नहीं है **(सुखकारणं)** सुख का कारण **(विमृश्य)** विचार करके **(स्वयं)** स्वयं ही **(अशक्तकैः)** असमर्थ जनों ने **(कल्पितः)** कल्पना कर ली है **(अथ)** यदि **(अयं अपि)** यह भी **(सत्पथः)** समीचीन पथ हो तो **(तव)** आपकी **(नग्नता)** नग्नता **(वृथा भवेत्)** व्यर्थ ही ठहरे! **(हस्तसुलभे)** हस्तसुलभ **(फले सति)** फल होने पर **(तरुः)** वृक्ष पर **(समारुह्यते न)** आरोहण नहीं किया जाता है।

परिग्रह वालों को शुक्लध्यान नहीं

परिग्रहवतां सतां भय-मवश्य-मापद्यते,
प्रकोपपरिहिंसने च परुषानृतव्याहृती।
ममत्वमथ चोरतो स्वमनसश्च विभ्रान्तता,
कुतो हि कलुषात्मनां परमशुक्लसद्ध्यानता ॥४२॥

अन्वयार्थ—(परिग्रहवतां) परिग्रह रखने वाले **(सतां)** पुरुषों को **(भयं)** भय **(अवश्यं)** अवश्य **(आपद्यते)** प्राप्त होता है **(च)** और **(प्रकोप-परिहिंसने)** प्रकोप, हिंसा में **(परुषानृतव्याहृती)** कठोर, असत्य वचन है **(अथ)** तथा **(चोरतः)** चोरी से **(ममत्वं)** ममत्व **(च)** और **(स्वमनसः)** अपने मन का **(विभ्रान्तता)** विभ्रान्तपन होता है **(कलुषात्मनां)** कलुष आत्माओं को **(परम-शुक्ल-सद्ध्यानता)** परम शुक्ल सद्ध्यानता **(कुतः हि)** कैसे हो सकती है?

पात्र में भोजन इकट्ठा करके खाने का दोष

स्वभाजनगतेषु पेय-परिभोज्यवस्तुष्वमी,
यदा प्रतिनिरीक्षितास्तनुभृतः सुसूक्ष्मात्मिकाः।
तदा क्वचिदपोज्झने मरणमेव तेषां भवे,
दथाऽप्यभिनिरोधनं बहुतरात्म-संमूर्च्छनम् ॥४३॥

अन्वयार्थ—(पेय-परिभोज्यवस्तुषु) पेय पदार्थ और भोज्य वस्तुओं का **(स्वभाजनगतेषु)** अपने भाजन में आने पर **(यदा)** जब **(प्रतिनिरीक्षिताः)** पुनः देखा जाता है तो **(अमी)** यह **(सुसूक्ष्मात्मिकाः)** अत्यन्त सूक्ष्म **(तनुभृतः)** प्राणी **(तदा)** तब **(क्वचित्)** कभी **(तेषां)** उन जीवों के **(अपोज्झने)** हटाने में **(मरणं एव)** मरण ही **(भवेत्)** होता है **(अथाऽपि)** और फिर **(बहुतरात्म-सम्मूर्छनम्)** बहुत से सम्मूर्छन जीवों का **(अभिनिरोधनं)** रुकना सम्भव नहीं है।

दिगम्बरों को कर्मबन्ध नहीं

दिगम्बरतया स्थिताः स्वभुज-भोजिनो ये सदा,
प्रमाद-रहिताशयाः प्रचुरजीव-हत्यामपि।
न बन्धफलभागिनस्त इति गम्यते येन ते,
प्रवृत्त-मनुबिभ्रति स्वबलयोग्य-मद्याप्यपि ॥४४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो **(दिगम्बरतया)** दिगम्बर रूप से **(स्थिताः)** स्थित हुए **(सदा)** सदा **(स्वभुजभोजिनः)** अपनी भुजा **(हाथ)** में भोजन करते हैं **(प्रमाद-रहिताशयाः)** प्रमादरहित आशय वाले हैं, वे **(प्रचुरजीवहत्यां अपि)** प्रचुर जीवहत्या में भी **(बन्धफलभागिनः)** बन्धफल के भागी **(न)** नहीं हैं **(इति)** इस प्रकार **(गम्यते)** जाना जाता है **(येन)** जिससे **(ते)** वे **(प्रवृत्तं)** उसी चलन को **(अनुबिभ्रति)** धारण करते हैं **(अद्य अपि)** आज भी **(अमी)** ये दिगम्बर लोग **(स्वबलयोग्यं)** अपने बल के योग्य उसी प्रवृत्ति को करते हैं।

प्राणीपीड़ा से तप भी हिंसा है

यथागमविहारिणा - मशनपानभक्ष्यादिषु,
प्रयत्नपरचेतसा - मविकलेन्द्रिया - लोकिनाम्।
कथञ्चिदसुपीडनाद्-यदि भवेदपुण्योदय-
स्तपोऽपि वध एव ते स्वपरजीवसन्तापनात् ॥४५॥

अन्वयार्थ—(अशनपान-भक्ष्यादिषु) भोजन, पान, भक्ष्य आदि पदार्थों में **(यथागमविहारिणां)** आगम के अनुसार विहार करने वाले **(प्रयत्न-पर-चेतसां)** प्रयत्न में तत्पर चित्त वाले **(अविकलेन्द्रियालोकिनां)** पूर्णरूप से इन्द्रियों से देखने वाले श्रमणों को **(कथंचित्)** कथंचित् **(असुपीडनात्)** प्राणों की पीड़ा होने से **(यदि अपुण्योदयः)** पाप का उदय **(भवेत्)** होवे **(ते)** तो उनका **(तपः अपि)** तप भी **(स्वपरजीव-सन्तापनात्)** स्व-पर जीव को सन्ताप देने से **(वधः एव)** वध ही है।

दिगम्बर साधु की चर्या निर्दोष है

मरुज्ज्वलन-भूपयःसु नियमात्-क्वचिद् युज्यते,
परस्पर-विरोधितेषु विगतासुता सर्वदा।
प्रमाद-जनितागसां क्वचिदपोहनं स्वागमात्,
कथं स्थितिभुजां सतां गगनवाससां दोषिता ॥४६॥

अन्वयार्थ—(मरुज्ज्वलन-भू-पयःसु) हवा, अग्नि, पृथ्वी और जल में **(नियमात्)** नियम से **(क्वचित्)** कहीं **(विगतासुता)** प्राणों का हनन **(युज्यते)** हो जाता है **(परस्परविरोधितेषु)** परस्पर में विरोधी जीवों में प्राणी वध **(सर्वदा)** हमेशा है **(प्रमादजनितागसां)** प्रमाद से उत्पन्न पापों का **(क्वचित्)** कहीं **(स्वागमात्)** अपने आगम से **(अपोहनं)** हटाना होता है **(स्थितिभुजां)** खड़े होकर भोजन करने वाले **(गगनवाससां)** दिगम्बर **(सतां)** साधुओं को **(दोषिता)** दोषपना **(कथं)** कैसे हो ?

मोक्ष क्या है ?

परैरनघ! निर्वृतिः स्वगुणतत्त्वविध्वंसनं,
व्यघोषि कपिलादिभिश्च पुरुषार्थविभ्रंशनम्।
त्वया सुमृदितैनसा ज्वलितकेवलौघश्रिया,
ध्रुवं निरुपमात्मकं सुखमनन्तमव्याहतम् ॥४७॥

अन्वयार्थ—(अनघ!) हे पापरहित भगवन्! **(परैः)** अन्य दार्शनिकों ने **(निर्वृतिः)** मोक्ष **(स्वगुणतत्त्वविध्वंसनं)** अपने गुणों और स्वतत्त्व का नाश होना **(व्यघोषि)** कहा है, **(कपिलादिभिः च)** और कपिल आदि ने भी **(पुरुषार्थ-विभ्रंशनं)** पुरुषार्थ का नाश होना कहा है **(त्वया)** आप **(सुमृदितैनसा)** पाप का अच्छी तरह मर्दन करने वाले भगवान् ने **(ज्वलितकेवलौघश्रिया)** प्रकाशमान केवलज्ञान

समूह की लक्ष्मी से **(ध्रुवं)** ध्रुव **(निरुपमात्मकं)** निरुपम स्वरूप **(अनन्तं)** अनन्त **(अव्याहतं)** अविनश्वर **(सुखं)** सुख को मोक्ष कहा।

आत्मा ही केवलज्ञान मोक्ष अभावात्मक नहीं है

निरन्वय-विनश्वरी जगति मुक्ति-रिष्टापरै-
र्न कश्चिदिह चेष्टते स्वव्यसनाय मूढेतरः।
त्वयाऽनुगुणसंहते - रतिशयोप-लब्ध्यात्मिका,
स्थितिः शिवमयी प्रवचने तव ख्यापिता ॥४८॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो! **(परैः)** अन्य लोगों ने **(जगति)** संसार में **(निरन्वयविनश्वरी)** अन्वयरहित विनाशी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(इष्टा)** मानी है **(इह)** इस लोक में **(कश्चित्)** कौन **(मूढेतरः)** बुद्धिमान् **(स्वव्यसनाय)** अपने दुख के लिए **(न चेष्टते)** चेष्टा नहीं करता है **(त्वया)** आपके द्वारा **(अनुगुण-संहतेः)** गुणों के समूह के अनुरूपता से **(अतिशयोपलब्ध्यात्मिका)** अतिशय उपलब्धि स्वरूप मुक्ति **(तव)** आपके **(प्रवचने)** उपदेश में **(शिवमयी)** मोक्षमयी **(स्थितिः)** स्थिति **(ख्यापिता)** कही है।

भक्ति मोक्ष का साधन है

इयत्यपि गुणस्तुतिः परमनिर्वृतेः साधनी,
भवत्यलमतो जनो व्यवसितश्च तत्काङ्क्षया।
विरंस्यति च साधुना रुचिरलोभलाभे सतां,
मनोभिलषिताप्तिरेव ननु च प्रयासावधिः ॥४९॥

अन्वयार्थ—**(इयती अपि)** इतनी भी **(गुणस्तुतिः)** गुणों की स्तुति **(परमनिर्वृतेः)** परम निर्वृति की **(अलं)** पर्याप्त **(साधनी)** साधन **(भवति)** है **(अतः)** इसलिए **(च तत्काङ्क्षया)** उस कांक्षा से **(जनः)** मनुष्य **(व्यवसितः)** व्यवसाय करता है **(च)** तथा **(साधुना)** साधु पुरुष **(रुचिरलोभलाभे)** इच्छित लोभ का लाभ होने पर **(विरंस्यति)** विराम को प्राप्त हो जाता है **(सतां)** सज्जनों के **(मनोऽभिलषिताप्तिः)** मन की अभिलषित वस्तु की प्राप्ति **(एव)** ही **(ननु च)** निश्चित रूप से **(प्रयासावधिः)** प्रयास की सीमा है।

भक्ति ही मुक्ति देती है

इति मम मतिवृत्या संहतिं त्वद्गुणाना-
मनिशममितशक्तिं संस्तुवानस्य भक्त्या।

सुखमनघमनंतं स्वात्मसंस्थं महात्मन्,
जिन! भवतु महत्या केवलं श्रीविभूत्या ॥५०॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(मम)** मेरी **(मतिवृत्या)** बुद्धि की प्रवृत्ति से **(त्वत् गुणानां)** आपके गुणों के **(अमितशक्तिं)** अपरिमित शक्ति **(संहतिं)** समूह की **(अनिशं)** निरन्तर **(संस्तुवानस्य)** स्तुति करने वाले पुरुष को **(भक्त्या)** भक्ति के द्वारा **(जिन!)** हे जिनेन्द्र! **(महात्मन्)** हे महात्मन्! **(महत्या)** महती **(श्रीविभूत्या)** लक्ष्मी, वैभव के साथ **(केवलं)** केवलज्ञान और **(अनघं)** निष्पाप **(अनन्तं)** अनन्त **(स्वात्मसंस्थं)** अपनी आत्मा में स्थित **(सुखं)** सुख **(भवतु)** होवे।

❑ ❑ ❑

भजन

संत साधु बनके विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पड़ूँ में मोक्ष पथ पर, वह घड़ी कब आयेगी॥
हाथ में पिच्छी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घर बार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी॥
संत साधु .....॥
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी॥
संत साधु .....॥
पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ।
भावना बारह जूँ भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी॥
संत साधु .....॥
बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिन्तन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि,वह घड़ी कब आयेगी॥
संत साधु .....॥

भावना द्वात्रिंशतिका

ईसा की नवमीं शताब्दी में आचार्य अमितगति द्वारा उपजाति छन्द के ३२ पद्यों में रचित यह काव्य अत्यन्त सरल एवं हृदय को पवित्र करने वाला है। इसके पढ़ने से पवित्र एवं उच्च भावनाओं का संचार होता है। इसमें प्राणीमात्र के प्रति मैत्री की भावना, मिथ्या आचरण की निन्दा, आराध्य देव की स्तुति एवं पर पदार्थों से भिन्न आत्मानुभूति का अत्यन्त सरस और हृदय को पावन करने वाला वर्णन किया है। सामायिक करने के पहले अथवा बाद में इसका पाठ करने की परम्परा प्रचलित है।

व्रती-हृदय की मंगल भावना

मूल (उपजातिवृत्तम्)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥१॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे भगवन्! **(मम आत्मा)** मेरी आत्मा **(सदा)** हमेशा **(सत्त्वेषु)** सभी प्राणियों पर **(मैत्रीम्)** मैत्री भाव को **(गुणिषु)** गुणीजनों में **(प्रमोदम्)** प्रमोदभाव/आह्लाद को **(क्लिष्टेषु जीवेषु)** दुखी जीवों पर **(कृपा-परत्वम्)** करुणाभाव में तत्परता को **(विपरीतवृत्तौ)** विपरीत प्रवृत्ति वालों पर **(माध्यस्थ्यभावम्)** माध्यस्थ्य/तटस्थ्य भाव को **(विदधातु)** धारण करे।

भेदविज्ञानी शक्ति प्रकट हो

मूल (उपजातिवृत्तम्)

शरीरतः कर्तुमनन्त - शक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः ॥२॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(तव प्रसादेन)** आपकी कृपा से **(अनन्तशक्तिम्)** अनन्तशक्ति वाले **(अपास्त-दोषम्)** सर्व दोषों से रहित **(आत्मानम्)** अपने आत्मा को **(कोषात्)** म्यान से **(खड्गयष्टिम् इव)** तलवार की भाँति **(शरीरतः)** शरीर से **(विभिन्नम्)** पृथक् **(कर्तुम्)** करने के लिए **(मम शक्तिः)** मेरे शक्ति **(अस्तु)** हो।

सदा समता भाव रहे

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ! ॥३॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! **(निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः)** समस्त चेतन-अचेतन पर पदार्थों से दूर कर दिया है ममत्व बुद्धि को जिसने ऐसा **(मे)** मेरा **(मनः)** मन **(दुःखे सुखे)** दुख में, सुख में, **(वैरिणि बंधुवर्गे)** शत्रु में, बंधु-वर्ग में, **(योगे वियोगे)** संयोग में, वियोग में **(वा)** अथवा **(भवने वने)** भवन में और वन में **(सदा अपि)** हमेशा ही **(समम् अस्तु)** एक समान हो।

हृदय में चरण विराजमान रहें

मूल (द्वादशाक्षरी-उपजातिवृत्तम्)

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनीश्वर! **(तमोधुनानौ दीपकौ इव)** अन्धकार के विनाशक दो दीपकों के समान **(त्वदीयौ पादौ)** आपके दोनों चरण **(सदा)** सदा **(मम हृदि)** मेरे हृदय में **(लीनौ इव)** लीन हुए के समान **(कीलितौ इव)** कीलित हुए के समान **(निखातौ इव)** खोदे हुए के समान **(स्थिरौ बिम्बितौ इव)** स्थिर हुए प्रतिबिम्ब के समान **(तिष्ठताम्)** विराजमान रहें।

मेरा दुष्कृत मिथ्या हो

मूल (द्वादशाक्षरी-आख्यानकीवृत्तम्)

एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(इतस्ततः)** इधर-उधर **(प्रमादतः संचरता)** प्रमादपूर्वक विचरण करते हुए मेरे द्वारा **(यदि)** अगर **(एकेन्द्रियाद्याः)** एकेन्द्रिय आदि **(देहिनः)** प्राणी **(क्षताः)** घायल किए गए हों **(विभिन्नाः)** पृथक् कर दिए गए हों **(मिलिताः)** परस्पर में मिला दिए गए हों या **(निपीडिताः)** पेल दिये गए हों **(तदा)** तो **(तत् दुरनुष्ठितम्)** वह दुराचरण/पाप **(मिथ्या)** निष्फल **(अस्तु)** हो।

मेरा दुष्कृत मिथ्या हो

मूल (द्वादशाक्षरी-उपजातिवृत्तम्)

विमुक्तिमार्ग - प्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो! ॥६॥

अन्वयार्थ—(प्रभो!) हे नाथ! **(विमुक्तिमार्ग-प्रतिकूल-वर्तिना)** मोक्षमार्ग से प्रतिकूल आचरण करने वाले **(मया दुर्धिया)** मुझ दुर्बुद्धि द्वारा **(कषायाक्ष-वशेन)** कषाय और इन्द्रियों के वश से **(चारित्र-शुद्धेः)** चारित्र की शुद्धि का **(यत् लोपनम्)** जो विलोप **(अकारि)** किया गया हो **(मम)** मेरा **(तत् दुष्कृतम्)** वह दुराचरण/पाप **(मिथ्या)** निष्फल **(अस्तु)** हो।

संचित पाप नष्ट करता हूँ

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवचःकाय-कषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(भिषक् इव) वैद्य जिस तरह **(मंत्र-गुणैः)** मंत्रों के प्रभाव द्वारा **(अखिलं विषम्)** समस्त विष को नष्टकर देता है उसी तरह **(अहम्)** मैं **(विनिन्दनालोचन-गर्हणैः)** निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा **(मनो-वचः काय-कषायनिर्मितम्)** मन, वचन, काय और कषाय से उपार्जित **(भव-दुःखकारणम्)** सांसारिक दुख के कारणभूत **(पापम्)** पाप को **(निहन्मि)** नष्ट करता हूँ।

शुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करता हूँ

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र-कर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र भगवन्! मैंने **(विमतेः)** दुर्बुद्धि और **(प्रमादतः)** प्रमाद से **(सुचरित्र-कर्मणः)** सम्यक्/उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का **(यत्)** जो **(अतिक्रमम्)** अतिक्रम **(व्यतिक्रमम्)** व्यतिक्रम **(अतिचारम्)** अतिचार और **(अनाचारम् अपि)** अनाचार भी **(व्यधाम्)** किया हो **(तस्य)** उसकी **(शुद्धये)** शुद्धि के लिये **(प्रतिक्रमम्)** प्रतिक्रमण **(करोमि)** करता हूँ।

चतुर्विध दोष दूर होवे

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

क्षतिं मनःशुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील-वृतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(प्रभो!) हे प्रभो! **(इह)** इसलोक में **(मनःशुद्धिविधेः)** मन की पवित्रता की विधि/रीति के **(क्षतिम्)** विनाश को **(अतिक्रमम्)** अतिक्रम **(शीलवृतेः)** शीलरूपी बाड़ के **(विलङ्घनम्)** उल्लंघन को **(व्यतिक्रमम्)** व्यतिक्रम **(विषयेषु)** पंचेन्द्रियों के विषयों में **(वर्तनम्)** प्रवृत्ति करने को **(अतिचारम्)** अतिचार और **(अतिसक्तताम्)** अति आसक्ति को **(अनाचारम्)** अनाचार **(वदन्ति)** कहते हैं।

सरस्वती केवलज्ञान लब्धि प्रदान करे

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यदर्थमात्रा - पदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(मया) मेरे द्वारा **(प्रमादात्)** प्रमाद से **(यदि)** अगर **(अर्थ-मात्रा-पद-वाक्यहीनम्)** अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से रहित **(यत्)** जो **(किञ्चन)** कुछ **(उक्तम्)** कहा गया हो तो **(सरस्वती देवी)** सरस्वती देवी **(मे)** मेरे **(तत्)** उस दोष को **(क्षमित्वा)** क्षमा करके मुझे **(केवल-बोधलब्धिम्)** केवलज्ञान की उपलब्धि को **(विदधातु)** प्रदान करें।

आपके प्रसाद से प्राप्त हो

मूल (इन्द्रवज्रावृत्तम्)

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि! ॥११॥

अन्वयार्थ—(देवि!) हे सरस्वति देवि! **(चिन्तित-वस्तुदाने)** मनवांछित वस्तु के देने में **(चिन्तामणिम्)** चिन्तामणिरत्न-स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(वन्द्यमानस्य)** वन्दन करने वाले **(मम)** मुझे **(बोधिः)** रत्नत्रय **(समाधिः)** शुक्लध्यान/समताभाव **(परिणाम-शुद्धिः)** भावों की निर्मलता **(स्वात्मोपलब्धिः)** अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति और **(शिव-सौख्य-सिद्धिः)** मोक्ष सुख की सिद्धि **(अस्तु)** हो।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः, यः स्तूयते सर्व-नरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः)** सभी मुनिराजों के समूहों द्वारा **(स्मर्यते)** स्मरण किया जाता है **(यः)** जो **(सर्वनरामरेन्द्रैः)** सभी नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा **(स्तूयते)** स्तुति किया जाता है **(यः)** जो **(वेद-पुराण-शास्त्रैः)** वेदों, पुराणों और शास्त्रों के द्वारा **(गीयते)** गाया जाता है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवाधिदेव अर्हन्त **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान हो।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्त - संसार - विकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः)** अनन्तदर्शन, अनन्त-ज्ञान और अनन्तसुखरूप स्वभाव वाला **(समस्तसंसार-विकारबाह्यः)** संसार के समस्त विकारों से रहित **(समाधिगम्यः)** समाधि के द्वारा जानने योग्य और **(परमात्मसंज्ञः)** परमात्मा नाम के धारक **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(भव-दुःख-जालम्)** संसार के दुख समूह को **(निषूदते)** नष्ट करता है **(यः)** जो **(जगदन्तरालम्)** जगत् के अन्तःस्थल/मध्यभाग को **(निरीक्षते)** देखता है **(यः)** जो **(अन्तर्गतः)** अन्तर्विलीन/अन्तःस्वरूप को प्राप्त है और **(योगि-निरीक्षणीयः)** योगिजनों के द्वारा अवलोकनीय है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(विमुक्तिमार्ग-प्रतिपादकः)** मोक्षमार्ग का कथन करने वाला है **(यः)** जो **(जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्यतीतः)** जन्म-मरण के दुखों आदि से रहित है **(त्रिलोक-लोकी)** तीनों लोकों का देखने वाला त्रिलोकदर्शी है **(विकलः)** विशिष्ट/परमौदारिक देह वाला है और **(अकलङ्कः)** कलंक रहित है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

क्रोडीकृताशेष - शरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(क्रोडीकृताशेष-शरीरिवर्गाः) जिन्होंने सभी प्राणियों के समूह को आलिंगित कर लिया है, ऐसे **(रागादयः दोषाः)** रागादि दोष **(यस्य)** जिसके **(न सन्ति)** नहीं हैं **(सः)** वह **(निरिन्द्रियः)** अतीन्द्रिय **(ज्ञानमयः)** ज्ञानस्वरूपी **(अनपायः)** अपाय/नाश से रहित अविनाशी **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

देवाधिदेव हृदय में वास करें

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(विश्वजनीनवृत्तेः)** विश्व का कल्याण करने वाली प्रवृत्ति/स्वभाव वाला होने से **(व्यापकः)** सर्व व्यापक है **(सिद्धः)** सिद्ध/ पूर्ण है **(विबुद्धः)** विशिष्ट ज्ञानी है **(धुत-कर्मबन्धः)** कर्म बन्धनों का विध्वंसक है **(ध्यातः)** ध्यान में चिन्तन किया गया **(सकलम्)** समस्त **(विकारम्)** विकार को **(धुनीते)** नष्ट करता है **(सः देवदेवः)** वह देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

आप्त की शरण में जाता हूँ

मूल (उपजातिवृत्तम्)

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसङ्घैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(कर्म-कलङ्क-दोषैः)** ज्ञानावरण आदि कर्म, राग आदि कलंक और क्षुधा आदि दोषों से **(न स्पृश्यते)** छुए नहीं जाता **(इव)** जैसे **(ध्वान्त-सङ्घैः)** अन्धकार समूह से **(तिग्म-रश्मिः)** सूर्य, **(तं)** उस **(निरंजनम्)** निरंजन **(नित्यम्)** नित्य/ध्रुव **(अनेकम्)** अनेक और **(एकम्)** एक स्वरूप **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की **(शरणम्)** शरण को मैं **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

आप्त की शरण में जाता हूँ

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

अन्वयार्थ—(भुवनावभासी) लोक का प्रकाशक **(मरीचिमाली)** सूर्य **(यत्र)** जहाँ आपके **(विद्यमाने)** विद्यमान रहने पर **(न विभासते)** शोभा नहीं पाता ऐसे **(स्वात्मस्थितम्)** अपने आत्मस्वरूप में स्थित **(बोधमय-प्रकाशम्)** ज्ञानमय प्रकाश वाले **(तम्)** उस **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

आप्त की शरण में जाता हूँ

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

अन्वयार्थ—(यत्र) जिसके **(विलोक्यमाने सति)** दृष्टिगोचर हो जाने पर **(इदम् विश्वम्)** यह विश्व **(स्पष्टम्)** स्पष्टतः **(विविक्तम्)** पृथक् **(विलोक्यते)** दिखाई देता है **(तम् शुद्धम्)** उस शुद्ध **(शिवं)** कल्याण-स्वरूप **(शान्तम्)** शान्त और **(अनाद्यनन्तम्)** आदि व अन्त से रहित **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त करता हूँ।

आप्त की शरण में जाता हूँ

मूल (उपजातिवृत्तम्)

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा-विषादनिद्राभय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

अन्वयार्थ—(इव) जैसे **(अनलेन)** अग्नि के द्वारा **(तरु-प्रपञ्चः)** वृक्षों का समूह **(क्षतः/क्षयः)** नष्ट/भस्म कर दिया जाता है उसी प्रकार **(येन)** जिसके द्वारा **(मन्मथ-मान-मूर्च्छा-विषाद-निद्रा-भय-शोक-चिन्ताः)** काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि दोष **(क्षताः)** क्षय कर दिए गए हैं **(तं)** उस **(आप्तं देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

निर्मल आत्मा ही ध्यान का आसन

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैवसुनिर्मलो मतः ॥२२॥

अन्वयार्थ—(विधानतः) विधिपूर्वक **(विनिर्मितः)** रचित **(न अश्मा)** न पाषाण **(न तृणम्)** न तृण/घास/पलाल **(न मेदिनी)** न धरती और **(न)** न ही **(फलकः)** पाटा **(संस्तरः)** आसन/बिस्तर है **(यतः)** क्योंकि **(सुधीभिः)** बुद्धिमन्तों के द्वारा **(निरस्ताक्ष-कषाय-विद्विषः)** इन्द्रिय और कषायरूपी शत्रुओं से रहित **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(सुनिर्मलः)** अत्यन्त निर्मल आसन **(मतः)** माना गया है।

अध्यात्म में रत हो

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्यसर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(भद्र!) हे भद्र! **(यतः)** क्योंकि **(समाधि-साधनम्)** समाधि का साधन **(न संस्तरः)** न संस्तर [पाषाण, तृण, पृथ्वी, काष्ठ ये चारों प्रकार के आसन]है **(न लोक-पूजा)** न लोकपूजा है **(च)** और **(न सङ्घ-मेलनम्)** न संघ एकत्रित करना है **(ततः)** इसलिए **(सर्वामपि)** सभी **(बाह्यवासनाम्)** बाहरी वासनाओं को **(विमुच्य)** छोड़कर **(अनिशम्)** निरन्तर **(अध्यात्मरतः)**

आत्मस्वभाव में लीन **(भव)** रहो।

आत्मा में स्थिर रहो

मूल (उपजातिवृत्तम्)

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

अन्वयार्थ—(केचन) कोई **(बाह्याः अर्थाः)** बाहरी पदार्थ **(मम)** मेरे **(न सन्ति)** नहीं हैं और **(अहम्)** मैं **(तेषाम्)** उनका **(कदाचन न)** कदापि नहीं **(भवामि)** हूँ **(इत्थम्)** इस प्रकार **(विनिश्चित्य)** दृढ़ निश्चय करके **(भद्र!)** हे भद्र! **(त्वम्)** तुम **(बाह्यं)** बाह्य पदार्थों को **(विमुच्य)** छोड़कर **(मुक्त्यै)** मुक्ति के लिए **(सदा)** सदा **(स्वस्थः)** अपनी आत्मा में स्थिर **(भव)** रहो।

एकाग्रचित्त साधु जहाँ वहीं समाधि

मूल (उपजातिवृत्तम्)

आत्मानमात्मन्यवलोकमानस्, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(आत्मानम्) आत्मा को **(आत्मनि)** आत्मा में **(अवलोकमानः त्वं)** देखने वाले तुम **(दर्शन-ज्ञान-मयः)** अनन्त दर्शन-ज्ञानमय हो तथा **(विशुद्धः)** विशुद्ध/निर्मल हो **(खलु)** वास्तव में **(एकाग्रचित्तः साधुः)** एकाग्र मन वाला साधु **(यत्र तत्र अपि)** जहाँ कहीं भी **(स्थितः)** स्थित हो **(समाधिम्)** समाधि को **(लभते)** प्राप्त करता है।

मेरी एक मात्र शाश्वत आत्मा

मूल (आख्यानकीवृत्तम्)

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(मम आत्मा) मेरी आत्मा **(सदा)** हमेशा **(एकः)** अकेली **(शाश्वतिकः)** अविनाशी **(विनिर्मलः)** अत्यन्त निर्मल **(साधिगम-स्वभावः)** ज्ञानस्वभाव वाली है **(अपरे)** शेष **(समस्ताः)** सब **(बहिर्भवाः)** बाहर होने वाले शरीर व रागादि **(कर्मभवाः)** कर्मों से उत्पन्न हैं **(शाश्वताः)** शाश्वत और **(स्वकीयाः)** निजी **(न सन्ति)** नहीं हैं।

शरीर ही भिन्न तो अन्य की क्या बात ?

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस आत्मा की **(वपुषा सार्द्धम्)** शरीर के साथ **(अपि)** भी **(न ऐक्यम्)** एकरूपता नहीं है **(तस्य)** उसकी **(पुत्र-कलत्र-मित्रैः सार्द्धम्)** पुत्र, स्त्री और मित्रों से **(किम् ऐक्यम् अस्ति)** क्या एकरूपता है? **(चर्मणि)** चर्म के **(पृथक् कृते)** पृथक् कर देने पर **(शरीरमध्ये)** शरीर के मध्य में **(रोम-कूपाः)** रोम छिद्र **(हि)** निश्चय से **(कुतः तिष्ठन्ति)** कैसे ठहरते हैं? अर्थात् नहीं ठहरते हैं।

संयोग से दुख

मूल (आख्यानकीवृत्तम्)

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(यतः) क्योंकि **(शरीरी)** प्राणी **(जन्मवने)** संसाररूपी वन में **(संयोगतः)** संयोग के कारण **(अनेकभेदम्)** अनेक प्रकार वाले **(दुःखम्)** दुख को **(अश्नुते)** पाता है **(ततः)** इसलिए **(आत्मनीनाम्)** अपनी कल्याण-कारिणी **(निर्वृतिम्)** निर्वृति/मुक्ति को **(यियासुना)** प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को **(असौ)** वह संयोग/बाह्य वस्तुओं का सम्बन्ध **(त्रिधा)** तीनों प्रकार से अर्थात् मन-वचन-काय से **(परिवर्जनीयः)** परित्याग करने योग्य है।

परमात्म तत्त्व में लीन हो

मूल (उपजातिवृत्तम्)

सर्वं निराकृत्य विकल्प - जालं, संसार-कान्तार-निपातहेतुम्।
विविक्तमात्मान-मवेक्षमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

अन्वयार्थ—(संसार-कान्तार-निपातहेतुम्) संसाररूपी वन में पतन के कारणभूत **(सर्वम्)** सभी **(विकल्प-जालम्)** विकल्पों के समूह को **(निराकृत्य)** हटा करके **(विविक्तम्)** एक मात्र अकेली **(आत्मानम्)** आत्मा को **(अवेक्षमाणः)** देखते हुए **(त्वम्)** तुम **(परमात्म-तत्त्वे)** परम आत्मतत्त्व में **(निलीयसे)** लीन रहो।

कर्म का कर्ता स्वयं

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

अन्वयार्थ—(आत्मना) अपने द्वारा **(पुरा)** पहले **(यत् कर्म)** जो कर्म **(स्वयं कृतम्)** स्वयं किया गया है **(तदीयम्)** उसका यह **(शुभाशुभम् फलम्)** शुभ और अशुभ फल **(स्फुटं)** स्पष्टरूप से **(लभते)** प्राप्त होता है **(यदि)** अगर **(परेण दत्तम्)** दूसरे के द्वारा दिया गया [सुख-दुख] **(लभ्यते)** प्राप्त होता है **(तदा)** तब **(स्वयं कृतम् कर्म)** स्वयं के द्वारा किया गया कर्म **(निरर्थकम्)** निरर्थक/निष्फल हो जावेगा।

अपना किया ही पाते हैं

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्यमानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥३१॥

अन्वयार्थ—हे आत्मन्! **(निजार्जितम्)** अपने उपार्जित **(कर्म विहाय)** कर्म को छोड़कर **(कोऽपि)** कोई भी **(कस्य अपि)** किसी भी **(देहिनः)** प्राणी को **(किञ्चन)** कुछ भी **(न ददाति)** नहीं देता है **(एवम्)** ऐसा **(अनन्यमानसः)** एकाग्रचित्त से **(विचारयन्)** विचार करते हुए **(परः)** दूसरा कोई **(ददाति)** देता है **(इति)** इस प्रकार की **(शेमुषीम्)** बुद्धि को **(विमुञ्च)** छोड़ो।

परमात्म चिन्तन से मुक्ति प्राप्ति

मूल (अनुकूला वृत्तम्)

यैः परमात्मामितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

अन्वयार्थ—(अमित-गति-वन्द्यः) अपरिमित ज्ञान वाले गणधर श्रुत-केवलियों द्वारा अथवा अमितगति आचार्य द्वारा वन्दनीय **(सर्व-विविक्तः)** सर्व कर्म विमुक्त **(भृशम्)** अत्यन्त **(अनवद्यः)** निर्दोष **(परमात्मा)** परमात्मा **(यैः)** जिन पुरुषों द्वारा **(मनसि)** मन में **(शश्वत्)** निरन्तर **(अधीतः)** चिन्तन किया जाता है **(ते)** वे पुरुष **(विभव-वरम्)** परम वैभव वाले **(मुक्ति-निकेतम्)** मुक्तिरूपी महल को **(लभन्ते)** प्राप्त होते हैं।

उपसंहार

मूल (अनुष्टुप् वृत्तम्)

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत-चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(अनन्य-गत-चेतस्कः)** एकाग्रचित वाला **(द्वात्रिंशतावृत्तैः)** बत्तीस पद्यों से **(परमात्मानम्)** परमात्मा को **(ईक्षते)** देखता है **(असौ)** वह **(अव्ययम्)** अविनाशी **(पदम्)** [शिव] पद को **(याति)** प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

प्रायश्चित पाठ
(दिन रात मेरे ..)

शत शत प्रणाम करते, आशीष हमको देना।
दोषों को दूर करने, अपराध क्षम्य करना ॥१॥

मन से वचन से तन से, अपराध पाप करते।
कृत कारितानुमत से, दुख शोक क्लेश सहते ॥२॥

चारों कषाय करके, निज रूप को भुलाया।
आलस्य भाव करके, बहु जीव को सताया ॥३॥

भोजन शयन गमन में, पापों का बंध बाँधा।
अज्ञान भाव द्वारा, अज्ञात पाप बाँधा ॥४॥

दिन रात और क्षण क्षण, अपराध हो रहे हैं।
इस बोझ से दबे हम, पापों को ढो रहे हैं ॥५॥

गुरुदेव की शरण में, प्रायश्चित लेने आये।
मुक्ती का राज पाने, भव रोग को नशाए ॥६॥

श्रीजिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्

ईसा की आठवीं शताब्दी में आचार्य जिनसेनस्वामी द्वारा आदिनाथ भगवान् के चरित्र वर्णन करने वाला आदिपुराण ग्रन्थ लिखा गया। उसके बीसवें पर्व में सहस्त्रनाम स्तवन भी आया है। इसमें १००८ नामों से प्रभु के गुणों का वर्णन किया गया है। पापों की शान्ति के लिए इसका पाठ किया जाता है। यह आर्या छन्द में रचित है, इनमें आठ-आठ अक्षरों में अल्प विराम होता है।

(प्रस्तावना)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य, मुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूत,- वृत्तयेऽचिन्त्य-वृत्तये ॥१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(स्वात्मना एव)** अपने आत्मा के द्वारा ही **(आत्मनि)** अपने आत्मा में, **(आत्मानम्)** अपने स्वरूप को, **(उत्पाद्य)** उत्पन्न कर, **(तथोद्भूत-वृत्तये)** निश्चय-व्यवहाररूप प्रकट चरित्र वाले **[च—और]** **(अचिन्त्य-वृत्तये)** अन्तःकरण की अगोचर वृत्ति/अचिन्त्य माहात्म्य वाले **(स्वयंभुवे)** स्वयम्भूस्वरूप **(तुभ्यं)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[अस्तु]** हो।

नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मी-भर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदतांवर ॥२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(जगताम् पत्ये)** तीनों लोकों के स्वामी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार, **(लक्ष्मीभर्त्रे)** अंतरंग और बाह्य लक्ष्मी के स्वामी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार, **(विदाम् वर)** विद्वानों में श्रेष्ठ **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[च—तथा]** **(हे वदताम् वर)** हे वक्ताओं के नायक **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[अस्तु]** हो।

कर्म - शत्रुहणं देव,-मामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि,-भामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(मनीषिणः)** विद्वज्जन **(देवम्)** देव आपको **(कर्म-शत्रुहणम्)** कर्मशत्रु का संहारकर्त्ता **[च—तथा]** **(त्वाम्)** आपको **(आनमत्सुरेण्मौलि-भामालाभ्यर्चित-क्रमम्)** नमस्कार करते हुए इन्द्रों के

मुकुटों की कान्ति-परम्परा से पूजित चरण कमल वाले **(आमनन्ति)** मानते हैं।

ध्यान - द्रुघण-निर्भिन्न,-घन- घाति - महातरुः।
अनन्त-भव-सन्तान, जयादासीरनन्तजित् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(ध्यानद्रुघणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः)** शुक्ल-ध्यानरूपी कुठार के प्रहार से सघन घातिया कर्मरूपी महान् वृक्ष के छिन्न-भिन्न कर्त्ता **[अस्ति—हैं]** तथा **(अनन्तभवसन्तानजयात्)** अनन्तसंसार की परम्परा के क्षय करने से/जीतने से **(अनन्तजित्)** अनन्तजित् **(आसीत्)** थे।

त्रैलोक्य - निर्जयावाप्त - दुर्दर्पमतिदुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युञ्जयो भवान् ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्र! **(भवान्)** आप, **(त्रैलोक्यनिर्जयावाप्त-दुर्दर्पम्)** तीनों लोकों को सम्पूर्णरूप से जीत लेने से अतिशय अभिमानी **(अतिदुर्जयम्)** अतिशय अजेय, **(मृत्युराजम्)** काल को **(विजित्य)** जीतकर **(मृत्युञ्जयः)** मृत्यु को जीतने वाले **(आसीत्)** थे।

विधूताशेष - संसार, बन्धनो भव्य-बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि, जन्म-मृत्यु-जरान्तकृत् ॥६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(विधूताशेषसंसारबन्धनः)** अपने तथा भव्यों के समस्त बन्धनों के भेदक होने से आप विधूताशेष-संसार-बन्धन, **(भव्यबान्धवः)** भव्य-बन्धु तथा **(जन्ममृत्युजरान्तकृत्)** जन्म, मृत्यु, जरा के नाशक होने से **(त्वम्)** आप **(एव)** ही **(त्रिपुरारिः)** त्रिपुरारि **(असि)** हैं।

त्रिकाल-विषयाशेष- तत्त्व - भेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥

अन्वयार्थ—(ईशितः) हे जिनेन्द्र! आप **(त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात्)** त्रिकाल-गोचर समस्त तत्त्वों के भेद से **(त्रिधा उत्थितम्)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप तीन प्रकार से उत्पन्न हुए **(केवलाख्यम्)** केवलज्ञाननामक **(चक्षुः)** नेत्र को **(दधत्)** धारण करते हुए **(त्रिनेत्रः)** त्रिनेत्रनाम धारक **(असि)** हैं।

त्वामन्धकान्तकं प्राहु, र्मोहान्धासुर - मर्दनात्।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्ध-नारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **[महर्षयः—महर्षिजन] (मोहान्धासुरमर्दनात्)** मोहरूप अन्धासुर के नाशक होने से **(त्वाम्)** आपको **(अन्धकान्तम्)** अन्धकान्तक

(प्राहुः) कहते हैं **[च–और]** **(यस्मात्)** जिस कारण से **(ते)** आपके **(अर्द्धम्)** आधे **(अरयः)** कर्मरूप शत्रु **(न)** नहीं **[सन्ति–है]** **(अतः)** इससे **(त्वम्)** तुम **(अर्धनारीश्वरः)** अर्धनारीश्वर **(असि)** हो।

शिवः शिव-पदाध्यासाद्, दुरितारि - हरो हरः।
शङ्करः कृतशं लोके, शम्भवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(शिवपदाध्यासात्)** मोक्षस्थान में निवास करने से **(शिवः)** शिव **(दुरितारिहरः)** पापरूप शत्रुओं के नाशक होने से **(हरः)** हर **(लोके)** लोक में **(कृतशम्)** आनन्ददायक होने से **(शङ्करः)** शंकर [च–और] **(सुखे)** सुख में **(भवन्)** उत्पन्न होने से **(शम्भवः)** शम्भव [कथ्यते] कहे जाते हैं।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः, पुरुः पुरु- गुणोदयैः।
नाभेयो नाभि-संभूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः॥१०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(जगज्ज्येष्ठः)** जगत् में श्रेष्ठ होने के कारण **(वृषभः)** वृषभ, **(पुरुगुणोदयैः)** महान् गुणों को उत्पन्न करने से **(पुरुः)** पुरु, **(नाभि-सम्भूतेः)** महाराज नाभिराज के सुपुत्र होने से **(नाभेयः)** नाभेय [तथा] **(इक्ष्वाकुकुलनन्दनः)** इक्ष्वाकुकुलनन्दन [अस्ति] कहलाते हैं।

त्वमेकः पुरुष - स्कन्धस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रि-ज्ञान-धारकः॥११॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(एकः)** एक **(त्वम्)** तुम [एव–ही] **(पुरुषस्कन्धः)** पुरुषोत्तम **(लोकस्य)** जनता के **(द्वे लोचने)** दो नेत्रस्वरूप **(त्रिधा)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप **(बुद्ध-सन्मार्गः)** मोक्षमार्ग के ज्ञाता होने से **(त्रिज्ञः)** त्रिज्ञ [तथा] **(त्रिज्ञानधारकः)** त्रिलोक वा त्रिकाल के ज्ञानधारक होने से त्रिज्ञानधारक [कथ्यते–कहे जाते हो।]

चतुःशरण - माङ्गल्य, - मूर्तिस्त्वं चतुरस्त्रधीः।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव!, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(देव) हे जिनेन्द्र! **(त्वम्)** आप [एव–ही] **(चतुःशरणमाङ्गल्य-मूर्तिः)** अरिहन्त, सिद्ध, साधु, केवलिप्रणीत धर्मरूप शरणचतुष्टय तथा मंगलचतुष्टय की मूर्तिरूप **(चतुरस्त्रधीः)** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से चतुरस्त्रधी **(पञ्च-ब्रह्ममयः)** पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप [तथा] **(पावनः)**

परम पवित्र **[असि–हो]** अतः **(माम्)** मुझको **(पुनीहि)** पवित्र करो।

स्वर्गावतरणे तुभ्यं, सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेक-वामाय, वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(स्वर्गावतरणे)** स्वर्ग से अवतरण के समय **(सद्योजातात्मने)** तत्काल उत्पन्न होने वाले **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु–हो], तथा **(वामदेव)** हे अनुपम-सौन्दर्य-सम्पूर्ण! **(जन्माभिषेक-वामाय)** जन्माभिषेक के समय अतिशय-सौन्दर्य-सम्पन्न **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

सन्निष्क्रान्तावघोराय, परं प्रशममीयुषे।
केवल-ज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परम् प्रशमम्)** विशेष उपशान्तकषाय/उत्कृष्ट क्षमा भाव को **(ईयुषे)** प्राप्त, अतः **(सन्निष्क्रान्तावघोराय)** दीक्षा के समय परम प्रशान्त मुद्रा के धारक तथा **(केवलज्ञानसंसिद्धौ)** केवलज्ञान की उपलब्धि होने पर **(ईशानाय)** सर्वशक्तिमान ईश्वर **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

पुरस्तत्पुरुषत्वेन, विमुक्ति - पद - भाजिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(पुरः)** भविष्य में **(तत्पुरुषत्वेन)** शुद्ध आत्मस्वरूप के द्वारा **(विमुक्तिपदभाजिने)** सिद्धावस्था के पात्र [तथा] **(अद्य)** अभी **(भाविनीम्)** आगामी **(तत्पुरुषावस्थाम्)** सिद्धावस्था को, **(बिभ्रते)** धारण करने वाले **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

ज्ञानावरण - निर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्त - चक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(ज्ञानावरणनिर्ह्रासात्)** ज्ञानावरणकर्म के क्षय से **(अनन्त-चक्षुषे)** अनन्तज्ञानी तथा **(दर्शनावरणोच्छेदात्)** दर्शनावरणकर्म के क्षय से **(विश्वदृश्वने)** विश्वदृश्वा **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमो दर्शन - मोहघ्ने, क्षायिकामल-दृष्टये।
नमश्चारित्र - मोहघ्ने, विरागाय महौजसे ॥१७॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(दर्शनमोहघ्ने)** दर्शनमोहनीय के नाशक **(क्षायिकामल**

-**दृष्टये**) क्षायिक सम्यग्दर्शन के धारक (**चारित्रमोहघ्ने**) चारित्रमोहनीय कर्म के नाशक (**विरागाय**) वीतराग तथा (**महौजसे**) अतिशय तेजस्वी (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तेऽनन्त - वीर्याय, नमोऽनन्त - सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय,लोकालोकावलोकिने ॥१८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! (**अनन्तवीर्याय**) अनन्तशक्ति के धारक (**अनन्त-सुखात्मने**) अनन्तसुख स्वरूप (**अनन्तलोकाय**) अनन्तदर्शन सहित तथा (**लोका-लोकावलोकिने**) लोक और अलोक के ज्ञाता (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तेऽनन्त - दानाय, नमस्तेऽनन्त-लब्धये।
नमस्तेऽनन्त - भोगाय, नमोऽनन्तोपभोगिने ॥१९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! (**अनन्तदानाय**) अनन्तदानगुण सहित (**अनन्तलब्धये**) अनन्त लब्धियों के धारक (**अनन्तभोगाय**) अनन्त भोगों के भोक्ता तथा (**अनन्तोपभोगिने**) अनन्त उपभोगों के उपभोक्ता (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परमयोगाय, नमस्तुभ्यमयोनये।
नमः परमपूताय, नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! (**परमयोगाय**) परमध्यानी (**अयोनये**) चौरासी लाख योनियों से रहित (**परमपूताय**) परम पवित्र तथा (**परमर्षये**) सर्वोत्कृष्ट ऋषिरूप (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परमविद्याय, नमः पर-मतच्छिदे।
नमः परम-तत्त्वाय, नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! (**परमविद्याय**) केवलज्ञान रूप परम विद्या वाले (**पर-मतच्छिदे**) अन्य एकान्तमतों के उच्छेदक (**परमतत्त्वाय**) परम आत्मतत्त्वस्वरूप तथा (**परमात्मने**) परमात्मस्वरूप (**ते**) आपको (**नमः**) नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परम - रूपाय, नमः परम-तेजसे।
नमः परम-मार्गाय,नमस्ते परमेष्ठिने॥ २२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! (**परमरूपाय**) अतिशय सुन्दर (**परमतेजसे**) अति तेजस्वी

(परममार्गाय) मोक्षमार्ग स्वरूप तथा **(परमेष्ठिने)** परम पद में स्थित **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

परमर्द्धिजुषे धाम्ने, परमज्योतिषे नमः।
नमःपारेतमःप्राप्तधाम्ने परतरात्मने॥ २३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमर्द्धिजुषे)** सर्वोत्कृष्ट ऋद्धियुक्त मोक्षस्थान के अधिवासी **(धाम्ने)** अतितेजस्वी **(परमज्योतिषे)** उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप **(पारेतमः प्राप्तधाम्ने)** अज्ञानरूप अन्धकार से मुक्त तेजपुञ्ज तथा **(परतरात्मने)** श्रेष्ठ आत्मस्वरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः क्षीण-कलङ्काय, क्षीण-बन्ध! नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय, क्षीण-दोषाय ते नमः ॥२४॥

अन्वयार्थ—(क्षीणबन्ध) कर्मबन्ध विहीन हे जिनेन्द्र! **(क्षीणकलङ्काय)** कर्म-कलंकमुक्त **(क्षीणमोहाय)** मोहनीय कर्म विमुक्त तथा **(क्षीणदोषाय)** दोष-विहीन **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः सुगतये तुभ्यं, शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(सुगतये)** मुक्तिरूप शुभगति को प्राप्त **(शोभनाम् गतिम्)** प्रशस्त सिद्धगति को प्राप्त **(अतीन्द्रियज्ञान सुखाय)** अतीन्द्रियज्ञान और सुख के धारक तथा **(अनिन्द्रियात्मने)** अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

काय-बन्धन - निर्मोक्षा,-दकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय, योगिनामधियोगिने ॥२६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(कायबन्धननिर्मोक्षाद्)** शरीररूप बन्धन से छूट जाने से **(अकायाय)** अशरीर **(अयोगाय)** मन, वचन, काय रूप योगों से रहित तथा **(योगिनाम्)** योगियों के **(अधियोगिने)** प्रमुख **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अवेदाय नमस्तुभ्य, मकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र,वन्दिताङ्घ्रि-द्वयाय ते ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अवेदाय)** स्त्री, पुरुष, नपुंसक तीनों वेदों से रहित

(अकषायाय) कषायों से विहीन तथा **(परमयोगीन्द्रवन्दिताङ्घ्रिद्वयाय)** महान् योगीश्वरों के द्वारा जिनके चरणयुगल वन्दित हैं ऐसे **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परम - विज्ञान!, नमः परम - संयम!
नमः परम - दृग्दृष्ट, परमार्थाय ते नमः॥२८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमविज्ञान)** श्रेष्ठविज्ञानरूप, **(परमसंयम)** श्रेष्ठ संयम रूप तथा **(परमदृक्)** परमार्थ के दृष्टा **(परमार्थाय)** परमार्थ के **(तायिने)** ज्ञाता हे जिनेन्द्र! **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तुभ्यमलेश्याय, शुक्ललेश्यांशक - स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अलेश्याय)** लेश्याओं से रहित **(शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे)** शुक्ललेश्या के अंशयुक्त **(भव्येतरावस्थाव्यतीताय)** भव्य और अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित तथा **(विमोक्षिणे)** मुक्तरूप **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार हो।

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था, - व्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय, नमः क्षायिक - दृष्टये ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मन)** संज्ञी तथा असंज्ञीरूप दोनों अवस्थाओं से रहित निर्मल शुद्ध आत्मा के धारक **(वीतसंज्ञाय)** आहारादि संज्ञाओं से रहित तथा **(क्षायिकदृष्टये)** क्षायिकसम्यक्त्वी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अनाहाराय तृप्ताय, नमः परम-भाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय, भवाब्धेः पारमीयुषे॥ ३१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अनाहाराय)** आहाररहित **(तृप्ताय)** परमसंतुष्ट **(परम-भाजुषे)** अतिशय कान्तियुक्त **(व्यतीताशेषदोषाय)** अठारह दोषों से रहित **(भवाब्धेः)** संसारसिन्धु के **(पारम् ईयुषे)** पार को प्राप्त **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अजराय नमस्तुभ्यं, नमस्तेस्तादजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य-मचलायाक्षरात्मने ॥३२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अजराय)** बुढ़ापा/जरारहित **(स्तादजन्मने)** जन्मरहित

(अमृत्यवे) मृत्युरहित **(अचलाय)** अचल तथा **(अक्षरात्मने)** अविनश्वर **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अलमास्तां गुणस्तोत्र, मनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण, पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(गुणस्तोत्रम्)** आपके गुणों का कथन **(अलम् आस्ताम्)** पूर्णता को प्राप्त हो [यतः—क्योंकि] **(तावकाः गुणाः)** आपके गुण **(अनन्ताः)** अनन्त [सन्ति—हैं] इसलिए हम आपको **(नामस्मृतिमात्रेण)** नामों के स्मरणमात्र से **(पर्युपासिसिषामहे)** उपासना करते हैं।

एवं स्तुत्त्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं पाप-शान्तये ॥३४॥

अन्वयार्थ—(परमया भक्त्या) उत्कृष्ट भक्ति से **(जिनं देवम्)** जिनेन्द्रदेव की **(एवम्)** इस प्रकार **(स्तुत्वा)** स्तुति करके **(सुधीः)** बुद्धिमान् मनुष्य **(पापशान्तये)** पापों के क्षय के लिए **(सहस्रं अष्टोत्तरं नाम्नाम्)** एक हजार आठ नामों को **(पठेत्)** निरन्तर पढ़ें।

इति जिनसहस्रनामस्तोत्रप्रस्तावना

❑ ❑ ❑

प्रथमशतकम्

प्रसिद्धाष्ट - सहस्रेद्ध,- लक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण,तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

अर्थ—आपके एक हजार आठ लक्षण प्रसिद्ध हैं, आप वाणी के स्वामी हैं, इसलिए हम लोग भी अपने इष्ट (आत्म-तत्त्व) की सिद्धि के लिए एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शंभवः शम्भुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥

अर्थ—१. श्रीमान्—अनन्तचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी एवं समवसरणरूप बहिरंग लक्ष्मी से सहित होने से। **२. स्वयम्भूः—**बिना किसी गुरु की सहायता के स्वयं ही ज्ञानी बुद्ध तथा दीक्षित होने से। **३.वृषभः—**वृष अर्थात् धर्म से सुशोभित होने से। **४. शंभवः—**आपके द्वारा संसार के अनेक प्राणियों को सुख प्राप्त हुआ है इसलिए शंभव है। **५. शम्भुः—**परमानन्द रूप मोक्ष सुख को देने वाले होने से।

६. आत्मभूः—अपने ही द्वारा उत्कृष्ट अरिहंत दशा को प्राप्त करने वाले होने से। **७. स्वयंप्रभः**—स्वयं ही प्रकाशमान होने से। **८. प्रभुः**—सबके स्वामी अथवा समर्थ होने से। **९. भोक्ताः**—आत्मा से उत्पन्न अनन्त सुख का उपभोग करने वाले होने। **१०. विश्वभूः**—ध्यानादि के द्वारा सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होने से। **११. अपुनर्भवः**—पुनः संसार में उत्पन्न नहीं होने से।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥३॥

अर्थ—१२. विश्वात्मा—विश्व के समस्त पदार्थ आत्मा में प्रतिबिम्बित होने से। **१३. विश्वलोकेशः**—समस्त लोक के स्वामी होने से।**१४. विश्वतश्चक्षुः**—ज्ञान-दर्शनरूपी नेत्र के द्वारा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होने से। **१५. अक्षरः**—अविनाशी, कभी नष्ट न होने से। **१६. विश्ववित्**—समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से। **१७. विश्वविद्येशः**—समस्त विद्याओं के स्वामी होने से। **१८. विश्वयोनिः**—समस्त पदार्थों की उत्पत्ति अर्थात् यथार्थ ज्ञान का कारण होने से। **१९. अनश्वरः**—आपके स्वरूप का कभी नाश नहीं होने से।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधुर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥ ४॥

अर्थ—२०. विश्वदृश्वा—समस्त लोकालोक को देखने वाले होने से। **२१. विभुः**—परमोत्कृष्ट विभूति से सहित होने से। **२२.धाता**—सब जीवों का पोषण/रक्षा करने वाले होने से। **२३. विश्वेशः**—जगत् के ईश्वर होने से। **२४. विश्व-लोचनः**—सब जीवों के नेत्रों के समान होने से। **२५. विश्वव्यापी**—समुद्घात अवस्था में, ज्ञान के द्वारा समस्त लोक में फैले होने से। **२६.विधुः**—केवलज्ञान किरणों से मोहान्धकार का पान करने वाले होने से। **२७. वेधाः**—धर्म रूप जगत् की सृष्टि/रचना करने वाले होने से। **२८. शाश्वतः**—सदा विद्यमान रहने से। **२९. विश्वतोमुखः**—समवसरण में चारों ओर मुख देखने से।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥

अर्थ—३०.विश्वकर्मा—असि-मसि आदि कर्मों का उपदेश देने से। **३१. जगज्ज्येष्ठः**—जगत् के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ होने से। **३२. विश्व-**

मूर्तिः—समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में झलकते हैं/ प्रतिफलित होने से। ३३. **जिनेश्वरः**—सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के ईश्वर होने से। ३४. **विश्वदृक्**—समस्त जगत् को देखने वाले होने से। ३५. **विश्वभूतेशः**—समस्त प्राणियों के ईश्वर होने से। ३६. **विश्वज्योतिः**—आपकी केवलज्ञान रूपी ज्योति अखिल विश्व में व्याप्त होने से। ३७. **अनीश्वरः**—आपका कोई दूसरा स्वामी अथवा ईश्वर न होने से।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्य - बन्धुरबन्धनः ॥६॥

अर्थ—३८. जिनः—घातियाकर्मरूपी शत्रु को जीतने वाले होने से। ३९. **जिष्णुः**—कर्मरूपी शत्रु को जीतना ही स्वभाव/शील होने से। ४०. **अमेयात्मा**—आपके अनन्त गुणों को कोई नहीं जान सका इसलिए। ४१. **विश्वरीशः**—सम्पूर्ण पृथ्वी के ईश/स्वामी होने से। ४२. **जगत्पतिः**—तीनों लोकों के स्वामी होने से। ४३. **अनन्तजित्**—अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व को जीतने वाले होने से। ४४. **अचिन्त्यात्मा**—आपकी आत्मा का चिंतन मन से भी नहीं होने से। ४५. **भव्यबन्धुः**—भव्य जीवों के हितैषी होने से। ४६. **अबन्धनः**—कर्म बन्धन से रहित होने से।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥

अर्थ—४७. युगादिपुरुषः—कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में जन्म लेने वाले होने से। ४८. **ब्रह्मा**—केवलज्ञान आदि गुणों की वृद्धि से युक्त होने से। ४९. **पञ्चब्रह्ममयः**—पञ्चपरमेष्ठीस्वरूप होने से। ५०. **शिवः**—सदा परमानन्द में लीन रहने से अथवा सबका कल्याण करने वाले होने से। ५१. **परः**—जीवों को मोक्ष स्थान में पहुँचाने वाले होने से। ५२. **परतरः**—धर्मोपदेशक एवं सर्वश्रेष्ठ होने से। ५३. **सूक्ष्मः**—इन्द्रियों के द्वारा आप जाने नहीं जा सकते इसलिए। ५४. **परमेष्ठी**—इन्द्रादिकों के द्वारा पूज्य परम पद में स्थित होने से। ५५. **सनातनः**—सदा एक से ही विद्यमान रहने से।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्म - योनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥

अर्थ—५६. स्वयंज्योतिः—आप स्वयं प्रकाशमान/ज्योति रूप होने से। ५७. **अजः**—संसार में उत्पन्न नहीं होने वाले होने से। ५८. **अजन्मा**—जन्म रहित होने

से। ५९.**ब्रह्मयोनिः**—ब्रह्म अर्थात् द्वादशांगरूप वेद की उत्पत्ति के कारण होने से। ६०.**अयोनिजः**—चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न नहीं होने से। ६१. **मोहारिविजयी**—मोहनीय कर्म रूप शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले होने से। ६२. **जेता**—सर्वदा, सर्वोत्कृष्ट रूप से विद्यमान रहने से। ६३. **धर्मचक्री**—धर्मचक्र का प्रवर्तन कराने वाले होने से। ६४. **दयाध्वजः**—दयारूपी ध्वजा को धारण करने वाले होने से।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥

अर्थ—६५. **प्रशान्तारिः**—आपके कर्मरूपी शत्रु शांत हो गए हैं, इसलिए। ६६. **अनन्तात्मा**—अनन्त गुणों से युक्त आत्मा वाले होने से। ६७. **योगी**—मन, वचन, काय रूप योगों का निरोध करने वाले होने से। ६८. **योगीश्वरार्चितः**—गणधरादि योगीश्वरों के द्वारा पूजित होने से। ६९. **ब्रह्मवित्**—आत्मा का स्वरूप जानने वाले होने से। ७०. **ब्रह्मतत्त्वज्ञः**—आत्म तत्त्व का रहस्य जानने वाले होने से। ७१.**ब्रह्मोद्यावित्**—आत्म विद्या के जानकर होने से। ७२. **यतीश्वरः**—यतियों में भी श्रेष्ठ होने से।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥

अर्थ—७३. **शुद्धः**—कर्म-मल से रहित होने से। ७४. **बुद्धः**—सबको जानने वाली केवलज्ञान रूपी बुद्धि युक्त होने से। ७५. **प्रबुद्धात्मा**—आत्मा का स्वरूप जानने वाले होने से। ७६. **सिद्धार्थः**—मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाले होने से। ७७. **सिद्धशासनः**—आपका शासन सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध होने से। ७८. **सिद्धः**—शीघ्र ही सिद्ध पद को प्राप्त करने वाले होने से। ७९. **सिद्धान्तविद्**—द्वादशांग रूप सिद्धान्त के पारगामी/ज्ञाता होने से। ८०. **ध्येयः**—योगी जनों के ध्यान योग्य होने से। ८१. **सिद्धसाध्यः**—समस्त साध्य अर्थात् करने योग्य कार्यों को सिद्ध करने वाले होने से। ८२.**जगद्धितः**—जगत् का हित करने वाले होने से।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

अर्थ—८३. **सहिष्णुः**—सहनशील होने से। ८४. **अच्युतः**—ज्ञानादिगुणों से कभी

च्युत न होने से। ८५. **अनन्तः**—अन्त/विनाश रहित होने से। ८६. **प्रभविष्णुः**—प्रभावशाली होने से। ८७. **भवोद्भवः**—संसार में आपका जन्म सबसे उत्कृष्ट माना गया है इसलिए। ८८. **प्रभूष्णुः**—शक्तिशाली होने से। ८९. **अजरः**—बुढ़ापा रहित होने से। ९०. **अजर्यः**—कभी जीर्ण नहीं होने से। ९१. **भ्राजिष्णुः**—ज्ञानादि गुणों से अतिशय देदीप्यमान होने से। ९२. **धीश्वरः**—पूर्ण बुद्धि के ईश्वर होने से। ९३. **अव्ययः**—सदा अविनश्वर होने से।

विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

अर्थ—९४. विभावसुः—कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाले होने से। ९५. **असंभूष्णुः**—संसार में पुनः उत्पन्न नहीं होने से। ९६. **स्वयंभूष्णुः**—अपने आप ही प्रकाशित होने से। ९७. **पुरातनः**—द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अनादि सिद्ध होने से। ९८. **परमात्मा**—अति उत्कृष्ट आत्मा होने से। ९९. **परमज्योतिः**—उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप होने से। १००. **त्रिजगत्परमेश्वरः**—तीनों लोक के ईश्वर होने से।

॥ इति श्रीमदादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥१॥

❑ ❑ ❑

द्वितीयशतकम्

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परम - ज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥

अर्थ—१. दिव्यभाषापतिः—दिव्यध्वनि के स्वामी होने से। २. **दिव्यः**—अत्यन्त सुंदर होने से। ३. **पूतवाक्**—अत्यन्त पवित्र वचनों के धारी होने से। ४. **पूतशासनः**—आपका शासन पवित्र होने से। ५. **पूतात्मा**—पवित्र आत्मा होने से। ६. **परमज्योतिः**—उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप होने से। ७. **धर्माध्यक्षः**—धर्म के अधिकारी होने से। ८. **दमीश्वरः**—इन्द्रियों को जीतने वालों में श्रेष्ठ होने से।

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥

अर्थ—९. श्रीपतिः—मोक्षरूपी लक्ष्मी के अधिपति होने से। १०. **भगवान्**—उत्तम ऐश्वर्य से सहित होने से। ११. **अर्हन्**—सबके द्वारा पूज्य होने से। १२. **अरजाः**—कर्मरूपी रज/धूल से रहित होने से। १३. **विरजाः**—भव्यजीवों के कर्मरूपी धूल को दूर करने वाले होने से। १४. **शुचिः**—अतिशय पवित्र होने से।

१५. तीर्थकृत् —धर्म तीर्थ को करने वाले होने से। **१६. केवली**—केवलज्ञान गुण के धारी होने से। **१७. ईशानः**—अनन्त शक्तिमान होने से। **१८. पूजार्हः**—पूजा के योग्य होने से। **१९. स्नातकः**—पूर्ण ज्ञानी होने से। **२०. अमलः**—मल रहित शरीर के धारी होने से।

अनन्त - दीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

अर्थ—२१. अनन्तदीप्तिः—शरीर की कांति अपरिमित होने से। **२२. ज्ञानात्मा**—ज्ञानस्वरूप होने से। **२३. स्वयंबुद्धः**—बिना गुरु के महाज्ञानी होने से। **२४. प्रजापतिः**—समस्त जन समूह के रक्षक होने से। **२५. मुक्तः**—कर्मरूप बन्धन से रहित होने से। **२६. शक्तः**—अनन्त बल से सम्पन्न होने से। **२७. निराबाधः**—बाधा रहित होने से। **२८. निष्कलः**—शरीर रहित होने से। **२९. भुवनेश्वरः**—तीन लोक के ईश्वर होने से।

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥

अर्थ—३०. निरञ्जनः—कर्मरूपी अंजन से रहित होने से। **३१. जगज्ज्योतिः**—जगत् को प्रकाशित करने वाले होने से। **३२. निरुक्तोक्तिः**—पूर्वापर विरोध से रहित वचन वाले होने से। **३३. निरामयः**—रोग रहित होने से। **३४. अचल-स्थितिः**—चंचलता रहित स्थिर अचल, अवस्था वाले होने से। **३५. अक्षोभ्यः**—कभी क्षोभ (अशांतपना) को प्राप्त नहीं होने से। **३६. कूटस्थः**—नित्य होने से। **३७. स्थाणुः**—गमनागमन रहित होने से। **३८. अक्षयः**—क्षय रहित होने से।

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥

अर्थ—३९. अग्रणीः—तीन लोक में सबसे श्रेष्ठ होने से। **४०. ग्रामणीः**—सिद्ध समूह प्राप्त होने से। **नेता**—रत्नत्रय धर्म की ओर ले जाने वाले होने से। **४१. प्रणेता**—द्वादशांग रूप शास्त्र की रचना करने वाले होने से। **४३. न्यायशास्त्र-कृत**—न्याय शास्त्रों का उपदेश देने वाले होने से। **४४. शास्ता**—सबको हितोपदेश देने वाले होने से। **४५. धर्मपतिः**—रत्नत्रयरूप धर्म के स्वामी होने से। **४६. धर्म्यः**—धर्म स्वरूप होने से। **४७. धर्मात्मा**—धर्मरूप आत्मा होने से। **४८. धर्मतीर्थकृत**—धर्म रूपी तीर्थ के करने वाले होने से।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतु - र्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥

अर्थ—४९. वृषध्वजः—धर्म की ध्वजा फहराने से। **५०. वृषाधीशः**—अहिंसा रूपी धर्म के स्वामी होने से। **५१. वृषकेतुः**—धर्म की पताका स्वरूप होने से। **५२. वृषायुधः**—धर्मरूपी शस्त्र के धारक होने से। **५३. वृषः**—धर्म रूप होने से। **५४. वृषपतिः**—धर्म के नायक होने से। **५५. भर्ता**—सबके स्वामी होने से। **५६. वृषभाङ्कः**—बैल का चिह्न होने से। **५७. वृषोद्भव**—पूर्व भव में धर्म धारण करने से ही तीर्थंकर होकर उत्पन्न होने से।

हिरण्य - नाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७॥

अर्थ—५८. हिरण्यनाभिः—सुन्दर नाभि वाले होने से। **५९. भूतात्मा**—आत्मा सत्य रूप होने से। **६०. भूतभृत्**—सब जीवों की रक्षा करने वाले होने से। **६१. भूतभावनः**—उत्तम भावनाओं से युक्त होने से। **६२. प्रभवः**—प्रशंसनीय जन्म के धारी होने से। **६३. विभवः**—जन्म धारण नहीं करने से। **६४. भास्वान्**—अत्यधिक देदीप्यमान होने से। **६५. भवः**—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से सदा उत्पन्न होने से। **६६. भावः**—चैतन्य रूप भाव में लीन रहने से। **६७.भवान्तकः**—संसार भ्रमण का अन्त करने वाले होने से।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥

अर्थ—६८.हिरण्यगर्भः—गर्भावतार के समय स्वर्णमयी पृथ्वी होने तथा सुवर्णवृष्टि होने से। **६९. श्रीगर्भः**—अन्तरंग में अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी शोभायमान होने से। **७०. प्रभूतविभवः**—अनन्त विभूति के स्वामी होने से। **७१. अभवः**—जन्म रहित होने से। **७२. स्वयम्प्रभुः**—स्वयं समर्थ होने से। **७३. प्रभूतात्मा**—केवलज्ञान की अपेक्षा आत्मा सर्वत्र व्याप्त होने से। **७४. भूतनाथः**—समस्त जीवों के स्वामी होने से। **७५. जगत्प्रभुः**—जगत् के स्वामी होने से।

सर्वादिः सर्वदृक्सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥९॥

अर्थ—७६. सर्वादिः—सबसे प्रथम अथवा श्रेष्ठ होने से। **७७. सर्वदृक्**—समस्त लोकालोक को देखने से। **७८. सार्वः**—हितोपदेश देकर सबका हित करने वाले

होने से। ७९. **सर्वज्ञः**—सब पदार्थों के ज्ञाता होने से। ८०. **सर्वदर्शनः**—सम्यक्त्व अथवा केवलदर्शन की पूर्णता को प्राप्त होने से। ८१. **सर्वात्मा**—सर्वप्रिय होने से। ८२. **सर्वलोकेशः**—सब लोगों के स्वामी होने से। ८३. **सर्ववित्**—समस्त पदार्थों के जानकार होने से। ८४. **सर्वलोकजित्**—समस्त लोक को जीतने वाले होने से।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥

अर्थ—८५. **सुगतिः**—आपकी पञ्चम मोक्षगति अति सुन्दर होने से। ८६. **सुश्रुतः**—उत्तम शास्त्र ज्ञान को धारण करने वाले होने से। ८७. **सुश्रुत्**—सब जीवों की प्रार्थनाएँ सुनने वाले होने से। ८८. **सुवाक्**—उत्तम वचन वाले होने से। ८९. **सूरि** —सबके गुरु होने से। ९०. **बहुश्रुतः**—सब शास्त्रों के पारगामी होने से। ९१. **विश्रुतः**—जगत् प्रसिद्ध होने से। ९२. **विश्वतः पादः**—केवलज्ञान रूपी किरणें सर्वत्र फैली होने से। ९३. **विश्वशीर्षः**—लोक के शिखर पर विराजमान होने से। ९४. **शुचिश्रवाः**—आपका ज्ञान निर्दोष है इसलिए।

सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
भूत-भव्य-भवद्भर्ता विश्व-विद्या-महेश्वरः॥११॥

अर्थ—९५. **सहस्रशीर्षः**—अनन्तसुखी होने से। ९६. **क्षेत्रज्ञः**—आत्मा को जानने वाले होने से। ९७. **सहस्राक्षः**—अनन्त पदार्थों को जानते हैं इसलिए। ९८. **सहस्रपात्** —अनन्त बल के धारक होने से। ९९. **भूतभव्यभवद्भर्ता**—भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल के स्वामी होने से। १००. **विश्वविद्या-महेश्वरः**—समस्त विद्याओं के प्रधान स्वामी होने से।

॥ इति दिव्यादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥ २॥

❑ ❑ ❑

तृतीयशतकम्

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

अर्थ—१. **स्थविष्ठः**—सद्गुणों से विभूषित होने से। २. **स्थविरः**—ज्ञानादि गुणों से वृद्ध होने से। ३. **ज्येष्ठः**—तीन लोकों में अतिशय प्रशस्त होने से। ४. **प्रष्ठः**— सबको अग्रगामी होने से। ५. **प्रेष्ठः**—सबको अतिशय प्रिय होने से। ६.

वरिष्ठधी —अतिशय बुद्धि को धारण करने से। ७. **स्थेष्ठः**—अत्यन्त स्थिर अथवा अविनाशी होने से। ८. **गरिष्ठः**—परम गुरु होने से। ९. **बंहिष्ठः**—गुणों की अपेक्षा अनेक रूप वाले होने से। १०. **श्रेष्ठः**—प्रशंसनीय होने से। ११. **अणिष्ठः**—अत्यन्त सूक्ष्म होने से। १२. **गरिष्ठगीः**—आपकी वाणी अतिशय गौरव से पूर्ण हैं इसलिए।

विश्वभृत् विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वासीर्विश्वरूपात्मा विश्वजित् विजितान्तकः ॥२॥

अर्थ—१३. विश्वभृत्—चतुर्गतिरूप संसार को नाश करने से। १४. **विश्वसृट्** — विधि-विधान के कर्त्ता होने से। १५. **विश्वेट्**—सब लोक के ईश्वर होने से। १६. **विश्वभुक्**—जगत् की रक्षा करने से। १६. **विश्वनायकः**—सबके नेता होने से। १८.**विश्वाशी**—सबके विश्वास योग्य होने से। १९. **विश्व-रूपात्मा**—विश्व अर्थात् केवलज्ञान ही आपका स्वरूप है अतः। २०. **विश्वजित्**—संसार को जीतने से। २१. **विजितान्तकः**—काल अर्थात् मृत्यु को जीतने से।

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरोऽजरन्।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥

अर्थ—२२. विभवः—संसार भ्रमण नष्ट हो जाने से। २३. **विभयः**—भय रहित होने से। २४. **वीरः**—अनन्त बलशाली होने से। २५. **विशोकः**—शोक रहित होने से। २६. **विजरः**—जरा-वृद्धावस्था से रहित होने से। २७. **अजरन्**—कभी जीर्ण नहीं होने से। २८. **विरागः**—राग रहित होने से। २९. **विरतः**—समस्त विषयों से विरक्त होने से। ३०. **असङ्गः**—पर वस्तु से सम्बन्ध न रखने से। ३१. **विविक्तः**—एकाकी अथवा पवित्र होने से। ३२. **वीतमत्सरः**—ईर्ष्या, द्वेष न करने से।

विनेय - जनता - बन्धुर्विलीनाशेष - कल्मषः।
वियोगो योगविद्विद्वान् विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥

अर्थ—३३.विनेयजनताबन्धुः—भक्तों के बन्धु होने से। ३४. **विलीनाशेष-कल्मषः** — समस्त पाप कर्म नष्ट हो जाने से। ३५. **वियोगः**—योग रहित होने से। ३६. **योगवित्**—योग के जानकार होने से। ३७. **विद्वान्**—पूर्ण ज्ञानी होने से। ३८. **विधाता**—धर्मरूपी सृष्टि के कर्त्ता होने से। ३९. **सुविधिः**—आपकी क्रियाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय होने से। ४०. **सुधीः**—उत्तम बुद्धि वाले होने से।

क्षान्तिभाक् पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायु - मूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥५॥

अर्थ—४१. क्षान्तिभाक्—उत्तम क्षमा को धारण करने से। **४२. पृथ्वीमूर्ति**—पृथ्वी के समान सहनशील होने से। **४३. शान्तिभाक्**—शान्तता धारण करने से। **४४. सलिलात्मकः**—जल के समान अत्यन्त निर्मल आत्मा होने से। **४५. वायुमूर्तिः**—वायु के समान पर के सम्बन्ध से रहित होने से। **४६. असङ्गात्मा**—परिग्रह रहित होने से। **४७. वह्निमूर्तिः**—कर्म रूपी ईन्धन को जलाने से। **४८. अधर्मधक्**—अधर्म को नाश करने से।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्राम-पूजितः।
ऋत्विग्यज्ञ -पतिर्याज्यो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६॥

अर्थ—४९. सुयज्वा—कर्म रूप सामग्री का होम करने से। **५०. यजमानात्मा**—निज स्वभाव का आराधन करने से। **५१. सुत्वा**—परमानन्द सागर में स्नान करने से। **५२. सुत्रामपूजितः**—इन्द्र के द्वारा पूजित होने से। **५३. ऋत्विक्**—ज्ञान रूपी यज्ञ करने से। **५४. यज्ञपतिः**—यज्ञ के मुख्य अधिकारी होने से। **५५. यज्यः**—पूज्य होने से। **५६. यज्ञांगम्**—यज्ञ के मुख्य कारण होने से। **५७. अमृतम्**—मरण रहित होने से। **५८. हविः**—अपनी आत्मा में तल्लीन होने से।

व्योम - मूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः॥ ७॥

अर्थ—५९. व्योममूर्तिः—आकाश के समान सर्वव्यापी होने से। **६०. अमूर्तात्मा**—रूप, रस, गन्ध, वर्ण से रहित होने से। **६१. निर्लेपः**—कर्म रूपी लेप से रहित होने से। **६२. निर्मलः**—मल-मूत्रादि सप्तधातु से रहित होने से। **६३. अचलः**—सर्वथा स्थिर रहने से। **६४. सोममूर्तिः**—चन्द्रमा के समान प्रकाशमान एवं शान्त होने से। **६५. सुसौम्यात्मा**—अतिशय सौम्य होने से। **६६. सूर्यमूर्तिः**—सूर्य समान कांतिमान होने से। **६७. महाप्रभः**—केवलज्ञान रूपी तेज से सुशोभित होने से।

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्र-मूर्तिरनन्तगः।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥

अर्थ—६८. मन्त्रवित्—मन्त्रों के ज्ञाता होने से। **६९. मन्त्रकृत्**—जप योग्य मन्त्रों

के कर्त्ता होने से। ७०. **मन्त्री**—आत्मा का विचार करने वाले होने से। ७१. **मन्त्रमूर्तिः**—मन्त्र स्वरूप होने से। ७२. **अनन्तगः**—अनन्तज्ञानी होने से। ७३. **स्वतन्त्रः**—स्वाधीन होने से। ७४. **तन्त्रकृत्**—आगम के मुख्यकर्त्ता होने से। ७५. **स्वन्तः**—शुद्ध अन्तःकरण होने से। ७६. **कृतान्तान्तः**—मरण को नाश करने वाले होने से। ७७. **कृतान्तकृत्**—आगम की रचना करने वाले होने से।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥९॥

अर्थ—७८. **कृतीः**—अत्यन्त कुशल अथवा पुण्यवान होने से। ७९. **कृतार्थः**—आत्मा के सब पुरुषार्थ सिद्ध कर चुके होने से। ८०. **सत्कृत्यः**—सब जीवों के द्वारा सत्कार करने योग्य होने से। ८१. **कृतकृत्यः**—समस्त कार्य कर चुके होने से। ८२. **कृतक्रतुः**—ज्ञान अथवा तपरूपी यज्ञ पूर्ण कर चुके होने से। ८३. **नित्यः**—अविनाशी होने से। ८४. **मृत्युञ्जयः**—मृत्यु को जीतने से। ८५. **अमृत्युः**—कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होने से। ८६. **अमृतात्मा**—अमृत के समान शान्तिदायक होने से। ८७. **अमृतोद्भवः**—अविनश्वर अवस्था मोक्ष को प्राप्त होने से।

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः।
महाब्रह्म- पतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्म - पदेश्वरः ॥१०॥

अर्थ—८८. **ब्रह्मनिष्ठः**—शुद्धात्मा में लीन रहने से। ८९. **परंब्रह्म**—सबसे उत्कृष्ट केवलज्ञान को धारण करने से। ९०. **ब्रह्मात्मा**—ज्ञान स्वरूप होने से। ९१. **ब्रह्म-संभवः**—शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति होने से। ९२. **महाब्रह्मपतिः**—गणधरादि मुनियों के स्वामी होने से। ९३. **ब्रह्मेट्**—केवलज्ञान के स्वामी होने से।

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञान - धर्म - दम - प्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः॥ ११॥

अर्थ—९५. **सुप्रसन्नः**—सदा प्रसन्न रहने से। ९६. **प्रसन्नात्मा**—कषायों का अभाव होने से आत्मा सदा प्रसन्न रहती है। ९७. **ज्ञानधर्मदमप्रभुः**—केवलज्ञान, उत्तम क्षमादिधर्म तथा इन्द्रिय निग्रह रूप दम के स्वामी होने से। ९८. **प्रशमात्मा**—क्रोधादि परिणाम रहित होने से। ९९. **प्रशान्तात्मा**—परमशान्त रूप होने से। १००. **पुराणपुरुषोत्तमः**—त्रेसठ शलाका पुरुषों में सर्वोत्तम होने से।

॥ इति श्री स्थविष्ठादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥३॥

❑ ❑ ❑

चतुर्थशतकम्

महाशोक-ध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्म-विष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्म - नाभिरनुत्तरः ॥१॥

अर्थ—१. महाशोकध्वजः—विशाल अशोकवृक्ष का चिह्न होने से। **२. अशोकः**—शोक रहित होने से। **३. कः**—सबके पिता होकर सुख देने से। **४. स्रष्टा**—स्वर्ग और मोक्ष की सृष्टिकरने वाले होने से। **५.पद्मविष्टरः**—कमलासन पर विराजमान होने से। **६. पद्मेशः**—लक्ष्मी के स्वामी होने से। **७. पद्मसम्भूतिः**—विहारकाल में चरणों के नीचे कमलों की रचना होने से। **८. पद्मनाभिः**—कमल के समान सुन्दर नाभि होने से। **९. अनुत्तरः**—आपसे श्रेष्ठ अन्य कोई न होने से।

पद्म - योनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥

अर्थ—१०. पद्मयोनिः—माता के पद्माकार गर्भाशय में उत्पन्न होने से। **११. जगद्योनिः**—धर्म रूप जगत् की उत्पत्ति का कारण होने से। **१२. इत्यः**—भव्यजीव तपश्चरण आदि के द्वारा आपको ही प्राप्त करना चाहते हैं अतः। **१३. स्तुतीश्वरः**—स्तुतियों के स्वामी होने से। **१४. स्तुत्यः**—स्तुति करने योग्य होने से।**१५. स्तवनार्हः**—स्तुतियों के पात्र होने से। **१६. हृषीकेशः**—इन्द्रियों को वश में करने वाले होने से। **१७. जितजेयः**—समस्त मोहादि शत्रुओं को जीत लेने से। **१८. कृतक्रियः**— करने योग्य समस्त क्रियाएँ कर चुकने योग्य होने से।

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥

अर्थ—१९. गणाधिपः—बारहसभारूप गण के स्वामी होने से। **२०. गणज्येष्ठः**—समस्त गुणों में श्रेष्ठ होने से। **२१. गण्यः**—अनन्त गुणों के स्वामी होने से। **२२. पुण्यः**—पवित्र होने से। **२३. गणाग्रणीः**—सबके अग्रेसर होने से। **२४. गुणाकरः**—गुणों की खानि होने से। **२५. गुणाम्भोधिः**—गुणों के समुद्र होने से। **२६. गुणज्ञः**—गुणों को जानने से। **२७. गुणनायकः**—समस्त गुणों के नायक होने से।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्य-वाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥

अर्थ—२८. गुणादरी—गुणों का आदर करने से। **२९. गुणोच्छेदी**—क्रोधादि

अवगुणों का नाश करने से। **३०. निर्गुणः**—वस्त्र रहित होने से। **३१. पुण्यगीः**—पवित्र गुणों के धारक होने से। **३२. गुणः**—शुद्ध गुणस्वरूप होने से। **३३. शरण्यः**—सबके शरणभूत होने से। **३४. पुण्यवाक्**—पुण्यरूप वचन होने से। **३५. पूतः**—पवित्र होने से। **३६. वरेण्यः**—सबमें श्रेष्ठ होने से। **३७. पुण्यनायकः**—पुण्य के स्वामी होने से।

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥

अर्थ—३८. अगण्यः—अनगिन गुणों के धारी होने से। **३९. पुण्यधीः**—पवित्र ज्ञानी होने से। **४०. गुण्यः**—सबका कल्याण करने एवं समवसरण के योग्य होने से। **४१. पुण्यकृत्**—पुण्य के कर्त्ता होने से। **४२. पुण्यशासनः**—पुण्य रूप मार्ग होने से। **४३. धर्मारामः**—धर्म का समूह होने से। **४४. गुणग्रामः**—गुणों का समूह होने से। **४५. पुण्यापुण्यनिरोधकः**—पुण्य और पाप दोनों का निरोध करने से।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीत - कल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥

अर्थ—४६. पापापेतः—समस्त पापों से रहित होने से। **४७. विपापात्मा**—आत्मा से समस्त पाप विगत हो गये हैं। **४८. विपाप्मा**—आपने पापकर्म नष्ट कर दिये हैं। **४९. वीतकल्मषः**—कर्म मल रहित होने से। **५०. निर्द्वन्दः**—परिग्रह रहित होने से। **५१. निर्मदः**—अहंकार रहित होने से। **५२. शान्तः**—उपाधि रहित होने से। **५३. निर्मोहः**—मोह रहित होने से। **५४. निरुपद्रवः**—समस्त उपद्रव रहित होने से।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलङ्को निरस्तैना निर्द्धूतागो निरास्रवः ॥७॥

अर्थ—५५. निर्निमेषः—आपके नेत्रों के पलक एक-दूसरे से नहीं लगते। **५६. निराहारः**—कवलाहार न करने से। **५७. निष्क्रियः**—क्रिया रहित होने से। **५८. निरुपप्लवः**—सर्व प्रकार के संकटों से रहित होने से। **५९. निष्कलङ्कः**—कलंक रहित होने से। **६०. निरस्तैना**—पापों को दूर करने से। **६१. निर्द्धूतागः**—अपराधों का नाश करने से। **६२. निरास्रवः**—आस्रव रहित होने से।

विशालो विपुल - ज्योतिरतुलोऽचिन्त्य-वैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनय-तत्त्ववित् ॥८॥

अर्थ—६३. विशालः—सबमें महान् होने से। **६४. विपुलज्योतिः**—केवलज्ञान रूपी अपार ज्योति को धारण करने से। **६५. अतुलः**—उपमा रहित होने से। **६६. अचिन्त्यवैभवः**—असामान्य विभूति सम्पन्न होने से। **६७. सुसंवृतः**—नवीन कर्मों का आस्रव रोक कर पूर्ण संवर कर चुके हैं। **६८. सुगुप्तात्मा**—मनोगुप्ति आदि गुप्तियों से सहित होने से। **६९. सुभृत्**—समस्त पदार्थों को अच्छी तरह से जानते हो। **७०. सुनयतत्त्ववित्**—समीचीन नयों के रहस्य को जानने वाले होने से।

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥

अर्थ—७१. एकविद्यः—केवलज्ञानरूपी एक विद्या के धारक होने से। **७२. महाविद्यः**—अनेक बड़ी-बड़ी विद्याओं के धारक होने से। **७३. मुनिः**—प्रत्यक्षज्ञानी होने से। **७४. परिवृढः**—सबके स्वामी होने से। **७५. पतिः**—जगत् के जीवों की रक्षा करने वाले होने से। **७६. धीशः**—बुद्धि के स्वामी होने से। **७७. विद्यानिधिः**—विद्याओं के भण्डार होने से। **७८. साक्षी**—समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने से। **७९. विनेता**—मोक्षमार्ग को प्रकट करने वाले होने से। **८०. विहतान्तकः**—मृत्यु को नष्ट करने वाले होने से।

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥

अर्थ—८१. पिता—सब जीवों को नरकादि गतियों से बचाने वाले होने से। **८२. पितामहः**—सबके गुरु होने से। **८३. पाता**—सबके पालन कर्त्ता होने से। **८४. पवित्रः**—अतिशय शुद्ध होने से। **८५. पावनः**—सबको पवित्र करने वाले होने से। **८६. अगतिः**—गति रहित होने से। **८७. त्राता**—सबके रक्षक होने से। **८८. भिषग्वरः**—जन्म-जरा-मरण रूपी रोग को नष्ट करने वाले उत्तम वैद्य होने से। **८९. वर्यः**—श्रेष्ठ होने से। **९०. वरदः**—इच्छानुकूल पदार्थों को देने वाले होने से। **९१. परमः**—आपकी ज्ञानादि लक्ष्मी अतिशय श्रेष्ठ है। **९२. पुमान्**—आत्मा तथा अन्य पुरुषों को पवित्र करने के कारण।

कविः पुराण - पुरुषो वर्षीयानृषभः पुरु:।
प्रतिष्ठा- प्रसवो हेतुर्भुवनैक-पितामहः ॥११॥

अर्थ—९३. कविः—द्वादशांग का वर्णन करने वाले होने से। **९४. पुराणपुरुषः**—प्राचीन पुरुष होने से। **९५. वर्षीयान्**—ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा अतिशय वृद्ध होने से। **९६. ऋषभः**—श्रेष्ठ होने से। **९७. पुरुः**—तीर्थंकरों में आदिपुरुष होने से। **९८. प्रतिष्ठाप्रसवः**—सम्मान अथवा स्थिरता के कारण होने से। **९९. हेतुः**—समस्त उत्तम कार्यों के कारण होने से। **१००. भुवनैकपितामहः**—संसार के एकमात्र सच्चे गुरु होने से।

॥ इति महाशोकध्वजादि शत नामधारक जिनेभ्यो नमो नमः॥४॥

❑ ❑ ❑

पञ्चमशतकम्

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥

अर्थ—१. श्रीवृक्षलक्षणः—श्री वृक्ष के चिह्न से चिह्नित होने से। **२. श्लक्ष्णः**—सूक्ष्मरूप होने से। **३. लक्षण्यः**—अनेक शुभ लक्षणों से सहित होने से। **४. शुभलक्षणः**—शरीर में अनेक शुभ लक्षण से सहित होने से। **५. निरक्षः**—समस्त पदार्थों का निरीक्षण करने वाले होने से। **६. पुण्डरीकाक्षः**—नेत्र पुण्डरीक कमल के समान सुन्दर होने से। **७. पुष्कलः**—आत्मा के गुणों से परिपुष्ट है। **८. पुष्करेक्षणः**—नीलकमल पत्र के समान लम्बे नेत्रों के धारक होने से।

सिद्धिदः सिद्ध-संकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्ध-बोध्यो महाबोधिर्वर्द्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥

अर्थ—९. सिद्धिदः—सर्व सिद्धियों के दाता होने से। **१०. सिद्धसंकल्पः**—आपके सब संकल्प सिद्ध हो चुके हैं। **११. सिद्धात्मा**—आपकी आत्मा सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुकी है। **१२. सिद्धसाधनः**—मोक्ष के साधन रत्नत्रय की सिद्धी होने से। **१३. बुद्धबोध्यः**—जानने योग्य समस्त पदार्थों को जान चुके हैं। **१४. महाबोधिः**—रत्नत्रय अति प्रशंसनीय होने से। **१५. वर्द्धमानः**—आपके गुण उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। **१६. महर्द्धिकः**—बड़ी-बड़ी ऋद्धियों के धारक होने से।

वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जात - रूपो विदांवरः।
वेद-वेद्यः स्व- संवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥

अर्थ—१७. वेदाङ्गः—आप अनुयोग रूपी वेदों के कारण है। **१८. वेदविद्**—वेद को जानने वाले हैं। **१९. वेद्यः**—ऋषियों के द्वारा जानने योग्य हैं। **२०. जातरूपः**—आप दिगम्बर रूप हैं। **२१. विदाम्वरः**—जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। **२२. वेदवेद्यः**—आगम द्वारा जानने योग्य है। **२३. स्वसंवेद्यः**—अनुभवगम्य होने से। **२४. विवेदः**—पुरुषादि तीन वेदों से रहित हैं। **२५. वदताम्वरः**—वक्ताओं में श्रेष्ठ होने से।

अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग् व्यक्तशासनः।
युगादिकृत् युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥

अर्थ—२६. अनादिनिधनः—आदि अन्त रहित होने से। **२७. व्यक्तः**—ज्ञान के द्वारा अत्यन्त स्पष्ट होने से। **२८. व्यक्तवाक्**—आपके वचन अतिशय स्पष्ट है। **२९. व्यक्तशासनः**—आपका शासन अत्यन्त स्पष्ट अथवा प्रकट है। **३०. युगादि-कृत्**—कर्मभूमि युग के आदि व्यवस्थापक होने से। **३१. युगाधारः**—युगों का आधार/सहारा देने वाले होने से। **३२. युगादिः**—कर्मभूमि युग का प्रारम्भ आपसे ही हुआ था। **३३. जगदादिजः**—जगत् के प्रारम्भ में उत्पन्न होने से।

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्र-महितो महान् ॥५॥

अर्थ—३४. अतीन्द्रः—अपने प्रभाव अथवा ऐश्वर्य से इन्द्रों को भी अतिक्रान्त करने से। **३५. अतीन्द्रियः**—इन्द्रियगोचर न होने से। **३६.धीन्द्रः**—बुद्धि के स्वामी होने से। **३७. महेन्द्रः**—परम ऐश्वर्य का अनुभव करने से। **३८. अतीन्द्रियार्थदृक्**—सूक्ष्म अन्तरित दूरार्थ अतीन्द्रिय पदार्थों को देखने वाले होने से। **३९. अनिन्द्रियः** — इन्द्रियों से रहित होने से। **४०. अहमिन्द्रार्च्यः**—अहमिन्द्रों के द्वारा पूजित होने से। **४१. महेन्द्रमहितः**—बड़े-बड़े इन्द्रों के द्वारा पूजित होने से। **४२. महान्**— सबसे पूज्य व बड़े होने से।

उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भव—तारकः।
अगाह्यो गहनं गुह्यं पराघ्यः परमेश्वरः ॥६॥

अर्थ—४३. उद्भवः—आपका जन्म संसार में सर्वोत्कृष्ट होने से। **४४. कारणं**—मोक्ष के कारण होने से। **४५. कर्ता**—शुद्धभावों को करने वाले होने से। **४६. पारगः**— संसार रूपी समुद्र के पार को प्राप्त होने से। **४७. भवतारकः**—भव्य

जीवों को संसार समुद्र से तारने वाले होने से। ४८. **अगाह्यः**—आपके गुणों को कोई समझ नहीं सकता। ४९. **गहनं**—अतिशय गम्भीर होने से। ५०. **गुह्यं**—गुप्त रूप अर्थात् परम रहस्य रूप होने से। ५१. **पराघ्यः**—सबसे उत्कृष्ट होने के कारण। ५२. **परमेश्वरः**—सबसे अधिक समर्थ होने के कारण।

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥

अर्थ—५३. अनन्तर्द्धिः—अनन्त ऋद्धियों के धारी होने से। ५४. **अमेयर्द्धिः** — अमेय अपरिमित ऐश्वर्य के धारी होने से। ५५. **अचिन्त्यर्द्धिः**—अचिन्त्य ऋद्धियों के स्वामी होने से। ५६. **समग्रधीः**—आपकी बुद्धि पूर्णावस्था को प्राप्त हुई है। ५७. **प्राग्र्य**—सबमें मुख्य होने से। ५८. **प्राग्रहरः**—प्रत्येक मांगलिक कार्यों में सर्वप्रथम स्मरण किये जाने से। ५९. **अभ्यग्रः**—लोक का अग्रभाग प्राप्त करने के सम्मुख होने से। ६०. **प्रत्यग्रः**—समस्त लोगों से विलक्षण होने से। ६१.**अग्र्यः**—सबके स्वामी होने से। ६२.**अग्रिमः**—सबके अग्रेसर होने से। ६३.**अग्रजः**—सबसे ज्येष्ठ होने से।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥

अर्थ—६४. महातपा—कठिन तपश्चरण को धारण किया था। ६५. **महातेजा**— आपका तेज चारों ओर फैल रहा है। ६६. **महोदर्कः**—आपकी तपश्चर्या का फल केवलज्ञान है। ६७. **महोदयः**—बड़ा भारी ऐश्वर्य होने से। ६८.**महायशाः** —आपका महान् यश चारों ओर फैल रहा है। ६९. **महाधामाः**—विशाल तेज प्रताप के धारी होने से। ७०. **महासत्त्वः**—अपार शक्ति सम्पन्न होने से। ७१. **महाधृतिः**—महान् धैर्यवान होने से।

महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥

अर्थ—७२. महाधैर्यः—आप कभी अधीर नहीं होते। ७३. **महावीर्यः**—अनन्तवीर्य के धारी होने से। ७४. **महासम्पत्**—समवसरण रूप अद्भुत विभूति के धारक होने से। ७५. **महाबलः**—अत्यन्त बलवान् होने से। ७६. **महाशक्तिः**—अनन्त शक्ति के धारी होने से। ७७. **महाज्योतिः**—अतिशय कान्तिवान होने से। ७८. **महाभूतिः**—अपार वैभवशाली होने से। ७९. **महाद्युतिः**—आपका शरीर अत्यधिक चमकदार/द्युतिवान होने से।

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

अर्थ—८०. महामतिः—अतिशय बुद्धिमान् होने से। **८१. महानीतिः**—अतिशय नीतिवान/न्यायवान होने से। **८२. महाक्षान्तिः**—अतिशय क्षमावान होने से। **८३. महादयः**—अतिशय दयालु होने से। **८४. महाप्राज्ञः**—अत्यन्त विवेकवान होने से। **८५. महाभागः**—अत्यन्त भाग्यशाली होने से। **८६. महानन्दः**—अत्यन्त आनन्द के धारी होने से। **८७. महाकविः**—सर्वश्रेष्ठ काव्य रचने वाले होने से।

महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

अर्थ—८८. महामहाः—अत्यन्त तेजस्वी होने से। **८९. महाकीर्तिः**—विशाल कीर्ति के धारक होने से। **९०. महाकान्तिः**—अद्भुत कान्ति से युक्त होने से। **९१.महावपुः**—उत्तुंग/विशाल शरीर वाले होने से। **९२. महादानः**—बड़े दानी होने से। **९३. महाज्ञानः**—केवलज्ञानी होने से। **९४. महायोगः**—बड़े ध्यानी होने से। **९५. महागुणः**—बड़े-बड़े गुणों के धारक होने से।

महामहपतिः प्राप्त - महाकल्याण-पञ्चकः।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥

अर्थ—९६. महामहपतिः—अनेक बड़े-बड़े उत्सवों के स्वामी होने से। **९७. प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः**—गर्भ जन्मादि पञ्चकल्याणकों को प्राप्त करने वाले होने से। **९८. महाप्रभुः**—सबसे बड़े स्वामी है। **९९. महाप्रतिहार्याधीशः**—अशोक वृक्षादि आठ महाप्रातिहार्यों के स्वामी होने से। **१००. महेश्वरः**—सब देवों के अधीश्वर होने से।

॥ इति श्रीवृक्षादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥५॥

❑ ❑ ❑

षष्ठशतकम्

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

अर्थ—१. महामुनिः—सब मुनियों में उत्तम होने से। **२. महामौनी**—वचनालाप रहित होने से। **३. महाध्यानी**—शुक्लध्यान के ध्याता होने से। **४. महादमः**—

अतिशय जितेन्द्रिय होने से। **५. महाक्षमः**—अतिशय समर्थ अथवा शान्त होने से। **६. महाशीलः**—उत्तम शील युक्त होने से। **७. महायज्ञः**—तपश्चरण रूपी अग्नि में कर्म रूपी हवि के होम करने से। **८. महामखः**—अतिशय पूज्य होने के कारण।

महाव्रत - पतिर्मह्यो महाकान्ति - धरोऽधिपः।
महामैत्री - मयोऽमेयो महोपायो महोमयः ॥२॥

अर्थ—९. महाव्रतपतिः—पाँच महाव्रतों के स्वामी होने से। **१०. मह्यः**—जगत् पूज्य होने से। **११. महाकान्तिधरः**—विशाल कान्ति के धारक होने से। **१२. अधिपः**—सबके स्वामी होने से। **१३. महामैत्रीमयः**—सब जीवों के साथ मैत्री भाव होने से। **१४. अमेयः**—अपरिमित गुणों के धारक होने से। **१५. महोपायः**—मोक्ष के उत्तमोत्तम उपायों से सहित होने से। **१६. महोमयः**—तेजः स्वरूप होने से।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥

अर्थ—१७. महाकारुणिकः—अत्यन्त दयालु होने से। **१८. मन्ताः**—सब पदार्थों को जानने से। **१९. महामन्त्रः**—अनेक मन्त्रों के स्वामी होने से। **२०. महायतिः**—यतियों में श्रेष्ठ होने से। **२१. महानादः**—गम्भीर दिव्यध्वनि के धारक होने से। **२२. महाघोषः**—दिव्यध्वनि का गम्भीर उच्चारण होने के कारण। **२३. महेज्यः**—बड़ी-बड़ी पूजाओं के अधिकारी होने से। **२४. महसांपतिः**—समस्त तेज अथवा प्रताप के स्वामी होने से।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक्।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥

अर्थ—२५. महाध्वरधरः—ज्ञानरूपी विशाल यज्ञ के धारक होने से। **२६. धुर्यः**—कर्मभूमि का समस्त भार सम्हालने अथवा सर्वश्रेष्ठ होने से। **२७. महौदार्यः**—अतिशय उदार होने से। **२८. महिष्ठवाक्**—श्रेष्ठ वचनों से युक्त होने से। **२९. महात्मा**—महान् आत्मा के धारक होने से। **३०. महसांधाम**—समस्त तेज के स्थान होने से। **३१. महर्षिः**—ऋषियों में प्रधान होने से। **३२. महितोदयः**—प्रशस्त जन्म के धारक होने से।

महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥

अर्थ—३३. महाक्लेशाङ्कुशः—महाक्लेश अर्थात् तपश्चरणरूप अंकुश को धारण करने से। **३४. शूरः**—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं को जीतने से। **३५. महाभूतपतिः**—गणधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के स्वामी होने से। **३६. गुरुः**—सबको धर्मोपदेश देने से। **३७. महापराक्रमः**—अतिशय पराक्रमी होने से। **३८. अनन्तः**—अन्त रहित होने से। **३९. महाक्रोधरिपुः**—क्रोध के शत्रु होने से। **४०. वशी**—इन्द्रियों को वश में करने वाले होने से।

महाभवाब्धि-संतारी महामोहाद्रि-सूदनः।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

अर्थ—४१. महाभवाब्धि-सन्तारी—संसार-सागर से पार कराने से। **४२. महा-मोहाद्रिसूदनः**—मोहरूपी पर्वत का भेदन करने से। **४३. महागुणाकरः**—सम्यग्दर्शनादि गुणों की खानि होने से। **४४. क्षान्तः**—कषाय रहित होने से। **४५. महायोगीश्वरः**—गणधरादि महायोगियों के स्वामी होने से। **४६. शमी**—परमसुखी होने से।

महाध्यानपतिर्ध्यात - महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

अर्थ—४७. महाध्यानपतिः—परम शुक्लध्यान के स्वामी होने से। **४८. ध्यात-महाधर्मा**—अहिंसादि धर्म का ध्यान करने से। **४९. महाव्रतः**—महाव्रतों को धारण करने से। **५०. महाकर्मारिहा**—कर्मरूपी महाशत्रुओं का नाश करने से। **५१. आत्मज्ञः**—आत्मा का स्वरूप जानने से। **५२. महादेवः**—समस्त देवों के स्वामी होने से। **५३. महेशिता**—विलक्षण ऐश्वर्य को धारण करने से।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

अर्थ—५४. सर्वक्लेशापहः—शारीरिक और मानसिक क्लेशों को दूर करने से। **५५. साधुः**—रत्नत्रय को सिद्ध करने से। **५६. सर्वदोषहरः**—भव्यजीवों के समस्त दोषों को दूर करने से। **५७. हरः**—पापों का हरण करने से। **५८. असंख्येयः**—असंख्यात गुणों को धारण करने से। **५९. अप्रमेयात्मा**—प्रमाण रहित शक्ति को धारण करने से। **६०. शमात्मा**—परम शान्त स्वरूप होने से। **६१. प्रशमाकरः**—उत्तम शान्ति की खान होने से।

सर्व-योगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

अर्थ—६२. सर्वयोगीश्वरः—समस्त योगियों के ईश्वर होने से। **६३. अचिन्त्यः**—चिन्तन के अतीत होने से। **६४. श्रुतात्मा**—सम्पूर्ण श्रुत स्वरूपी होने से। **६५. विष्टरश्रवा**—तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को जानने से। **६६. दान्तात्मा**—जितेन्द्रिय होने से। **६७. दमतीर्थेशः**— इन्द्रिय दमन रूप तीर्थ के स्वामी होने से। **६८. योगात्मा**—योग स्वरूप होने से। **६९. ज्ञानसर्वगः**—ज्ञान के द्वारा सब जगह होने से।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥१०॥

अर्थ—७०. प्रधानं—एकाग्रता से आत्मा का ध्यान करने से। **७१. आत्मा**—ज्ञान स्वरूप होने से। **७२. प्रकृतिः**—प्रकृष्ट कार्यों के होने से। **७३. परमः**—उत्कृष्ट लक्ष्मी को धारण करने से। **७४. परमोदयः**—उत्कृष्ट उदय अर्थात् जन्म या वैभव को धारण करने से। **७५. प्रक्षीणबन्धः**—कर्मबन्ध सब नष्ट होने से। **७६. कामारिः**—कामदेव के शत्रु होने से। **७७. क्षेमकृत्**—कल्याणकारी होने से। **७८. क्षेमशासनः**—मंगलमय उपदेश के देने से।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

अर्थ—७९. प्रणवः—ओंकार रूप होने से। **८०. प्रणयः**—सबके द्वारा नमस्कृत होने से। **८१. प्राणः**—जगत् को जीवित रखने से। **प्राणदः**—परिपूर्णता के दाता होने से। **८२. प्रणतेश्वरः**—नम्रीभूत भव्यजनों के स्वामी होने से। **८४. प्रमाणं**—ज्ञानमय होने से। **८५. प्रणिधिः**—अनन्तज्ञान आदि उत्कृष्ट निधियों के स्वामी होने से। **८६. दक्षः**—समर्थ अथवा प्रवीण होने से। **८७. दक्षिणः**—सरल होने से। **८८. अध्वयुः**—ज्ञानरूप यज्ञ करने से। **८९. अध्वरः**— समीचीन मार्ग के प्रदर्शक होने से।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुरिञ्जयः ॥१२॥

अर्थ—९०. आनन्दः—सदा सुख रूप होने से। **९१. नन्दनः**—सबको आनन्द देने से। **९२. नन्दः**—सदा समृद्धिमान होते रहने से। **९३. वन्द्यः**—इन्द्रादि के द्वारा

वन्दना करने योग्य होने से। **९४. अनिन्द्यः**—निन्दा रहित होने से। **९५. अभिनन्दनः**—प्रशंसनीय होने से। **९६. कामहा**—कामदेव को नष्ट करने से। **९७. कामदः**—अभिलषित पदार्थों को देने से। **९८. काम्यः**—सबके द्वारा चाहने योग्य होने से। **९९. कामधेनुः**—सबके मनोरथ पूर्ण करने वाले होने से। **१००. अरिञ्जयः**— कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले होने से।

॥ इति महामुन्यादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥६॥

❑ ❑ ❑

सप्तमशतकम्

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥१॥

अर्थ—१. असंस्कृतसुसंस्कारः—किसी अन्य के द्वारा संस्कृत हुए बिना ही उत्तम संस्कारों को धारण करने से। **२. प्राकृतः**—स्वाभाविक होने से। **३. वैकृतान्तकृत्**—रागादि विकारों का नाश करने से। **४. अन्तकृत्**—जन्म मरण रूप संसार का अवसान करने वाले होने से। **५. कान्तगुः**—सुन्दर कान्ति वचन अथवा इन्द्रियों के धारक होने से। **६. कान्तः**—अत्यन्त सुन्दर होने से। **७. चिन्तामणिः**—इच्छित पदार्थ देने से। **८. अभीष्टदः**—भव्य जीवों के लिए अभीष्ट स्वर्ग-मोक्ष देने से।

अजितो जित - कामारिरमितोऽमित - शासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥

अर्थ—९. अजितः—किसी के द्वारा जीते नहीं जा सकने के कारण। **१०. जित-कामारिः**—कामरूपी शत्रु को जीतने से। **११. अमितः**—अवधि रहित होने से। **१२. अमितशासनः**—अनुपम धर्म का उपदेश देने से। **१३. जितक्रोधः**—क्रोध को जीतने से। **१४. जितामित्रः**—शत्रुओं को जीत लेने से। **१५. जितक्लेशः**—क्लेशों को जीत लेने से। **१६. जितान्तकः**—यमराज को जीत लेने से।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभि—स्वनः।
महेन्द्र—वन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

अर्थ—१७. जिनेन्द्रः—कर्म रूपी शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ होने से। **१८. परमानन्दः**—उत्कृष्ट आनन्द के धारक होने से। **१९. मुनीन्द्रः**—मुनियों के नाथ

होने से। २०. **दुन्दुभिस्वनः**—दुन्दभि के समान गम्भीर ध्वनि युक्त होने के कारण। २१. **महेन्द्रवन्द्यः**—बड़े-बड़े इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय होने से। २२. **योगीन्द्रः**—योगियों के स्वामी होने से। २३. **यतीन्द्रः**—यतियों के अधिपति होने से। २४. **नाभिनन्दनः**—नाभि राजा के पुत्र होने से।

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्योऽनाश्वानधिकोऽधिगुरु सुधीः ॥४॥

अर्थ—२५. नाभेयः—नाभिराज की सन्तान होने से। २६. **नाभिजः**—नाभिराय से उत्पन्न होने से। २७. **अजातः**—जन्म रहित होने से। २८. **सुव्रतः**—उत्तम व्रतों के धारक होने से। २९. **मनुः**—कर्मभूमि की समस्त व्यवस्था बताने अथवा मनन-ज्ञान रूप होने से। ३०. **उत्तमः**—उत्कृष्ट होने से। ३१. **अभेद्यः**—किसी के द्वारा भेदन करने योग्य न होने से। ३२. **अनत्ययः**—विनाश रहित होने से। ३३. **अनाशवान्** —तपश्चरण करने से। ३४. **अधिकः**—वास्तविक सुख प्राप्त होने से। ३५. **अधिगुरुः**—श्रेष्ठ गुरु होने से। ३६. **सुधीः**—उत्तम वचनों के धारक होने से।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥

अर्थ—३७. सुमेधा—उत्तम बुद्धि होने से। ३८. **विक्रमीः**—पराक्रमी होने से। ३९. **स्वामीः**—सबके अधिपति होने से। ४०. **दुराधर्षः**—किसी के द्वारा अनादर नहीं किये जा सकने से। ४१. **निरुत्सुकः**—सांसारिक विषयों में उत्कण्ठ रहित होने से। ४२. **विशिष्टः**—विशेष रूप होने से। ४३. **शिष्टभुक्**—शिष्ट पुरुषों का पालन करने से। ४४. **शिष्टः**—सदाचार पूर्ण होने से। ४५. **प्रत्ययः**—विश्वास अथवा ज्ञान रूप होने से। ४६. **कामनः**—मनोहर होने से। ४७. **अनघः**—पाप रहित होने से।

क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरूत्तरः ॥६॥

अर्थ—४८. क्षेमी—कल्याण से युक्त होने के कारण। ४९. **क्षेमंकरः**—भव्य जीवों का कल्याण करने से। ५०. **अक्षयः**—क्षय रहित होने से। ५१. **क्षेम-धर्मपतिः**—कल्याणकारी धर्म के स्वामी होने से। ५२. **क्षमी**—क्षमा से युक्त होने से। ५३. **अग्राह्यः**—अल्पज्ञानियों के ग्रहण में न आने से। ५४. **ज्ञान-निग्राह्यः**—सम्यग्ज्ञान के द्वारा ग्रहण करने के योग्य होने से। ५५. **ध्यान-गम्यः**—ज्ञान-

ध्यान के द्वारा जाने जा सकने योग्य होने से। **५६. निरुत्तरः**—सबसे उत्कृष्ट होने से।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥

अर्थ—५७. सुकृती—पुण्यवान होने से। **५८. धातुः**—शब्दों के उत्पादक होने से। **५९. इज्यार्हः**—पूजा के योग्य होने से। **६०. सुनयः**—समीचीन नयों से रहित होने से। **६१. चतुरानन:**—समवसरण में अतिशय विशेष से चारों ओर मुख दिखने के कारण। **६२. श्रीनिवासः**—भगवान् सर्व शोभाओं के निवास स्थान होने से। **६३. चतुर्वक्त्रः**—चार मुख हैं जिनके वे जिनराज। **६४. चतुरास्यः**—चार मुख हैं जिनके वे जिनराज। **६५. चतुर्मुखः**—चार अनुयोग अर्थ रूप भगवान् के मुख होने से।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक् सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥

अर्थ—६६. सत्यात्मा—सत्य स्वरूप होने से। **६७. सत्यविज्ञानः**—यथार्थ विज्ञान से सहित होने के कारण। **६८. सत्यवाक्**—सत्यवचन होने से। **६९. सत्यशासनः**—सत्य धर्म का उपदेश देने से। **७०. सत्याशीः**—सत्य आशीर्वाद होने से। **७१. सत्यसन्धानः**—प्रतिज्ञा दृढ़ सत्य स्वरूप रखने से। **७२. सत्यः**—शुद्ध मोक्षस्वरूप होने से। **७३. सत्यपरायणः**—सत्य में ही निरन्तर तत्पर रहने से।

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

अर्थ—७४. स्थेयान्—अत्यन्त स्थिर होने से। **७५. स्थवीयान्**—अतिशय स्थूल होने से। **७६. नेदीयान्**—भक्तों के समीपवर्ती होने से। **७७. दवीयान्**—पापों से दूर रहने से। **७८.दूरदर्शनः**—आपके दर्शन दूर से ही होने से। **७९. अणोः-अणीयान्** —परमाणु से भी सूक्ष्म होने से। **८०. अनणुः**—अणु रूप न होने से। **८१. आद्यः गरीयसाम्**—गुरुओं में भी श्रेष्ठ गुरु होने से।

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥

अर्थ—८२. सदायोगः—सदा योग रूप होने से। **८३. सदाभोगः**—सदा आनन्द के भोक्ता होने से। **८४. सदातृप्तः**—सदा संतुष्ट होने से। **८५. सदाशिवः**—सदा

कल्याणरूप रहने से। ८६. **सदागतिः**—सदा ज्ञान रूप होने से। ८७. **सदासौख्यः**—सदा सुख रूप होने से। ८८. **सदाविद्यः**—सदा केवलज्ञान रूप विद्या से युक्त होने के कारण। ८९. **सदोदयः**—सदा उदय रूप होने से।

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमेश्वरः ॥११॥

अर्थ—९०. सुघोषः—उत्तम ध्वनि होने से। **९१. सुमुखः**—सुन्दर मुख वाले होने से। **९२. सौम्यः**—शान्तरूप होने से। **९३. सुखदः**—सब जीवों को सुखदायी होने से। **९४. सुहितः**—सबका हित करने से। **९५. सुहृत्**—उत्तम हृदय होने से। **९६. सुगुप्तः**—सुरक्षित होने से। **९७. गुप्तिभृत्**—गुप्तियों को धारण करने से। **९८. गोप्ता**—सबके रक्षक होने से। **९९. लोकाध्यक्षः**—तीनों लोकों का साक्षात्कार करने से। **१००. दमेश्वरः**—इन्द्रिय विजय रूपी दम के स्वामी होने से।

॥ इति असंस्कृतादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥७॥

❑ ❑ ❑

अष्टमशतकम्

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदार - धीः।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥

अर्थ—१. बृहद्बृहस्पति—इन्द्रों के गुरु होने से। **२. वाग्मी**—प्रशस्त वचनों के धारक होने से। **३. वाचस्पतिः**—वचनों के स्वामी होने से। **४. उदारधीः**—निज-पर हितकारक बुद्धि के धारक होने से। **५. मनीषी**—मनन शक्ति से युक्त होने के कारण। **६. धिषणः**—चातुर्यपूर्ण बुद्धि से सहित होने से। **७. धीमान्**—धारणपटु बुद्धि से सहित होने के कारण। **८. शेमुशीषः**—बुद्धि के स्वामी होने से। **९. गिरांपतिः**—सब प्रकार के वचन (भाषाओं) के स्वामी होने से।

नैक-रूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मानैक - धर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

अर्थ—१०. नैकरूपः—अनेक रूप होने से। **११. नयोतुङ्गः**—नयों के द्वारा उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त होने से। **१२. नैकात्मा**—अनेक गुणों को धारण करने से। **१३. नैकधर्मकृत्**—अनेक धर्मात्मक वस्तु का उपदेश करने से। **१४. अविज्ञेयः**—साधारण पुरुषों के द्वारा नहीं जाने जा सकने से। **१५. अप्रतर्क्यात्मा**—तर्क-

वितर्क रहित होने से। **१६.कृतज्ञः**—जीवों के समस्त कृत्य जानने से। **१७. कृत-लक्षणः**—समस्त सुलक्षणों सहित होने से।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥

अर्थ—१८. ज्ञानगर्भः—अन्तरंग में ज्ञान होने से। **१९. दयागर्भः**—दयालु हृदय होने से। **२०. रत्नगर्भः**—रत्नत्रय से युक्त होने से। **२१. प्रभास्वरः**—देदीप्यमान होने से। **२२. पद्मगर्भः**—कमलाकार गर्भाशय में स्थित रहने से। **२३. जगद्गर्भः**—ज्ञान के भीतर समस्त जगत् प्रतिबिम्बत होने से। **२४. हेमगर्भः**—गर्भकल्याण के समय सुवर्ण की वृष्टि होने से। **२५. सुदर्शनः**—सुंदर दर्शन होने के कारण।

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीर-शासनः ॥४॥

अर्थ—२६. लक्ष्मीवान्—अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी से युक्त होने से। **२७. त्रिदशाध्यक्षः**—देवों के स्वामी होने से। **२८. दृढीयान्**—अत्यन्त दृढ़ होने से। **२९. इनः**—सबके स्वामी होने से। **३०. ईशिता**—सामर्थ्यशाली होने से। **३१. मनोहरः**—भव्यजीवों का मनहरण करने से। **३२. मनोज्ञांगः**—सुंदर अंगों के धारक होने से। **३३. धीरः**—धैर्यवान होने से। **३४. गम्भीरशासनः**—शासन की गंभीरता होने से।

धर्म-यूपो दया - यागो धर्म - नेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अर्थ—३५. धर्मयूपः—धर्म के स्तम्भस्वरूप होने से। **३६. दयायागः**—दयारूप यज्ञ के करने से। **३७. धर्मनेमिः**—धर्मरूपी चक्र की धुरा होने से। **३८. मुनीश्वरः**—मुनियों के स्वामी होने से। **३९. धर्मचक्रायुधः**—धर्मचक्र रूपी शस्त्र के धारक होने से। **४०. देवः**—आत्मगुणों में क्रीड़ा करने से। **४१. कर्महा**—कर्मों का नाश करने से। **४२. धर्मघोषणः**—धर्म का उपदेश देने से।

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥

अर्थ—४३. अमोघवाक्—आपके वचन कभी व्यर्थ नहीं जाते। **४४. अमोघाज्ञः**— आपकी आज्ञा कभी निष्फल नहीं होती। **४५. निर्मलः**—मल रहित होने से। **४६.अमोघशासनः**—आपका शासन सदा सफल रहता है। **४७. सुरूपः**—सुन्दर

रूप के धारक होने से। ४८. **सुभगः**—उत्तम ऐश्वर्य युक्त होने से। ४९. **त्यागी**—आपने परपदार्थों का त्याग कर दिया है। ५०. **समयज्ञः**—समय अर्थात् आत्म स्वरूप के ज्ञाता होने से। ५१. **समाहितः**—समाधान रूप होने से।

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्भवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

अर्थ—५२. **सुस्थितः**—सुख पूर्वक स्थित रहने से। ५३. **स्वास्थ्यभाक्**—आरोग्य की निश्चलता को प्राप्त होने से। ५४. **स्वस्थः**—आत्मस्वरूप में स्थित होने से। ५५. **नीरजस्कः**—कर्मरूपी रज से रहित होने के कारण। ५६. **निरुद्भवः**—सांसारिक उत्सवों से रहित होने के कारण। ५७. **अलेपः**—कर्म रूपी लेप से रहित होने से। ५८. **निष्कलङ्कात्मा**—कलंक रहित आत्मा वाले होने से। ५९. **वीतरागः**—रागादि दोषों से रहित होने के कारण। ६०. **गतस्पृहः**—विषयों की इच्छा रहित होने से।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्त - धामर्षिर्मङ्गलं मलहानयः ॥८॥

अर्थ—६१. **वश्येन्द्रियः**—आपने इन्द्रियों को वश में कर लिया है। ६२. **विमुक्तात्मा**—कर्म बन्ध से मुक्त आत्मा होने से। ६३. **निःसपत्नः**—आपका कोई शत्रु नहीं है। ६४. **जितेन्द्रियः**—इन्द्रिय को जीतने वाले होने से। ६५. **प्रशान्तः**—अत्यन्त शान्त होने से। ६६. **अनन्तधामर्षिः**—अनन्त तेज के धारक ऋषि होने से। ६७. **मंगलं**— मंगलरूप होने से। ६८. **मलहा**—मल को नष्ट करने से। ६९. **अनयः**—पाप रहित होने से।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥

अर्थ—७०. **अनीदृक्**—आपके समान अन्य कोई नहीं है। ७१. **उपमाभूतः**—सबके लिए उपमा देने योग्य है। ७२. **दिष्टिः**—महाभाग्यशाली होने से। ७३. **दैवं**—भाग्य स्वरूप होने से। ७४. **अगोचरः**—इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते। ७५. **अमूर्तः**—रूप, रस, गंध एवं स्पर्श रहित होने से। ७६. **मूर्तिमान्**—शरीर सहित होने से। ७७. **एकः**—अद्वितीय होने से। ७८. **नैकः**—अनेक गुण वाले होने से। ७९. **नानैकतत्त्वदृक्**—आत्मा को छोड़कर अन्य तत्त्वों में लीन नहीं होने से।

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकाल-विषयार्थदृक् ॥१०॥

अर्थ—८०. अध्यात्मगम्यः—अध्यात्म शास्त्रों के द्वारा जानने योग्य होने से। **८१. अगम्यात्मा**—मिथ्यादृष्टि जीवों के जानने योग्य न होने से। **८२. योगवित्**—योग के जानकार होने से। **८३. योगिवन्दितः**—योगियों के द्वारा वन्दना किये जाने से। **८४. सर्वत्रगः**—केवलज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त होने से। **८५. सदाभावी**—सदा विद्यमान रहने से। **८६. त्रिकालविषयार्थदृक्**—त्रिकाल विषय समस्त पदार्थों को देखने से।

शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्ति-परायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥

अर्थ—८७. शङ्करः—सबको सुखी करने वाले होने से। **८८. शंवदः**—सुख का मार्ग बतलाने वाले होने से। **८९. दान्तः**—मन को वश में करने से। **९०. दमी**—इन्द्रियों का दमन करने से। **९१. क्षान्तिपरायणः**—क्षमा धारण करने में तत्पर होने से। **९२. अधिपः**—सबके स्वामी होने से। **९३. परमानन्दः**—उत्कृष्ट आनन्द रूप होने से। **९४. परात्मज्ञः**—पर और निज की आत्मा को जानने से। **९५. परात्परः**—श्रेष्ठ से श्रेष्ठ होने से।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रि - जगन्मङ्गलोऽदयः।
त्रिजगत्पति-पूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

अर्थ—९६. त्रिजगद्वल्लभः—तीन लोकों के प्रिय अथवा स्वामी होने से। **९७. अभ्यर्च्यः**—पूज्यनीय होने। **९८. त्रिजगन्मङ्गलोदयः**—तीन लोकों में मंगलदाता होने से। **९९. त्रिजगत्पति पूज्यांघ्रि**—इन्द्रों के द्वारा पूज्यनीय चरण होने से। **१००. त्रिलोकाग्रशिखामणिः**—तीन लोक के अग्रभाग पर चूड़ामणि के समान विराजमान होने से।

॥ इति बृहदादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥८॥

नवमशतकम्

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैक-सारथिः ॥१॥

अर्थ—१. त्रिकालदर्शी—तीनकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थों को देखने वाले होने से। **२. लोकेशः**—लोक के स्वामी होने से। **३. लोकधाता**—समस्त लोगों

के पोषक या रक्षक होने से। ४. **दृढव्रतः**—व्रतों को स्थिर रखने से। ५. **सर्व-लोकातिगः**—सर्व लोकों में श्रेष्ठ होने से। ६. **पूज्यः**—पूजा के योग्य होने से। ७. **सर्वलोकैक—सारथिः**—सब जीवों को अभीष्ट (मोक्ष) स्थान तक पहुँचाने में समर्थ होने से।

पुराणः पुरुषः पूर्वः कृत-पूर्वाङ्ग - विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरु-देवोऽधिदेवता ॥२॥

अर्थ—८. पुराणः—सबसे प्राचीन होने से। ९. **पुरुषः**—आत्मा के श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने से। १०. **पूर्वः**—सर्वप्रथम होने से। ११. **कृतपूर्वाङ्गविस्तरः**—अंग और पूर्वों का विस्तार करने से। १२. **आदिदेवः**—देवों में मुख्य होने से। १३. **पुराणाद्यः**—पुराणों में प्रथम पुरुष होने से। १४. **पुरुदेवः**—महान् अथवा प्रथम तीर्थंकर होने से। १५. **अधिदेवता**—देवों के भी देवता होने से।

युगमुख्यो युग - ज्येष्ठो युगादि-स्थिति-देशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥

अर्थ—१६. युगमुख्यः—इस अवसर्पिणी काल में मुख्य होने से। १७. **युगज्येष्ठः**—इस युग में सबसे श्रेष्ठ होने से। १८. **युगादिस्थितिदेशकः**—कर्मभूमि की स्थिति के मुख्य उपदेशक होने से। १९. **कल्याणवर्णः**—शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान होने से। २०. **कल्याणः**—सौभाग्य स्वरूप होने से। २१. **कल्यः**—सबके कल्याणकारी होने से। २२. **कल्याणलक्षणः**—कल्याण रूप लक्षणों को धारण करने से।

कल्याणप्रकृतिर्दीप्त - कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥

अर्थ—२३. कल्याणप्रकृतिः—आपका स्वभाव ही कल्याणरूप होने से। २४. **दीप्तकल्याणात्मा**—सबको प्रकाशित करती आपकी आत्मा कल्याणरूप होने से। २५. **विकल्मषः**—पाप रहित होने से। २६. **विकलङ्कः**—काम आदि कलंक से रहित होने के कारण। २७. **कलातीतः**—शरीर रहित होने से। २८. **कलिलघ्नः**—पापों का नाश करने से। २९. **कलाधरः**—अनेक कलाओं को धारण करने से।

देव - देवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

अर्थ—३०. देवदेवः—इन्द्रादि सब देवों के देव होने से। **३१. जगन्नाथः**—जगत् के स्वामी होने से। **३२. जगद्बन्धुः**—तीन लोक के प्राणियों के बन्धुवत् होने से। **३३. जगद्विभुः**—समस्त जगत् के प्रभु होने से। **३४. जगद्धितैषी**—तीन लोक के प्राणियों का हित करने से। **३५. लोकज्ञः**—तीन लोक को जानने से। **३६. सर्वगः**—समस्त तत्त्व पदार्थों के ज्ञाता होने से। **३७. जगदग्रजः**—जगत् में श्रेष्ठ होने से।

चराचर - गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसत्प्रभः ॥६॥

अर्थ—३८. चराचरगुरुः—त्रस-स्थावर आदि सब जीवों के गुरु होने से। **३९. गोप्यः**—हृदय में बड़े यत्न से स्थापन करने योग्य होने से। **४०. गूढात्मा**—आपका स्वरूप अत्यन्त गुप्त होने से। **४१. गूढगोचरः**—गूढ़ अर्थात् जीवादि पदार्थों को जानने से। **४२. सद्योजातः**—तत्काल में उत्पन्न हुए के समान निर्विकार होने से। **४३. प्रकाशात्मा**—प्रकाशस्वरूप होने से। **४४. ज्वलज्जवलनसत्प्रभः**—जलती हुई अग्नि के समान शरीर की प्रभा के धारक होने से।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥

अर्थ—४५.आदित्यवर्णः—सूर्य के समान तेजस्वी होने से। **४६. भर्माभः**—सुवर्ण के समान कान्तिवान होने से। **४७. सुप्रभः**—उत्तमप्रभा से युक्त होने से। **४८. कनकप्रभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **४९. सुवर्णवर्णः**—सुवर्ण के रंग वाले होने से। **५०. रुक्माभः**—सुवर्ण के रंग वाले होने से। **५१. सूर्यकोटि-समप्रभः**—करोड़ों सूर्य के समान कांति वाले होने से।

तपनीय - निभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनल-प्रभः।
संध्याभ्र-बभ्रुर्हेमाभस्तप्त-चामीकरच्छविः ॥८॥

अर्थ—५२. तपनीयनिभः—सुवर्ण के समान भास्वर होने से। **५३. तुङ्गः**—ऊँचा शरीर होने से। **५४. बालार्काभः**—प्रातःकाल के सूर्य के समान बालप्रभा के धारक होने से। **५५. अनलप्रभः**—अग्नि के समान कान्ति वाले होने से। **५६. सन्ध्याभ्रबभ्रुः**—संध्याकाल के बादलों के समान सुन्दर होने से। **५७. हेमाभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **५८. तप्तचामीकरच्छविः**—तपाये

हुए स्वर्ण के समान कांति वाले।

निष्टप्त - कनकच्छायः कनत्काञ्चन-सन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥

अर्थ—५९. निष्टप्तकनकच्छायः—अत्यन्त तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाले होने से। **६०. कनत्काञ्चनसन्निभः**—देदीप्यमान सुवर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६१. हिरण्यवर्णः**—सुवर्ण के समान वर्ण वाले होने से। **६२.स्वर्णाभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **६३. शातकुम्भनिभप्रभः**—स्वर्ण के समान आभा वाले होने से।

द्युम्नाभो जात - रूपाभस्तप्त - जाम्बूनद - द्युतिः।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटक-द्युतिः ॥१०॥

अर्थ—६४. द्युम्नाभः—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६५. जातरूपाभः**—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६६. तप्तजाम्बूनदद्युतिः**—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६७. सुधौतकलधौतश्रीः**—तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होने से। **६८. प्रदीप्त**—देदीप्यमान होने से। **६९. हाटकद्युतिः**—तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होने से।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥

अर्थ—७०. शिष्टेष्टः—शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों के इष्ट होने से। **७१. पुष्टिदः**—पुष्टि को देने वाले होने से। **७२. पुष्टः**—परमौदारिक शरीर के पुष्ट होने से। **७३. स्पष्टः**—प्रकट दिखाई देने से। **७४. स्पष्टाक्षरः**—स्पष्ट अक्षर होने से। **७५. क्षमः**—समर्थ होने से। **७६. शत्रुघ्नः**—कर्मरूपी शत्रु का नाश करने से। **७७. अप्रतिघः**—शत्रु रहित होने से। **७८. अमोघः**—सफल होने से। **७९. प्रशास्ता**—उत्तम उपदेशक होने से। **८०. शासिता**—रक्षक होने से। **८१. स्वभूः**—अपने आप उत्पन्न होने से।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान् कामितप्रदः॥१२॥

अर्थ—८२. शान्तिनिष्ठः—शान्त होने से। **८३. मुनिज्येष्ठः**—मुनियों में श्रेष्ठ होने से। **८४.शिवतातिः**—कल्याण परम्परा को प्राप्त होने से। **८५. शिवप्रदः**—मोक्ष प्रदान करने से। **८६. शान्तिदः**—शान्ति को देने वाले होने से। **८७.**

शान्तिकृत्—शान्ति के कर्ता होने से। ८८. **शान्तिः**—शान्तस्वरूप होने से। ८९. **कान्तिमान्**—कान्ति युक्त होने से। ९०. **कामितप्रदः**—इच्छित पदार्थ प्रदान करने से।

श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

अर्थ—९१. **श्रेयोनिधिः**—कल्याण के भण्डार होने से। ९२. **अधिष्ठानं**—धर्म का आधार होने से। ९३. **अप्रतिष्ठः**—अन्यकृत प्रतिष्ठा से रहित होने से। ९४. **प्रतिष्ठितः**—प्रतिष्ठा अर्थात् कीर्ति युक्त होने से। ९५. **सुस्थिरः**—अतिशय स्थिर होने से। ९६. **स्थावरः**—समवसरण में गमन रहित होने से। ९७. **स्थाणुः**—अचल होने से। ९८. **प्रथीयान्**—अत्यन्त विस्तृत होने से। ९९. **प्रथितः**—प्रसिद्ध होने से। १००. **पृथुः**—ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा महान् होने से।

॥ इति त्रिकालदर्श्यादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥ ९॥

❑ ❑ ❑

दशमाष्टोत्तरशतम्

दिग्वासा वातरसनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥

अर्थ—१. **दिग्वासा**—दिशारूपी वस्त्रों को धारण करने से। २. **वातरसनः**—वायु रूपी करधनी को धारण करने से। ३. **निर्ग्रन्थेशः**—परिग्रह रहित मुनियों के स्वामी होने से। ४. **निरम्बरः**—वस्त्र रहित होने से। ५. **निष्किञ्चनः**—किंचित मात्र भी परिग्रह नहीं रखने से। ६. **निराशंसः**—इच्छा रहित होने से। ७. **ज्ञानचक्षुः**—ज्ञानरूपी नेत्र के धारक होने से। ८. **अमोमुहः**—मोह से रहित होने से।

तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शील-सागरः।
तेजोमयोऽमित-ज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोऽपहः॥२॥

अर्थ—९. **तेजोराशिः**—तेज के समूह होने से। १०. **अनन्तौजा**—अनन्त प्रताप के धारक होने से। ११. **ज्ञानाब्धिः**—ज्ञान के समुद्र होने से। १२. **शीलसागरः**—शील के समुद्र होने से। १३. **तेजोमयः**—तेज स्वरूप होने से। १४. **अमित-ज्योतिः**—अपरिमित ज्योति के धारक होने से। १५. **ज्योतिमूर्तिः**—भास्वर शरीर होने से। १६. **तमोऽपहः**—अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने से।

जगच्चूड़ा - मणिर्दीप्तः शंवान्विघ्न-विनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥

अर्थ—१७. जगच्चूड़ामणिः—तीनों लोक में मस्तक के रत्न के समान अतिशय श्रेष्ठ होने से। **१८. दीप्तः**—देदीप्यमान होने से। **१९. शंवान्**—सुखी अथवा शान्त होने से। **२०. विघ्नविनायकः**—विघ्नों के नाशक होने से। **२१. कलिघ्नः**—कलह को नष्ट करने वाले होने से। **२२. कर्मशत्रुघ्नः**—कर्मरूपी शत्रुओं के घात करने वाले होने से। **२३. लोकालोकप्रकाशकः**—लोक तथा अलोक को प्रकाशित करने से।

अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरुकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥

अर्थ—२४. अनिद्रालुः—निद्रा रहित होने से। **२५. अतन्द्रालुः**—प्रमाद रहित होने से। **२६. जागरुकः**—अपने स्वरूप की सिद्धि के लिए सदा जागरुक रहने से। **२७. प्रमामयः**—ज्ञान स्वरूप होने से। **२८. लक्ष्मीपतिः**—मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वामी होने से। **२९. जगज्ज्योतिः**—जगत् को प्रकाशित करने से। **३०. धर्मराजः**—धर्म के स्वामी होने से। **३१. प्रजाहितः**—प्रजा के हितैषी होने से।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशान्त-रस-शैलूषो भव्य-पेटक-नायकः ॥५॥

अर्थ—३२. मुमुक्षुः—मोक्ष की इच्छा रखने से। **३३. बंधमोक्षज्ञः**—बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने से। **३४. जिताक्षः**—इन्द्रियों को जीतने से। **३५. जितमन्मथः**—कामदेव को जीतने से। **३६. प्रशान्तरसशैलूषः**—शान्त रूप होने से। **३७. भव्य-पेटक-नायकः**—भव्य-समुदाय के नायक होने से।

मूल-कर्त्ताखिल - ज्योतिर्मलघ्नो मूल - कारणः।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥

अर्थ—३८. मूलकर्त्ता—धर्म के मुख्य प्रकाशक होने से। **३९. अखिलज्योतिः**—पूर्ण ज्योतिस्वरूप होने से। **४०.मलघ्नः**—राग-द्वेषादि मल का नाश करने से। **४१. मूलकारणः**—मोक्ष के मूल हेतु होने से। **४२. आप्तः**—यथार्थ वक्ता होने से। **४३. वागीश्वरः**—वाणी के स्वामी होने से। **४४. श्रेयान्**—कल्याण स्वरूप होने से। **४५.श्रायसोक्तिः**—वाणी कल्याणस्वरूप होने से। **४६. निरुक्त-वाक्**—निःसंदेह वाणी होने से।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्व - भाववित्।
सुतनुस्तनु - निर्मुक्तः सुगतो हत - दुर्नयः ॥७॥

अर्थ—४७. प्रवक्ता—उत्तम वक्ता होने से। **४८. वचसामीशः**—वचनों के स्वामी होने से। **४९. मारजित्**—कामदेव को जीतने से। **५०. विश्वभाव-वित्**—संसार के समस्त पदार्थों को जानने से। **५१. सुतनुः**—उत्कृष्ट शरीर को धारण करने से। **५२. तनुनिर्मुक्तः**—शरीर रहित होने से। **५३. सुगतः**—सम्यग्ज्ञान को धारण करने से। **५४. हतदुर्नयः**—मिथ्या नयों का नाश करने से।

श्रीशः श्री-श्रित - पादाब्जो वीत - भीरभयङ्करः।
उत्सन्न-दोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोक-वत्सलः ॥८॥

अर्थ—५५. श्रीशः—अन्तरंग और बाह्य लक्ष्मी के स्वामी होने से। **५६. श्री-श्रितपादाब्जः**—आपके चरण-कमलों की लक्ष्मी सेवा करती है। **५७. वीतभीः**—भय रहित होने से। **५८. अभयङ्करः**—भक्तों का भय दूर करने से। **५९. उत्सन्नदोषः**—समस्त दोषों को नष्ट करने से। **६०. निर्विघ्नः**—विघ्न रहित होने से। **६१. निश्चलः**—स्थिर होने से। **६२. लोकवत्सलः**—लोगों को अत्यन्त प्रिय होने से।

लोकोत्तरो लोक - पतिर्लोक - चक्षुरपार-धीः।
धीर-धीर्बुद्ध- सन्मार्गः शुद्धः सूनृत-पूतवाक् ॥९॥

अर्थ—६३. लोकोत्तरः—समस्त लोक में श्रेष्ठ होने से। **६४. लोकपतिः**—तीन लोक के स्वामी होने से। **६५. लोकचक्षुः**—लोक समस्त पदार्थों के दर्शक होने से। **६६. अपारधीः**—अनन्तज्ञान को धारण करने से। **६७. धीरधीः**—ज्ञान सदा स्थिर रहने से। **६८. बुद्धसन्मार्गः**—यथार्थ मोक्षमार्ग को जानने से। **६९. शुद्धः**—शुद्ध स्वरूप होने से। **७०. सूनृतपूतवाक्**—वचन यथार्थ तथा पवित्र होने से।

प्रज्ञा-पारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद् भद्रः कल्प-वृक्षो वर-प्रदः ॥१०॥

अर्थ—७१. प्रज्ञापारमितः—बुद्धि के पारगामी होने से। **७२. प्राज्ञः**—अतिशय बुद्धिमान होने से। **७३. यतिः**—मोक्षमार्ग का प्रयत्न करने से। **७४. नियमितेन्द्रियः**—इन्द्रिय को वश में करने से। **७५. भदन्तः**—पूज्य होने से। **७६. भद्रकृत्**—कल्याणकारी होने से। **७७. भद्रः**—कल्याणस्वरूप होने से। **७८. कल्पवृक्षः**—इच्छित पदार्थों के दाता होने से। **७९. वरप्रदः**—इष्ट पदार्थों की प्राप्ति करा देने

से।

समुन्मूलित-कर्मारिः कर्म-काष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेय-विचक्षणः ॥११॥

अर्थ—८०. समुन्मूलितकर्मारिः—कर्मरूपी शत्रुओं को उखाड़कर फेंक देने से। **८१. कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः**—कर्मरूपी लकड़ी को जलाने के लिए अग्नि समान होने से। **८२. कर्मण्यः**—चारित्र में नितान्त कुशल होने से। **८३. कर्मठ**—क्रिया करने में शूरवीर होने से। **८४. प्रांशुः**—उत्कृष्ट प्रकाशमान होने से। **८५. हेयादेय विचक्षणः**—छोड़ने और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को जानने में कुशल होने से।

अनन्त - शक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारि - स्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

अर्थ—८६.अनन्तशक्तिः—अनन्त शक्तियाँ प्रकट होने से। **८७. अच्छेद्यः**—छिन्न-भिन्न करने योग्य न होने से। **८८. त्रिपुरारिः**—जन्म-जरा-मरण इन तीनों का नाश करने से। **८९. त्रिलोचनः**—भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की बातों को जानने से। **९०. त्रिनेत्र**—रत्नत्रय रूपी तीन नेत्रों को धारण करने वाले होने से। **९१. त्र्यम्बक**—तीन चक्षु को धारण करने वाले होने से। **९२. त्र्यक्ष**—रत्नत्रय रूप तीन मोक्षरथ के चक्र होने से। **९३. केवलज्ञान-वीक्षण**—केवलज्ञान ही आपका नेत्र होने से।

समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दया-निधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्म-देशकः ॥१३॥

अर्थ—९४. समन्तभद्रः—सर्वथा मंगलस्वरूप होने से। **९५. शान्तारिः**—कर्मरूपी शत्रुओं को शान्त करने से। **९६. धर्माचार्यः**—धर्म के आचार्य होने से। **९७. दयानिधिः**—जीवों पर अतिशय दया करने से। **९८. सूक्ष्मदर्शी**—सूक्ष्म पदार्थों को भी साक्षात् जानने देखने से। **९९. जितानङ्गः**—कामदेव को जीतने से। **१००. कृपालुः**—दयावान् होने से। **१०१. धर्मदेशकः**—धर्म का उपदेश देने से।

शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्य - राशिरनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्म-साम्राज्य-नायकः ॥१४॥

अर्थ—१०२. शुभंयुः—मोक्षरूप शुभ को प्राप्त करने से। **१०३. सुख-साद्भूतः**—सुख को अपने अधीन करने से। **१०४. पुण्यराशिः**—पुण्य की

राशि होने से। **१०५. अनामयः**—रोग रहित होने से। **१०६. धर्मपालः**—धर्म की रक्षा करने से। **१०७. जगत्पालः**—जगत् का पालन करने से। **१०८. धर्म-साम्राज्यनायकः**—धर्म रूपी साम्राज्य के स्वामी होने से।

॥ इति दिग्वासाद्यष्टोत्तर शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥१०॥

❑ ❑ ❑

उपसंहार

धाम्नांपते! तवामूनि, नामान्यागम - कोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ—(धाम्नाम्पते) हे महातेजस्वी जिनेन्द्र! **(आगम-कोविदैः)** आगम के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा **(समुच्चितानि)** संकलित **(अमूनि)** इन **(तव)** आपके **(नामानि)** नामों को **(अनुध्यानन्)** ध्यानकर्त्ता **(पुमान्)** मानव **(पूतस्मृतिः)** पवित्र/विशिष्ट स्मरणशक्तिसम्पन्न **(भवेत्)** हो जाता है।

गोचरोऽपि गिरामासां, त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं,त्वत्तोऽभीष्ट-फलं भजेत् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(आसाम्)** इन **(गिराम्)** शब्दों के **(गोचरः)** विषय **[सन्]** होते हुए **(अपि)** भी **(त्वम्)** आप **(अवाग्गोचरः)** वाणी के अगोचर **(मतः)** माने गये हो **(तथापि)** तो भी **(स्तोता)** स्वतनकर्त्ता **(त्वत्तः)** आपसे **(असंदिग्धम्)** निस्संदेह **(अभीष्टफलम्)** अभिलषित फल को **(भजेत्)** पाता है।

त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता, त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप **(जगद्बन्धुः)** जगत् के बन्धु **(असि)** हो **(त्वम्)** आप **(जगद्भिषक्)** जगत् वैद्य **(असि)** हो **(जगद्धाता)** जगद् रक्षक **(असि)** हो तथा **(त्वम्)** आप **(जगद्धितः)** जगद्धितैषी हो।

त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्वि-रूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैक-मुक्त्यङ्गं, स्वोत्थानन्त-चतुष्टयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(एकम्)** अनन्य **(जगताम् ज्योतिः)** जगत् के प्रकाशक ज्ञानज्योतिस्वरूप **(त्वम्)** आप **(द्वि-रूपोपयोगभाक्)**

ज्ञानदर्शनरूप द्विविध उपयोग के धारक **(त्वम्)** आप **(त्रिरूपैक-मुक्त्यङ्गम्)** त्रिविध मोक्षमार्ग के अंगस्वरूप तथा **(स्वोत्थानन्तचतुष्टयः)** आत्मोत्थ अनन्तचतुष्टय के धारक हो।

त्वं पञ्च-ब्रह्म-तत्त्वात्मा, पञ्च-कल्याण-नायकः।
षड्भेद-भाव-तत्त्वज्ञस्त्वं सप्त-नय-संग्रहः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा)** पञ्चपरमेष्ठीस्वरूप **(पञ्चकल्याणनायकः)** पञ्चकल्याणकों के स्वामी **(षड्भेदभावतत्त्वज्ञः)** जीवादि छह द्रव्यों के स्वरूप के ज्ञाता तथा **(सप्तनयसंग्रहः)** नैगमादि सातों नयों के उपदेशक हो।

दिव्याष्ट-गुण - मूर्तिस्त्वं, नव-केवल-लब्धिकः।
दशावतार-निर्धार्यो, मां पाहि परमेश्वर! ॥६॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(दिव्याष्टगुणमूर्तिः)** सम्यक्त्वादि अष्टविध गुणस्वरूप **(नवकेवललब्धिकः)** केवलज्ञान उत्पन्न होने पर प्राप्त होने वाली नो क्षायिकलब्धियों से संयुक्त तथा **(दशावतार-निर्धार्यः)** महाबल आदि दश भवों से निर्धार योग्य हो **(परमेश्वर)** हे परमेश्वर! **(माम्)** मुझ भक्त को **(पाहि)** रक्षा कीजिए।

युष्मन्नामावली - दृब्ध, - विलसत्स्तोत्र-मालया।
भवन्तं वरिवस्यामः, प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया)** आपकी नामावली से गुम्फित सुन्दर स्तोत्रमाला से **(नः)** हम **(भवन्तम्)** आपकी **(वरिवस्यामः)** आराधना करते हैं **(प्रसीद)** प्रसन्न होइये तथा **(अनुग्रहण)** अनुग्रह कीजिये।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य, पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं, स स्यात्कल्याण-भाजनम् ॥८॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भाक्तिकः)** भक्त मानव **(इदम्)** इस **(स्तोत्रम्)** स्तोत्र को **(अनुस्मृत्य)** स्मरण करके **(पूतः)** पवित्र **(भवति)** हो जाता है तथा **(यः)** जो **(एनम्)** इस **(संपाठम्)** प्रशस्त पाठ को **(पठति)** पढ़ता है **(सः)** वह **(कल्याणभाजनम्)** कल्याण का पात्र **(स्यात्)** होता है

ततः सदेदं पुण्यार्थी, पुमान् पठतु पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं, परमामभिलाषुकः ॥९॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ततः)** इसलिए **(पुण्यार्थी)** पुण्य का इच्छुक **(पुण्यधीः)** निर्मल बुद्धि वाला तथा **(परमाम्)** प्रशस्त **(पौरुहूतीम्)** इन्द्र सम्बन्धी **(श्रियम्)** विभूति को **(प्राप्तुम्)** पाने को **(अभिलाषुकः)** इच्छुक **(सन्)** होता हुआ मानव **(इदम्)** इस स्तोत्र को **(सदा)** सर्वदा **(पठतु)** पढ़े।

स्तुत्वेति मघवा देवं, चराचर - जगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्य,व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(इति)** इस प्रकार **(मघवा)** इन्द्र ने **(चराचरजगद्-गुरुम्)** स्थावर और जंगम प्राणियों के गुरु **(देवम्)** जिनेन्द्र देव की **(स्तुत्वा)** स्तुति करके **(ततः)** पश्चात् **(तीर्थविहारस्य)** मोक्षमार्ग के उपदेशार्थ विविध प्रान्तों में विहारकर्त्ता जिनेन्द्रदेव की **(इमाम्)** यह **(प्रस्तावनाम्)** प्रार्थना **(व्यधात्)** की।

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः, स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवान् स्तुत्यः, फलं नैःश्रेयसं सुखम् ॥११॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(पुण्यगुणोत्कीर्तिः)** पवित्र गुणों का प्रशंसापूर्वक कथन **(स्तुतिः)** स्तुति **(प्रसन्नधीः)** निर्मल बुद्धि वाला **(भव्यः)** भव्य **(स्तोता)** स्तुतिकर्त्ता **(निष्ठितार्थः)** समस्त पुरुषार्थ सम्पन्न **(भवान्)** आप **(स्तुत्यः)** स्तवनीय तथा **(नैश्रेयसं सुखम्)** मोक्ष सुख **(फलम्)** स्तुति का फल **(अस्ति)** है।

शार्दूलविक्रीडितम्

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः, स्तोता स्वयं कस्यचित्,
ध्येयो योगिजनस्य यश्च न तरां, ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नन्तॄन् नयते नमस्कृतिमलं, नन्तव्य-पक्षेक्षणः,
सः श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुःपावनः ॥१२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यः)** जो **(जगतां त्रयस्य)** तीनों लोकों के प्राणियों का **(स्तुत्यः)** स्तवनीय **(अस्ति)** है **(पुनः)** किन्तु **(यः)** जो **(स्वयं)** स्वतः **(कस्यचित्)** किसी का **(स्तोता)** स्तवनकर्त्ता **(न)** नहीं है **(यः)** जो **(नतराम्)** सदा **(योगिजनस्य)** योगिजनों का **(ध्येयः)** ध्यान का विषय **(अस्ति)** है किन्तु **(यः)** जो **(स्वयम्)** स्वतः **(कस्यचित्)** किसी का **(ध्याता)** ध्यानकर्त्ता **(नास्ति)**

नहीं है **(यः)** जो **(नन्तव्यपक्षेपणः)** नन्तव्य पक्ष का अन्वेषक होता हुआ **(नन्तॄन्)** समस्त महापुरुषों को **(अलम्)** उत्कृष्ट **(नमस्कृतिम्)** नमस्कार को **(नयते)** प्राप्त कराता है तथा **(यः)** जो **(श्रीमान्)** अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित होता हुआ **(पावनः)** अतिपवित्र **(पुरुः)** अरिहन्त देव **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(जगतां त्रयस्य)** तीनों लोकों का **(गुरुः)** गुरु **[अस्ति]** है।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चित - पदं, घाति - क्षयानन्तरम्,
प्रोत्थानन्त-चतुष्टयं जिनमिनं, भव्याब्जिनीनामिनम्।
मानस्तम्भ-विलोकनानत-जगन्मान्यं त्रिलोकी-पतिम्,
प्राप्ताचिन्त्य-बहिर्विभूतिमनघं, भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्रिदशाधिपार्चितपदम्)** शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीय चरण **(घातिक्षयानन्तरम्)** घातिया कर्मों के क्षय के पश्चात् **(प्रोत्थानन्तचतुष्टयम्)** उत्पन्न चार अनन्तचतुष्टयों को सम्प्राप्त **(भव्याब्जिनीनाम् इनम्)** भव्यरूप कमलों के विकाशार्थ सूर्य समान **(मानस्तम्भविलोकनानतजगन्मान्यम्)** मानस्तम्भ के अवलोकन से नम्रीभूत जनता के माननीय **(त्रिलोकी-पतिम्)** लोकत्रय के स्वामी **(प्राप्ताचिन्त्य-बहिर्विभूतिम्)** समवसरणरूप अनुपम विभूति को सम्प्राप्त **(अनघम्)** निर्दोष **(तम्)** उस प्रसिद्ध **(इनम्)** इस **(जिनं देवम्)** जिनेन्द्रदेव को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रवन्दामहे)** हम सब नमस्कार करते हैं।

॥ इति श्रीभगवज्जिनाष्टोतर सहस्त्रनामस्तोत्रम् समाप्तम्॥

❑ ❑ ❑

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करता सभी जन को॥
सभी से मित्रता मेरे, किसी से वैर ना क्षण को।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी॥
किया उपयोग से छेदन, रहा हो भाव में वेदन।
उन्हीं को त्यागता हूँ मैं, रहे जो भाव वह मुझमें॥
क्षमा करना क्षमा करना, ना दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से माँगता हूँ, क्षमा भावों से झुकता हूँ॥

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

ईसा की द्वितीय शताब्दी में आचार्य समन्तभद्रस्वामी द्वारा श्रावक के जीवन और आचार की व्याख्या करते हुए १५० पद्यों की रचना संस्कृत भाषा में की गई। इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का विवेचन करते हुए सल्लेखना को भी श्रावकों के व्रतों में स्थान दिया है। इसका दूसरा नाम समीचीन धर्मशास्त्र भी है। इस ग्रन्थ पर प्रभाचन्द्र आचार्य द्वारा संस्कृत टीका एवं अनेक विद्वानों द्वारा हिन्दी टीका भी लिखी गई है।

सम्यग्दर्शनाधिकार

मंगलाचरण

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

अन्वयार्थ–(निर्धूतकलिलात्मने) नष्ट कर दिया है पाप को आत्मा से जिन्होंने अर्थात् जो वीतराग हैं अथवा जिनकी आत्मा ने हितोपदेश देकर अन्य जीवों को कर्म कलंक से रहित किया है अर्थात् जो हितोपदेशी हैं और **(यद्विद्या)** जिनका केवलज्ञान **(सालोकानां त्रिलोकानाम्)** अलोक सहित तीनों लोकों के विषय में **(दर्पणायते)** दर्पण के समान आचरण करता है अर्थात् जो सर्वज्ञ हैं ऐसे **(श्रीवर्द्धमानाय)** अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामी को अथवा अनन्त-चतुष्टयरूप अन्तरंग व समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

उद्देश्य और धर्म का स्वरूप

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

अन्वयार्थ–[अहम्] मैं समन्तभद्राचार्य **(कर्मनिबर्हणम्)** कर्मों का विनाश करने वाले **(समीचीनम् धर्मम्)** सच्चे धर्म को **(देशयामि)** कहता हूँ **(यः)** जो **(सत्त्वान्)** जीवों को **(संसारदुःखतः)** संसार के दुखों से [उद्धृत्य] निकालकर **(उत्तमे सुखे)** स्वर्ग-मोक्ष आदि के श्रेष्ठ सुख में **(धरति)** धरता है/पहुँचाता है।

मोक्ष और संसार का मार्ग

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥

अन्वयार्थ—(धर्मेश्वराः) धर्म के स्वामी तीर्थंकर देव **(सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को **(धर्मम्)** धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग **(विदुः)** कहते हैं **(यदीयप्रत्यनीकानि)** जिनके विपरीत—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र **(भवपद्धतिः)** संसार की परिपाटीरूप अधर्म अर्थात् संसार के मार्ग **(भवन्ति)** होते हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम-तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(परमार्थानाम्) परमार्थभूत/सच्चे **(आप्तागमतपो-भृताम्)** देव, शास्त्र और गुरु का **(त्रिमूढापोढम्)** तीन मूढ़ताओं से रहित **(अष्टाङ्गम्)** आठ अंगों से सहित और **(अस्मयम्)** आठ प्रकार के मदों से रहित **(श्रद्धानम्)** श्रद्धान को **(सम्यग्दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन कहा है।

आप्त/सच्चे देव का स्वरूप

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

अन्वयार्थ—(आप्तेन) आप्त को **(उच्छिन्न-दोषेण)** अठारह दोषों से रहित वीतराग **(सर्वज्ञेन)** सर्वज्ञ और **(आगमेशिना)** आगम का स्वामी—हितोपदेशी **(नियोगेन)** नियम से **(भवितव्यम्)** होना चाहिए **(हि)** क्योंकि **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से **(आप्तता)** आप्तपना/देवपना **(न भवेत्)** नहीं हो सकता।

वीतराग का लक्षण

क्षुत्पिपासा - जरातङ्क - जन्मान्तक - भयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसके **(क्षुत्-पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः)** भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व **(रागद्वेषमोहाः)** राग, द्वेष, मोह **(च)** और चिंता, अरति, निद्रा, आश्चर्य, स्वेद, रोष और खेद ये अठारह दोष **(न)** नहीं हैं **(सः)** वह **(आप्तः)** आप्त/सच्चा देव **(प्रकीर्त्यते)** कहा

जाता है।

आप्त की नामावली

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

अन्वयार्थ–[सः आप्तः] वह आप्त **(परमेष्ठी)** परमेष्ठी–परम पद में स्थित **(परं-ज्योतिः)** परम ज्योति–केवलज्ञान से सहित **(विरागः)** राग से रहित–रागरूप भावकर्म के नष्ट हो जाने से वीतराग **(विमलः)** विमल–मूल और उत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म के नष्ट हो जाने से **(कृती)** कृतकृत्य **(सर्वज्ञः)** सर्वज्ञ **(अनादिमध्यान्तः)** आदि, मध्य तथा अन्त से रहित **(सार्वः)** सार्व–सर्वहितकर्ता और **(शास्ता)** हितोपदेशक **(उपलाल्यते)** कहा जाता है, ये सब आप्त के नाम हैं।

वीतराग देव के उपदेश में राग का अभाव

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

अन्वयार्थ–[सः] वह **(शास्ता)** हितोपदेशक आप्त भगवान् **(रागैः विना)** राग रहित अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजा आदि की अभिलाषा के बिना **(अनात्मार्थम्)** अपना प्रयोजन न होने पर भी **(सतः)** सज्जन–भव्यजीवों के **(हितं शास्ति)** हित को कहते हैं अर्थात् धर्म का उपदेश देते हैं जैसे **(शिल्पिकर-स्पर्शात्)** बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से **(ध्वनन्)** शब्द करता हुआ **(मुरजः)** मृदंग **(किम्)** क्या **(अपेक्षते)** अपेक्षा रखता है? अर्थात् कुछ भी अपेक्षा नहीं रखता।

सच्चे शास्त्र का स्वरूप

आप्तोपज्ञ-मनुल्लङ्घ्य - मदृष्टेष्ट-विरोधकं।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(आप्तोपज्ञम्) तीर्थंकर भगवान् के द्वारा कहा गया **(अनुल्लङ्घ्यम्)** उल्लंघन से रहित अर्थात् वादी प्रतिवादी से अजेय **(अदृष्टेष्ट-विरोधकम्)** प्रत्यक्ष और अनुमानादि के विरोध से रहित **(तत्त्वोपदेशकृत्)** तत्त्व का उपदेश करने वाला **(सार्वम्)** सबका हितकारी और **(कापथघट्टनम्)** मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला **(शास्त्रम्)** शास्त्र कहा है अर्थात् उसे शास्त्र कहते हैं।

सच्चे गुरु का स्वरूप

विषयाशा-वशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ—जो **(विषयाशावशातीतः)** विषयों की आशाओं के वश से रहित **(निरारम्भः)** आरम्भों से रहित **(अपरिग्रहः)** परिग्रहों से रहित और **(ज्ञानध्यान-तपोरक्तः** (रतः)) ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन हो **(सः)** वह **(तपस्वी)** गुरु **(प्रशस्यते)** प्रशंसनीय है।

निःशंकित अंग का स्वरूप

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

अन्वयार्थ—**(तत्त्वं)** जीवादि सात तत्त्व व देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप **(इदम्)** यह **(एव)** ही है **(ईदृशम्)** ऐसा **(एव)** ही है **(अन्यत्)** अन्य **(न)** नहीं है और **(अन्यथा)** अन्य प्रकार भी **(न च)** नहीं है **(इति)** इस तरह **(सन्मार्गे)** देव, शास्त्र, गुरु के प्रवाहरूप समीचीन मोक्षमार्ग के विषय में **(आयसाम्भोवत्)** लोहे की तलवार आदि की धार पर चढ़े हुए लोहे के पानी के समान **(अकम्पा)** अटल **(रुचिः)** श्रद्धा **(असंशया)** संशय रहित/निःशंकित अंग है।

निःकांक्षित अंग का स्वरूप

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

अन्वयार्थ—**(कर्मपरवशे)** कर्मों के आधीन **(सान्ते)** अन्तसहित/नश्वर **(दुःखैः)** दुखों से **(अन्तरितोदये)** मिश्रित/बाधित **(च)** और **(पापबीजे)** पाप के कारणभूत **(सुखे)** इन्द्रियजनित सांसारिक सुख में **(अनास्था)** आस्था नहीं होने रूप **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(अनाकाङ्क्षणा)** आकांक्षा रहित/निःकांक्षित अंगरूप **(स्मृता)** मानी गई है।

निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूप

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

अन्वयार्थ—**(स्वभावतः)** स्वभाव से **(अशुचौ)** शुचिता रहित अपवित्र किन्तु **(रत्नत्रय-पवित्रिते)** रत्नत्रय से पवित्र **(काये)** शरीर में **(निर्जुगुप्सा)** ग्लानि

रहित **(गुणप्रीतिः)** गुणों में प्रेम होना **(निर्विचिकित्सिता)** ग्लानि रहितपना/निर्विचिकित्सा **(मता)** मानी गई है।

अमूढ़दृष्टि अंग का स्वरूप

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

अन्वयार्थ—(दुःखानां) दुखों के **(पथि कापथे)** मार्गस्वरूप मिथ्यादर्शनादि-रूप कुमार्ग में और **(कापथस्थे अपि)** कुमार्ग में स्थित जीव में भी **(असम्मतिः)** मानसिक सम्मति से रहित **(अनुत्कीर्तिः)** वाचनिक प्रशंसा से रहित और **(असम्पृक्तिः)** शारीरिक सम्पर्क से रहित है वह **(अमूढा दृष्टिः)** मूढ़ता रहित श्रद्धा/अमूढ़दृष्टि अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

उपगूहन अंग का स्वरूप

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(स्वयं) स्वभाविकरूप से **(शुद्धस्य मार्गस्य)** शुद्ध/पवित्र रत्नत्रयरूप मार्ग की **(बालाशक्तजनाश्रयां)** अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली **(वाच्यतां)** निन्दा को **(यत्)** जो **(प्रमार्जन्ति)** प्रमार्जित करते हैं—दूर करते हैं **(तत्)** उनके उस निन्दा के दूर करने को अर्थात् प्रमार्जन को **(उपगूहनं)** दोष छिपाने रूप/उपगूहन गुण **(वदन्ति)** कहते हैं।

स्थितिकरण अंग का स्वरूप

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ—(धर्मवत्सलैः) धर्मस्नेही जनों के द्वारा **(दर्शनात्)** सम्यग्दर्शन से **(वा)** अथवा **(चरणात्)** सम्यक्चारित्र से **(अपि)** भी **(चलताम्)** विचलित होते हुए पुरुषों का **(प्रत्यवस्थापनम्)** फिर से पहले की तरह स्थिर करने को **(प्राज्ञैः)** विद्वानों के द्वारा **(स्थितिकरणम्)** स्व-पर को स्थिर करने रूप/स्थितिकरण अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

वात्सल्य अंग का स्वरूप

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अन्वयार्थ—(स्वयूथ्यान्प्रति) अपने सहधर्मी बन्धुओं के प्रति **(सद्भाव-**

सनाथा) सद्भावनाओं से सहित **(अपेतकैतवा)** मायाचार रहित **(यथायोग्यम्)** उनकी योग्यता के अनुसार **(प्रतिपत्तिः)** पूजा आदर-सत्कार **(वात्सल्यम्)** आपसी सौहार्दरूप/वात्सल्य अंग **(अभिलप्यते)** कहा जाता है।

प्रभावना अंग का स्वरूप

अज्ञानतिमिर-व्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्) अज्ञानरूपी अन्धकार के विस्तार को **(अपाकृत्य)** दूरकर **(यथायथम्)** जैसे-तैसे अपनी शक्ति के अनुसार **(जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः)** जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना **(प्रभावना)** प्रभाव दिखाने रूप/प्रभावना अंग **(स्यात्)** है।

आठ अंगों में प्रसिद्ध व्यक्ति

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता ।
उद्धायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१९॥

अन्वयार्थ—(तावत्) क्रम से **[प्रथमे]** पहले **(अङ्गे)** अंग में **(अञ्जनचौरः)** अञ्जन चोर **(ततः)** तदनन्तर/दूसरे अंग में **(अनन्तमतिः)** अनन्तमति **(स्मृता)** स्मरण की गई है **(तृतीये)** तीसरे अंग में **(उद्धायनः)** उद्धायन नाम का राजा **(अपि)** और **(तुरीये)** चौथे अंग में **(रेवती)** रेवती रानी **(मता)** मानी गयी है।

ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(ततः अन्यः) उससे भिन्न/पाँचवें अंग में **(जिनेन्द्रभक्तः)** जिनेन्द्र-भक्त सेठ **(ततः परः)** उससे आगे/छठवें अंग में **(वारिषेणः)** वारिषेण राजकुमार **(शेषयोः)** शेष दो/सातवें और आठवें अंग में **(विष्णुः)** विष्णुकुमार-मुनि **(च)** और **(वज्रनामा च)** वज्रकुमार नामक मुनि **(लक्ष्यताम्)** प्रसिद्धि को **(गतौ)** प्राप्त हुए।

अंगहीन सम्यग्दर्शन की दशा

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अङ्गहीनं) निःशंकित आदि अंगों से हीन **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(जन्मसन्ततिम्)** संसार की परम्परा को **(छेत्तुम्)** नष्ट करने के लिए **(अलं न)**

समर्थ नहीं है **(हि)** क्योंकि **(अक्षरन्यूनः)** एक अक्षर से भी हीन/कम **(मन्त्रः)** मंत्र **(विषवेदनाम्)** विष की पीड़ा को **(न निहन्ति)** नष्ट नहीं करता।

लोकमूढ़ता का स्वरूप

आपगा-सागर-स्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अन्वयार्थ—धर्म समझकर **(आपगासागरस्नानम्)** नदी और समुद्र में स्नान करना **(सिकताश्मनाम्)** बालू और पत्थरों का **(उच्चयः)** ढेर लगाना **(गिरिपातः)** पर्वत से गिरना **(च)** और **(अग्निपातः)** अग्नि में गिरना/ पड़ना **(लोकमूढम्)** लोकमूढ़ता **(निगद्यते)** कही जाती है।

देवमूढ़ता का स्वरूप

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

अन्वयार्थ—(वरोपलिप्सया) वरदान प्राप्त करने की इच्छा से **(आशावान्)** आशा से युक्त **(रागद्वेषमलीमसाः)** राग-द्वेष से मलिन **(देवताः)** देवताओं को **(यत्)** जो **(उपासीत)** पूजता है वह **(देवतामूढम्)** देवमूढ़ता **(उच्यते)** कही जाती है।

गुरुमूढ़ता का स्वरूप

सग्रन्थारम्भ-हिंसानां संसारावर्त-वर्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(सग्रन्थारम्भहिंसानां) परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित **(संसारावर्त-वर्तिनाम् पाषण्डिनाम्)** संसार भंवर/चक्र में कारणभूत कार्यों में लीन साधुओं का **(पुरस्कारः)** आदर-सत्कार/आगे करना/पूजा करना **(पाषण्डि-मोहनम्)** पाषण्डि मूढ़ता/ गुरुमूढ़ता **(ज्ञेयम्)** जानने योग्य है।

आठ मद के नाम

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानम्) ज्ञान **(पूजाम्)** प्रतिष्ठा/पूजा **(कुलम्)** कुल **(जातिम्)** जाति **(बलम्)** बल **(ऋद्धिम्)** धनसम्पत्ति **(तपः)** तप और **(वपुः)** शरीर **(अष्टौ)** इन आठों का **(आश्रित्य)** आश्रय लेकर **(मानित्वम्)** अभिमानिपना

होना **(गतस्मयाः)** गर्व से रहित गणधर आदि देव **(स्मयम्)** गर्व/मद **(आहुः)** कहते हैं।

मद से हानि

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अन्वयार्थ—उपर्युक्त **(स्मयेन)** मद से **(गर्विताशयः)** गर्वितचित्त वाला **(यः)** जो पुरुष **(धर्मस्थान्)** रत्नत्रयरूप धर्म में स्थित **(अन्यान्)** अन्य जीवों को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **(सः)** वह **(आत्मीयं धर्मम्)** अपने धर्म को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **[यतः]** क्योंकि **(धार्मिकैः विना)** धर्मात्माओं के बिना **(धर्मः)** धर्म **(न)** नहीं होता।

मद जीतने का उपाय

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—**(यदि)** अगर **(पापनिरोधः)** पाप का निरोध है अर्थात् रत्नत्रयरूप धर्म का सद्भाव है तो **(अन्यसम्पदा)** कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ? और **(अथ)** यदि **(पापास्रवः)** पाप का आस्रव अर्थात् मिथ्यादर्शन आदि का सद्भाव **(अस्ति)** है तो **(अन्यसम्पदा)** संसार बढ़ाने वाले कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ?

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—**(देवाः)** सभी तीर्थंकरदेव **(सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्)** सम्यग्दर्शन से सहित **(मातङ्गदेहजम्)** चाण्डाल के शरीर से उत्पन्न अर्थात् चाण्डाल कुल में पैदा हुए को **(अपि)** भी **(भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं)** राख के भीतर ढके हुए अंगार के भीतरी प्रकाश के समान **(देवम्)** सम्माननीय **(विदुः)** कहते हैं।

धर्म और अधर्म का फल

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

अन्वयार्थ—(धर्मकिल्विषात्) धर्म और पाप से क्रमशः **(श्वा)** कुत्ता **(अपि)** भी **(देवः)** देव और **(देवः)** देव **(अपि)** भी **(श्वा)** कुत्ता **(जायते)** हो जाता है यथार्थ में **(धर्मात्)** धर्म से **(शरीरिणाम्)** जीवों के **(कापि नाम अन्या)** कोई अनिर्वचनीय **(सम्पत्)** सम्पत्ति **(भवेत्)** होती है।

सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमस्कार न करे

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(शुद्धदृष्टयः) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव **(भयाशा-स्नेह-लोभात्)** भय आशा प्रेम और लोभ से **(कुदेवागम-लिङ्गिनाम्)** कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं की **(विनयम्)** विनय **(च)** और **(प्रणामम्)** प्रणाम को **(एव)** निश्चित ही **(न कुर्य्युः)** न करे।

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

अन्वयार्थ—[यत्] जिस कारण **(ज्ञानचारित्रात्)** ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(साधिमानम्)** श्रेष्ठता या उत्कृष्टता को **(उपाश्नुते)** प्राप्त होता है **[तत्]** उस कारण से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(कर्णधारम्)** खेवटिया **(प्रचक्षते)** कहते हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असंभवता

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अन्वयार्थ—(बीजाभावे) बीज के अभाव में **(तरोः इव)** वृक्ष की तरह **(सम्यक्त्वे असति)** सम्यग्दर्शन के न होने पर **(विद्यावृत्तस्य)** ज्ञान और चारित्र की **(सम्भूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः)** उत्पत्ति, स्थिरता, वृद्धि और फल की प्राप्ति **(न सन्ति)** नहीं होती।

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

अन्वयार्थ—(निर्मोहः) मोह–मिथ्यात्व से रहित **(गृहस्थः)** गृहस्थ **(मोक्ष-मार्गस्थः)** मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु **(मोहवान्)** मोह–मिथ्यात्व से सहित **(अनगारः)** मुनि **(नैव)** मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है **(मोहिनः)** मोही मिथ्यादृष्टि **(मुनेः)** मुनि की अपेक्षा **(निर्मोहः)** मोहरहित–सम्यग्दृष्टि **(गृही)** गृहस्थ **(श्रेयान्)** श्रेष्ठ **[अस्ति]** है।

श्रेय और अश्रेय का कथन

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्-त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

अन्वयार्थ—(तनूभृताम्) प्राणियों के **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में और **(त्रिजगत्यपि)** तीनों लोकों में भी **(सम्यक्त्वसमम्)** सम्यग्दर्शन के समान **(श्रेयः)** कल्याणरूप **(च)** और **(मिथ्यात्वसमम्)** मिथ्यादर्शन के समान **(अश्रेयः)** अकल्याणरूप **(अन्यत्)** अन्य **(किंचित्)** कुछ भी **(न)** नहीं है।

सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारक - तिर्यङ् - नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनशुद्धाः) सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव **(अव्रतिकाः अपि)** व्रत रहित होने पर भी **(नारक-तिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि)** नारक, तिर्यञ्च नपुंसक और स्त्रीपने को **(च)** और **(दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रताम्)** नीचकुल, विकलांगता, अल्पायु और दरिद्रता को **(न व्रजन्ति)** प्राप्त नहीं होते।

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं

ओजस्तेजो - विद्यावीर्ययशोवृद्धि - विजयविभवसनाथाः।
माहाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

अन्वयार्थ—(दर्शनपूताः) सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव **(ओजस्तेजो-विद्या-वीर्य-यशोवृद्धि-विजयविभवसनाथाः)** उत्साह, प्रताप–कान्ति, विद्या–सहजता से सभी कलाओं को ग्रहण करने वाली बुद्धि, विशिष्टबल, विशिष्टख्याति, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की प्राप्तिरूप वृद्धि, विजय–दूसरे के परास्त या तिरस्कार से अपने गुणों का उत्कर्ष और विभव–धन-धान्य द्रव्य आदि की प्राप्तिरूप सम्पत्ति इन सबसे सहित **(माहाकुलाः)** उच्च कुलों में उत्पन्न **(महार्थाः)** धर्म, अर्थ, काम व मोक्षरूप चारों महान् पुरुषार्थों को करने वाले और **(मानव-**

तिलकाः) मनुष्यों में प्रधान **(भवन्ति)** होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही इन्द्र पद पाते हैं

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे॥३७॥

अन्वयार्थ—(दृष्टिविशिष्टाः) सम्यग्दर्शन से सहित **(जिनेन्द्रभक्ताः)** भगवान् जिनेन्द्र के भक्त पुरुष **(स्वर्गे)** स्वर्ग में **(अमराप्सरसाम्)** देवों और अप्सराओं की **(परिषदि)** सभा में **(अष्टगुणपुष्टितुष्टाः)** अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामरूपित्व इन आठ गुणों की परिपूर्णता से संतुष्ट/प्रसन्न और **(प्रकृष्टशोभाजुष्टाः)** अन्य देवों की अपेक्षा विशेष शोभा/सुन्दरता से सहित होते हुए **(चिरम्)** बहुत काल तक **(रमन्ते)** रमण करते हैं अर्थात् इन्द्र होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते/बनते हैं

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अन्वयार्थ—(स्पष्टदृशः) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव **(नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः) नव निधियाँ**—काल, महाकाल, नैस्सर्प्य, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिंग, शंख और सर्वरत्न इन नौ निधियों तथा **चौदह रत्नों—अजीव रत्न**—चक्र, छत्र, दण्ड, तलवार, मणि, चर्म, काकिड़ी व **सजीव रत्न**—सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सिलावट (शिल्पकार) और पुरोहित इन चौदह रत्नों के स्वामी तथा **(क्षत्रमौलिशेखरचरणाः)** क्षत्रिय राजाओं के मुकुटों सम्बन्धी कलगियों पर जिनके चरण हैं ऐसे अर्थात् मुकुटबद्ध क्षत्रिय राजाओं से सेवित चरण वाले **(सर्वभूमिपतयः)** समस्त छहखण्डों के स्वामी होते हुए **(चक्र म्)** चक्र रत्न को **(वर्तयितुम्)** चलाने के लिए **(प्रभवन्ति)** समर्थ होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते हैं

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

अन्वयार्थ—(दृष्ट्या) सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से **(सुनिश्चितार्थाः)** जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव **(अमरा-**

सुरनरपतिभिः) देवेन्द्रों असुरेन्द्रों व नरेन्द्रों से **(च)** और **(यमधरपतिभिः)** मुनियों के स्वामी गणधरों के द्वारा **(नूतपादाम्भोजाः)** स्तुत चरणकमल वाले **(लोकशरण्याः)** तीनों लोकों के शरणभूत ऐसे **(वृषचक्रधराः)** धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर **(भवन्ति)** होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही मोक्षपद पाते हैं

शिव-मजर - मरुज-मक्षय - मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(दर्शनशरणाः) जैनदर्शन की शरण/आश्रय को प्राप्त सम्यग्दृष्टि जीव **(अजरम्)** बुढ़ापा रहित **(अरुजम्)** रोगरहित **(अक्षयम्)** क्षयरहित **(अव्याबाधम्)**बाधारहित **(विशोक-भयशङ्कम्)** शोक, भय तथा शंका-रहित **(काष्ठागतसुखविद्याविभवम्)** पराकाष्ठा/अंतिम सीमा को प्राप्त अनन्तसुख और अनन्तज्ञानरूप वैभव वाले **(विमलम्)** द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित निर्मल **(शिवम्)** मोक्ष को **(भजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा का उपसंहार

(वसन्ततिलका छन्द)

देवेन्द्रचक्र महिमानममेयमानं
राजेन्द्रचक्र मवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जिनभक्तिः) जिनेन्द्रदेव की भक्ति से सहित **(भव्यः)** सम्यग्दृष्टि पुरुष **(अमेय-मानम्)** अपरिमित पूजा अथवा ज्ञान को **(देवेन्द्रचक्र-महिमानम्)** इन्द्रसमूह की महिमा को **(अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्)** राजाओं के मस्तक से पूजनीय **(राजेन्द्रचक्रम्)** चक्रवर्ती के चक्र रत्न को **(च)** और **(अधरीकृत-सर्वलोकम्)** समस्त लोक को नीचा करने वाले **(धर्मेन्द्र-चक्रम्)** तीर्थंकर के धर्मचक्र को **(लब्ध्वा)** प्राप्तकर **(शिवम्)** मोक्ष को **(उपैति)** प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

सम्यग्ज्ञानाधिकार

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

(आर्या छन्द)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **[वस्तुस्वरूपम्]** वस्तु के स्वरूप को **(अन्यूनम्)** न्यूनता रहित **(अनतिरिक्तम्)** अधिकता रहित **(विपरीतात् विना)** विपरीतता रहित **(च)** और **(निःसंदेहं)** संदेह रहित **(याथातथ्यम्)** जैसा का तैसा **(वेद)** जानता है **(तत्)** उसको **(आगमिनः)** आगम के ज्ञाता गणधर आदि देव **(ज्ञानम्)** सम्यग्ज्ञान **(आहुः)** कहते हैं।

प्रथमानुयोग का लक्षण

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

अन्वयार्थ— (समीचीनः बोधः) सम्यक् श्रुतज्ञान **(अर्थाख्यानम्)** परमार्थभूत विषय का प्रतिपादन करने वाला **(पुण्यम्)** पुण्यवर्धक **(चरितम्)** एक पुरुष के आश्रित चरित **(अपि)** और **(पुराणम्)** त्रेशठशलाका पुरुषों से सम्बन्धित पुराण **(बोधि-समाधिनिधानम्)** बोधि/रत्नत्रय और समाधि/धर्म शुक्लध्यान की खानरूप **(प्रथमानुयोगम्)** प्रथमानुयोग को **(बोधति)** जानता है।

करणानुयोग का लक्षण

लोकालोकविभक्ते-र्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

अन्वयार्थ—(तथा) प्रथमानुयोग की तरह **(मतिः)** मननरूप श्रुतज्ञान **(लोका-लोकविभक्तेः)** लोक और अलोक के विभाग **(युगपरिवृत्तेः)** युगों के परिवर्तन **(च)** और **(चतुर्गतीनाम्)** चारों गतियों का स्वरूप **(आदर्शम्)** दर्पण के **(इव)** समान दिखाने वाले **(करणानुयोगम् च)** करणानुयोगरूप शास्त्र को भी **(अवैति)** जानता है।

चरणानुयोग का लक्षण

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्ज्ञानम्) द्रव्यभावरूप सम्यग्ज्ञान **(गृहमेध्यनगाराणां)** गृहस्थ और मुनियों के **(चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्)** चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणभूत **(चरणानुयोग-समयम्)** चरणानुयोग शास्त्र को **(विजानाति)** जानता है।

द्रव्यानुयोग का लक्षण

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यानुयोग-दीपः) द्रव्यानुयोगरूपी दीपक **(जीवाजीवसुतत्त्वे)** जीव और अजीवरूप प्रमुख तत्त्वों को **(पुण्यापुण्ये)** पुण्य और पाप को **(च)** और **(बन्धमोक्षौ)** बन्ध और मोक्ष को तथा **(च)** च शब्द से आस्रव, संवर और निर्जरा इन उपर्युक्त नौ पदार्थों के स्वरूप के कथनरूप **(श्रुतविद्यालोकम्)** श्रुतज्ञानरूप प्रकाश को **(आतनुते)** फैलाता है।

❑ ❑ ❑

सम्यक्चारित्राधिकार

चारित्र कौन धारण करता है ?

(आर्या छन्द)

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

अन्वयार्थ—(मोहतिमिरापहरणे) मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर **(दर्शन-लाभात्)** सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से **(अवाप्तसंज्ञानः)** प्राप्त हुआ है सम्यग्ज्ञान जिसे ऐसा **(साधुः)** सज्जन/भव्यजीव **(रागद्वेषनिवृत्त्यै)** रागद्वेष की निवृत्ति के लिए **(चरणम्)** सम्यक्चारित्र को **(प्रतिपद्यते)** प्राप्त होता है।

रागद्वेष की निवृत्ति से चारित्रोत्पत्ति

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

अन्वयार्थ—(रागद्वेषनिवृत्तेः) रागद्वेष की निवृत्ति से **(हिंसादिनिवर्तना)** हिंसादि पापों की निवृत्ति **(कृता भवति)** की गई/स्वयं होती है **[यतः]** क्योंकि **(अनपेक्षितार्थवृत्तिः)** अपेक्षा से रहित आजीविका वाला **(कः पुरुषः)** कौन पुरुष **(नृपतीन्)** राजाओं की **(सेवते)** सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

सम्यक्चारित्र का लक्षण

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

अन्वयार्थ—(संज्ञस्य) सम्यग्ज्ञानी का **(पापप्रणालिकाभ्यः)** पाप के पनाले स्वरूप **(हिंसानृतचौर्य्येभ्यः)** हिंसा, झूठ, चोरी से **(च)** और **(मैथुनसेवा-परिग्रहाभ्याम्)** कुशील व परिग्रह से **(विरतिः)** विरक्त होना **(चारित्रम्)** चारित्र **[कथ्यते]** कहा जाता है।

चारित्र के भेद और उपासक

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गनाम् ॥५०॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह **(चरणम्)** चारित्र **(सकलम्)** सकल/महाव्रत और **(विकलम्)** विकल/अणुव्रतरूप दो प्रकार है उनमें **(सर्वसङ्ग-विरतानाम्)** समस्त परिग्रहों से विरक्त **(अनगाराणाम्)** अनगार/मुनियों के **(सकलम्)** सकलचारित्र और **(ससङ्गनाम्)** घर आदि परिग्रह सहित **(सागाराणाम्)** सागारों/गृहस्थों के **(विकलम्)** विकलचारित्र होता है।

विकलचारित्र के भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्य-माख्यातम् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(गृहिणाम्) गृहस्थों का **(चरणम्)** चारित्र **(अणुगुणशिक्षा-व्रतात्मकम्)** अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतरूप **(त्रेधा)** तीन प्रकार **(तिष्ठति)** होता है **[तत्]** वह **(त्रयम्)** तीनों प्रकार चारित्र **(यथासंख्यम्)** क्र म से **(पञ्च-त्रि-चतुर्भेदम्)** पाँच, तीन और चार भेदरूप **(आख्यातम्)** कहा गया है।

अणुव्रताधिकार

अणुव्रत का लक्षण

प्राणातिपात-वितथव्याहार-स्तेय - काम - मूर्च्छाभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अन्वयार्थ—(प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन **(स्थूलेभ्यः)** स्थूल **(पापेभ्यः)** पापों से **(व्युपरमणम्)**

विरत होना **(अणुव्रतम्)** अणुव्रत **(भवति)** होता है।

अहिंसाणुव्रत का लक्षण

सङ्कल्पात्कृतकारित-मननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(योगत्रयस्य)** मन, वचन और काय के **(कृतकारित-मननात्)** कृत, कारित और अनुमोदनारूप **(सङ्कल्पात्)** संकल्प से **(चरसत्त्वान्)** त्रस जीवों को **(न हिनस्ति)** नहीं मारता है **(तत्)** उसकी उस क्रिया को **(निपुणाः)** गणधर आदि देव **(स्थूलवधात्)** स्थूलहिंसा से **(विरमणम्)** विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत **(आहुः)** कहते हैं।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडन - मतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥

अन्वयार्थ—(स्थूलवधाद्व्युपरतेः) स्थूलवध से विरत श्रावक के **(छेदन-बन्धन-पीडनम्)** छेदना, बाँधना, पीड़ा देना **(अतिभारारोपणम्)** अधिक भार लादना **(अपि च)** और **(आहार-वारणा)** आहार का रोकना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(व्यतीचाराः)** अतिचार हैं।

सत्याणुव्रत का लक्षण

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(स्थलूम्)** स्थूल **(अलीकम्)** झूठ को **(न वदति)** न स्वयं बोलता है **(न परान् वादयति)** न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा **(सत्यम् अपि)** सत्य भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो **(विपदे)** दूसरों की विपत्ति के लिए हो **(तत्)** उसकी उस क्रिया को **(सन्तः)** सत्पुरुष **(स्थूल-मृषावाद-वैरमणम्)** स्थूल असत्यकथन/झूठ का त्याग अर्थात् सत्य अणुव्रत **(वदन्ति)** कहते हैं।

सत्याणुव्रत के अतिचार

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

अन्वयार्थ—(परिवाद-रहोभ्याख्या) मिथ्योपदेश/दोषारोपण, रहोभ्याख्यान/रहस्योद्घाटन **(पैशून्यम्)** चुगलखोरी **(च)** तथा **(कूटलेखकरणम्)** कूटलेख/झूठे दस्तावेज लिखना **(अपि च)** और **(न्यासापहारिता)** धरोहर को हड़प करने के वचन कहना व धरोहर को हड़प लेना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(सत्यस्य)** सत्य अणुव्रत के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

अचौर्याणुव्रत का लक्षण

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(निहितम्)** रखी हुई **(वा)** अथवा **(पतितम्)** गिरी हुई **(वा)** अथवा **(सुविस्मृतम्)** भूली हुई **(वा)** और **(अविसृष्टम्)** बिना दी गई **(परस्वम्)** अन्य की वस्तु को **(न हरति)** न लेता है **(च)** और **[अन्यस्मै]** दूसरे के लिए **(न दत्ते)** न देता है **(तत्)** उसकी वह क्रिया **(अकृशचौर्यात् उपारमणम्)** स्थूल चोरी से परित्यागरूप अचौर्य अणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

अन्वयार्थ—(चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः) चौरप्रयोग—अन्य को चोरी के उपाय बताना या प्रोत्साहन देना, चौरार्थादान—चोरों के द्वारा चुराये गए माल धन को ग्रहण करना, विलोप—राजकीय नियमों को उल्लंघन करना, सदृशसन्मिश्र—अधिक मूल्य की वस्तुओं में उसी के समान कम मूल्य की वस्तुओं को मिलाना **(च)** और **(हीनाधिकविनिमानम्)** हीनाधिक-विनिमान—नापने तौलने के गज/मीटर बाँट आदि को लेने के बड़े व ज्यादा तथा देने के छोटे व कम रखना **[एते]** ये **(पंच)** पाँच **(अस्तेये)** अचौर्य अणुव्रत के **(व्यतीपाताः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदार-निवृत्तिः स्वदार-सन्तोष-नामापि ॥५९॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(पापभीतेः)** पाप के भय से **(परदारान्)** परस्त्रियों के प्रति **(न तु)** न तो **(गच्छति)** स्वयं गमन करता है **(च)** और **(न परान्)** न दूसरों

को **(गमयति)** गमन कराता है **(सा)** वह क्रिया **(परदार-निवृत्तिः)** परस्त्री-त्यागरूप **(अपि)** एवम् **(स्वदारसन्तोषनाम)** स्वदारसंतोष नामक ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥

अन्वयार्थ—(अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः) अन्य विवाहाकरण—परिवार को छोड़कर अन्य के बेटे-बेटियों का विवाह सम्बन्ध कराना, अनंगक्रीड़ा—काम सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से कामसेवन करना, विटत्व—शरीर से कामुक चेष्टा व वचनों से गालियाँ देना, जारपना स्त्रियों के स्वाँग/वेश बनाना, विपुलतृषा—कामसेवन की तीव्र अभिलाषा रखना **(इत्वरिका-गमनं च)** और इत्वरिकागमनं—व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ आना-जाना और उनसे सम्बन्ध रखना ये **(पञ्च)** पाँच **(अस्मरस्य)** ब्रह्मचर्य अणुव्रत के **(व्यतीचारः)** अतिचार हैं।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का स्वरूप

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

अन्वयार्थ—(धनधान्यादिग्रन्थम्) धन-धान्यादि परिग्रहों को **(परिमाय)** परिमित/ सीमित कर **(ततः)** उनसे **(अधिकेषु)** अधिक परिग्रहों में **(निःस्पृहता)** इच्छा रहित होना **(परिमितपरिग्रहः च)** परिमित परिग्रह **(अपि)** अथवा **(इच्छा-परिमाणनाम)** इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत **(स्यात्)** होता है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसंग्रह - विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

अन्वयार्थ—(अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि) अतिवाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ और अतिभारवहन **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(परिमित-परिग्रहस्य च)** परिग्रह परिमाण अणुव्रत के **(विक्षेपाः)** अतिचार **(लक्ष्यन्ते)** निश्चित किए जाते हैं।

अणुव्रत धारण का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अन्वयार्थ—(निरतिक्रमणाः) अतिचार रहित **(पञ्चाणुव्रतनिधयः)** पाँच अणुव्रतरूपी निधियाँ **(सुरलोकम्)** स्वर्गलोक को **(फलन्ति)** फलती/देती हैं **(यत्र)** जिस स्वर्गलोक में **(अवधिः)** अवधिज्ञान **(अष्टगुणाः)** अणिमा आदि आठ गुण/ऋद्धियाँ **(च)** और **(दिव्यशरीरम्)** सप्त धातु रहित सुन्दर वैक्रियिक शरीर **(लभ्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

अणुव्रतधारियों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

अन्वयार्थ—अणुव्रत धारियों में **(मातङ्गः)** यमपाल नामक चाण्डाल **(धनदेवः)** धनदेव **(वारिषेणः)** वारिषेण **(ततः परः)** उसके बाद **(नीली)** वणिक्पुत्री नीली **(च)** और **(जयः)** जयकुमार क्र म से अहिंसा आदि अणुव्रतों में **(उत्तमम्)** उत्तम **(पूजातिशयम्)** पूजा के अतिशय को **(सम्प्राप्ताः)** प्राप्त हुए हैं।

पाँचों पापों में प्रसिद्ध व्यक्ति

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

अन्वयार्थ— (तथा) उसी प्रकार **(धनश्रीसत्यघोषौ च)** धनश्री और सत्यघोष **(तापसारक्षकौ)** तपस्वी और कोतवाल **(अपि)** और **(श्मश्रुनवनीतः)** श्मश्रु-नवनीत **(यथाक्रमम्)** क्रम से हिंसादि पाँच पापों में **(उपाख्येयाः)** उपाख्यान करने के योग्य हैं—दृष्टान्त देने के योग्य हैं।

श्रावक के आठ मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

अन्वयार्थ—(श्रमणोत्तमाः) मुनियों में उत्तम गणधरादिदेव **(मद्य-मांसमधु-त्यागैः सह)** मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ **(अणुव्रत-पञ्चकम्)** पाँच अणुव्रतों को **(गृहिणां)** गृहस्थों के **(अष्टौ)** आठ **(मूलगुणान्)** मूलगुण

(आहुः) कहते हैं।

गुणव्रताधिकार

गुणव्रतों के नाम

(आर्या छन्द)

दिग्व्रतमनर्थदण्ड-व्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

अन्वयार्थ—(आर्याः) तीर्थंकरदेव आदि उत्तम पुरुष **(गुणानाम्)** मूलगुणों की **(अनुबृंहणात्)** वृद्धि करने के कारण से **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत को **(अनर्थ-दण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्डव्रत को **(च)** और **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाणव्रत को **(गुणव्रतानि)** गुणव्रत **(आख्यान्ति)** कहते हैं।

दिग्व्रत का लक्षण

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत-मामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥६८॥

अन्वयार्थ—(आमृत्यणुपापविनिवृत्त्यै) मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए **(दिग्वलयं)** दिशाओं के समूह को **(परिगणितं)** मर्यादा सहित **(कृत्वा)** करके **(अहम्)** मैं **(अतः)** इससे **(बहिः)** बाहर **(न)** नहीं **(यास्यामि)** जाऊँगा **(इति)** इस प्रकार **(सङ्कल्पः)** संकल्प या प्रतिज्ञा **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत है।

दिग्व्रत की मर्यादा का प्रकार

मकराकरसरिदटवी-गिरि-जनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अन्वयार्थ—(दशानाम् दिशाम्) दशों दिशाओं के **(प्रतिसंहारे)** परिमाण/ सीमांकन में **(प्रसिद्धानि)** प्रसिद्ध **(मकराकर-सरिदटवी-गिरि-जनपद-योजनानि)** समुद्र, नदी, पहाड़ी-जंगल, पर्वत, शहर और योजनों को **(मर्यादाः)** मर्यादा/ सीमा **(प्राहुः)** कहते हैं।

दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना

अवधेर्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रतानि) दिग्व्रतों को **(धारयताम्)** धारण करने वाले पुरुषों

के **(अणुव्रतानि)** अणुव्रत **(अवधेः)** की हुई मर्यादा के **(बहिः)** बाहर **(अणुपापप्रतिविरतेः)** सूक्ष्म पापों की निवृत्ति हो जाने से **(पञ्चमहाव्रत-परिणतिम्)** पाँच महाव्रतों की समानता को **(प्रपद्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

उपचार की दृष्टि से महाव्रत

प्रत्याख्यानतनुत्वान् मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्यानतनुत्वात्) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से **(मन्दतराः)** अत्यन्त मंद अवस्था को प्राप्त **(सत्त्वेन दुरवधाराः)** जिनका अस्तित्वरूप से निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे **(चरण-मोहपरिणामाः)** चारित्रमोह के परिणाम **(महाव्रताय)** महाव्रत के व्यवहार के लिए **(प्रकल्प्यन्ते)** कल्पना किए जाते हैं/उपचरित होते हैं।

महाव्रत का लक्षण

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

अन्वयार्थ—(हिंसादीनाम् पञ्चानाम् पापानाम्) हिंसादिक पाँचों पापों का **(मनोवचःकायैः)** मन, वचन और काय से तथा **(कृतकारितानुमोदैः)** कृत, कारित और अनुमोदना से **(त्यागः)** त्याग करना **(तु)** ही **(महतां)** प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का **(महाव्रतम्)** महाव्रत **[भवति]** होता है।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धि-रवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरते-रत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अन्वयार्थ—अज्ञान व प्रमाद से **(ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः)** ऊपर नीचे तथा दिशाओं-विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना **(क्षेत्रवृद्धिः)** क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और **(अवधीनाम्)** की हुई सीमाओं/मर्यादाओं का **(विस्मरणम्)** भूल जाना ये **(पञ्च)** पाँच **(दिग्विरतेः)** दिग्व्रत के **(अत्याशाः)** अतिचार **(मन्यन्ते)** माने जाते हैं।

अनर्थदण्डत्याग व्रत का लक्षण

अभ्यन्तरं दिगवधे-रपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्ड-व्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

अन्वयार्थ—(व्रतधराग्रण्यः) व्रतधारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थंकरदेव आदि **(दिगवधेः)** दिशाओं की मर्यादा के **(अभ्यन्तरम्)** भीतर **(अपार्थिकेभ्यः)** अर्थ/प्रयोजन रहित **(सपापयोगेभ्यः)** पापबंध के कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्तियों से **(विरमणम्)** विरक्त होने को **(अनर्थदण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्डत्याग व्रत **(विदुः)** कहते हैं।

अनर्थदण्ड के भेद

पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुःप्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

अन्वयार्थ—(अदण्डधराः) मनवचनकाय की दुःप्रवृत्तिरूप दण्ड से रहित गणधरादिदेव **(पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दुःश्रुतीः)** पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और **(प्रमाद-चर्याम्)** प्रमादचर्या इन **(पञ्च)** पाँच को **(अनर्थदण्डान्)** अनर्थदण्ड **(प्राहुः)** कहते हैं।

पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण

तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥

अन्वयार्थ—(तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भ-प्रलम्भनादीनाम्) पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियाएँ, व्यापार, हिंसा, आरम्भ और छलने आदि की **(कथाप्रसंगः)** कथाओं का प्रसंग **(प्रसवः)** उत्पन्न करना **(पापः उपदेशः)** पाप सम्बन्धि उपदेश/पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड **(स्मर्त्तव्यः)** स्मरण रखना चाहिए/जानना चाहिए।

हिंसादान अनर्थदण्ड का लक्षण

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृंखलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

अन्वयार्थ—(बुधाः) ज्ञानी गणधर आदि देव **(परशु-कृपाण-खनित्र-ज्वलनायुध-शृङ्गि-शृंखलादीनाम्)** फरसा, तलवार, कुदाली-फावड़ा, अग्नि, छुरी कटार आदि हथियार, सींगी या विष और सांकल आदि **(वधहेतूनां)** हिंसा के कारणों के **(दानं)** देने को **(हिंसादानं)** हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड **(ब्रुवन्ति)** कहते हैं।

अपध्यान अनर्थदण्ड का लक्षण

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

अन्वयार्थ—(जिनशासने) जिनशासन में **(विशदाः)** निपुण पुरुष **(द्वेषात्)** द्वेष से **(वधबन्धच्छेदादेः)** मारने, बाँधने, छेदने आदि का **(च)** और **(रागात्)** राग से **(परकलत्रादेः)** परस्त्री आदि का **(आध्यानम्)** चिन्तन करने को **(अपध्यानम्)** अपध्यान नामक अनर्थदण्ड **(शासति)** कहते हैं।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का लक्षण

आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनैः ।
चेतः कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

अन्वयार्थ—(आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनैः) आरम्भ, परिग्रह, साहस (कथा में आश्चर्यकारी वीरता), मिथ्यात्व, द्वेष, राग, घमण्ड और विषयभोग से **(चेतः कलुषयताम्)** चित्त को कलुषित/ मलीन करने वाले **(अवधीनाम्)** शास्त्रों का **(श्रुतिः)** सुनना **(दुःश्रुतिः)** दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड **(भवति)** होता है।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का लक्षण

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अन्वयार्थ—(विफलम्) निष्प्रयोजन **(क्षिति-सलिल-दहन-पवनारम्भम्)** पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु का आरम्भ/अपव्यय करने **(वनस्पतिच्छेदम्)** वनस्पति के छेदने **(सरणं)** स्वयं घूमने **(अपि च)** और **(सारणं)** दूसरों के घुमाने इन सबको **(प्रमादचर्याः)** प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड **(प्रभाषन्ते)** कहते हैं।

अनर्थदण्ड व्रत के अतिचार

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्य-मतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

अन्वयार्थ—(कन्दर्पं) राग की तीव्रता से हँसी करते हुए अशिष्ट वचन कहना **(कौत्कुच्यम्)** शरीर की कुचेष्टा करना **(मौखर्यम्)** व्यर्थ अधिक बकवास करना **(अतिप्रसाधनम्)** भोगोपभोग सामग्री का आवश्यकता से ज्यादा संग्रह

करना **(च)** और **(असमीक्ष्य अधिकरणम्)** पूर्वापर विचार किए बिना अधिक कार्य करना ये **(पञ्च)** पाँच **(अनर्थदण्डकृद्विरतेः)** अनर्थदण्डव्रत के **(व्यतीतयः)** अतिचार हैं।

भोगोपभोग परिमाणव्रत का लक्षण

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

अन्वयार्थ—(रागरतीनाम्) राग से होने वाली विषयों की लालसा के **(तनूकृतये)** घटाने के लिए **(अवधौ)** परिग्रह परिमाणव्रत में की हुई परिग्रह की मर्यादा में **(अपि)** भी **(अर्थवताम्)** प्रयोजनभूत **(अक्षार्थानाम्)** इन्द्रियों के विषयों का **(परिसंख्यानम्)** परिमाण करना **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाण नामक व्रत है।

भोग और उपभोग का लक्षण

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसन-प्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

अन्वयार्थ—(अशनवसनप्रभृतिः) भोजन, वस्त्र आदि **(पाञ्चेन्द्रियः)** पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो **(विषयः)** विषय **(भुक्त्वा)** भोग करके **(परिहातव्यः)** छोड़ दने के योग्य है वह तो **(भोगः)** भोग है **(च)** और **(भुक्त्वा)** भोग करके **(पुनः)** फिर **(भोक्तव्यः)** भोगने योग्य है वह **(उपभोगः)** उपभोग है।

मकारों के त्याग का उपदेश और उनके सेवन से हानि

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जिनचरणौ) जिनेन्द्रदेव के चरणों की **(शरणम्)** शरण को **(उपयातैः)** प्राप्त हुए श्रावकों के द्वारा **(त्रसहति-परिहरणार्थं)** त्रसजीवों की हिंसा को दूर करने के लिए **(क्षौद्रम्)** मधु/शहद (**पिशितम्)** मांस **(च)** और **(प्रमादपरिहृतये)** प्रमाद (यह माता है यह स्त्री है इस प्रकार के विवेक के अभाव) को दूर करने के लिए **(मद्यम्)** मदिरा **(वर्जनीयम्)** त्यागने योग्य है।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत में त्याज्य वस्तुएँ

अल्पफलबहुविघातान् मूलक-मार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीत-निम्बकुसुमं कैतक-मित्येव-मवहेयम् ॥८५॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(अल्पफलबहुविघातात्)** थोड़ा फल और अधिक हिंसा होने से **(आर्द्राणि)** गीले/अपक्व/अशुष्क/सचित्त **(शृङ्गवेराणि)** अदरक **(मूलकम्)** मूली, गाजर आदि **(नवनीत निम्बकुसुमं)** मक्खन, नीम के फूल **(कैतकम्)** केवड़ा/केतकी के फूल **(इति)** इत्यादि **(एवम्)** ऐसी और वस्तुएँ **(अवहेयम्)** छोड़ने योग्य है।

व्रत का लक्षण

यदनिष्टं तद् व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(यत्)** जो वस्तु **(अनिष्टम्)** अनिष्ट-अहितकर है **(तद्)** उसको **(व्रतयेत्)** छोड़े **(च)** और **(यत्)** जो **(अनुपसेव्यम्)** सेवन करने के अयोग्य है **(एतदपि)** यह भी **(जह्यात्)** छोड़े क्योंकि **(योग्यात्)** योग्य **(विषयात्)** विषय से **(अभिसन्धिकृता)** अभिप्रायपूर्वक की हुई **(विरतिः)** निवृत्ति **(व्रतम्)** व्रत **(भवति)** होती है।

यम और नियम का लक्षण

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अन्वयार्थ—(भोगोपभोगसंहारात्) भोग और उपभोग के परिमाण से **(नियमः)** नियम **(च)** और **(यमः)** यम **(द्वेधा)** दो प्रकार से **(विहितौ)** कहा गया है उनमें **(परिमितकालः)** जो नियत काल की मर्यादापूर्वक किया गया त्याग वह **(नियमः)** नियम है और जो **(यावज्जीवं)** जीवनपर्यन्त के लिए **(ध्रियते)** धारण किया जाता है वह त्याग **(यमः)** यम है।

भोगोपभोग सामग्री

भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु ।
ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीतगीतेषु ॥८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

अन्वयार्थ—(भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु) भोजन—भोज्य वस्तुओं, वाहन—मोटर गाड़ी, शयन—शय्या पलंग आदि, स्नान पवित्रांगराग—उबटन, साबुन, तेल आदि लगाने, सुगन्धित पुष्पों के विषय में

तथा **(ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीत-गीतेषु)** पान, वस्त्र, अलंकार, कामभोग, संगीत और गीत के विषय में **(अद्य)** आज एक घड़ी पहर आदि **(दिवा)** एक दिन **(रजनी)** एक रात्रि **(पक्षः)** एक पक्ष पन्द्रह दिन **(मासः)** एक माह **(तथा)** तथा **(ऋतुः)** दो माह **(वा)** अथवा **(अयनम्)** छह माह **(इति)** इस प्रकार **(कालपरिच्छित्त्या)** काल के नियम से **(प्रत्याख्यानम्)** त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत में **(नियमः)** नियम **(भवेत्)** होता है।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

अन्वयार्थ—(विषयविषतः) विषयरूपी विष से **(अनुपेक्षा)** उपेक्षा नहीं करना अर्थात् आदर होना **(अनुस्मृतिः)** भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना तथा उसके प्रतिकार होने पर भी बार-बार अनुभवन की इच्छा होना **(अति-लौल्यम्)** वर्तमान विषयों में अति लम्पटता रखना **(अतितृषानुभवौ)** आगामी भोगोपभोगरूप विषयों की अधिक तृष्णा रखना तथा वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्तिपूर्वक अनुभव करना ये **(पञ्च)** पाँच **(भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः)** भोगोपभोगपरिमाण व्रत के अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे गये हैं।

शिक्षाव्रत अधिकार

शिक्षाव्रत के भेद

(आर्या छन्द)

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

अन्वयार्थ—(देशावकाशिकम्) देशावकाशिक **(सामयिकम्)** सामायिक **(वा)** और **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास **(वा)** और **(वैयावृत्त्यं)** वैयावृत्य ये **(चत्वारि)** चार **(शिक्षाव्रतानि)** शिक्षाव्रत **(शिष्टानि)** कहे गये हैं।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत का लक्षण

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अन्वयार्थ—(अणुव्रतानाम्) अणुव्रत पालक श्रावकों का **(विशालस्य)** दिग्व्रत

में की हुई लम्बी-चौड़ी **(देशस्य)** क्षेत्र की मर्यादा का **(कालपरिच्छेदनेन)** काल के विभाग से **(प्रत्यहम्)** प्रतिदिन **(प्रतिसंहारः)** संकुचित/कम करना **(देशावकाशिकम्)** देशावकाशिक व्रत **(स्यात्)** होता है।

देशव्रत में क्षेत्र की मर्यादा की रीति

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

अन्वयार्थ—(तपोवृद्धाः) तपों की वृद्धि को प्राप्त गणधरदेव आदि **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की **(गृह-हारि-ग्रामाणाम्)** प्रसिद्ध घर, गली, गाँव **(च)** और **(क्षेत्र-नदी-दाव-योजनानाम्)** खेत, नदी, जंगल और योजनों की **(सीम्नाम्)** मर्यादा **(स्मरन्ति)** स्मरण करते हैं।

देशव्रत में काल की मर्यादा की रीति

संवत्सरमृतुर(म)यनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

अन्वयार्थ—(प्राज्ञाः) प्रकृष्टज्ञानी गणधर आदि देव **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक व्रत की **(कालावधिम्)** काल की मर्यादा को **(संवत्सरम्)** एक वर्ष **(अयनम्)** छह माह **(ऋतुः)** दो माह **(मासचतुर्मासपक्षम्)** एक माह चार माह पन्द्रह दिन **(च)** और **(ऋक्षम्)** एक दिन या एक नक्षत्र तक **(प्राहुः)** कहते हैं।

देशव्रती के उपचार से महाव्रत

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

अन्वयार्थ—(सीमान्तानाम्) सीमाओं के अन्तभाग के **(परतः)** आगे **(स्थूलेतर-पञ्चपापसन्त्यागात्)** स्थूल और सूक्ष्म पाँचों पापों का सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से **(देशावकाशिकेन च)** देशावकाशिक व्रत के द्वारा भी **(महाव्रतानि)** महाव्रत **(प्रसाध्यन्ते)** सिद्ध किए जाते हैं।

भावार्थ—देशावकाशिक व्रत की मर्यादा के बाहर चूँकि देशावकाशिक व्रतधारी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही पापों का अभाव हो जाता है अतः उसके अणुव्रत उस अपेक्षा से महाव्रत जैसे हो जाते हैं। यह कथन निश्चय दृष्टि से नहीं उपचार की दृष्टि से है।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्यया: पञ्च ॥९६॥

अन्वयार्थ—देशावकाशिकव्रत में की हुई मर्यादा के बाहर **(प्रेषणशब्दानयनम्)** भेजना, शब्द करना, मँगाना **(रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ)** शरीर दिखाना और पत्थर आदि फेंकना ये **(पञ्च)** पाँच **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के **(अत्यया:)** अतिचार **(व्यपदिश्यन्ते)** कहे जाते हैं।

सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघाना-मशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिका: सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

अन्वयार्थ—(सामयिका:) सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक **(अशेषभावेन)** पूर्णभाव मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से **(सर्वत्र)** सब जगह **(आसमयमुक्ति)** सामायिक के लिए निश्चित समय तक **(पञ्चाघानाम्)** पाँचों पापों के **(मुक्तम्)** त्याग करने को **(सामयिकं नाम)** सामायिक नामक शिक्षाव्रत **(शंसन्ति)** कहते हैं।

समय शब्द की व्युत्पत्ति

मूर्धरुहमुष्टिवासो बन्धं पर्य्यङ्कबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञा: ॥९८॥

अन्वयार्थ—(समयज्ञा:) आगम के ज्ञाता पुरुष **(मूर्धरुहमुष्टि-वासोबन्धं)** केशबंधन, मुष्टिबंधन, वस्त्रबंधन के बंध काल को **(च)** और **(पर्य्यङ्क-बन्धनं)** पद्मासन लगाना **(स्थानं)** कायोत्सर्ग से खड़े रहना **(वा)** अथवा **(उपवेशनम्)** बैठकर कायोत्सर्ग करना **(अपि)** भी **(समयं)** सामायिक के योग्य समय **(जानन्ति)** जानते हैं।

सामायिक करने का स्थान

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

अन्वयार्थ—(सामयिकं) सामायिक **(प्रसन्नधिया)** प्रसन्नचित्त से **(निर्व्याक्षेपे)** उपद्रव रहित **(एकान्ते)** स्त्री, पशु तथा नपुंसकों से रहित एकान्त स्थान में **(वनेषु)** वनों में **(वास्तुषु च)** एकान्त घरों या धर्मशालाओं में **(वा)** अथवा

(चैत्यालयेषु) चैत्यालयों में **(च)** और पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि में **(अपि)** भी **(परिचेतव्यम्)** बढ़ाना चाहिए।

सामायिक बढ़ाने की रीति

व्यापार-वैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्म - विनिवृत्त्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

अन्वयार्थ—(व्यापारवैमनस्यात्) काय आदि की चेष्टा और मनोव्यग्रता/कलुषता से **(विनिवृत्त्याम्)** निवृत्ति होने पर **(अन्तरात्मविनिवृत्त्या)** मन के सूक्ष्म विकल्पों की निवृत्तिपूर्वक **(उपवासे)** उपवास के दिन **(वा)** अथवा **(एकभुक्ते)** एकाशन के दिन **(च)** और अन्य समय भी **(सामयिकम्)** सामायिक को **(बध्नीयात्)** बढ़ाना चाहिए।

प्रतिदिन सामायिक करने का उपदेश

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(अनलसेन) आलस्य से रहित और **(अवधानयुक्तेन)** एकाग्र-चित्त सहित श्रावक के द्वारा **(व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणम्)** हिंसात्याग आदि पाँचों व्रतों की पूर्ति का कारण **(सामयिकम्)** सामायिक **(प्रतिदिवसम् अपि)** प्रतिदिन भी **(यथावत्)** शास्त्रोक्त विधि से **(चेतव्यम्)** बढ़ाया जाना चाहिए।

सामायिकी के मुनितुल्यता

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥

अन्वयार्थ—[यदा] जब **(सामयिके)** सामायिक के समय में **(सारम्भाः)** कृषि आदि आरम्भ सहित **(सर्वे अपि)** सब ही **(परिग्रहाः)** अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह **(नैव सन्ति)** नहीं होते हैं **(तदा)** उस समय **(गृही)** गृहस्थ **(चेलोप-सृष्टमुनिः इव)** उपसर्ग के कारण वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान **(यतिभावम्)** मुनिपने को **(आयाति)** प्राप्त होता है।

सामायिक में परीषहादि सहन करें

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(सामयिकम्) सामायिक को **(प्रतिपन्नाः)** स्वीकार करने वाला **(अचलयोगाः)** निश्चल योग वाला व्यक्ति **(मौनधराः)** मौनधारी होकर **(शीतोष्णदंशमशक-परीषहम्)** शीत, उष्ण, दंशमशक/डाँस, मच्छर आदि के परीषहों को **(च)** और **(उपसर्गम्)** देव, मनुष्य, तिर्यंच व अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्गों को **(अपि)** भी **(अधिकुर्वीरन्)** सहन करे।

सामायिक के समय करने योग्य विचार

अशरणमशुभ-मनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अन्वयार्थ—(सामयिके) सामायिक में **[स्थिताः]** स्थित मनुष्य **(इति)** इस प्रकार **(ध्यायन्तु)** ध्यान करे कि मैं **(अशरणम्)** रक्षा रहित **(अशुभम्)** शुभ रहित **(अनित्यं)** नित्यता से रहित **(दुःखम्)** दुखरूप और **(अनात्मानम्)** अपने आत्मस्वरूप से रहित **(भवम्)** संसार में **(आवसामि)** निवास करता हूँ और **(मोक्षः)** मोक्ष **(तद्विपरीतात्मा)** उस संसार से विपरीत स्वरूप वाला अर्थात् शरण, शुभ, नित्य, सुखरूप व आत्मस्वरूप वाला है।

सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥

अन्वयार्थ—(वाक्कायमानसानाम्) वचन, काय और मन की **(दुःप्रणिधानानि)** खोटी प्रवृत्तियाँ **(अनादरास्मरणे)** अनादर और अस्मरण ये **(पञ्च)** पाँच **(भावेन)** परमार्थ से **(सामयिकस्य)** सामायिक के **(अतिगमाः)** अतिचार **(व्यज्यन्ते)** प्रकट किए गये हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अन्वयार्थ—(पर्वणि) चतुर्दशी **(च)** और **(अष्टम्याम्)** अष्टमी के दिन **(सदा)** हमेशा के लिए **(इच्छाभिः)** व्रत विधान की वांछा से **(चतुरभ्यवहार्य्याणां)** खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकार के आहारों का **(प्रत्याख्यानं)** त्याग करना **(तु)** ही **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत **(ज्ञातव्यः)** जानना चाहिए।

उपवास के दिन त्याज्य कार्य

पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्याना-मुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥१०७॥

अन्वयार्थ—(उपवासे) उपवास के दिन **(पञ्चानाम्)** पाँचों **(पापानाम्)** पापों का और **(अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां)** अलंकार धारण करना, खेती आदि आरम्भ करना, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्प मालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना **(स्नानाञ्जननस्यानां)** स्नान, अञ्जन/ काजल, सूरमा आदि लगाना तथा नाक से सूँघने योग्य नस्य आदि इन सब पदार्थों का **(परिहृतिं)** परित्याग **(कुर्य्यात्)** करना चाहिए।

उपवास के दिन का कर्त्तव्य

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

अन्वयार्थ—(उपवसन्) उपवास करने वाला व्यक्ति **(अतन्द्रालुः)** आलस्य रहित और **(सतृष्णः)** उत्कण्ठित होता हुआ **(धर्मामृतम्)** धर्मरूपी अमृत को **(श्रवणाभ्याम्)** अपने कानों से **(पिबतु)** पीवे **(वा)** अथवा **(अन्यान्)** दूसरों को **(पाययेत्)** पिलावे **[च]** और **(ज्ञानध्यानपरः)** ज्ञान-ध्यान में लवलीन **(भवतु)** होवे।

प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास का लक्षण

चतुराहारविसर्जन - मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

अन्वयार्थ—(चतुराहारविसर्जनम्) अन्न—दाल रोटी आदि। पान—पानी, दूध ठण्डाई, आदि। खाद्य—लड्डू, सेव, पपड़ी आदि। लेह्य—रबड़ी आदि इन चार प्रकार के आहारों का सर्वथा त्याग **(उपवासः)** उपवास है **(सकृद्भुक्तिः)** एक बार भोजन करना **(प्रोषधः)** प्रोषध/एकाशन है और **(यत्)** जो प्रोषधपूर्वक **(उपोष्य)** उपवास करके पारणा के दिन **(आरम्भं)** एकाशन को **(आचरति)** करता है **(सः)** वह **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास है।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(अदृष्टमृष्टानि)** बिना देखे और बिना शोधे **(ग्रहण-विसर्गास्तरणानि)** पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोड़ना और बिस्तर आदि को बिछाना तथा **(अनादरास्मरणे)** आवश्यक आदि में अनादर करना और योग्य क्रियाओं को भूल जाना **(तदिदं)** वे ये **(प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकम्)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार हैं।

वैयावृत्य शिक्षाव्रत का लक्षण

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वयार्थ—(तपोधनाय) तपरूप धन से युक्त **(गुणनिधये)** सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार और **(अगृहाय)** गृहत्यागी—मुनीश्वर के लिए **(विभवेन)** विधि द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार **(अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्)** प्रतिदान—दान देकर उनसे कुछ पाने की इच्छा और प्रत्युपकार—मंत्र-तंत्र आदि की अपेक्षा से रहित **(धर्माय)** स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए **(दानम्)** अपनी वस्तु को देना वह **(वैयावृत्यम्)** वैयावृत्य नाम का शिक्षाव्रत **(उच्यते)** कहा जाता है।

वैय्यावृत्य का दूसरा लक्षण

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

अन्वयार्थ—(गुणरागात्) सम्यग्दर्शनादि गुणों में प्रीति से **(संयमिनाम्)** देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमिजनों की **(व्यापत्तिव्यपनोदः)** आपत्तियों को दूर करना **(पदयोः)** पैरों का उपलक्षण से हस्तादिक अंगों का **(संवाहनं)** दबाना **(च)** और इसके सिवाय **(अन्योऽपिः)** अन्य भी **(यावान्)** जितना **(उपग्रहः)** उपकार है वह सब **(वैयावृत्यम्)** वैयावृत्य **(कथ्यते)** कहा जाता है।

दान का लक्षण

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

अन्वयार्थ—(सप्तगुणसमाहितेन) श्रद्धा, संतोष, भक्ति, विज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, सत्य (शक्ति) इन सात गुणों से सहित और **(शुद्धेन)** कौलिक—कुल

सम्बन्धि, आचरिक–आचरण सम्बन्धि तथा शारीरिक शुद्धि से युक्त दाता के द्वारा **(अपसूनारम्भाणाम्)** कूटना, पीसना, झाड़ना, पानी भरना, चूल्हा जलाना इन पंच सूनों (जीवघात के स्थान को सूना कहते हैं) और असि, मसि, कृषि आदि आरम्भों से रहित **(आर्याणां)** सम्यग्दर्शन आदि गुणों से सहित मुनियों की **(नवपुण्यैः)** नवधाभक्तिपूर्वक **(प्रतिपत्तिः)** आहार आदि के द्वारा गौरव व आदर किया जाता है वह **(दानम्)** दान **(इष्यते)** माना गया है।

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

अन्वयार्थ–(खलु) निश्चय से **(वारि)** जल **(रुधिरमलं)** खून, मल को **(धावते)** धो देता है **[तथा]** वैसे ही **(गृहविमुक्तानां अतिथीनां)** घर रहित अतिथियों की **(प्रतिपूजा)** दान क्रिया **(गृहकर्मणा)** गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से **(निचितम्)** उपार्जित अथवा सुदृढ़ **(कर्म अपि)** पापकर्म को भी **(विमार्ष्टि)** दूर कर देती है।

नवधाभक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

अन्वयार्थ–(तपोनिधिषु) तप के भंडार स्वरूप मुनियों के विषय में **(प्रणतेः)** प्रणाम करने से **(उच्चैर्गोत्रं)** उच्च गोत्र **(दानात्)** आहारादि दान देने से **(भोगः)** भोग **(उपासनात्)** उपासना/प्रतिग्रहण करने से **(पूजा)** सम्मान **(भक्तेः)** भक्ति करने से **(सुन्दररूपं)** सुन्दररूप और **(स्तवनात्)** स्तुति करने से **(कीर्तिः)** ख्याति/सुयश प्राप्त होता है।

अल्पदान से महाफल की प्राप्ति

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

अन्वयार्थ–(काले) उचित समय में **(पात्रगतं)** योग्य पात्र के लिए दिया गया **(अल्पमपि)** थोड़ा भी **(दानं)** दान **(क्षितिगतं)** उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए **(वट-बीजम् इव)** वटवृक्ष के बीज के समान **(शरीरभृताम्)** प्राणियों के **(छायाविभवं)** माहात्म्य और वैभव से युक्त पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित **(बहु)** बहुत भारी

(इष्टं) अभिलषित **(फलं)** फल को **(फलति)** फलता/देता है।

दान के भेद

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

अन्वयार्थ—(चतुरस्राः) चार ज्ञानधारी गणधरदेव **(आहारौषधयोः)** आहार औषधि **(च)** और **(उपकरणावासयोः अपि)** उपकरण तथा आवास के भी **(दानेन)** दान से **(वैयावृत्यं)** वैयावृत्य को **(चतुरात्मत्वेन)** चार प्रकार का **(ब्रुवते)** कहते हैं।

दानों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अन्वयार्थ—(श्रीषेणवृषभसेने) श्रीषेण, वृषभसेना **(कौण्डेशः)** कौण्डेश **(च)** और **(सूकरः)** सूकर **(एते)** ये **(चतुर्विकल्पस्य वैयावृत्यस्य)** चार भेद वाले वैयावृत्य के **(दृष्टान्ताः)** दृष्टान्त **(मन्तव्याः)** मानना चाहिए।

अर्हत्पूजा का वैयावृत्य में अन्तर्भाव

देवाधिदेव-चरणे परिचरणं सर्व-दुःख-निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

अन्वयार्थ—श्रावक को **(नित्यम्)** प्रतिदिन **(कामदुहि)** मनोरथों को पूर्ण करने वाली **(कामदाहिनि)** काम को भस्म करने वाली और **(सर्वदुःख-निर्हरणम्)** समस्त दुखों को पूर्णरूप से दूर करने वाली **(देवाधिदेव-चरणे)** इन्द्र आदि से वन्दनीय अरिहन्त देव के चरणों में **(परिचरणम्)** पूजा को **(आदृतः)** आदर से **(परिचिनुयात्)** पुष्ट/संचित करना चाहिए।

पूजा का माहात्म्य और उसका फल भोक्ता

अर्हच्चरणसपर्या-महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

अन्वयार्थ—(प्रमोदमत्तः) हर्ष विभोर **(भेकः)** मेंढ़क ने **(राजगृहे)** राजगृह नगर में **(एकेन कुसुमेन)** एक फूल के द्वारा **(महात्मनाम्)** भव्यजीवों के समक्ष **(अर्हच्चरण-सपर्यामहानुभावं)** अरिहन्त भगवान् के चरणों की पूजा

के महान प्रभाव को **(अवदत्)** कहा/प्रकट किया।

वैय्यावृत्त्य शिक्षाव्रत के अतिचार

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥

अन्वयार्थ—देने योग्य वस्तु को **(हि)** निश्चय से **(हरितपिधाननिधाने)** हरे पत्तों आदि से ढँकना व हरे पत्तों आदि पर रखना **(अनादरास्मरणमत्सरत्वानि)** अनादर, अस्मरण और मत्सरत्व **(एते)** ये **(पञ्च)** पाँच **(वैयावृत्यस्य)** वैय्यावृत्त्य के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे जाते हैं।

सल्लेखनाधिकार

सल्लेखना/समाधिमरण का लक्षण

(आर्या छन्द)

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

अन्वयार्थ—**(आर्याः)** सभी के आश्रयभूत गणधरस्वामी **(निःप्रतीकारे)** प्रतिकार रहित **(उपसर्गे)** उपसर्ग में **(दुर्भिक्षे)** दुष्काल में **(जरसि)** बुढ़ापा में **(च)** और **(रुजायाम्)** रोग होने पर **(धर्माय)** धर्म के लिए **(तनुविमोचनम्)** शरीर के छोड़ने को **(सल्लेखनाम्)** सल्लेखना **(आहुः)** कहते हैं।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

अन्वयार्थ—**[यस्मात्]** क्योंकि **(सकलदर्शिनः)** सर्वज्ञदेव **(अन्तःक्रियाधिकरणम्)** अन्त समय में समाधिमरण/सल्लेखना के आश्रय को **(तपःफलं)** तप का फल **(स्तुवते)** कहते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(यावद्विभवं)** जब तक शक्ति है तब तक **(समाधिमरणे)** समाधिमरण के विषय में **(प्रयतितव्यं)** प्रयत्न करना चाहिए।

सल्लेखना की विधि व महाव्रत धारण का उपदेश

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारित-मनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत- मामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

अन्वयार्थ—सल्लेखनाधारी **(स्नेहं)** प्रीति को **(वैरं)** वैर को **(सङ्गं)** पुत्र स्त्री आदि के सम्बन्धरूप ममत्वभाव को **(च)** और **(परिग्रहं)** परिग्रह को **(अपहाय)** छोड़कर **(शुद्धमनाः)** स्वच्छ हृदय वाला **(प्रियैः वचनैः)** मधुर वचनों से **(स्वजनं)** अपने परिवार कुटुम्बी जन तथा **(परिजनम् अपि च)** परिकर के लोगों को भी **(क्षान्त्वा)** क्षमा कराकर **(क्षमयेत्)** स्वयं क्षमा करे **(कृतकारितम्)** कृत कारित **(च)** और **(अनुमतम्)** अनुमोदित **(सर्वम्)** समस्त **(एनः)** पापों को **(निर्व्याजम्)** छल-कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित **(आलोच्य)** आलोचना करके **(आमरण-स्थायि)** मरण-पर्यन्त रहने वाले **(निःशेषम्)** समस्त/पाँचों **(महाव्रतम्)** महाव्रतों को **(आरोपयेत्)** धारण करे।

शोकादि को छोड़ श्रुतामृत पान करने की प्रेरणा

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अन्वयार्थ—(शोकं) शोक को **(भयं)** डर को **(अवसादम्)** विषाद को **(क्लेदं)** स्नेह को **(कालुष्यम्)** राग-द्वेष की परिणति को और **(अरतिम्)** अप्रीति को **(अपि)** भी **(हित्वा)** छोड़कर **(च)** और **(सत्त्वोत्साहम्)** बल और उत्साह को **(उदीर्य)** प्रकट करके **(श्रुतैः अमृतैः)** शास्त्ररूप अमृत के द्वारा **(मनः)** मन/चित्त को **(प्रसाद्यम्)** प्रसन्न करना चाहिए।

आहार के त्याग का क्रम

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥

अन्वयार्थ—तथा **(क्रमशः)** क्रम से **(आहारम्)** कवलाहाररूप अन्न आदि भोजन को **(परिहाप्य)** छोड़कर **(स्निग्धं पानम्)** दूध आदि चिकने पेय को **(विवर्द्धयेत्)** बढ़ाना चाहिए **(च)** पश्चात् **(क्रमशः)** क्रम से **(स्निग्धं)** दूध आदि चिकने पेय को **(हापयित्वा)** छोड़कर **(खरपानम्)** खरपान/ गर्म पानी/ छाँछ/काँजी आदि को **(पूरयेत्)** बढ़ाना चाहिए।

सल्लेखना में शेष आहार त्याग का क्रम

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

अन्वयार्थ—पश्चात् **(खरपानहापनाम् अपि)** गर्म पानी आदि को भी त्याग **(कृत्वा)** करके **(शक्त्या)** शक्ति के अनुसार **(उपवासम् अपि)** उपवास को भी **(कृत्वा)** करके **(सर्वयत्नेन)** पूर्ण तत्परता से **(पञ्चनमस्कारमनाः)** पञ्च नमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ **(तनुं)** शरीर को **(त्यजेत्)** छोड़े।

सल्लेखना के अतिचार

जीवितमरणाशंसे भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

अन्वयार्थ—(जीवितमरणाशंसे) जीविताशंसा/जीने की इच्छा, मरणाशंसा/मरने की इच्छा **(भयमित्रस्मृति-निदाननामानः)** भय, मित्रस्मृति/मित्रों का स्मरण और निदान/आगामी भोगों की इच्छा नाम वाले **(पञ्च)** पाँच **(सल्लेखनाति-चाराः)** सल्लेखना के अतिचार **(जिनेन्द्रैः)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा **(समा-दिष्टाः)** कहे गये हैं।

सल्लेखनाधारण का फल

निःश्रेयस-मभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥

अन्वयार्थ—(पीतधर्मा) धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला क्षपक **(दुस्तरम्)** बहुत समय तक रहने वाले **(अभ्युदयम्)** अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा तथा **(सर्वैः दुःखैः)** समस्त दुखों से **(अनालीढः)** रहित होता हुआ **(निस्तीरम्)** सीमा से रहित/अनन्त **(सुखाम्बुनिधिम्)** सुख के समुद्ररूप **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(निःपिबति)** अनुभव करता है।

मोक्ष का लक्षण

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयस-मिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

अन्वयार्थ—(जन्मजरामयमरणैः) जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण से, **(शोकैः)** शोकों से, **(दुःखैः)** दुखों **(च)** और **(भयैः)** भयों से **(परिमुक्तम्)** रहित **(शुद्ध-सुखम्)** शुद्ध सुख वाले **(नित्यम्)** नित्य-अविनाशी **(निर्वाणं)** निर्वाण को

(निःश्रेयसम्) मोक्ष **(इष्यते)** माना जाता है।

मुक्त जीवों का वर्णन

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

अन्वयार्थ—(विद्या-दर्शनशक्तिस्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्तिशुद्धियुजः) केवल-ज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, परम उदासीनतारूप स्व में स्थिरता, अनन्तसुख, इन्द्रिय विषयों की इच्छा से रहित संतुष्टि और द्रव्य-भावरूप कर्ममल से रहितपने को प्राप्त शुद्धि/पवित्रता वाले **(निरतिशयाः)** हीनाधिकता से रहित और **(निरवधयः)** अवधि से रहित **(सुखं)** सुख स्वरूप **(निःश्रेयसं)** निःश्रेयस/मोक्ष में जीव **(आवसन्ति)** निवास करते हैं।

मुक्तजीवों के गुणों में विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

अन्वयार्थ—(कल्पशते काले) सैकड़ों कल्प कालों के **(गते)** बीतने पर **(अपि च)** भी **(यदि)** अगर **(त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः)** तीनों लोकों में खलबली पैदा करने में समर्थ **(उत्पातः)** उपद्रव **(अपि)** भी **(स्यात्)** हो तो भी **(शिवानाम्)** सिद्धों में **(विक्रिया)** विकार **(न लक्ष्या)** दृष्टिगोचर नहीं होता।

मुक्त जीवों की शोभा का वर्णन

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्य- शिखा - मणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकर-भासुरात्मानः ॥१३४॥

अन्वयार्थ—(निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मानः) कीट और कालिमा से रहित कान्ति वाले सुवर्ण के समान प्रकाशमानस्वरूप वाले **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(अधिपन्नाः)** प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी **(त्रैलोक्य-शिखामणिश्रियम्)** तीनलोक के अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को **(दधते)** धारण करते हैं।

सल्लेखनाधारण से इन्द्रादिक पद की प्राप्ति

पूजार्थाज्ञैश्वर्यै - र्बल - परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

अन्वयार्थ—(सद्धर्मः) सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म **(पूजार्था-**

ज्ञैश्वर्यैः बल-परिजनकामभोगभूयिष्ठैः) पूजा/प्रतिष्ठा, धन, आज्ञारूप ऐश्वर्य तथा बल/शारीरिक-शक्ति, परिवार, काम और भोगों की अधिकता/परिपूर्णता से **(अतिशयित-भुवनं)** गुण, पद, परिमाण आदि में श्रेष्ठता को प्राप्त लोक को और **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारी **(अभ्युदयं)** स्वर्गादिरूप अभ्युदय/सांसारिक सुख को **(फलति)** फलता/देता है।

प्रतिमाधिकार

प्रतिमा निर्देश

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

अन्वयार्थ—(देवैः) तीर्थंकर देवों के द्वारा **(एकादश)** ग्यारह **(श्रावक-पदानि)** श्रावक के पद/प्रतिमाएँ **(देशितानि)** कही गई हैं **(येषु)** जिनमें **(खलु)** निश्चय से **(स्वगुणाः)** अपनी प्रतिमासम्बन्धी गुण **(पूर्वगुणैः सह)** पूर्व प्रतिमासम्बन्धी गुण के साथ **(क्रमविवृद्धाः)** क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए **(संतिष्ठन्ते)** स्थित होते हैं।

पहली दर्शन प्रतिमाधारी का लक्षण

सम्यग्दर्शन-शुद्धः संसार-शरीर-भोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनशुद्धः) दोषरहित सम्यग्दर्शन का धारक **(संसार-शरीरभोग-निर्विण्णः)** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **(पञ्चगुरु-चरण-शरणः)** पञ्चपरमेष्ठियों के चरणों की शरण को प्राप्त **(तत्त्वपथगृह्यः)** यथार्थ जैनमार्ग को ग्रहण करने वाला, अष्टमूलगुणों का धारक **(दर्शनिकः)** दार्शनिक श्रावक है।

दूसरी व्रत प्रतिमाधारी का लक्षण

निरतिक्रमण-मणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(निःशल्यः)** शल्य रहित होता हुआ **(निरतिक्रमणं)** अतिचार रहित **(अणुव्रतपञ्चकम् अपि)** पाँचों अणुव्रतों को **(च अपि)** और **(शीलसप्तकम्)** तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतरूप सात शीलव्रतों को

(धारयते) धारण करता है **(असौ)** वह **(व्रतिनां)** गणधरदेवादिक महाव्रतियों के मत में **(व्रतिकः)** व्रती श्रावक **(मतः)** माना जाता है।

तीसरी सामायिक प्रतिमाधारी का लक्षण

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

अन्वयार्थ—जो **(चतुरावर्त्तत्रितयः)** चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त करता है **(चतुःप्रणामः)** चार प्रणाम करता है **(स्थितः)** कायोत्सर्ग से खड़ा होता है **(यथाजातः)** बाहरी, भीतरी चिन्ताओं से दूर, यथायोग्य वस्त्रादि का त्यागी होता है **(द्विनिषद्यः)** सामायिक के आदि और अन्त में दो बार बैठकर नमस्कार करता है **(त्रियोगशुद्धः)** मन, वचन और काय इन तीनों योगों से शुद्ध और **(त्रिसन्ध्यं)** तीनों संध्याओं में **(अभिवन्दी)** वन्दना करता है **[सः]** वह **(सामयिकः)** सामायिक प्रतिमाधारी है।

चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी का लक्षण

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अन्वयार्थ—**[यः]** जो **(मासे मासे)** प्रत्येक महीने में **(चतुर्षु)** चारों **(अपि)** ही **(पर्वदिनेषु)** पर्व के दिनों में **(स्वशक्तिं)** अपनी शक्ति को **(अनिगुह्य)** नहीं छिपाकर **(प्रोषधनियमविधायी)** प्रोषध सम्बन्धी नियम को धारण करने वाला **(प्रणि**(ण)**धिपरः)** एकाग्रता में तत्पर **(प्रोषधानशनः)** प्रोषधपूर्वक अनशन/उपवास करने वाला प्रोषध प्रतिमाधारी है।

पाँचवीं सचित्तत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

मूल-फल-शाक-शाखा - करीर-कन्दप्रसून-बीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अन्वयार्थ—**(यः)** जो **(दयामूर्तिः)** दयालु **(आमानि)** अपक्व/कच्चे/हरे **(मूल-फल-शाक -शाखा-करीर-कन्दप्रसून-बीजानि)** मूल/जड़, फल, शाक, शाखा/कोंपल, करीर/वाँस की गाँठ का कौर/अंकुर, हल्दी सौंठ आदि जमीकंद, फूल और बीजों को **(न अत्ति)** नहीं खाता है **(सः)** वह **(अयं)** यह **(सचित्त-विरतः)** सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है।

छठवीं रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः॥१४२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सत्त्वेषु)** प्राणियों पर **(अनुकम्पमानमनाः)** दया से सहित चित्त वाला **(विभावर्याम्)** रात्रि में **(अन्नं)** अन्न को **(पानं)** पीने योग्य वस्तु को **(खाद्यं)** खाने योग्य वस्तु लड्डू आदि को और **(लेह्यं)** चाटने योग्य रबड़ी आदि को **(न अश्नाति)** नहीं खाता है **(सः च)** वह **(रात्रिभुक्ति-विरतः)** रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी का लक्षण

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(मलबीजम्)** शुक्रशोणितरूप मल से उत्पन्न **(मल-योनिम्)** मल की उत्पत्ति का स्थान **(गलन्मलम्)** झरते हुए मल वाले अर्थात् जिससे मूत्रादि मल झर रहा है **(पूतिगन्धि)** दुर्गन्धयुक्त और **(बीभत्सम्)** घिनौने ग्लानियुक्त **(अङ्गं)** शरीर को **(पश्यन्)** देखता हुआ **(अनङ्गात्)** कामवासना से **(विरमति)** विरत होता है **(सः)** वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी **(ब्रह्मचारी)** ब्रह्मचारी है।

आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतो-र्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(प्राणातिपातहेतोः)** प्राणघात के कारणभूत **(सेवाकृषि-वाणिज्य-प्रमुखात् आरम्भतः)** नौकरी, खेती, व्यापार आदि मुख्य आरम्भ से **(व्युपारमति)** विरक्त होता है **(असौ)** वह **(आरम्भ-विनिवृत्तः)** आरम्भ से रहित आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है।

नवमी परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(बाह्येषु दशसु वस्तुषु)** बाहरी दश वस्तुओं/परिग्रहों में **(ममत्वम्)** ममता को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(निर्ममत्वरतः)** ममता रहित भाव में

लीन/निर्मोही होता हुआ **(स्वस्थः)** आत्मस्वरूप में स्थित और **(संतोषपरः)** संतोष में तत्पर **(परिचित्तपरिग्रहात्)** सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से **(विरतः)** विरक्त **(सः)** वह परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी है।

दसवीं अनुमतित्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐ(वै)हिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से **(आरम्भे)** कृषि आदि आरम्भ में **(वा)** अथवा **(परिग्रहे**(षु)) परिग्रहों में **(वा)** अथवा **(ऐहिकेषु कर्मसु)** इसलोक सम्बन्धी कार्यों में **(यस्य)** जिसकी **(अनुमतिः)** अनुमोदना **(न)** नहीं **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(समधीः)** समान बुद्धि का धारक श्रावक **(अनुमतिविरतः)** अनुमतित्याग प्रतिमाधारी **(मन्तव्यः)** मानना चाहिए।

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

अन्वयार्थ—(गृहतो) घर से **(मुनिवनं)** मुनियों के आश्रम को **(इत्वा)** जाकर **(गुरूपकण्ठे)** गुरु के पास **(व्रतानि)** व्रतों को **(परिगृह्य)** ग्रहण करके **(भैक्ष्याशनः)** बिना याचना किए भिक्षा से भोजन करने वाला **(तपस्यन्)** तपश्चरण करता हुआ **(चेलखण्डधरः)** वस्त्र के एक खण्ड यानि लंगोट या दो खण्डों यानि लंगोट व दुपट्टा को धारण करने वाला **(उत्कृष्टः)** उत्कृष्ट श्रावक/उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी है।

श्रेष्ठ ज्ञाता का लक्षण

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अन्वयार्थ—(पापम्) पाप **(जीवस्य)** जीव का **(अरातिः)** शत्रु है **(च)** और **(धर्मः)** धर्म/पुण्य **(बंधु)** हितकारी मित्र है **(इति)** इस प्रकार **(निश्चिन्वन्)** निश्चय करता हुआ **(यदि)** अगर **(समयम्)** आगम को **(जानीते)** जानता है **[तर्हि]** तो वह **(ध्रुवं)** निश्चय से **(श्रेयो-ज्ञाता)** श्रेष्ठ ज्ञाता/कल्याण का ज्ञाता **(भवति)** होता है।

रत्नत्रय धर्म का फल

(उपजाति छन्द)

येन स्वयं वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥१४९॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस भव्य ने **(स्वयं)** अपनी आत्मा को **(वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं)** निर्दोष सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमय रत्नों की पेटीरूप **(नीतः)** प्राप्त कराया है **(तं)** उसे **(त्रिषु विष्टपेषु)** तीनों लोकों में **(पतीच्छयेव)** पति की इच्छा से ही मानो **(सर्वार्थसिद्धिः)** धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि **(आयाति)** प्राप्त होती है।

अन्तिम मंगल

(मालिनी छन्द)

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

अन्वयार्थ—(जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाली **(सुखभूमिः)** सुख की भूमिस्वरूप **(दृष्टिलक्ष्मीः)** सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी/सम्पदा **(माम्)** मुझे उस तरह **(सुखयतु)** सुखी करे **(इव)** जिस तरह कि **(सुखभूमिः कामिनी कामिनम्)** सुख की भूमिस्वरूप सुन्दर स्त्री कामीपुरुष को सुखी करती है **(शुद्धशीला)** निर्दोष शील—तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(भुनक्तु)** रक्षित करे **(इव)** जिस तरह कि **(शुद्धशीला जननी सुतम्)** निर्दोष शील—पातिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली माता पुत्र को रक्षित करती है और **(गुणभूषा)** मूलगुणरूपी अलंकार से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(सम्पुनीतात्)** पवित्र करे **(इव)** जिस तरह कि **(गुणभूषा-कन्यका कुलम्)** गुणों से सुशोभित कन्या कुल को पवित्र करती है।

❑ ❑ ❑

बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्

ईसा की द्वितीय शताब्दी में आचार्य समन्तभद्रस्वामी द्वारा ऋषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति इस ग्रन्थ में की गई है। इस स्तोत्र में भक्ति रस में गंभीर अनुभूति एवं तर्कणा युक्त चिन्तन निबद्ध है इसका अपर नाम चतुर्विंशति स्तोत्र भी है। वंशस्थ आदि १३ प्रकार के छन्दों में कुल १४३ श्लोकों की रचना की गई है। इस स्तोत्र काव्य द्वारा एकान्त तत्त्व की समीक्षा पूर्वक स्याद्वाद से अनेकान्तामृत तत्त्व की स्थापना की है।

श्री वृषभजिनस्तवनम्

भगवान् के स्वयंभू नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥

अन्वयार्थ–(स्वयम्भुवा) जो स्वयंभू थे–दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर अनन्तचतुष्टय स्वरूप हुए थे, **(भूतहितेन)** प्राणियों के लिए हितकारक थे, **(समञ्जसज्ञान-विभूति-चक्षुषा)** सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और **(गुणोत्करैः करैः)** स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त वचनों के द्वारा **(तमः)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप एवं अज्ञानरूप अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(येन)** जो **(भूतले)** पृथ्वीतल पर **(गुणोत्करैः करैः)** अर्थ-प्रकाशकत्व आदि गुणों से युक्त किरणों के द्वारा **(तमः)** अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(क्षपाकरेणेव)** चन्द्रमा के समान **(विराजितम्)** सुशोभित होते थे।

गृहस्थ अवस्था में ऐसे होते हुए, भगवान् वैराग्य को प्राप्त हुए, यह कहते हैं–

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यः प्रजापतिः 'बभूव') जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने **(प्रथमं)** कर्मभूमि के प्रारम्भ में **(प्रबुद्धतत्त्वः)** मति, श्रुत

और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर **(जिजीविषूः प्रजाः)** जीवित रहने की इच्छुक जनता को **(कृष्यादिषु कर्मसु)** खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में **(शशास)** शिक्षित किया था और **(पुनः)** फिर **(प्रबुद्धतत्त्वः)** हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर **(अद्भुतोदयः)** इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए, जो **(ममत्वतः)** ममता भाव से–परिग्रह विषयक आसक्ति से **(निर्विविदे)** विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो **(विदांवरः)** श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे।

विरक्त होते हुए भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(मुमुक्षुः)** मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार-समुद्र से पार उतरने के इच्छुक थे, **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय थे, **(प्रभुः)** सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, **(सहिष्णुः)** परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे, **(अच्युतः)** गृहीत व्रत से अविचलित रहने वाले थे, **(इक्ष्वाकु- कुलादिः)** इक्ष्वाकु कुल अथवा समस्त राजवंशों में आदि पुरुष थे और जिन्होंने **(सतीम्)** किसी अन्य राजा के द्वारा अभुक्त होने से पतिव्रता **(इमाम्)** इस **(सागर-वारिवाससम्)** समुद्र के जलरूप वस्त्र को धारण करने वाली–समुद्रान्त, **(वसुधावधूम्)** धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वीरूपी स्त्री को **(सतीं वधूमिव)** पतिव्रता स्त्री के समान **(विहाय)** छोड़कर **(प्रवव्राज)** दीक्षा धारण की थी।

दीक्षा लेकर भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥४॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(स्वदोषमूलम्)** अपने काम-क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण–चार घातिया कर्मों को **(स्वसमाधितेजसा)** परम शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा **(निर्दयभस्मसात्क्रियां निनाय)** निर्दयतापूर्वक भस्मभाव को प्राप्त कराया है–समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने **(अर्थिने जगते)** तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणिसमूह के लिए **(अञ्जसा)** वास्तविक **(तत्त्वं)** जीवादि तत्त्वों का स्वरूप **(जगाद)** कहा **(च)** और अन्त में जो **(ब्रह्मपदामृतेश्वरः)** मोक्षस्थान के अविनाशी-अनन्तसुख के स्वामी **(बभूव)**

हुए।

यहाँ मीमांसक कहता है कि चूँकि भगवान् को अतीन्द्रिय-ज्ञान का अभाव होने से समस्त पदार्थों का ज्ञान संभव नहीं है, अतः तत्त्वों का यथार्थ प्रतिपादन कैसे हो सकता है? यह कहते हैं–

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो जिनो जितक्षुल्लक, वादिशासनः॥५॥

अन्वयार्थ–(विश्वचक्षुः) जिनका केवलज्ञानरूप चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो **(सताम्)** इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा **(अर्चितः)** पूजित हैं, **(समग्र-विद्यात्मवपुः)** जीवाजीवादि समस्त पदार्थों को विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है, **(निरञ्जनः)** ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं, **(नाभिनन्दनः)** चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, **(जिनः)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और **(जितक्षुल्लक वादिशासनः)** जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन को जीत लिया है अथवा **(अजितक्षुल्लक-वादिशासनः)** जिनका शासन क्षुद्रवादियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है। **(सः)** वे **(वृषभः)** धर्म से सुशोभित रहने वाले अथवा धर्म को सुशोभित करने वाले वृषभनाथ भगवान् **(मम)** मेरे **(चेतः)** चित्त को **(पुनातु)** पवित्र करें–रागादि विकारी भावों से रहित कर, निर्मल बनावें।

श्री अजितजिनस्तवनम्

भगवान् के अजित नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(त्रिदिवच्युतस्य) स्वर्ग से अवतीर्ण हुए **(यस्य)** जिनके **(प्रभावात्)** प्रभाव से उनका **(बन्धुवर्गः)** कुटुम्बि–समूह **(क्रीडास्वपि)** बालक्रीड़ाओं में भी **(क्षीवमुखारविन्दः)** हर्षोन्मत्त मुखकमल से युक्त हो जाता था तथा जिनके प्रभाव से वह बन्धुवर्ग **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अजेय-शक्तिः)** अजेय शक्ति का धारक रहता था, इसीलिए उस बन्धुवर्ग ने **(यस्य)** जिनका **(अजितः)** अजित **(इति)** यह **(अवन्ध्यम्)** सार्थक **(नाम)** नाम **(चकार)** रखा था।

इसलिए इष्टसिद्धि के अर्थ भव्यजन अब भी उनके नाम का उच्चारण करते हैं, यह कहते हैं–

अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥२॥

अन्वयार्थ–(अजितशासनस्य) परवादियों के द्वारा अविजित अनेकान्तमत से युक्त तथा **(सतां प्रणेतुः)** सत्पुरुषों के प्रधान नायक **(यस्य)** जिन अजितनाथ भगवान् का **(परं पवित्रं)** अत्यन्त पवित्र **(नाम)** नाम **(अद्यापि)** आज भी **(लोके)** लोक में **(स्वसिद्धिकामेन)** अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक **(जनेन)** जन समूह के द्वारा **(प्रतिमङ्गलार्थम्)** प्रत्येक मंगल के लिए **(प्रगृह्यते)** सादर ग्रहण किया जाता है।

जिन भगवान् का नाम लिया जाता है, वे किस प्रकार प्रतिबन्धकों का क्षय करके सर्वज्ञ हुए थे ? यह कहते हैं–

यः प्रादुरासीत् प्रभुशक्तिभूम्ना भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥३॥

अन्वयार्थ–(मुक्तघनोपदेहः) ज्ञानावरणादि कर्मरूप सघन आवरण से रहित **(यः)** जो **(महामुनिः)** गणधरादि देवों में प्रधान अथवा प्रत्यक्षज्ञानी अजितनाथ भगवान् **(भव्याशयालीन-कलङ्कशान्त्यै)** भव्यजनों के हृदय में संलग्न अज्ञान अथवा उसके कारणभूत ज्ञानावरणादि कर्मरूप कलंक की शान्ति के लिए **(प्रभुशक्तिभूम्ना)** जगत् का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य विशेष अथवा प्रभुत्वशक्ति की प्रचुरता से **('तथा' प्रादुरासीत्)** उस तरह प्रकट हुए थे **(यथा)** जिस तरह कि **(मुक्तघनोपदेहः)** मेघरूप आच्छादन से मुक्त **(भास्वान्)** सूर्य **(अरविन्दाभ्युदयाय)** कमलों के विकासरूप अभ्युदय के लिए प्रकट होता है।

उत्पन्न हुए भगवान् ने क्या किया ? यह कहते हैं–

येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः ॥४॥

अन्वयार्थ–(येन) जिन अजितनाथ भगवान् के द्वारा **(प्रणीतं)** प्रकाशित **(पृथु)** अत्यन्त विस्तृत एवं **(ज्येष्ठं)** श्रेष्ठ **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म के प्रतिपादक श्रुत को **(प्राप्य)** पाकर **(जनाः)** भव्यजीव **(दुःखं)** संसार

परिभ्रमणरूप क्लेश को उस तरह **(जयन्ति)** जीत लेते हैं, जिस तरह कि **(घर्मतप्ताः)** सूर्य के आताप से पीड़ित **(गजप्रवेकाः)** बड़े-बड़े हाथी **(इव)** की तरह **(चन्दनपङ्कशीतं)** चन्दन के द्रव के समान शीतल **(गाङ्गं ह्रदं)** गङ्गा नदी के द्रह–अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

किस फल का लक्ष्य कर भगवान् ने धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति की ? यह कहते हैं–

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रु - र्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥५॥

अन्वयार्थ–(विद्याविनिर्वान्त-कषाय-दोषः) जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठानरूप विद्या के द्वारा कषायरूपी दोषों को अथवा द्रव्यक्रोधादिरूप कषाय और भावक्रोधादिरूप दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो **(ब्रह्मनिष्ठः)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं, **(सममित्र-शत्रुः)** जिन्हें मित्र और शत्रु समान हैं, **(लब्धात्मलक्ष्मीः)** जो आत्मा की अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और **(जितात्मा)** जिन्होंने अपने आपको जीत लिया है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं, **(सः)** वे **(अजितः भगवान्)** अन्तरंग-बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अपराजित अजितनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिए **(जिनश्रियम्)** आर्हन्त्यलक्ष्मी–अनन्तज्ञानादि विभूति **(विधत्ताम्)** प्रदान करें।

श्री शम्भवजिनस्तवनम्

भगवान् के शंभव नाम की सार्थकता बतलाते हुए कहते हैं–

त्वं शम्भवः संभवतर्षरोगैः सन्तप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै ॥१॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(त्वं शंभवः)** आपसे भव्य जीवों को सुख प्राप्त होता है, इसलिए आप 'शंभव' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। आप **(इह लोके)** इस संसार में **(संभवतर्षरोगैः)** सांसारिक भोग तृष्णा रूप रोगों से **(संतप्यमानस्य)** अतिशय पीड़ित **(जनस्य)** जन समूह के लिए **(तथा)** उस तरह **(आकस्मिक एव)** फल की अपेक्षा से रहित **(वैद्यः)** वैद्य **(आसीः)** हुए थे, **(यथा)** जिस तरह कि **(अनाथरुजाम्)** अशरण मनुष्यों के रोगों की **(प्रशान्त्यै)** शान्ति के लिए **(वैद्यः)** धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

जिस संसार के भगवान् आकस्मिक वैद्य हुए, वह कैसा है ? यह बतलाते हैं–

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम्।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्त्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥२॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(अनित्यम्)** विनश्वर **(अत्राणम्)** रक्षक रहित, **(अहंक्रियाभिः)** 'मैं' ही सब पदार्थों का कर्त्ता-धर्त्ता हूँ, इस प्रकार अहंकार-ममकार की क्रियाओं से **(प्रसक्त-मिथ्याध्यवसायदोषम्)** संलग्न मिथ्या-अभिनिवेशरूप दोष से दूषित तथा **(जन्मजरान्तकार्त्तं)** जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित **(इदं जगत्)** इस जगत् को **(त्वम्)** आपने **(निरञ्जनां)** कर्मकलङ्क से रहित मुक्तिरूप **(शान्तिं)** शान्ति को **(अजीगमः)** प्राप्त कराया है।

इसके सिवाय आपने क्या किया ? यह कहते हैं–

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥३॥

अन्वयार्थ–(हि) निश्चय से **(सौख्यं)** इन्द्रियजन्य सुख **(शत-ह्रदोन्मेषचलं)** बिजली की कौंध के समान चञ्चल है तथा **(तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः)** तृष्णारूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है **(च)** और **(तृष्णाभिवृद्धिः)** तृष्णा की चौमुखी वृद्धि **(अजस्त्रं)** निरन्तर **(तपति)** ताप उत्पन्न करती है एवं वह **(तापः)** ताप **(तत्)** जगत् को **(आयासयति)** क्लेशों की परम्परा द्वारा दुखी करता है, **(इति अवादीः)** ऐसा आपने कहा था।

आगे बन्ध मोक्ष की व्यवस्था आपके ही मत में बनती है, सुगत आदि के मत में नहीं, यह कहते हैं–

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥४॥

अन्वयार्थ–(हे नाथ) हे स्वामिन् **(बन्धश्च)** बन्ध, **(मोक्षश्च)** मोक्ष, **(तयोः हेतू च)** बन्ध और मोक्ष के हेतु **(बद्धश्च)** बद्ध आत्मा **(मुक्तश्च)** मुक्त आत्मा **(च)** और **(मुक्तेः)** मुक्ति का **(फलं)** फल.... यह सब **(स्याद्वादिनः)** अनेकान्तमत से निरूपण करने वाले **(तवैव)** आपके ही **(मते)** मत में **(युक्तं)** ठीक होता है। **(एकान्तदृष्टेः न)** एकान्तदृष्टि रखने वाले बौद्ध अथवा सांख्य आदि के मत में ठीक नहीं होता **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप ही **(शास्ता)** तत्त्वोपदेष्टा **(असि)** हैं।

आगे स्तुतिकर्त्ता अपने गर्व का परिहार करते हैं–

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥५॥

अन्वयार्थ–(हे आर्य!) गुणों अथवा गुणवानों के द्वारा सेव्य; हे शंभव जिनेन्द्र! **(पुण्यकीर्तेः)** पवित्र ख्याति, पवित्र वाणी अथवा पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त **(तव)** आपकी **(स्तुत्यां)** स्तुति में **(प्रवृत्तः)** प्रवृत्त हुआ **(शक्रः अपि)** अवधिज्ञानी और समस्त श्रुत का धारक इन्द्र भी जब **(अशक्तः)** असमर्थ रहा है, तब **(मादृशः अज्ञः किमु)** मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है? यद्यपि यह बात है **(तथापि)** तो भी **(भक्त्या)** तीव्र अनुराग द्वारा **(स्तुतपादपद्मः)** स्तुत चरणकमलों से युक्त आप **(मम)** मेरे लिए **(उच्चैः)** उत्कृष्ट **(शिवतातिम्)** यथार्थ सुख की सन्तति को **(देयाः)** प्रदान करें।

श्री अभिनन्दनजिनस्तवनम्

भगवान के अभिनन्दन नाम की सार्थकता कहते हैं–

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥१॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(गुणाभिनन्दात्)** अनन्तज्ञानादि अन्तरंग और सकल लक्ष्मी आदि बहिरंग गुणों की वृद्धि होने से **(अभिनन्दनः)** अभिनन्दन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(भवान्)** आपने **(क्षान्तिसखीं)** क्षमा रूप सखी से सहित **(दयावधूम्)** दयारूप स्त्री का **(अशिश्रियत्)** आश्रय लिया था तथा **(समाधितन्त्रः)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानरूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बनाकर **(तदुपोपपत्तये)** उसकी सिद्धि के लिए आप **(द्वयेन)** अन्तरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के **(नैर्ग्रन्थ्यगुणेन च)** निष्परिग्रहतारूप गुण से **(अयुजत्)** युक्त हुए थे।

अब दयारूप वधू को प्राप्त कर भगवान् ने क्या किया? यह कहते हैं–

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात्।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥२॥

अन्वयार्थ–(अचेतने) अचेतन शरीर में **(च)** और **(तत्कृतबन्धजेऽपि)** उस अचेतन शरीर के द्वारा किए हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख-दुःखादिक तथा स्त्री-पुत्रादिक परपदार्थों में **(ममेदम्)** यह मेरा है, मैं इसका स्वामी हूँ **(इति)** इस

प्रकार के **(आभिनिवेशिकग्रहात्)** मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से अथवा मिथ्या अभिप्राय रूप पिशाच से **(च)** तथा **(प्रभङ्गुरे)** विनश्वर शरीर आदि परपदार्थ में **(स्थावरनिश्चयेन)** स्थायित्व के निश्चय से **(क्षतं)** नष्ट हुए **(जगत्)** जगत् को **(भवान्)** आपने **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप **(अजिग्रहत्)** ग्रहण कराया था–समझाया था।

आगे आपने किस रूप से तत्त्व ग्रहण कराया ? यह कहते हैं–

क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥३॥

अन्वयार्थ–(क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः) क्षुधा-तृषादि के दुख का प्रतिकार करने से–भोजनपान ग्रहण करने से **(च)** और **(इन्द्रियार्थप्रभवाल्प-सौख्यतः)** स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से **(देहदेहिनोः)** शरीर और शरीरधारी आत्मा की **(स्थितिः)** सदा स्थिति **(न)** नहीं रहती, **(ततः)** इसलिए उनसे उनका कुछ **(गुणः)** उपकार **(नास्ति)** नहीं है। **(इत्थम्)** इस तरह **(इदम्)** इस जगत् को **(भगवान्)** भगवान् अभिनन्दन जिनेन्द्र ने **(इति)** यह परमार्थ तत्त्व **(व्यजिज्ञपत्)** बतलाया था।

परम दयालु भगवान् ने जगत् के उपकार के लिए यह कहा, यह बतलाते हैं–

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित् कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥४॥

अन्वयार्थ–(जनः) मनुष्य **(अतिलोलः अपि 'सन्')** अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी **(अनुबन्धदोषतः)** आसक्ति रूप दोष से **(भयात्)** राजा आदि के भय के कारण **(इह)** इस संसार में **(अकार्येषु)** परस्त्री सेवन आदि अकरणीय कार्यों में **(न प्रवर्तते)** प्रवृत्त नहीं होता है फिर **(इहापि अमुत्रापि)** इहलोक और परलोक दोनों ही जगह **(अनुबन्धदोषवित्)** आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य **(सुखे)** विषय सुख में **(कथं संसजति)** कैसे आसक्त होता है? यह आश्चर्य की बात है। **(इति च अब्रवीत्)** हे अभिनन्दन जिनेन्द्र! जगत् के जीवों को आपने यह भी बतलाया था।

विषयासक्ति रूप अनुबन्ध में और भी दोष दिखलाते हुए कहते हैं–

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत् तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः॥५॥

अन्वयार्थ—(सः अनुबन्धः) वह आसक्तता **(च)** और आसक्तता से उत्पन्न होने वाली **(तृषोऽभिवृद्धिः)** उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही **(अस्य जनस्य)** इस विषयासक्त मनुष्य के लिए **(तापकृत्)** संताप उत्पन्न करने वाली है। **(सुखतः)** प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से **(न च स्थितिः)** जीव की सुख से स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता **(इति)** इस तरह **(प्रभो!)** हे स्वामिन् **(यतः)** चूँकि **(मतं)** आपका मत **(लोकहितं)** लोककल्याणकारी है, **(ततः)** इसलिए **(भवानेव)** आप ही **(सतां)** विवेक-शाली सत्पुरुषों के **(गतिः)** शरण **(मतः)** माने गये हैं।

श्री सुमतिजिनस्तवनम्

भगवान् 'सुमति' इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(मुनिः)** प्रत्यक्षज्ञानी हैं तथा **(सुमतिः अन्वर्थसंज्ञः)** सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं—उत्तम बुद्धि से सहित होने के कारण आपका 'सुमति' नाम सार्थक है, **(येन)** क्योंकि आपने **(सुयुक्तिनीतं)** उत्तम युक्तियों से युक्त **(तत्त्वं)** तत्त्व **(स्वयं मतं)** स्वीकृत किया है **(च)** और **(यतः)** जिस कारण से **(शेषेषु मतेषु)** आपके मत से शेष अन्य मतों में **(सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः)** सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों की तत्त्वसिद्धि **(नास्ति)** नहीं है।

आगे तत्त्व की सुयुक्तियुक्तता दिखलाते हुए कहते हैं—

अनेक-मेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तदेव तत्त्वं) वही सुयुक्ति को प्राप्त तत्त्व **(अनेकं च एकं)** अनेक तथा एक रूप है। **(हि)** निश्चय से **(इदं भेदान्वयज्ञानं)** अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला यह अन्वय ज्ञान **(सत्यम्)** यथार्थ है। इनमें से किसी एक को **(उपचारः)** उपचाररूप कल्पित मानना **(मृषा)** मिथ्या है, क्योंकि **(अन्यतरस्य)** दो में से किसी एक

का **(लोपे)** लोप–अभाव होने पर **(तच्छेषलोपोऽपि)** उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और **(ततः)** दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व **(अनुपाख्यम्)** निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

इस प्रकार जीवादि पदार्थों की द्रव्य और पर्याय रूपता दिखलाकर, अब भावा-भावात्मकता दिखलाते हैं–

सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥३॥

अन्वयार्थ–(सतः) स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा सद्रूप जीवादि पदार्थ के **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा **(असत्त्वशक्तिः)** असद्रूपता है। जैसे कि **(पुष्पं)** फूल **(तरुषु)** वृक्षों पर **(प्रसिद्धं)** प्रसिद्ध है और **(खे)** आकाश में **(नास्ति)** नहीं है। यदि तत्त्व को **(सर्वस्वभावच्युतं)** सत्त्व और असत्त्व दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह **(अप्रमाणं)** प्रमाण रहित हो जायेगा। हे भगवन्! **(तव दृष्टितः अन्यत्)** तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन **(स्ववाग् विरुद्धं)** स्ववाणी से विरुद्ध हैं अर्थात् स्ववचनबाधित हैं।

इस प्रकार जीवाजीवादि तत्त्वों की युगपत् सदसद्रूपता दिखलाकर, अब प्रतिवादी के मत में दूषण देते हुए क्रम से सदसद्रूपता दिखलाते हैं–

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारक - मत्र - युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥४॥

अन्वयार्थ–(सर्वथा नित्यं) सब प्रकार से नित्य वस्तु **(न उदेति न अपैति)** न उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है **(च न)** और न **(अत्र)** इस मान्यता में **(क्रियाकारकं युक्तम्)** क्रियाकारक भाव ही संगत होता है, क्योंकि **(असतः)** असत्–अविद्यमान पदार्थ का **(नैव जन्म)** जन्म नहीं होता और **(सतो न नाशः)** सत्–विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाये कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है? यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि **(दीपः)** दीपक **(तमः पुद्गलभावतः अस्ति)** अन्धकाररूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

अब जीवादि तत्त्वों में नित्यानित्यात्मकपने का निरूपण करते हुए कहते हैं–

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥५॥

अन्वयार्थ—(विधिः) अस्तित्व **(च)** और **(निषेधः)** नास्तित्व दोनों ही **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(इष्टौ)** इष्ट हैं। **(विवक्षया)** वक्ता की इच्छा से उनमें **(मुख्यगुण-व्यवस्था)** मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। **(इति)** इस तरह **(इयं)** यह **(प्रणीतिः)** तत्त्व निरूपण की पद्धति **(सुमतेः तव)** आप सुमतिनाथ स्वामी की है। **(नाथ)** हे स्वामिन्! **('त्वां' स्तुवतः 'मे')** आपकी स्तुति करते हुए मुझे **(मतिप्रवेकः)** मति का उत्कर्ष **(अस्तु)** प्राप्त होवे।

श्रीपद्मप्रभजिनस्तवनम्

भगवान् के पद्मप्रभ इस नाम की सार्थकता दिखलाते हैं—

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः॥१॥

अन्वयार्थ—(पद्मपलाशलेश्यः) जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का था तथा **(पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः)** जिनकी आत्मस्वरूप निर्मल मूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग लक्ष्मी से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीररूप मूर्ति निःस्वेदत्व आदि-पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिंगित थी ऐसे **(पद्मप्रभः)** पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र! **(भवान्)** आप **(भव्यपयोरुहाणां)** भव्यजीवरूप कमलों के हितोपदेशरूप विकास के लिए, उस तरह **(बभौ)** सुशोभित हुए थे, **(पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः)** जिस तरह कि कमल समूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।

आगे भगवान् के हितोपदेश की प्रामाणिकता बतलाते हैं—

बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥२॥

अन्वयार्थ—हे पद्मप्रभजिनेन्द्र! **(भवान्)** आपने **(प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः पुरस्तात्)** मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरहन्त अवस्था में **(पद्माम्)** अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी **(च)** और **(सरस्वतीं च)** दिव्यवाणी—दिव्यध्वनि को **(बभार)** धारण किया था अथवा **(समग्रशोभां)** समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप विभूति और समवसरणादि रूप समस्त शोभा से युक्त **(सरस्वतीमेव)**

दिव्यवाणी को ही धारण किया था। पीछे **(विमुक्तः सन्)** समस्त कर्ममल से रहित होकर **(ज्वलितां)** देदीप्यमान–सदा उपयोग रूप **(सर्वज्ञलक्ष्मीं)** सर्वज्ञतारूप लक्ष्मी को धारण किया था।

आगे आपके शरीर की कान्ति के विस्तार ने प्रतिमुक्ति लक्ष्मी के पूर्व क्या किया ? यह कहते हैं–

शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्क - रश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(बालार्क-रश्मिच्छविः) प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कान्ति वाले **(ते प्रभोः)** आप स्वामी के **(शरीररश्मिप्रसरः)** शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने **(नरामराकीर्ण-सभां)** मनुष्य और देवों से व्याप्त समवसरण सभा को **(पद्माभमणेः शैलस्य प्रभावत् स्वसानुमिव आलि-लेप)** उस तरह आलिप्त कर रखा था, जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्व भाग को आलिप्त कर रखती है।

आगे इस प्रकार के भगवान् क्या एक ही स्थान पर बैठकर रह गये अथवा विहार किया ? यह कहते हैं–

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥४॥

अन्वयार्थ–हे जिनेन्द्र! **(पातितमारदर्पः)** कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले **(त्वम्)** आपने **(सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः)** सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने **(पादाम्बुजैः)** चरण कमलों के द्वारा **(नभस्तलं)** आकाश तल को **(पल्लवयन्निव)** पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए **(भूमौ)** पृथिवी पर स्थित **(प्रजानां विभूत्यै)** प्रजाजनों की विभूति के लिए **(विजहर्थ)** विहार किया था।

अब कवि अपनी उद्धतता का परिहार करते हुए कहते हैं–

गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्त्रं नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुतातिभक्ति-र्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(ऋषेः)** समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप **(तव)** आपके **(गुणाम्बुधेः)** गुणरूप सागर की **(विप्रुषमपि)** एक बूँद की भी **(अजस्त्रम्)** निरन्तर **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिए जब **(आखण्डलः)** इन्द्र **(प्रागेव)** पहले ही **(अलं न)** समर्थ नहीं हो सका है, तब **(मादृक्)** मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य **(किम् उत)** कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

(अतिभक्तिः) यह तीव्र भक्ति ही **(मां बालं)** मुझ अज्ञानी से **(इत्थं)** इस तरह **(इदं)** इस स्तवन को **(आलापयति)** कहला रही है।

श्री सुपार्श्व-जिनस्तवनम्

आगे सच्चे स्वास्थ्य का लक्षण कहते हुए कहते हैं–

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान्सुपार्श्वः ॥१॥

अन्वयार्थ–(यत् आत्यन्तिकं स्वास्थ्यम्) जो अविनाशी स्वरूपलीनता है **(एष)** यही **(पुंसां)** जीवात्माओं का **(स्वार्थः)** निजी प्रयोजन है, **(परिभङ्गुरात्मा)** क्षणभंगुर **(भोगः)** भोग **(स्वार्थः न)** निजी प्रयोजन नहीं है। **(तृषः)** उत्तरोत्तर भोगाकांक्षा की **(अनुषङ्गात्)** वृद्धि से **(न च तापशान्तिः)** ताप की शान्ति नहीं होती है, **(इति इदम्)** इस प्रकार यह विवेक **(भगवान् सुपार्श्वः)** विशिष्ट ज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने **(आख्यत्)** कहा है।

भगवान् ने न केवल उक्त सुखादि का उपदेश दिया, किन्तु शरीर के उपदेश का भी क्रम रखा है, यह कहते हैं–

अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(जङ्गमनेययन्त्रं)** गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र स्वयं **(अजङ्गमं)** गति रहित होता है, **(तथा)** उसी तरह **(जीवधृतं)** जीव के द्वारा धारण किया हुआ **(शरीरं)** शरीर स्वयं (अजङ्गमं) गति रहित है–जड़ है। साथ ही यह शरीर **(बीभत्सु)** घृणित **(पूति)** दुर्गन्ध से युक्त, **(क्षयि)** विनश्वर **(च)** और **(तापकं)** संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए **(अत्र)** इस शरीर में **(स्नेहः)** अनुराग करना **(वृथा)** व्यर्थ है। **(इति)** यह **(हितं)** हितकारक वचन **(त्वम्)** हे सुपार्श्व जिन! आपने **(आख्यः)** कहा है।

यदि भगवान् ने हित का उपदेश दिया था तो उनके वचन सुनकर सभी लोग शरीरादि से विरक्त होकर हित के मार्ग में क्यों नहीं लगे? यह कहते हैं–

अलङ्घ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३॥

अन्वयार्थ–(हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा) शुभ-अशुभ कर्म अथवा बाह्य

और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिंग–ज्ञापक है, ऐसी **(इयं)** यह **(भवितव्यता)** भवितव्यता–होनहार **(अलङ्घ्य-शक्तिः)** अलङ्घ्यशक्ति है–किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला **(अहंक्रियार्त्तः)** अहंकार से पीड़ित हुआ **(जन्तुः)** संसारी प्राणी **(संहत्यकार्येषु)** अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख-दुखादि कार्यों में **(अनीश्वरः)** असमर्थ है। हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! आपने **(इति)** यह **(साधु)** ठीक ही **(अवादीः)** कहा है।

आगे यही दिखलाते हुए कहते हैं–

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥४॥

अन्वयार्थ–यह जीव **(मृत्योः)** मरण से **(बिभेति)** डरता है परन्तु **(ततः)** उससे **(मोक्षः)** छुटकारा **(न अस्ति)** नहीं है। **(नित्यं)** सदा **(शिवं)** कल्याण अथवा निर्वाण की **(वाञ्छति)** इच्छा करता है परन्तु **(अस्य लाभः न)** इसकी प्राप्ति नहीं होती। **(तथापि)** फिर भी **(भयकाम-वश्यः)** भय और काम के वशीभूत हुआ **(बालः)** अज्ञानी प्राणी **(स्वयं)** स्वयं ही **(वृथा)** निष्प्रयोजन **(तप्यते)** दुखी होता है। हे भगवन् **(इति)** यह आपने **(अवादीः)** कहा है।

यहाँ कोई कहता है कि हेयोपादेय तत्त्व का ठीक-ठीक ज्ञान होने पर ही उनका उपदेश प्रामाणिकता को प्राप्त होता है-

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥५॥

अन्वयार्थ–**(भवान्)** आप **(सर्वस्य तत्त्वस्य)** समस्त जीवादि पदार्थों के **(प्रमाता)** संशयादि रहित ज्ञाता हैं, **(बालस्य)** सन्तान को **(मातेव)** माता के समान अज्ञानी जनों को **(हितानुशास्ता)** हित का उपदेश देने वाले हैं और **(गुणावलोकस्य जनस्य)** सम्यग्दर्शनादि गुणों का अन्वेषण करने वाले भव्य समूह के **(नेता)** सन्मार्ग दर्शक हैं अतः **(अद्य)** आज **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी; हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! (त्वम्) आप **(भक्त्या)** भक्ति पूर्वक **(परिणूयसे)** मन, वचन, काय से स्तुत हो रहे हैं–मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

श्री चन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

भगवान् के चन्द्रप्रभ नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥१॥

अन्वयार्थ–मैं **(चन्द्रमरीचिगौरं)** चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण, **(जगति)** संसार में **(द्वितीयं चन्द्रमिव कान्तं)** दूसरे चन्द्रमा के समान सुन्दर, **(महतां)** इन्द्र आदि बड़े-बड़े जनों के **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय, **(ऋषीन्द्रं)** गणधरादि ऋषियों के स्वामी, **(जिनं)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले और **(जितस्वान्तकषायबन्धम्)** अपने विकारी भाव स्वरूप कषाय के बन्धन को जीतने वाले, **(चन्द्रप्रभं)** चन्द्रमा के समान कान्ति के धारक चन्द्रप्रभ नामक अष्टम तीर्थंकर को **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

चन्द्रप्रभ भगवान् की विशेषता बतलाते हुए कहते हैं–

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिनके **(अङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं)** शरीर सम्बन्धी दिव्यप्रभा-मण्डल से विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(बाह्यं)** बाह्य अन्धकार **(च)** और **(ध्यान-प्रदीपातिशयेन)** शुक्लध्यानरूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से **(भिन्नं)** विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(मानसं)** मानसिक अज्ञानान्धकार **(तमोरेः)** सूर्य की **(रश्मिभिन्नं)** किरणों से विदारित **(तम इव)** अन्धकार के समान **(ननाश)** नष्ट हो गया था।

अब इस प्रकार के भगवान् के वचन सुनकर प्रतिवादी मद रहित हो गये, यह कहते हैं–

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(केसरिणः)** सिंह की **(निनादैः)** गर्जनाओं से **(मदार्द्रगण्डाः)** मद से गीले गण्डस्थलों के धारक **(गजाः)** हाथी **(विमदाः)** मद से रहित हो जाते हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(यस्य)** जिनके **(वाक्सिंहनादैः)** वचन रूप सिंहनादों के द्वारा **(स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ताः)** अपने मत–पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले **(प्रवादिनः)** प्रवादीजन **(विमदाः)** गर्व रहित **(बभूवुः)** हो जाते थे।

भगवान् फिर कैसे हैं ? यह बतलाते हैं–

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समन्तदुःखक्षयशासनश्च ॥४॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(सर्वलोके)** समस्त संसार में **(परमेष्ठितायाः)** परमाप्तपना के **(पदं)** स्थान **(बभूव)** थे, **(अद्भुत-कर्मतेजाः)** तीव्र तपश्चरणरूप कार्य से जिनका तेज अद्भुत–अचिन्त्य था अथवा समस्त प्राणिसमूह को प्रतिबोधित करने रूप कार्य में जिनका केवलज्ञान रूप तेज आश्चर्यकारक था, **(अनन्त-धामाक्षरविश्वचक्षुः)** अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था, **(च)** और **(समन्त-दुःखक्षयशासनः)** जिनका शासन चतुर्गति के दुखों का क्षय करने वाला था।

चन्द्रप्रभ भगवान् फिर कैसे हैं ? यह बतलाते हैं–

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥५॥

अन्वयार्थ–जो **(भव्यकुमुद्वतीनां चन्द्रमाः)** भव्यजीवरूप कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा हैं, **(विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः)** जिनका रागादि दोष रूप मेघकलंक का आवरण नष्ट हो गया है, **(व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूखमालः)** जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्यायरूप किरणों की माला से युक्त हैं तथा **(पवित्रः)** कर्ममल से रहित होने के कारण जो अत्यन्त विशुद्ध हैं, **(सः भगवान्)** वे चन्द्रप्रभ भगवान् **(मे)** मेरे **(मनः)** मन को **(पूयात्)** पवित्र करें।

श्री सुविधिजिनस्तवनम्

आगे सुविधि जिनेन्द्र ने जो उपदेश दिया है उसे दूसरे नहीं प्राप्त कर सके हैं, यह कहते हैं–

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥१॥

अन्वयार्थ–(सुविधे) हे सुविधिनाथ भगवन्! **(त्वया)** आपके द्वारा **(स्वधाम्ना)** अपने ज्ञानरूप तेज से **(प्रणीतं)** प्रतिपादित **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थ **(एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि)** एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है,

(प्रमाण-सिद्धं) प्रत्यक्षादि-प्रमाणों से सिद्ध है तथा **(तदतत्स्वभावम्)** तत् और अतत् स्वभाव को लिए है अर्थात् विधि निषेध रूप है। हे भगवन् **(एतत्)** यह तत्त्व **(त्वदन्यैः)** आपसे भिन्न सुगत आदि के द्वारा **(समालीढपदं न)** अनुभूत स्थान वाला नहीं है–सुगतादि के द्वारा ऐसा तत्त्व प्रतिपादित नहीं हो सका है।

इस प्रकार तत्त्व की विधि-निषेधकता को युक्ति द्वारा सिद्ध करते हैं–

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात् तथा-प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥२॥

अन्वयार्थ–हे सुविधिजिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(तत्)** वह तत्त्व **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव च स्यात्)** तद्रूप ही है **(च)** और **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव न स्यात्)** तद्रूप नहीं है, क्योंकि **(तथा-प्रतीतेः)** उस प्रकार की प्रतीति होती है। **(विधेः)** विधि **(च)** और **(निषेधस्य)** निषेध में **(अत्यन्तं)** सर्वथा **(न अन्यत्वम्)** न भिन्नता है **(च)** और **(अनन्यता)** न अभिन्नता है, क्योंकि ऐसा मानने से **(शून्य-दोषात्)** शून्यता का दोष आता है।

अब पदार्थ की नित्यानित्यात्मकता दिखलाते हैं–

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते-र्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(इदं तदेव)** यह वही है **(इति)** इस प्रकार **(प्रतीतेः)** प्रतीति होने से तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है और **(अन्यत्प्रतिपत्ति-सिद्धेः)** यह अन्य है, इस प्रकार प्रतीति होने से **(नित्यं न)** नित्य नहीं है तथा **(ते)** आपके मत में **(बहिरन्तरङ्गनिमित्त-नैमित्तिकयोगतः)** बहिरंग-अन्तरंग कारण और कार्य के योग से **(तद्)** वह नित्यानित्यात्मक तत्त्व **(विरुद्धं न)** विरुद्ध भी नहीं है।

आगे आगम से भी वस्तु की अनेकान्तात्मकता दिखलाते हैं–

अनेक-मेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षेऽनियमेऽपवादः ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(पदस्य)** सुबन्त-तिङन्त रूप शब्द का **(वाच्यं)** अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय **(प्रकृत्या)** स्वभाव से ही **(वृक्षा इति प्रत्ययवत्)** वृक्ष इस ज्ञान की तरह **(अनेकं)** अनेक **(च)** और **(एकं)** एक दोनों रूप होता है। **(आकाङ्क्षिणः)** विरोधी धर्म के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के

(स्यात् इति निपातः) कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द **(गुणानपेक्षे)** गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले **(अनियमे)** सर्वथा एकान्तरूप कथन में **(वै)** निश्चय से **(अपवादः)** बाधक है।

इस प्रकार पद के अभिधेय का स्वरूप कहकर, अब वाक्य के अभिधेय का स्वरूप कहते हैं–

गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(जिनस्य)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले **(ते)** आपका **(इदम्)** यह जो **(गुणप्रधानार्थम्)** गौण और प्रधान अर्थ से युक्त **(वाक्यं)** वाक्य है। **(तद्)** वह **(हि)** निश्चय से **(द्विषताम्)** द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिए **(अपथ्यं)** अनिष्ट है, **(ततः)** इसलिए **(साधोः)** समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए प्रयत्नशील **(तव)** आपके **(पादपद्मं)** चरण-कमल **(जगदीश्वराणां)** तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय हैं।

श्री शीतलजिनस्तवनम्

अब भगवान् के वचनों की शीतलता का वर्णन करते हैं–

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥१॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(मुनेः ते)** चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की **(शमाम्बुगर्भाः)** शान्तिरूप जल से मिश्रित **(अनघवाक्य-रश्मयः)** निर्दोष वचनरूप किरणें **(विपश्चितां)** हेयोपादेय तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के लिए **(यथा)** जिस प्रकार **(शिशिराः)** शीतल हैं–संसार संताप को नष्ट कर शान्ति पहुँचाने वाली हैं तथा उस प्रकार **(चन्दन-चन्द्ररश्मयः)** चन्दन और चन्द्रमा की किरणें, **(गाङ्गमम्भः)** गंगा नदी का जल **(च)** और **(हारयष्टयो न शीतलाः)** मोतियों की मालाएँ शीतल नहीं हैं।

आगे जिन भगवान् के वचन शीतल हैं, उन्होंने क्या किया ? यह बतलाते हैं–

सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(विषदाहमोहितं)** विषरूपी दाह से मूर्च्छित **(स्वविग्रहं)** अपने शरीर को **(भिषक्)** वैद्य **(मन्त्रगुणैः)** मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है। उसी प्रकार हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(सुखाभिलाषा-नलदाहमूर्च्छितं)** वैषयिक सुखों की अभिलाषारूप अग्नि की दाह से मूर्च्छित **(निजं)** अपने **(मनः)** मन को **(ज्ञानमयामृताम्बुभिः)** ज्ञानामृतरूप जल के द्वारा **(व्यदिध्यपः)** शान्त किया था।

आगे विशुद्धता के मार्ग में आप ही जागृत-सावधान रहे, यह कहते हैं—

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य! नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥३॥

अन्वयार्थ—(प्रजाः) लौकिकजन **(स्वजीविते)** अपने जीवन **(च)** और **(कामसुखे)** स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम-सुख की **(तृष्णया)** तृष्णा से **(दिवा)** दिन में **(श्रमार्त्ताः)** सेवा-कृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और **(निशि)** रात्रि में **(शेरते)** सो जाते हैं, परन्तु **(हे आर्य)** हे पूज्य शीतलजिनेन्द्र! **(त्वम्)** आप **(नक्तं दिवम्)** रात-दिन **(अप्रमत्तवान्)** प्रमाद रहित हो, **(आत्मविशुद्धवर्त्मनि)** आत्मा को अत्यन्त शुद्ध करने वाले सम्यग्दर्शनादिरूप मार्ग में **(अजागः एव)** जागते ही रहे हैं।

आगे अन्य प्राणियों और आपकी प्रवृत्ति में विशेषता बतलाते हैं—

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत् ॥४॥

अन्वयार्थ—(केचन) कितने ही **(तपस्विनः)** दयनीय प्राणी अथवा व्रतीजन **(अपत्यवित्तोत्तर-लोकतृष्णया)** सन्तान, धन तथा उत्तरलोक-परलोक या उत्कृष्ट लोक की तृष्णा से **(कर्म)** अग्निहोम आदि कार्य **(कुर्वते)** करते हैं, **(पुनः)** किन्तु **(भवान्)** आपने **(समधीः)** समबुद्धि होकर **(जन्मजरा-जिहासया)** जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से **(त्रयीं प्रवृत्तिं)** मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को **(अवारुणत्)** रोका है अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप भेद रत्नत्रय को दूरकर, शुद्ध आत्मस्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को अंगीकृत किया है।

आगे हरिहरादिक भी आपके तुल्य हैं, ऐसी आशंका कर उसका समाधान करते हैं—

त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिन! शीतलेड्यसे ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे शीतलजिनेन्द्र! **(उत्तमज्योतिः)** केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित **(अजः)** पुनर्जन्म से रहित और **(निर्वृतः)** सुखीभूत **(त्वम्)** आप **(क्व)** कहाँ और **(बुद्धिलवोद्धवक्षताः)** ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट **(ते परे)** वे हरि-हर-हिरण्यगर्भ आदि अन्य देवता **(क्व)** कहाँ ? दोनों में महान् अन्तर है, **(ततः)** इसीलिए **(स्वनिःश्रेयस-भावनापरैः)** आत्मकल्याण की भावना में तत्पर **(बुधप्रवेकैः)** श्रेष्ठ विद्वानों—गणधरादिक, श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा **(ईड्यसे)** आप स्तुत हो रहे हैं—आपकी स्तुति की जा रही है।

श्री श्रेयोजिनस्तवनम्

आगे भगवान् के 'श्रेयस्' इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान्॥१॥

अन्वयार्थ—(अजेयवाक्यः) अबाधित वचनों से युक्त **(श्रेयान् जिनः)** हे श्रेयोजिन! **(इमाः प्रजाः)** इन संसारीजनों को **(श्रेयसि वर्त्मनि)** कल्याणकारी मोक्षमार्ग में **(श्रेयः शासत्)** हित का उपदेश देते हुए **(भवान्)** आप **(अस्मिन् भुवनत्रये)** इन तीनों लोकों में **(एकः)** अकेले ही **(वीतघनः)** मेघों के आवरण से रहित **(विवस्वान् यथा)** सूर्य के समान **(चकासे)** प्रकाशमान हुए हैं।

आगे विधि और निषेध की मुख्यता तथा गौणता का प्रतिपादन करते हैं—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥२॥

अन्वयार्थ—हे श्रेयोजिन! **(ते)** आपके मत में **(विषक्तप्रतिषेधरूपः)** कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्वरूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा **(विधिः)** स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व **(प्रमाणं)** प्रमाण का विषय है। **(अत्र)** इन विधि और प्रतिषेध में **(अन्यतरत्)** एक **(प्रधानम्)** प्रधान है और **(अपरः)** दूसरा **(गुणः)** अप्रधान है। यहाँ **(मुख्यनियामहेतुः)** मुख्य के नियम का जो हेतु है **(नयः)** वह नय है तथा **(सः)** वह नय **(दृष्टान्तसमर्थनः)** दृष्टान्त का समर्थन करने वाला है।

अब मुख्य कौन है तथा गौण कौन है ? यह बताते हैं–

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(विवक्षितः)** विवक्षित पदार्थ **(मुख्य इतीष्यते)** मुख्य कहलाता है और **(अन्यः)** दूसरा–अविवक्षित पदार्थ **(गुणः)** गौण कहलाता है। **(अविवक्षः)** जो पदार्थ अविवक्षित है, वह **(निरात्मकः न)** अभावरूप नहीं है **(तथा)** मुख्य और गौण की इस विधि से **(वस्तु)** पदार्थ **(अरिमित्रानुभयादि-शक्तिः)** शत्रु, मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होता है। **(हि)** निश्चय से समस्त पदार्थों की **(द्वयावधिः)** भाव-अभाव अथवा द्रव्य और पर्यायरूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रय कर वस्तु **(कार्यकरं)** कार्यकारी होती है।

आगे दृष्टान्त की उपयोगिता सिद्ध करते हैं–

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्तनियामि दृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥४॥

अन्वयार्थ–**(उभयोः)** वादी और प्रतिवादी के **(विवादे)** विवाद में **(दृष्टान्त-सिद्धौ)** उदाहरण की सिद्धि होने पर **(साध्यं)** साध्य **(प्रसिद्ध्येत्)** अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है, **(तु)** परन्तु **(तादृक् न दृष्टं अस्ति)** वैसी दृष्टान्तभूत कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं है **(यत्)** जो **(सर्वथैकान्तनियामि)** सर्वथा एकान्तवाद का नियमन करने वाली हो, क्योंकि **(त्वदीयदृष्टिः)** आपका अनेकान्तमत **(अशेषे)** समस्त–साध्य, साधन और दृष्टान्त में **(विभवति)** अपना प्रभाव डाले हुए है।

अब एकान्त का निषेध और अनेकान्त की सिद्धि किससे होती है? यह बतलाते हैं–

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५॥

अन्वयार्थ–हे श्रेयोजिनेन्द्र! **(एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिः)** एकान्त दृष्टि के निषेध की सिद्धि **(न्यायेषुभिः)** न्यायरूप बाणों के द्वारा होती है अर्थात् आपने न्याय रूप बाणों के द्वारा सर्वथा एकान्तवादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और **(यतः)** जिस कारण आप **(मोहरिपुं)** अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीयकर्म से युक्त ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों को **(निरस्य)** नष्टकर

(कैवल्यविभूतिसम्राट्) केवलज्ञानरूप विभूति अथवा समवसरणादि-रूप लक्ष्मी के सम्राट् **(असि स्म)** हुए हैं **(ततः)** इस कारण **(अर्हन्)** हे अर्हन्त! **(त्वम्)** आप **(मे)** मेरे **(स्तवार्हः)** स्तवन के योग्य **(असि)** हैं अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

श्री वासुपूज्यजिनस्तवनम्

मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा भगवान् वासुपूज्य की पूजा-विधि का विधान करते हैं–

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र! दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥१॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीन्द्र!) हे गणधरादि मुनियों के स्वामी! **(शिवासु)** कल्याणकारिणी **(अभ्युदयक्रियासु)** स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में **(पूज्यः)** पूज्य, **(वासुपूज्यः)** वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले **(त्वम्)** आप चूँकि **(त्रिदशेन्द्रपूज्यः)** इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं, अतः **(अल्पधिया)** अल्पबुद्धि के धारक **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी **(पूज्यः)** पूज्य हैं। **(किं)** क्या **(दीपार्चिषा)** दीपशिखा के द्वारा **(तपनः)** सूर्य **(न पूज्यः)** पूजनीय नहीं होता ?

आपकी पूजा से आपको क्या प्रयोजन है ? यह कहते हैं–

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥२॥

अन्वयार्थ–(नाथ) हे स्वामिन्! यद्यपि **(वीतरागे)** राग से रहित **(त्वयि)** आप में **(पूजया)** पूजा के द्वारा **(न)** प्रयोजन नहीं है और **(विवान्तवैरे)** वैर से रहित आप में **(निन्दया)** निन्दा के द्वारा **(अर्थः न)** प्रयोजन नहीं है। **(तथापि)** तो भी **(ते)** आपके **(पुण्यगुणस्मृतिः)** प्रशस्त गुणों का स्मरण **(नः)** हमारे **(चित्तं)** मन को **(दुरिताञ्जनेभ्यः)** पापरूपी अञ्जन से **(पुनातु)** पवित्र करे–दूर रखे।

पूजा में होने वाली अल्पहिंसा दोष का कारण नहीं है, यह कहते हैं–

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(पूज्यं)** इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा **(जिनं)** कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले **(त्वा)** आपकी **(अर्चयतः)** पूजा करने वाले **(जनस्य)** मनुष्य के जो **(सावद्यलेशः)** सराग परिणति अथवा आरम्भादि-

जनित थोड़ा-सा पाप का लेश होता है, वह **(बहुपुण्यराशौ)** बहुत भारी पुण्य की राशि में **(दोषाय)** दोष के लिए **(अलं न)** समर्थ नहीं है, क्योंकि **(विषस्य)** विष की **(कणिका)** अल्पमात्रा **(शीतशिवाम्बुराशौ)** शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में **(दूषिका न)** दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

पुष्पादि बाह्य सामग्री के बिना भी मुनि के पूजा संभव है, यह कहते हैं–

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते - र्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥४॥

अन्वयार्थ–(यद् वस्तु) जो पुष्पादिक पदार्थ **(गुणदोषसूतेः)** पुण्य और पाप की उत्पत्ति के **(बाह्यं)** बहिरंग **(निमित्तं)** कारण हैं **(तद्)** वह **(अध्यात्म-वृत्तस्य)** आत्मा में प्रवर्तने वाले **(अभ्यन्तरमूलहेतोः)** अन्तरंग/उपादानरूप मूलकारण का **(अङ्गभूतं)** सहकारी कारण है। हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अभ्यन्तरं)** अन्तरंग कारण **(केवलमपि)** बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार का **(अलं)** गुण-दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

बाह्य और आभ्यन्तर सामग्री से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, यह कहते हैं–

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(कार्येषु)** घट आदि कार्यों में **(इयं)** यह जो **(बाह्ये-तरोपाधिसमग्रता)** बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है, वह **(ते)** आपके मत में **(द्रव्यगतः)** जीवादि द्रव्यगत **(स्वभावः)** स्वभाव है। **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं, किन्तु **(पुंसां)** मोक्षाभिलाषी पुरुषों के **(मोक्षविधिश्च)** मोक्ष की विधि भी **(नैव)** घटित नहीं होती है, **(तेन)** इसीलिए **(ऋषिः)** परम ऋषियों से युक्त **(त्वम्)** आप **(बुधानां)** गणधरादि बुधजनों के **(अभिवन्द्यः)** वन्दनीय हैं।

श्री विमलजिनस्तवनम्

आगे निरपेक्ष नय मिथ्या हैं, यह कहते हैं–

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥१॥

अन्वयार्थ–(य एव) जो ही **(नित्यक्षणिकादयः नयाः)** नित्य अथवा

क्षणिक आदि नय **(मिथोऽनपेक्षाः)** परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्यमतों में **(स्वपर-प्रणाशिनः)** निज और पर का नाश करने वाले हैं, **(ते एव)** वे ही नय **(परस्परेक्षाः)** परस्पर की अपेक्षा रखते हुए **(स्वपरोप-कारिणः)** निज और पर का उपकार करने वाले होकर **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी **(ते)** आप **(विमलस्य)** विमल जिनेन्द्र के मत में **(तत्त्वं)** वस्तु स्वरूप होते हैं।

आगे नयों में प्रतिनियत व्यवस्था का विधान करते हैं–

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(एकशः)** एक-एक **(कारकम्)** उपादान-कारण या निमित्तकारण **(स्वसहायकारकं)** अपनी सहायता करने वाले **(शेषं)** अन्य कारक की **(समीक्ष्य)** अच्छी तरह अपेक्षा करके **(अर्थसिद्धये)** कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ होता है। **(तथैव)** उसी प्रकार **(सामान्य-विशेषमातृका)** सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं **(गुणमुख्यकल्पतः)** गौण और मुख्य की कल्पना से **(तव)** आपके **(इष्टाः)** अभिप्रेत **(नयाः)** नय (अर्थसिद्धये) कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ हैं।

आगे नयों की सामान्यविशेषमातृकता सिद्ध करते हैं–

परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(यथा)** जिस प्रकार **(भुवि)** पृथ्वी पर **(स्वपराव-भासकं)** स्व और पर को प्रकाशित करने वाला **(बुद्धिलक्षणं)** ज्ञानरूप लक्षण से युक्त **(प्रमाणं)** प्रमाण प्रसिद्ध है। **(तथा)** उसी प्रकार **(तव)** आपके मत में **(परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः)** परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से **(प्रसिद्धसामान्यविशेषयोः)** प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की **(समग्रता)** पूर्णता **(अस्ति)** विद्यमान है।

अब विशेष्य और विशेषण का स्वरूप बतलाते हैं–

विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(विशेष्यवाच्यस्य)** वाच्यभूत विशेष का वह **(वचः)**

वचन **(यतः)** जिससे **(विशेष्यं)** विशेष्य **(विनियम्यते)** नियमित किया जाता है **(विशेषणं)** विशेषण कहलाता है और **(यत्)** जो **(विनियम्यते)** नियमित होता है **(तत्)** वह **(विशेष्यं)** विशेष्य कहलाता है **(च)** और **(तयोः)** उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि **(सामान्य-मतिप्रसज्यते)** सामान्य का प्रसंग आता है, परन्तु **(ते)** आपके मत में **(स्यादिति)** कथञ्चित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा **(विवक्षितात्)** विवक्षित विशेषण विशेष्य से **(अन्य-वर्जनम्)** अविवक्षित विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

आगे स्यात् शब्द का फल दिखलाते हुए कहते हैं—

नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि **(स्यात्पदसत्यलाञ्छिताः)** स्यात् पद रूपी सत्य से चिह्नित **(तव)** आपके **(नयाः)** नय **(रसोपविद्धाः)** रस से अनुलिप्त **(लोहधातवः इव)** लोह धातुओं के समान **(अभिप्रेतगुणाः)** इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में सुवर्ण आदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त **(भवन्ति)** होते हैं, **(ततः)** इसलिए **(हितैषिणः)** हित के इच्छुक **(आर्याः)** गणधर आदि उत्तम पुरुष **(भवन्तं)** आपके प्रति **(प्रणताः)** नम्रीभूत हैं।

श्री अनन्तजिनस्तवनम्

भगवान् के अनन्तजित् नाम की सार्थकता बतलाते हैं—

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥१॥

अन्वयार्थ—(अनन्तदोषाशयविग्रहः) जिसका शरीर अनन्त रागादि दोषों का आधार है तथा जो **(चिरं)** चिरकाल से **(हृदि)** हृदय में **(विषङ्गवान्)** संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था, ऐसा **(मोहमयः)** मोहरूप **(ग्रहः)** पिशाच **(तत्त्व-रुचौ)** तत्त्व श्रद्धा से **(प्रसीदता)** प्रसन्न रहने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा, **(यतः)** क्योंकि **(जितः)** जीत लिया था, **(ततः)** इसलिए आप **(भगवान्)** भगवान् **(अनन्त-जित्)** अनन्तजित् इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(अभूः)** हुए हैं।

आगे कषाय रूप शत्रुओं को जीतकर आप सर्वज्ञ हुए, यह कहते हैं—

कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयत् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रमाथिनाम्)** दुख देने वाले **(कषायनाम्नां द्विषताम्)** कषाय नामक शत्रुओं के **(नाम)** नाम को हृदय में **(अशेषयन्)** समाप्त करते हुए **(अशेषवित्)** सर्वज्ञ हुए हैं तथा आपने **(समाधिभैषज्यगुणैः)** ध्यानरूप औषधि के गुणों के द्वारा **(विशोषणं)** संतापकारक **(मन्मथदुर्मदामयं)** कामदेव के दुष्ट दर्परूपी रोग को **(व्यलीनयत्)** विलीन किया है—नष्ट किया है।

आगे आपको निर्वाणधाम की प्राप्ति किस तरह हुई? यह कहते हैं—

परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता।
असङ्गघर्मार्क-गभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥३॥

अन्वयार्थ—**(परिश्रमाम्बुः)** जिसमें परिश्रमरूपी जल भरा है और **(भयवीचि-मालिनी)** भयरूप तरंगों की मालाएँ उठ रही हैं, ऐसी **(स्वतृष्णा-सरित्)** अपनी भोगाकांक्षारूप नदी **(हे आर्य)** हे पूज्य **(त्वया)** आपके द्वारा **(असङ्ग-घर्मार्क गभस्ति-तेजसा)** निष्परिग्रहतारूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से **(शोषिता)** सुखा दी गई है, **(ततः)** इसलिए **(परम्)** उसके आगे विद्यमान **(निर्वृतिधाम)** निर्वाण-स्थान **(तावकम्)** आपका ही है अथवा आपका अनन्तज्ञानादि तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

अब भगवान् की वीतरागता का प्रतिपादन करते हैं—

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वयि सुहृद्)** आप में उत्तम हृदय को रखने वाला-भक्त पुरुष **(श्रीसुभगत्वं)** लक्ष्मी के वल्लभपने को **(अश्नुते)** प्राप्त होता है और **(त्वयि द्विषन्)** आपमें द्वेष रखने वाला—अभक्त पुरुष **(प्रत्ययवत्)** व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान **(प्रलीयते)** नष्ट हो जाता है—चतुर्गति के दुखों का अनुभव करता है, परन्तु **(भवान्)** आप **(तयोरपि)** उन दोनों—भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में **(उदासीन-तमः)** अत्यन्त उदासीन हैं—रागद्वेष से रहित हैं। **(प्रभो)** हे स्वामिन्! **(तव)** आपकी **(इदम् ईहितं)** यह चेष्टा **(परं चित्रम्)** अत्यन्त

आश्चर्यकारी है।

अब भगवान् का अल्प गुण वर्णन भी कल्याण का कारण है, यह कहते हैं–

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ॥५॥

अन्वयार्थ–(महामुने!) हे समस्त पदार्थों के प्रत्यक्ष जानने वाले मुनिनाथ! **(त्वम्)** आप **(ईदृशः)** ऐसे हैं, **(तादृशः)** वैसे हैं, **(इति)** इस प्रकार का **(अयं)** यह **(मम अल्पमतेः)** मुझ अल्पबुद्धि का **(प्रलापलेशः)** थोड़ा-सा प्रलाप **(अशेषमाहात्म्यं)** आपकी समस्त महिमा को **(अनीरयन्नपि)** न कहता हुआ भी **(अमृताम्बुधेः)** सुधासागर के **(संस्पर्श इव)** समीचीन स्पर्श के समान **(शिवाय)** मोक्ष के लिए है–मोक्षसुख की प्राप्ति का कारण है।

श्री धर्म जिनस्तवनम्

भगवान् धर्मनाथ नाम की सार्थकता बताते हैं–

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः॥१॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(अनघं)** निर्दोष **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले आगम को **(प्रवर्तयन्)** प्रवर्ताते हुए, **(भवान्)** आप **(सतां)** गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा **(धर्मः)** धर्म **(इति)** इस सार्थक नाम से युक्त **(अनुमतः)** माने गये हैं। आपने **(तपोऽग्निभिः)** तप रूपी अग्नियों के द्वारा **(कर्मकक्षम्)** कर्मरूपी वन को **(अदहत्)** जलाया है तथा **(शाश्वतं)** अविनाशी **(शर्म)** सुख **(अवाप)** प्राप्त किया है, इसलिए आप सत्पुरुषों के द्वारा **(शङ्करः)** शंकर इस नाम से युक्त (अनुमतः) माने गये हैं।

अब ऐसे भगवान् ने क्या किया? यह कहते हैं–

देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥२॥

अन्वयार्थ–हे धर्मजिन! **(देवमानवनिकायसत्तमैः)** देवसमूह और मनुष्य-समूह में अत्यन्त श्रेष्ठ भव्यजीवों के द्वारा **(परिवृतः)** चारों ओर से वेष्टित तथा **(बुधैः)** गणधरादि विद्वानों से **(वृतः)** घिरे हुए आप **(व्योमनि)** आकाश में **(तारकापरिवृतः)** ताराओं से परिवेष्टित **(अमलः)** घनपटलादि मल से रहित, **(अतिपुष्कलः)** सम्पूर्ण **(शशलाञ्छन इव)** चन्द्रमा के समान **(रेजिषे)**

सुशोभित हुए थे।

अब सिंहासनादि विभूति के रहते हुए भी भगवान् के वीतरागता है, यह दिखाते हैं–

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान् नापि शासनफलैषणातुरः ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रातिहार्यविभवैः)** सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवसरणादि विभूतियों से **(परिष्कृतः)** विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे, किन्तु **(देहतोऽपि)** शरीर से भी **(विरतः)** ममत्व रहित **(अभूत्)** थे तथा आपने **(नरामरान्)** मनुष्यों और देवों को **(मोक्षमार्गम्)** मोक्षमार्ग का **(अशिषत्)** उपदेश दिया था फिर भी आप **(शासन-फलैषणातुरः)** उपदेश के फल की इच्छा से आतुर–व्यग्र **(नापि)** नहीं हुए थे।

अब इच्छा के बिना भगवान् का विहार आदि होता है, यह कहते हैं–

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ–हे नाथ! **(तव)** आप **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी के **(काय-वाक्य-मनसां)** काय, वचन और मन की **(प्रवृत्तयः)** चेष्टाएँ **(चिकीर्षया)** करने की इच्छा से **(न अभवन्)** नहीं हुईं तथा **(भवतः)** आपकी **(प्रवृत्तयः)** प्रवृत्तियाँ–चेष्टाएँ **(असमीक्ष्य)** वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना **(न)** नहीं हुईं। **(हे धीर)** परीषहादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुभित न करने वाले, हे धीर-वीर धर्मजिनेन्द्र! **(तावकं)** आपका **(ईहितं)** चरित **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय है–आश्चर्य करने वाला है।

आगे भगवान् की लोकोत्तर प्रकृति का वर्णन करते हैं–

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि आप **(मानुषीं प्रकृतिं)** मानव स्वभाव को **(अभ्यतीतवान्)** अतिक्रान्त कर गये हैं **(च)** और **(देवतास्वपि)** इन्द्र, चन्द्र आदि देवों में भी **(देवता)** देवता हैं, पूज्य हैं, **(तेन)** इसलिए **(हे नाथ)** हे स्वामिन्! आप **(परम देवता असि)** उत्कृष्ट देवता हैं। **(हे जिनवृष)** हे जिनेन्द्र! **(नः)** हमारे **(श्रेयसे)** कल्याण के लिए **(प्रसीद)** प्रसन्न होईये।

श्री शान्तिजिनस्तवनम्

भगवान् पापों की शान्ति कर स्वयं शान्तिनाथ हुए, यह कहते हैं–

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(यः शान्तिः) जो शान्तिजिनेन्द्र **(परतः)** शत्रुओं से **(प्रजानां)** प्रजा-जनों की **(रक्षां विधाय)** रक्षा कर **(चिरं)** चिरकाल तक पहले **(अप्रतिमप्रतापः)** अतुल्य पराक्रमी **(राजा)** राजा हुए और **(पुरस्तात्)** फिर **(स्वत एव)** स्वयं ही **(मुनिः)** मुनि होकर जिन्होंने **(दयामूर्तिरिव)** दया की मूर्ति की तरह **(अघशान्तिं)** पापों की शान्ति **(व्यधात्)** की।

अब भगवान् के राज्य अवस्था और वीतराग अवस्था के कार्य कहते हैं–

चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(महोदयः) गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त **(यः)** जो शान्ति जिनेन्द्र गृहस्थावस्था में **(शत्रुभयङ्करेण)** शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले **(चक्रेण)** सुदर्शनचक्र के द्वारा **(सर्वनरेन्द्रचक्रं)** समस्त राजाओं के समूह को **(जित्वा)** जीतकर **(नृपः)** चक्रवर्ती हुए और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने **(समाधिचक्रेण)** ध्यानरूप चक्र के द्वारा **(दुर्जय-मोहचक्रं)** कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीयकर्म की मूल तथा उत्तर प्रकृतियों के समूह को **(जिगाय)** जीता था।

अब भगवान् की सराग और वीतराग अवस्था के कार्य कहते हैं–

राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥३॥

अन्वयार्थ–(राजसिंहः) राजाओं में श्रेष्ठ तथा **(राजसुभोगतन्त्रः)** राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन अथवा राजाओं के उत्तम भोगों को स्वाधीन रखने वाले **(यः)** जो शान्तिजिनेन्द्र सराग अवस्था में **(राजसु)** राजाओं के बीच **(राजश्रिया)** नौ निधि तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी के द्वारा **(रराज)** सुशोभित हुए थे और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में **(आत्मतन्त्रः)** आत्माधीन होते हुए **(देवासुरोदारसभे)** देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में **(आर्हन्त्यलक्ष्म्या)** अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य तथा अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग

विभूति से **(रराज)** सुशोभित हुए थे।

सराग और वीतराग अवस्था में और क्या हुआ ? यह कहते हैं -

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधिति धर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(राजनि 'सति')** राजा होने पर **(राजचक्रं)** राजाओं का समूह **(प्राञ्जलि)** बद्धाञ्जलि **(अभूत्)** हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ 'सति')** मुनि होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त अथवा दया को प्रकाशित करने वाला **(धर्मचक्रं)** उत्तमक्षमा आदि धर्मों का समूह (प्राञ्जलि अभूत्) अपने आधीन हुआ था अथवा जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ)** समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले केवलज्ञानी होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त **(धर्मचक्रं)** देवरचित धर्मचक्र (प्राञ्जलि अभूत्) अपने अधीन हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(पूज्ये)** पूज्य होने पर—समवसरण में स्थित होकर धर्मोपदेश होने पर **(देवचक्रं)** देवों का समूह **(मुहुः)** बार-बार (प्राञ्जलि अभूत्) बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(ध्यानोन्मुखे)** व्युपरत-क्रियानिवर्तिनामक चतुर्थ शुक्लध्यान के सन्मुख होने पर **(ध्वंसि)** क्षय को प्राप्त होता हुआ **(कृतान्तचक्रं)** कर्मों का समूह (प्राञ्जलि) शरण की भिक्षा के लिए बद्धाञ्जलि (अभूत्) हुआ था।

आगे स्तुतिकर्ता स्तुति से फल की याचना करता हुआ कहता है—

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥५॥

अन्वयार्थ—(स्वदोषशान्त्या) अपने रागादि दोषों की शान्ति से **(विहितात्म-शान्तिः)** जिन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति हुई है, जो **(शरणं गतानां)** शरण में आये हए जीवों को **(शान्तेर्विधाता)** शान्ति के करने वाले हैं, जो **(जिनः)** कर्म रूप शत्रुओं के जीतने वाले हैं, **(भगवान्)** विशिष्टज्ञान अथवा लोकोत्तर ऐश्वर्य से सहित हैं तथा **(शरण्यः)** शरण देने में निपुण हैं वह **(शान्तिः)** शान्तिनाथ जिनेन्द्र **(मे)** मेरे **(भवक्लेशभयोप-शान्त्यै)** संसारपरिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शान्ति के लिए **(भूयात्)** हों।

श्री कुन्थुजिनस्तवनम्

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥१॥

अन्वयार्थ—(कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः) कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक मुख्य रूप से दया का विस्तार करने वाले **(कुन्थुः जिनः)** कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(पुरा)** पहले गृहस्थावस्था में **(भूत्यै)** राजविभूति के निमित्त **(क्षितिपतीश्वर चक्रपाणिः)** राजाधिराज चक्रवर्ती **(भूत्वा)** होकर पश्चात् **(इह)** इस संसार में (**ज्वरजरा-मरणोपशान्त्यै**) ज्वर आदि समस्त रोग, बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त **(भूत्यै)** मोक्षलक्ष्मी के लिए **(धर्मचक्रं)** धर्म के समूह को अथवा देवरचित धर्मचक्र नामक अतिशय विशेष को **(वर्तयसि स्म)** प्रवर्तित किया था।

आगे भगवान् की राज्यसंपदा के त्याग का कारण कहते हैं—

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तृष्णार्चिषः) विषयाकांक्षारूप अग्नि की ज्वालाएँ **(परिदहन्ति)** इस जीव को सब ओर से जला रही हैं, **(इष्टेन्द्रियार्थविभवैः)** इष्ट इन्द्रियों के विषयों से **(आसां)** इन विषयाकांक्षारूप अग्नि की ज्वालाओं की **(न शान्तिः)** शान्ति नहीं होती, किन्तु **(परिवृद्धिरेव)** सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि **(स्थित्यैव)** इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है। **(निमित्तं)** निमित्त कारण **(कायपरितापहरं)** मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है, विषयाकांक्षा-रूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन्! **(इति)** यह सब विचार कर ही **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय होते हुए आप **(विषयसौख्य-पराङ्मुखः)** विषयजन्य सुख से पराङ्मुख **(अभूत्)** हुए हैं।

अब भगवान् के बाह्य और आभ्यन्तर तप की प्रवृत्ति का वर्णन करते हैं—

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आपने **(आध्यात्मिकस्य)** अन्तरंग **(तपसः)** तप की **(परिवृंहणार्थम्)** वृद्धि के लिए **(परमदुश्चरं)** अत्यन्त कठिन **(बाह्यं तपः)** अनशनादि बाह्यतप का **(आचरन्)** आचरण किया था तथा **(कलुष-**

द्वयं) आर्त्त-रौद्ररूप दो खोटे **(ध्यानं)** ध्यानों को **(निरस्य)** छोड़कर आप **(अतिशयोपपन्ने)** उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित **(उत्तरस्मिन्)** आगे के **(ध्यानद्वये)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में **(ववृतिषे)** स्थिर हुए थे।

अब ध्यान का फल कहते हैं–

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्त्रो रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्यः। बभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेता व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(चतस्त्रः स्वकर्मकटुकप्रकृतीः)** अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों को **(रत्नत्रयातिशयतेजसि)** सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टतारूप अग्नि में **(हुत्वा)** होमकर **(जातवीर्यः)** आप सामर्थ्यवान् अनन्त-वीर्य से युक्त हुए तथा **(सकलवेदविधेः)** समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के **(विनेता)** प्रणेता होकर **(तथा)** उस तरह **(बभ्राजिषे)** देदीप्यमान हुए, **(यथा)** जिस तरह कि **(व्यभ्रे)** मेघ रहित **(वियति)** आकाश में **(दीप्तरुचिः)** देदीप्यमान किरणों से युक्त **(विवस्वान्)** सूर्य होता है।

अब भगवान् की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं–

यस्मान्मुनीन्द्र! तव लोक पितामहाद्या विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति। तस्माद् भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः॥५॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीन्द्र)हे यतिनाथ! **(यस्मात्)** चूँकि **(लोकपिता-महाद्याः)** ब्रह्मा आदि लौकिक देवता **(तव)** आपकी **(विद्याविभूति-कणिकामपि)** केवलज्ञानरूप विद्या और समवसरणरूप विभूति के एक कण मात्र को भी **(न आप्नुवन्ति)** नहीं प्राप्त करते हैं, **(तस्मात्)** इसलिए **(सुधियः)** उत्तम बुद्धि के धारक **(स्वहितैकतानाः)** एक आत्महित में निमग्न–मोक्ष के अभिलाषी **(आर्याः)** गणधरादिदेव **(अजं)** जन्म से रहित, **(अप्रतिमेयं)** अपरिमित–अनन्त तथा **(स्तुत्यं)** स्तुति के योग्य **(भवन्तं)** आपकी **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

श्रीअरजिनस्तवनम्

गुणों की अधिकता के कारण आपकी स्तुति शक्य नहीं है, यह कहते हैं–

गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुम-शक्यास्त्वयि सा कथम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(सद्) विद्यमान **(गुणस्तोकं)** अल्प गुणों का **(उल्लङ्घ्य)** उल्लंघन कर **(तद्बहुत्वकथा)** उन गुणों की अधिकता का कथन करना **(स्तुतिः)** स्तुति कहलाती है परन्तु **(आनन्त्यात्)** अनन्त होने के कारण **(ते)** आपके **(गुणाः)** गुण **(वक्तुमशक्याः)** कहने के लिए अशक्य हैं, अतः **(त्वयि)** आपके विषय में **(सा)** वह स्तुति **(कथं)** किस प्रकार संभव है?

यदि शक्य नहीं है तो चुप बैठो, यह कहते हैं—

तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥२॥

अन्वयार्थ—यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है **(तथापि)** तो भी **(पुण्यकीर्तेः)** प्रशस्त यश वाणी अथवा ख्याति के धारक तथा **(मुनीन्द्रस्य)** गणधरादि मुनियों के स्वामी **(ते)** आपका **(कीर्तितं)** उच्चरित **(नामापि)** नाम भी **(यतः)** चूँकि **(नः)** हमें **(पुनाति)** पवित्र करता है, **(ततः)** इसलिए **(किञ्चन)** कुछ **(ब्रूयाम)** कहते हैं।

भगवान् की निःस्पृहता का वर्णन करते हैं—

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र - लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(लक्ष्मीविभवसर्वस्वं)** लक्ष्मी की विभूतिरूप सर्वस्व से युक्त तथा **(चक्रलाञ्छनं)** सुदर्शनचक्ररूप चिह्न से सहित **(सार्वभौमं)** समस्त पृथ्वी सम्बन्धी जो **(ते)** आपका **(साम्राज्यं)** साम्राज्य था, वह **(मुमुक्षोः)** मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिए **(जरत्तृणमिव)** जीर्ण तृण के समान **(अभवत्)** हो गया था।

भगवान् की शारीरिक सुन्दरता का वर्णन करते हैं—

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(तव)** आपके **(रूपस्य)** शरीर सम्बन्धी रूप की **(सौन्दर्यं)** सुन्दरता को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तृप्तिं)** संतोष को **(अनापिवान्)** प्राप्त न होने वाला **(द्व्यक्षः)** दो नेत्रों का धारक **(शक्रः)** इन्द्र **(बहुविस्मयः)** बहुत भारी आश्चर्य से युक्त **(सहस्राक्षः)** एक हजार नेत्रों का धारक **(बभूव)** हुआ था।

आगे आपने मोहरूपी भट को जीता है, यह कहते हैं–

मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः।
दृष्टिसंपदुपेक्षास्त्रैस् त्वया धीर! पराजितः ॥५॥

अन्वयार्थ–(हे धीर) परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! **(त्वया)** आपने **(पापः)** पापरूप तथा **(कषाय-भट-साधनः)** कषायरूप योद्धाओं की सेना से सहित **(मोहरूपो रिपुः)** मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को **(दृष्टि-संपत्-उपेक्षा-अस्त्रैः)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप शस्त्रों के द्वारा **(पराजितः)** पराजित किया है।

अब मोह विजय का फल दिखाते हैं -

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस् - त्रैलोक्यविजयार्जितः।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥६॥

अन्वयार्थ–(त्रैलोक्यविजयार्जितः) तीनों लोकों की विजय से उपार्जित **(कन्दर्पस्य)** कामदेव के **(उद्धरः)** उत्कट–बहुत भारी **(दर्पः)** गर्व ने **(धीरे)** धीर-वीर **(त्वयि)** आपके विषय में **(प्रतिहतोदयः सन्)** खण्डित प्रसर हो **(तं)** कामदेव को **(ह्रेपयामास)** लज्जित किया था।

मोह और काम के जीतने का फल दिखाते हैं–

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्दुरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥७॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(आयत्यां च तदात्वे च)** जो परलोक तथा इस लोक-दोनों ही जगह **(दुःखयोनिः)** दुखों की उत्पत्ति का कारण है तथा **(दुरुत्तरा)** जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है, ऐसी **(तृष्णानदी)** तृष्णारूपी नदी **(त्वया)** आपने **(विविक्तया)** निर्दोष **(विद्यानावा)** विद्या–सम्यग्ज्ञानरूपी नौका के द्वारा **(उत्तीर्णा)** पार की है।

मोह, काम और तृष्णा के नष्ट होने पर जो हुआ, उसे दिखाते हैं–

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखः सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥८॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(जन्मज्वरसखः)** पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और **(सदा)** हमेशा **(नृणां क्रन्दकः)** मनुष्यों को रुलाने वाला **(अन्तकः)** यम **(अन्त-कान्तकं)** यम का अन्त करने वाले **(त्वाम्)** आपको

(प्राप्य) प्राप्त कर **(कामकारतः)** अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से **(व्यावृत्तः)** उपरत हुआ है।

अब भगवान् के मोहादि का क्षय कैसे जाना गया ? यह कहते हैं–

भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीर! दोषविनिग्रहम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(धीर!) हे धीर! अर जिनेन्द्र! **(भूषावेषायुधत्यागि)** आभूषणों, वेषों तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा **(विद्यादमदयापरम्)** ज्ञान, इन्द्रिय-दमन और दया में तत्पर **(तव)** आपका **(रूपमेव)** रूप ही **(दोष-विनिग्रहं)** रागादि दोषों के अभाव को **(आचष्टे)** कहता है।

मोह का निग्रह होने पर जो हुआ, उसे दर्शाते हैं -

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्ण-मध्यात्मं ध्यानतेजसा ॥१०॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(समन्ततः)** सब ओर फैलने वाले **(ते)** आपके **(अङ्ग-भासां)** शरीर सम्बन्धी प्रभाओं के **(भूयसा)** विशाल **(परिवेषेण)** मण्डल के द्वारा **(बाह्यं)** बाह्य **(तमः)** अन्धकार **(अपाकीर्णं)** नष्ट हुआ है और **(ध्यान-तेजसा)** ध्यानरूप तेज के द्वारा **(अध्यात्मं)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप अन्तरंग का अन्धकार (अपाकीर्णम्) नष्ट हुआ है।

अब भगवान् की पूजा के अतिशय का वर्णन करते हैं–

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस् तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ! सचेतनम् ॥११॥

अन्वयार्थ–(नाथ) हे अरनाथ जिनेन्द्र! **(ते)** आपकी **(सर्वज्ञ-ज्योतिषा)** समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञानरूपी ज्योति से **(उद्भूतः)** उत्पन्न हुआ **(तावकः)** आपकी **(महिमोदयः)** महिमा का उत्कर्ष **(कं)** किस **(सचेतनं)** गुणदोष के विचार में चतुर **(सत्त्वं)** प्राणी को **(प्रणम्रं)** नम्रीभूत **(न कुर्यात्)** नहीं कर देता है ? –सबको कर देता है।

आगे भगवान् के वचनों का अतिशय दिखलाते हैं–

तव वागमृतं श्रीमत्-सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्-प्राणिनो व्यापि संसदि ॥१२॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(श्रीमत्)** पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने

रूप लक्ष्मी सहित **(सर्वभाषास्वभावकम्)** समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा **(संसदि)** समवसरण सभा में **(व्यापि)** व्याप्त होने वाला **(तव)** आपका **(वागमृतं)** वचनरूप अमृत **(अमृतं यद्वत्)** अमृत के समान **(प्राणिनः)** प्राणियों को **(प्रीणयति)** सन्तुष्ट करता है।

आगे अनेकान्तदृष्टि ही समीचीन है, यह दिखाते हैं–

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात् तदयुक्तं स्वघाततः ॥१३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(ते)** आपकी **(अनेकान्तात्मदृष्टिः)** अनेकान्तरूप दृष्टि **(सती)** सत्यार्थ है, उससे **(विपर्ययः)** विपरीत एकान्तमत **(शून्यः)** शून्यरूप असत् है, **(ततः)** इसलिए **(तदयुक्तं)** उस अनेकान्तदृष्टि से रहित **(सर्वं)** सब **(उक्तं)** कथन **(स्वघाततः)** स्वघातक होने से **(मृषा स्यात्)** मिथ्या रूप है अथवा **(ततः)** एकान्तमत के आश्रय से **(उक्तं)** कहा हुआ **(सर्वं)** समस्त वस्तुस्वरूप **(मृषा)** असत्य है तथा **(स्वघाततः)** स्व घातक होने से **(तद्)** वह **(अयुक्तं)** अनुचित है।

आगे अनेकान्तदृष्टि में संभावित दोषों का परिहार करते हैं–

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युर - पात्रं त्वन्मतश्रियः ॥१४॥

अन्वयार्थ–(ये) जो एकान्तवादी **(परस्खलितोन्निद्राः)** पर–अनेकान्तमत में स्खलित–विरोध आदि दोषों के देखने में उन्निद्र–जागृत रहते हैं और **(स्वदोषेभ-निमीलिनः)** स्व–अपने सदेकान्त आदि एकान्त में दोष–स्वघातत्व आदि दोषों के विषय में इभनिमीलन–गज निमीलन से युक्त हैं अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं, **(ते)** वे **(तपस्विनः)** बेचारे **(किं कुर्युः)** क्या करें–स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा **(त्वन्मतश्रियः)** आपके मतरूपी लक्ष्मी के **(अपात्रं)** अपात्र हैं।

अब तत्त्व की अवक्तव्यता का निराकरण करते हैं–

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषःस्वहनो बालास्-तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥१५॥

अन्वयार्थ–(ते) वे एकान्तवादी **(तं)** उस पूर्वोक्त **(स्वघातिनं दोषं)** स्वघाती दोष को **(शमीकर्तुं)** शमन करने के लिए **(अनीश्वराः)** असमर्थ हैं,

(त्वद्द्विषः) आप–अनेकान्तवादी से द्वेष रखते हैं, **(स्वहनः)** अपने आपका घात करने वाले हैं, **(बालाः)** यथावद्वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ हैं और इसीलिए **(तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः)** तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

आगे वक्ता के कैसे अभिप्राय सत्य हैं और कैसे असत्य हैं ? यह दिखलाते हैं–

सदेकनित्यवक्तव्यास्-तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सदेकनित्यवक्तव्याः) सद्, एक, नित्य, वक्तव्य **(च)** और **(तद्विपक्षाः)** इनसे विपरीत असत्, अनेक, अनित्य, अवक्तव्य **(ये नयाः)** ये जो नय हैं, **(ते)** वे **(इह)** इस जगत् में **(सर्वथा इति)** सर्वथा रूप से **(प्रदुष्यन्ति)** वस्तु तत्त्व को अत्यधिक विकृत करते हैं–सदोष बनाते हैं और **(स्यात् इति)** स्यात्–कथञ्चित्–रूप से वस्तु तत्त्व को **(पुष्यन्ति)** पुष्ट करते हैं।

अब स्यात् शब्द की महिमा दिखलाते हैं–

सर्वथानियमत्यागी, यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावकेन्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(सर्वथानियमत्यागी) सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला तथा **(यथादृष्टमपेक्षकः)** यथादृष्टप्रमाणसिद्ध वस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला **(स्याच्छब्दः)** स्यात् शब्द **(तावके न्याये)** आपके न्याय में है, **(आत्म-विद्विषाम्)** अपने आपके वैरी **(अन्येषां)** अन्य एकान्तवादियों के न्याय में **(न)** नहीं हैं।

अब अनेकान्त भी अनेकान्त एवं एकान्त रूप है, यह दिखलाते हैं–

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१८॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अनेकान्तः अपि)** अनेकान्त भी **(प्रमाणनयसाधनः)** प्रमाण और नयरूप साधनों से युक्त होने के कारण **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है। **(प्रमाणात्)** प्रमाण की अपेक्षा **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है और **(अर्पितात् नयात्)** विवक्षित नय से **(तदेकान्तः)** अनेकान्त में एकान्तस्वरूप है।

अब प्रकृत अर्थ का संकोच करते हुए कहते हैं–

इति निरुपमयुक्तशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिन! दमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥१९॥

अन्वयार्थ–(इति) इस तरह **(अरजिन)** हे अर जिनेन्द्र! आप **(निरुपमयुक्त-शासनः)** उपमा रहित प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं, **(प्रियहित-योग-गुणानुशासनः)** सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापाररूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा **(दमतीर्थ-नायकः)** इन्द्रियविजय को सूचित करने वाले आगम के नायक हैं। हे नाथ! **(त्वमिव)** आपके समान **(सतां प्रतिबोधनाय)** विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए **(कः)** दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

अब स्तुति के फल की याचना करते हुए कहते हैं–

मतिगुणविभवानुरूपतस् त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवताद् दुरितासनोदितम् ॥२०॥

अन्वयार्थ–(हे वरद) हे वर को प्रदान करने वाले अरजिनेन्द्र! मैंने **(मति-गुण-विभवानुरूपतः)** अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा **(आगमदृष्टिरूपतः)** आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार **(त्वयि)** आपके विषय में **(किञ्चन गुणकृशमपि)** आपके गुणों का जो कुछ थोड़ा-सा **(उदितं)** वर्णन किया है, वह वर्णन **(मम)** मेरे **(दुरितासनोदितम्)** पापों के नष्ट करने में समर्थ **(भवतात्)** होवे।

श्री मल्लिजिनस्तवनम्

केवलज्ञान होने पर भगवान् को सब प्रणाम करते थे, यह कहते हैं–

यस्य महर्षेः सकलपदार्थ-प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपततिस्म ॥१॥

अन्वयार्थ–(यस्य महर्षेः) जिन महर्षि के **(सकलपदार्थप्रत्यव-बोधः)** जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेष-विशेषता के साथ जानने वाला केवलज्ञान **(साक्षात्)** स्पष्टरूप से **(समजनि)** उत्पन्न हुआ, इसलिए जिन्हें **(सामरमर्त्यं)** देवों तथा मनुष्यों से सहित **(सर्वमपि जगत्)** सभी संसार ने **(प्राञ्जलि भूत्वा)** बद्धाञ्जलि होकर **(प्रणिपतति स्म)** प्रणाम किया, उन

मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

आगे भगवान् के शरीर और वचन का वर्णन करते हैं–

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून्॥२॥

अन्वयार्थ–(कनकमयीव) सुवर्ण से निर्मित के समान **(स्व-स्फुरदाभा-कृतपरिवेषा)** अपनी देदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली **(यस्य मूर्तिः)** जिनकी मूर्ति–शरीराकृति **(च)** और **(तत्त्वं कथयितुकामा)** वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं **(स्यात्पद-पूर्वा)** स्यात्पद से सहित **(यस्य)** जिनकी **(वागपि)** वाणी भी **(साधून्)** भव्यजीवों को **(रमयति)** प्रसन्न करती है, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् के विहार के समय होने वाली पृथ्वी की विशेषता दिखलाते हैं–

यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥३॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिनके **(पुरस्तात्)** आगे **(विगलितमानाः)** गलित मान हुए **(प्रतितीर्थ्याः)** एकान्तवादी जन **(भुवि)** पृथ्वी पर **(न विवदन्ते)** विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय **(भूरपि)** पृथ्वी भी **(प्रतिपदं)** डग-डग पर **(जात-विकोशाम्बुजमृदुहासा)** विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई **(रम्या)** मनोहर **(आसीत्)** हुई थी, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् की शिष्य-सम्पदा का वर्णन करते हैं–

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्र,-त्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(यस्य जिनशिशिरांशोः) जिन मल्लि जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा के **(समन्तात्)** चारों ओर **(शिष्यकसाधुग्रहविभवः)** शिष्यसाधुरूप ग्रहों का–ताराओं का विभव **(अभूत्)** विद्यमान था और जिनका **(स्वं)** अपना **(तीर्थमपि)** शास्त्र भी **(जनन-समुद्र-त्रासित-सत्त्वोत्तरणपथः अग्रम्)** संसाररूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था, उन मल्लिजिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अब भगवान् के शुक्लध्यान की महिमा कहते हैं–

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि र्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥५॥

अन्वयार्थ–(च) और **(यस्य)** जिनके **(शुक्लं ध्यानं)** शुक्लध्यानरूप **(परमतपोऽग्निः)** उत्कृष्ट तपरूपी अग्नि ने **(अनन्तं)** अन्त को प्राप्त न होने वाले **(दुरितं)** अष्टकर्मरूप पाप को **(अधाक्षीत्)** दग्ध किया था, **(तं)** उन **(जिनसिंहं)** जिनश्रेष्ठ **(कृतकरणीयं)** कृतकृत्य, **(अशल्यं)** माया, मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित **(मल्लिं)** मल्लिजिनेन्द्र की **(शरण-मितोऽस्मि)** शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

श्री मुनिसुव्रतजिनस्तवनम्

अब भगवान् के मुनिसुव्रत इस नाम की सार्थकता बतलाते हैं–

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडु परिषत्परिवीतसोमवत् ॥१॥

अन्वयार्थ–(अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिः) जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को अधिगत–सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो **(मुनिवृषभः)** मुनियों में श्रेष्ठ हैं और जो **(अनघः)** चार घातियाकर्मरूपी पाप से रहित हैं, ऐसे **(भवान्)** आप **(मुनिसुव्रतः)** 'मुनिसुव्रत' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र **(मुनि-परिषदि)** समवसरण के बीच मुनियों की सभा में **(उडुपरिषत्परिवीतसोमवत्)** नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान **(निर्बभौ)** सुशोभित हुए थे।

अब भगवान् के शरीर का अतिशय कहते हैं–

परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(कृतमदनिग्रह) काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले **(जिन!)** हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(परिणतशिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः प्रसूतया)** तप से उत्पन्न **(तव विग्रहाभया)** आपके शरीर की आभा–चारों ओर फैलने वाली दीप्ति **(ग्रहपरिवेषरुचेव)** चन्द्रमा के परिवेष–परिमण्डल की दीप्ति के समान **(शोभितं)** सुशोभित हुई थी।

भगवान् का शरीर कैसा था ? यह कहते हैं–

शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(यते) हे महामुनिराज! **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त, **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित और **(विरजः)** रजरहित–मलरहित जो **(तव)** आपका **(निजं वपुः)** अपना शरीर **(शिवं)** अत्यन्त शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाला था **(च)** और **(वाङ्-मनसीयमपि)** वचन तथा मन की भी **(यत् ईहितं)** जो चेष्टा थी, वह भी (अतिविस्मयं) अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी।

अथवा

अन्वयार्थ–(हे जिन) हे मुनिसुव्रतजिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(परिणत-शिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः)** अनशनादि तप से **(प्रसूतया)** उत्पन्न **(कृतमदनिग्रहविग्रहाभया)** मदन-मद अथवा गर्व का निग्रह करने वाले शरीर की आभा से उस तरह **(शोभितं)** शोभित हुआ था, जिस तरह **(ग्रहपरिवेषरुचा 'चन्द्र' इव)** ग्रह परिवेष की कान्ति से चन्द्रमा। **(तव)** आपका वह **(निजं)** अपना **(वपुः)** शरीर **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त, **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित, **(विरजः)** रज रहित, **(शिवं)** शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था **(च)** और **(यते)** हे महामुनिराज! आपके **(वाङ्मनसीयमपि)** वचन और मन की भी **(यत्)** जो **(ईहितं)** चेष्टा थी, **(तदपि)** वह भी **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी।

अब भगवान् की सर्वज्ञता के परिचायक वचनों की महिमा दिखाते हैं–

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥४॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(चरं)** चेतन **(च)** और **(अचरं)** अचेतनरूप **(जगत्)** संसार **(प्रतिक्षणं)** क्षण-क्षण में **(स्थिति-जनन-निरोधलक्षणं)** ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है, **(इति इदं)** इस प्रकार का यह जो **(वदतांवरस्य ते)** वक्तृ प्रवर आपका **(वचनं)** वचन है, वह

(सकलज्ञलाञ्छनं) सर्वज्ञ का चिह्न है–आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

अब स्तोता, स्तुति के फल की याचना करता है-

दुरितमलकलङ्कमष्टकं, निरुपमयोगबलेन निर्दहन्।
अभवदभवसौख्यवान्भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(निरुपमयोगबलेन)** अनुपम शुक्लध्यान के बल से **(अष्टकं)** आठ प्रकार के **(दुरितमलकलङ्कं)** कर्ममल-कलंक को **(निर्दहन्)** जलाते हुए **(भवान्)** आप **(अभवसौख्यवान्)** मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रिय सुख से युक्त **(अभवत्)** हुए हैं, ऐसे आप **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(भवोपशान्तये)** संसार की उपशान्ति के लिए **(भवतु)** होवें।

श्री नमिजिनस्तवनम्

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे
स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमभिपूज्यं नमिजिनम् ॥१॥

अन्वयार्थ–**(स्तुतिः)**भगवान् की स्तुति **(स्तोतुः)** स्तुति करने वाले **(साधोः)** भव्यपुरुष के **(कुशलपरिणामाय)** पुण्यसाधक–प्रशस्त परिणाम के लिए होती है **(तदा)** स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में **(सः स्तुत्यः)** वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव **(भवेत् मा वा)** हो अथवा न हो **(च)** और **(ततः)** उस स्तुत्य से **(तस्य सतः)** उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को **(फलमपि)** स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी **(भवेन्मा वा)** हो अथवा न हो **(एवं)** इस प्रकार **(जगति)** संसार में **(स्वाधीन्यात्)** स्वाधीनता से **(श्रायसपथे)** कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्षसम्बन्धी मार्ग के **(सुलभे 'सति')** सुलभ रहने पर **(किं)** क्या **(विद्वान्)** विचारपूर्वक कार्य करने वाला विवेकीजन **(सततं)** सदा **(अभिपूज्यं)** इन्द्रादि के द्वारा पूज्य **(त्वां नमिजिनं)** आप नमिजिनेन्द्र की **(न स्तुयात्)** स्तुति न करें? अवश्य करें।

नमि जिनेन्द्र ने ऐसा कौन-सा कार्य किया, जिससे वे इस प्रकार पूज्य हुए ? यह दिखाते हैं–

त्वया धीमन्! ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी।

त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगवन्-
नभूवन्खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः॥२॥

अन्वयार्थ—(हे धीमन्) हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमिजिनेन्द्र! **(ब्रह्मप्रणिधि-मनसा)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्त वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(जन्म-निगलं)** संसाररूपी बन्धन **(समूलं)** मूल—कारण सहित **(निर्भिन्नं)** नष्ट किया गया है, इसलिए **(त्वम्)** आप **(विदुषां)** विद्वानों के लिए **(मोक्षपदवी)** मोक्षमार्गस्वरूप **(असि)** हैं। **(भगवन्)** हे भगवन्! **(त्वयि)** आपके **(ज्ञान-ज्योतिर्विभवकिरणैः)** केवलज्ञानज्योति की सम्पदारूप किरणों के द्वारा **(भाति 'सति')** सुशोभित होने पर **(अन्यमतयः)** सुगत, कपिल, ईश्वर आदि अन्यमतावलम्बीजन **(शुचिरवौ)** ग्रीष्मऋतु के सूर्य के देदीप्यमान रहने पर **(खद्योता इव)** जुगनुओं के समान **(अभूवन्)** हो गये थे।

अब सप्तभंगों के आश्रय से भगवान् ने तत्त्व का उपदेश दिया है? यह दिखाते हैं—

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः।
सदान्योऽन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा)** समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप **(त्वया)** आपने **(बहुनयविवक्षेतरवशात्)** अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षा के वश **(प्रत्येकं)** विधि-निषेध, मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर **(नियमविषयैः)** 'भंग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं, इस नियम के विषयभूत **(च)** और **(सदान्योन्यापेक्षैः)** सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले **(अपरिमितैः)** अनन्त **(विशेषैः)** त्रैकालिक धर्मों के द्वारा **(तत्तत्त्वं)** उस वस्तु स्वरूप को **(विधेयं)** विधिस्वरूप, **(वार्यं)** निषेध स्वरूप, **(उभयं)** विधि-निषेध स्वरूप, **(अनुभयं)** अवक्तव्य स्वरूप **(च)** और **(मिश्रमपि)** मिश्ररूप भी—अर्थात् स्यादस्ति-अवक्तव्य, स्यान्नास्ति-अवक्तव्य तथा स्यादस्ति-नास्ति-अवक्तव्य इस तरह सात भंग रूप **(गीतं)** कहा है।

आगे निर्ग्रन्थ दशा के बिना अहिंसा संभव नहीं है, यह दिखलाते हैं—

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।

ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूतानां)** प्राणियों की **(अहिंसा)** अहिंसा **(जगति)** जगत् में **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्मरूप से **(विदितं)** प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है, परन्तु **(सा)** वह अहिंसा **(तत्र)** उस **(आश्रमविधौ)** आश्रम विधि में **(न अस्ति)** नहीं है। **(यत्र)** जिसमें कि **(अणुरपि)** थोड़ा भी **(आरम्भः)** आरम्भ होता है, **(ततः)** इसलिए **(तत्सिद्ध्यर्थं)** उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए **(परमकरुणः)** परम दयालु होकर **(भवानेव)** आपने ही **(उभयं)** बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दोनों प्रकार के **(ग्रन्थं)** परिग्रह को **(अत्याक्षीत्)** छोड़ा है **(च)** और **(विकृतवेषोपधिरतः)** यथाजात लिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त **(न 'अभवत्')** नहीं हुए हैं।

आगे कहते हैं कि आपका शरीर ही वीतरागता को प्रकट कर रहा है—

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तकरणं,
यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम्।
विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूषावेषव्यवधिरहितं)** आभूषण, वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और **(शान्तकरणं)** अपने-अपने विषयों से निःस्पृह इन्द्रियों से युक्त **(ते)** आपका **(वपुः)** शरीर **(यतः)** चूँकि **(स्मरशर-विषातङ्क-विजयम्)** काम के बाणरूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा **(भीमैः शस्त्रैः विना)** भयंकर शस्त्रों के बिना **(अदय-हृदयामर्ष-विलयं)** निर्दय हृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को **(संचष्टे)** कह रहा है, **(ततः)** इसलिए **(त्वं)** आप **(निर्मोहः)** मोह रहित और **(शान्ति-निलयः)** कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शान्ति के स्थान हैं तथा **(नः)** हमारे **(शरणम्)** शरणभूत—रक्षक **(असि)** हैं।

श्री अरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

इन विशेषणों से विशिष्ट भगवान् कैसे हुए? यह बतलाते हैं—

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनः।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुद्ध्य बुद्धकमलायतेक्षणः॥१॥

हरिवंशकेतु - रनवद्य - विनय - दम - तीर्थनायकः।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥२॥

अन्वयार्थ—(भगवान्) जो विशिष्ट ज्ञानवान् अथवा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं, **(ऋषिः)** जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं, **(परमयोगदहनहुत-कल्मषेन्धनः)** उत्कृष्ट शुक्लध्यानरूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईंधन को होम दिया है, **(बुद्धकमलायतेक्षणः)** जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं, **(हरिवंशकेतुः)** जो हरिवंश के प्रधान हैं, **(अनवद्यविनय-दमतीर्थनायकः)** जो निर्दोष विनय और इन्द्रियदमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं, **(शीलजलधिः)** जो शील के समुद्र हैं और **(अजरः)** जो वृद्धावस्था से रहित हैं। ऐसे **(त्वं)** आप **(अरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरः)** अरिष्टनेमि जिनेन्द्र **(ज्ञान-विपुलकिरणैः)** ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के द्वारा **(सकलं)** समस्त लोकालोक को **(प्रतिबुद्ध्य)** प्रकाशित कर अथवा जानकर **(विभवः)** संसार से मुक्त **(अभवः)** हुए थे।

ऐसे भगवान् के चरण युगल कैसे थे ? यह कहते हैं—

त्रिदशेन्द्र - मौलिमणि - रत्नकिरण-विसरोप-चुम्बितम्।
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥३॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरु-चिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(स्वार्थनियतमनसः)** मोक्षरूप स्वार्थ में जिनके मन नियन्त्रित हैं, **(सुधियः)** जो उत्तमबुद्धि से युक्त हैं और **(मन्त्रमुखराः)** जो 'णमो णेमिजिणाणं' इस सात अक्षर वाले मन्त्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं, ऐसे **(महर्षयः)** गणधरादि बड़े-बड़े ऋषि **(भवतः)** आपके **(तत्)** उस **(पादयुगलं)** चरणयुगल को **(प्रणमन्ति)** प्रणाम करते हैं, **(यत्)** जो कि **(त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्न-किरणविसरोपचुम्बितम्)** इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं, **(अमलं)** निर्मल—उज्ज्वल हैं, **(विकसत्कुशेशयदलारुणोदरं)** जिनका तलभाग खिले हुए कमलदल के समान लालवर्ण का है तथा **(नखचन्द्र-रश्मि-कवचाति-रुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम्)** जिनकी अंगुलियों का स्थान नखरूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेश से अत्यन्त मनोहर अग्रभाग से सहित है।

आगे नारायण और बलभद्र आपके चरणों में प्रणाम करते थे, यह कहते हैं–

द्युतिमद्रथाङ्गर - विबिम्बकिरण - जटिलांशुमण्डलः।
नीलजलदजलराशिवपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥५॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥६॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशुमण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शनचक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनकी कान्ति का मण्डल व्याप्त हो रहा है अथवा **(जटिलांशुमण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शनचक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनके कन्धे का प्रदेश व्याप्त हो रहा है, **(नील-जलद-जलराशिवपुः)** नीलमेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है **(ईश्वरः)** जो तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी हैं, ऐसे **(गरुडकेतुः)** श्रीकृष्ण **(च)** और **(हलभृत्)** बलभद्र इस प्रकार **(स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ)** आत्मबन्धु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे, **(जनेश्वरौ)** जो लोक के स्वामी थे और **(धर्मविनय-रसिकौ)** जो धर्मार्थ विनय के रसिक थे-ऐसे दोनों भाईयों ने **(बन्धुभिः सह)** अपने अन्य भाईयों के साथ **(ते)** आपके **(चरणारविन्द-युगलं)** चरण कमलों के युगल को **(सुतरां)** बार-बार **(प्रणेमतुः)** प्रणाम किया था।

जिस पर्वत पर नारायण और बलभद्र ने प्रणाम किया था, उस ऊर्जयन्तगिरि का वर्णन करते हैं–

ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥८॥

अन्वयार्थ–(भुवः ककुदम्) जो पृथ्वी का ककुद है–बैल के कन्धे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, **(खचरयोषिदुषित-शिखरैः)** जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा **(अलङ्कृतः)** सुशोभित है, **(मेघपटलपरिवीततटः)** जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं, **(वज्रिणा लिखितानि तव लक्षणानि वहति इति तीर्थं)** जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए **[हे नेमिजिन!]** आपके चिह्नों को धारण करता है, इसलिए तीर्थस्थान है। **(सततं**

अद्य च) हमेशा तथा आज भी **(प्रीतिविततहृदयैः)** प्रीति से विस्तृत चित्त वाले **(ऋषिभिश्च)** ऋषियों के द्वारा जो **(परितः)** सब ओर से **(भृशं)** अत्यधिक **(अभिगम्यते)** सेवित है, **(इति)** ऐसा वह **(विश्रुतः)** अतिशय प्रसिद्ध **(ऊर्जयन्तः अचलः)** ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है। (जिस पर जाकर कृष्ण और बलराम ने आपके चरणकमल-युगल को प्रणाम किया था)।

आगे भगवान् नेमिजिनेन्द्र के सर्वज्ञता सिद्ध करते हैं–

बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत्।
नाथ! युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद् विवेदिथ ॥९॥
अत एव ते बुधनुतस्य चरितगुण-मद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(हे नाथ) हे स्वामिन्! **(त्वं)** आप **(इदं अखिलं)** इस समस्त संसार को **(युगपत् च सदा)** एक साथ और सर्वदा **(तलामलकवत् विवेदिथ)** हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में **(बहिः)** बाह्य **(च)** और **(अन्तरपि)** अभ्यन्तर **(करणं)** इन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् **(च उभयथा)** और दोनों प्रकार से **(अविघाति)** बाधक नहीं हैं एवं **(अर्थकृत् न)** उपकारक भी नहीं हैं, **(अतएव)** इसीलिए **(बुधनुतस्य)** विद्वानों के द्वारा स्तुत **(ते)** आपके **(अद्भुतोदयम्)** आश्चर्यकारक अभ्युदय से युक्त तथा **(न्यायविहितं)** न्यायसिद्ध-आगम ज्ञान से सिद्ध **(चरितगुणं)** स्वकार्य की प्रसाधकता का **(अवधार्य)** निश्चय कर **(वयं)** हम **(सुप्रसन्न-मनसः)** अत्यन्त प्रसन्न चित्त होते हुए **(त्वयि जिने)** आप जिनेन्द्र में **(स्थिताः)** स्थित हुए हैं–आपके कार्य का साधक समझ आपकी शरण में आये हैं।

श्री पार्श्व जिनस्तवनम्

उपसर्ग के समय भगवान् की निश्चलता का वर्णन करते हैं–

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः॥१॥

अन्वयार्थ–(तमालनीलैः) तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, **(सधनुस्तडिद्-गुणैः)** इन्द्रधनुषों की बिजलीरूप डोरियों से सहित, **(प्रकीर्ण-भीमाशनि-वायुवृष्टिभिः)** भयंकर वज्र, आँधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे **(वैरिवशैः)** शत्रु के वशीभूत **(बलाहकैः)** मेघों के द्वारा **(उपद्रुतः)** उपद्रुत होने

पर भी **(महामनाः)** उत्कृष्ट धैर्य के धारक **(यः)** जो पार्श्वनाथ भगवान् **(योगतः)** शुक्लध्यानरूप योग से **(न चचाल)** विचलित नहीं हुए थे।

आगे धरणेन्द्र के द्वारा उपसर्ग निवारण का वर्णन करते हैं–

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥२॥

अन्वयार्थ–(उपसर्गिणं) उपसर्ग से युक्त **(यं)** जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(धरणो नागः)** धरणेन्द्र नामक नागकुमारदेव ने **(स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचा)** चमकती हुई बिजली के समान पीली कान्ति से युक्त **(बृहत्फणामण्डल-मण्डपेन)** बहुत भारी फणामण्डलरूपी मण्डप के द्वारा **(तथा)** उस तरह **(जुगूह)** वेष्टित कर लिया था, **(यथा)** जिस तरह कि **(विरागसन्ध्या-तडिदम्बुदः)** काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ **(धराधरं)** पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

उपसर्ग को जीतकर भगवान् अरहन्त पद को प्राप्त हुए, यह कहते हैं–

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया)** अपने शुक्ल-ध्यानरूप खड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा **(दुर्जयमोहविद्विषम्)** मोहरूपी दुर्जय शत्रु को **(निशात्य)** नष्टकर **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय **(अद्भुतं)** आश्चर्य-कारक गुणों से युक्त **(त्रिलोक-पूजातिशयास्पदं)** त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान **(आर्हन्त्यं पदम्)** आर्हन्त्यपद को **(अवापत्)** प्राप्त किया था।

भगवान् पार्श्वनाथ के प्रभाव से वशीभूत होकर अन्य तापस भी उनकी शरण आये, यह बतलाते हैं–

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥४॥

अन्वयार्थ–(यं) जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(ईश्वरं)** समस्त लोक के प्रभु तथा **(विधूतकल्मषं)** घातिचतुष्करूप पाप से रहित **(वीक्ष्य)** देखकर **(तथा बुभूषवः)** उन्हीं के समान होने के इच्छुक **(वनौकसः)** वनवासी **(ते तपोधनाः अपि)** वे तपस्वी भी **(स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः)** अपने प्रयास में

निष्फल बुद्धि होते हुए **(शमोपदेशं)** मोक्षमार्ग अथवा शान्ति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की **(शरणं प्रपेदिरे)** शरण को प्राप्त हुए थे।

इस प्रकार भगवान् ने केवलज्ञान होने पर क्या किया ? सो कहते हैं–

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः॥५॥

अन्वयार्थ–(सत्यविद्यातपसां प्रणायकः) जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के प्रणेता थे, **(समग्रधीः)** जो पूर्ण केवलज्ञान के धारक थे **(उग्रकुलाम्बरांशुमान्)** जो उग्रवंशरूपी कुल के चन्द्रमा थे और **(विलीन-मिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः)** जिन्होंने मिथ्यामार्ग सम्बन्धी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर दिया था, **(सः)** वे **(पार्श्वजिनः)** पार्श्वजिनेन्द्र **(मया)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा **(सदा)** हमेशा **(प्रणम्यते)** प्रणत किये जाते हैं–मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

श्री वीरजिनस्तवनम्

आपके वे कौन से गुण हैं, जिनके द्वारा आपकी कीर्ति फैली है ? सो कहते हैं–

कीर्त्या भुवि भासि तया वीर! त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया ॥१॥

अन्वयार्थ–(हे वीर!) हे वर्धमान जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(भुवि)** पृथ्वी पर **(गुणसमुच्छ्रया)** आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न **(भासितया)** सुशोभित अथवा उज्ज्वल **(तया)** उस **(कीर्त्या)** ख्याति से **(उडुसभासितया)** नक्षत्रों की सभा में आसित–स्थित एवं **(कुन्दशोभासितया)** कुन्दकुसुम की शोभा के समान सफेद **(भासा)** कान्ति से **(व्योम्नि)** आकाश में **(सोम इव)** चन्द्रमा के समान **(भासि)** सुशोभित होते हैं।

तव जिन! शासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः।
दोषकशासनविभवः स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥२॥

अन्वयार्थ–(हे जिन) हे वीरजिनेन्द्र! **(गुणानुशासनविभवः)** भव्यजीवों के भव को नष्ट करने वाला **(तव)** आपके **(शासनविभवः)** प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप सामर्थ्य **(कलावपि)** कलिकाल में भी **(जयति)** जयवन्त है–सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है **(च)** और **(प्रभा-कृशासनविभवः)** प्रभा–ज्ञानादितेज से आसनविभुओं–लोक के तथाकथित

हरि-हरादि स्वामिओं को कृश–महत्त्वहीन करने वाले **(दोषक-शासन-विभवः)** दोषरूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव **(एनं)** आपके इस शासन विभव की–प्रवचन सामर्थ्य की **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

वे इन्द्रादि जिनशासन की स्तुति करते हैं? सो कहते हैं–

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो द्वितयविरोधान्मुनीश्वरास्याद्वादः॥३॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीश्वर) हे मुनिनाथ! **(स्याद्वादः)** 'स्यात्' इस कथञ्चित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित **(तव)** आपका **(स्याद्वादः)** स्यादस्तीत्यादि अनेकान्तरूप कथन **(दृष्टेष्टाविरोधतः)** प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष है। इसके विपरीत **(इतरः अस्याद्वादः)** 'स्यात्' इस शब्द से रहित अन्य जो वाद–एकान्तरूप कथन है, वह **(द्वितयविरोधात्)** दृष्ट और इष्ट–प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष **(न)** नहीं है।

प्रकारान्तर से भी भगवान् के गुणों को दर्शाते हैं–

त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धामहितः ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सुरासुरमहितः)** सुरों तथा असुरों से पूजित **(असि)** हैं, किन्तु **(ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः)** मिथ्यादृष्टि प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं हैं, आप **(लोक त्रयपरमहितः)** तीनों लोकों के परम हितकारी हैं और **(अनावरण-ज्योतिरुज्वलद्धामहितः)** केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्तिरूप स्थान को प्राप्त हैं।

आपमें और भी क्या विशेषता है? यह कहते हैं–

सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन् आप **(सभ्यानां)** समवसरण सभा में स्थित भव्यजीवों के **(अभिरुचितं)** रुचिकर तथा **(श्रिया)** अष्टप्रातिहार्यरूप लक्ष्मी से **(चारु-चितं)** सुन्दरतापूर्वक व्याप्त **(गुणभूषणं)** गुणों के भूषण को अथवा गुणरूप आभूषण को **(दधासि)** धारण करते हैं **(च)** और **(स्वकान्त्या)** अपनी कान्ति

के द्वारा **(स्वस्यां रुचितं)** स्वकीय कान्ति में **(मग्नं)** निमग्न, **(रुचितं)** सुन्दर, **(तं मृगलाञ्छनं)** उस चन्द्रमा को **(जयसि)** जीतते हैं।

पुनः वे कौन से गुण हैं, जिन्हें भगवान् भूषण के समान धारण करते हैं? कहते हैं–

त्वं जिन! गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥६॥

अन्वयार्थ–(मुमुक्षुकामद!) हे मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले **(जिन!)** वीर जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(गतमदमायः)** गर्व और माया से रहित हैं तथा **(तव)** आपका **(भावानां)** जीवादि पदार्थ विषयक **(मायः)** केवलज्ञान अथवा आगमरूप प्रमाण **(श्रेयान्)** अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवन्! **(त्वया)** आपने **(श्रीमदमायः)** लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली श्रीलक्ष्मी से युक्त और माया से रहित **(सप्रयामदमायः)** श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रियविजय का **(समादेशि)** उपदेश दिया है।

दूसरे प्रकार से भी भगवान् के गुणों की स्तुति करते हुये, कहते हैं–

गिरिभित्त्यवदानवतः, श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो, गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥७॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमतः स्त्रवद्दानवतः दन्तिनः इव)** जिस प्रकार पहाड़ की कटनियों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले उत्तम जाति विशिष्ट तथा झरते हुए मद से सहित हाथी का **(ऊर्जितं)** बलशाली अर्थात् रुकावट से रहित **(गतं)** गमन होता है, उसी तरह **(शमवादान् अवतः)** दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा **(अपगतप्रमादानवतः)** अभयदान से युक्त **(तव)** आपका **(ऊर्जितं)** उत्कृष्ट **(गतं)** गमन–विहार हुआ था।

अब पर-मत और आपका-मत कैसा है? सो कहते हैं–

बहुगुणसम्पदसकलं, परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥८॥

अन्वयार्थ–(हे देव!) हे वीर जिनदेव! **(परमतं)** अन्य एकान्तवादियों का शासन **(मधुर-वचनविन्यासकलम् अपि)** कर्णप्रिय वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी **(बहुगुणसम्पदसकलं)** अत्यधिक गुणरूप सम्पत्ति से

विकल है, परन्तु **(तव)** आपका **(मतं)** शासन **(नयभक्त्यवतंसकलं)** नैगमादि नयों से उत्पन्न स्यादस्तीत्यादि भंगरूप आभूषणों से मनोज्ञ है अथवा नयों की उपासनारूप कर्णाभरण को देने वाला है, **(समन्तभद्रं)** सब ओर से कल्याणकारक है और **(सकलं)** पूर्ण है।

❑ ❑ ❑

प्रभु शरण

प्रभुवर पाकर तेरी शरणा, हो अंत समाधिमरणा॥
मैंने जीवन में बहु पाप किये, निज आतम को अति दुःख दिये।
अब और पाप ना करना, हो अंत समाधिमरणा॥
नहीं सुमिरन हो मोहीजन का, न हो विकल्प तन का धन का।
मेरे अंतर्मन में बसना, हो अंत समाधिमरणा॥
मैं क्षमा माँगता हूँ सबसे, तन से मन से और वचनों से।
मेरे मन को निर्मल रखना, हो अंत समाधिमरणा॥
नहीं मन में विषय कषाय रहे, नहीं तन में रोग विषाद रहे।
रटे शुद्धोऽहं नित रसना, हो अंत समाधिमरणा॥
धन दौलत की परवाह नहीं, और स्वर्ग सुखों की चाह नहीं।
मुझे मोक्ष महल में रहना, हो अंत समाधिमरणा॥
नित प्रभुवर तुमरा ध्यान रहे, जिनवाणी मुख पर वास करे।
मुझे गुरु चरण में रहना, हो अंत समाधिमरणा॥
अब भोगों की परवाह नहीं, यश मिल जाये कुछ चाह नहीं।
भावों को निर्मल रखना, हो अंत समाधिमरणा॥
अरिहंत प्रभु की शरण मिली, अब सिद्ध प्रभु से लगन लगी।
मुझे साधु शरण में रहना, हो अंत समाधिमरणा॥
जब लौ मम घट में श्वास रहे, मेरा मन भक्ति में लगा रहे।
जिनवाणी रंग में रंगना, हो अंत समाधिमरणा॥
मुझे मुनि बनने की चाह जगी, अब जग से कोई न आस रही।
अब अपने में है रहना, हो अंत समाधिमरणा॥

स्वरूप सम्बोधन पञ्चविंशतिः

ईसा की सातवीं शताब्दी में आचार्य अकलंकदेव ने २५ श्लोक प्रमाण अध्यात्म का अनुपम लघु ग्रन्थ ''स्वरूप सम्बोधन पञ्चविंशतिः'' रचा है। आपके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में यह ग्रन्थ अद्‌भुत है। इस ग्रन्थ में आत्मा को अनेक धर्मात्मक रूप द्रव्य, गुण, पर्याय की विवक्षा को लेकर और स्याद्वाद पद्धति से कथन किया है। निश्चय और व्यवहार के कथन से कर्ता भोक्ता, बन्ध और मुक्ति का विश्लेषण किया है। आचार्य श्रेष्ठ ने आत्म प्राप्ति का उपाय बताते हुए कहा है कि अपनी आत्मा, अपने द्वारा स्थित, अपने स्वरूप को, अपने लिए, अपनी आत्मा से, अपनी आत्मा में ध्यान करके प्राप्त करें।

मंगलाचरण

मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(कर्मभिः संविदादिना)** कर्मों से तथा सम्यग्ज्ञान आदि से क्रमशः **(मुक्तामुक्तैकरूपः)** मुक्त और अमुक्त होता हुआ एक रूप है, **(तं)** उस **(अक्षयं)** अविनाशी **(ज्ञानमूर्तिं)** ज्ञानमूर्ति **(परमात्मानं)** परमात्मा को **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

आत्मा का अस्तित्व और उसका लक्षण

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्धेतु - फलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यनन्तः स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सोपयोगः)** दर्शन, ज्ञान उपयोग वाला है **(क्रमात्)** क्रम से **(हेतुफलावहः)** कारण और उसके फल यानि कार्य को धारण करने वाला है **(ग्राह्यः)** ग्रहण करने योग्य है **(अग्राह्य)** ग्रहण करने के योग्य नहीं है, **(अनाद्यनन्तः)** अनादि और अनन्त है, **(स्थिति-उत्पत्ति-व्ययात्मकः)** ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय रूप है **(सः)** वह उपर्युक्त लक्षण से युक्त **(अयं)** यह जीवित शरीर में वर्तमान **(आत्मा)** आत्मा **(अस्ति)** है।

आत्मा की ज्ञान से भिन्नता तथा अभिन्नता

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥३॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं) आत्मा का ज्ञान गुण **(पूर्वापरीभूतं)** भूतकाल और भविष्यकाल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। **(सः)** वह **(अयं)** यह **(आत्मा)** आत्मा **(ज्ञानात्)** उस ज्ञान गुण से **(भिन्नः न)** सर्वथा भिन्न नहीं है **(च)** और **(अभिन्नः न)** सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, **(कथञ्चन)** किसी अपेक्षा से **(भिन्नाभिन्नः)** भिन्न और अभिन्न **(इति)** इस प्रकार **(कीर्तितः)** कहा गया है।

आत्मा का चेतन-अचेतन स्वरूप

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञान - दर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥४॥

अन्वयार्थ—(आत्मा) वह आत्मा **(प्रमेयत्वादिभिः धर्मैः)** प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा **(अचिद्)** अचित् रूप है **(ज्ञानदर्शनतः)** ज्ञान और दर्शन गुण से **(चिदात्मकः)** चेतनरूप है **(तस्मात्)** इस कारण कथंचित् **(चेतना-चेतनात्मकः)** चेतन और अचेतन रूप है।

द्रव्य प्रदेश और ज्ञानगुण की अपेक्षा आत्मा

स्वदेह-प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥५॥

अन्वयार्थ—(अयं) यह आत्मा **(स्वदेहप्रमितः)** अपने शरीर के बराबर है **(च)** और **(सः)** वह आत्मा **(ज्ञानमात्रः अपि)** ज्ञान गुण मात्र भी **(नैव)** नहीं है **(ततः)** इसलिए **(अयं)** यह आत्मा **(सर्वथा)** सर्व प्रकार से **(सर्वगतः न)** सर्व पदार्थों को स्पर्श करने वाला नहीं है **(च)** और **(विश्वव्यापी न)** समस्त जगत् में व्यापने वाला भी सर्वथा नहीं है।

आत्मा एक है या अनेक या दोनों रूप

नाना-ज्ञान-स्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक-स्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥६॥

अन्वयार्थ—(सः) वह आत्मा **(नानाज्ञानस्वभावत्वात्)** अनेक प्रकार के ज्ञानस्वरूप होने से **(अनेकः अपि)** अनेक होते हुए भी **(चेतनैक-स्वभावत्वात्)**

एक चेतना स्वभाव होने से **(एकः)** एक होता हुआ भी **(एकः नैव)** सर्वथा एक नहीं है किन्तु **(एकानेकात्मकः)** एक तथा अनेक रूप **(भवेत्)** होता है।

आत्मा न तो सर्वथा वक्तव्य है और न सर्वथा अवक्तव्य

सा वक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो,नापि वाचामगोचरः ॥७॥

अन्वयार्थ—(स) वह आत्मा **(स्वरूपाद्यैः)** स्वरूपादि (चतुष्टय की अपेक्षा से) **(वक्तव्यः)** वक्तव्य (कहने योग्य) है (तथा) **(परभावतः)** अन्य अविवक्षित धर्मों की अपेक्षा से **(निर्वाच्यः)** अवक्तव्य है। **(तस्मात्)** इस कारण से **(एकान्ततः)** एकान्तरूप से **(वाच्यो न)** वाच्य भी नहीं है (और) **(वाचाम-गोचरः)** वचनों के अगोचर/अवक्तव्य **(अपि)** भी **(न)** नहीं है।

विधिनिषेधात्मक आत्मा मूर्तिक भी अमूर्तिक भी

स स्याद्-विधि-निषेधात्मा, स्वधर्म-परधर्मयोः।
समूर्तिबोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥८॥

अन्वयार्थ—(सः) वह आत्मा **(स्वधर्म-परधर्मयोः)** अपने धर्मभाव और परधर्म कथन में **(विधि-निषेधात्मा)** विध्यात्मक तथा निषेधात्मक **(स्यात्)** होता है। **(बोधमूर्तित्वाद्)** ज्ञानमूर्ति होने से **(समूर्तिः)** मूर्तिमान है **(च)** और **(विपर्ययात्)** विपरीत अपेक्षा से **(अमूर्तिः)** अमूर्तिक है।

अनेक धर्मात्मक आत्मा की तात्त्विक व्यवस्था

इत्याद्यनेकधर्मत्वं, बन्ध-मोक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्, कारणैः स्वयमेव तु ॥९॥

अन्वयार्थ—(इत्यादि) पूर्वोक्त (प्रकार से आत्मा की) **(अनेकधर्मत्वं)** अनेक धर्मात्मकता को (तथा) **(बन्ध-मोक्षौ तु)** बन्ध और मोक्ष को **(तयोः)** उन दोनों के **(फलं)** फल को **(तत्तत्कारणैः)** उन उन कारणों से **(आत्मा)** यह आत्मा **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(स्वीकुरुते)** स्वीकार करता है।

आत्मा स्वयं कर्त्ता-भोक्ता-भ्रमणकर्त्ता और मुक्त होती है

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरुपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यः) जो आत्मा **(कर्मणां)** अपने राग-द्वेष मोह आदि भावों का तथा उन भावों के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध **(कर्ता)** करने वाला है **(स**

एव) वही आत्मा **(तत्फलानां)** उन कर्मों के शुभ-अशुभ फलों का **(भोक्ता)** भोगने वाला है। **(तु)** और **(हि)** निश्चय करके **(बहिरन्तः उपायाभ्यां)** बहिरंग और अंतरंग उपायों द्वारा **(तेषां)** उन कर्मों का **(मुक्तत्व एव)** छूट जाना/मोक्ष भी उसी आत्मा को होता है।

सांसारिक दुखों से छूटने के अंतरंग उपाय

सद्दृष्टि - ज्ञान - चारित्रमुपायः स्वात्म-लब्धये।
तत्त्वे याथात्म्य-सौस्थित्यमात्मनो दर्शनं स्मृतम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(स्वात्म-लब्धये) अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करने के लिए **(उपायः)** अंतरंग उपाय **(सद्दृष्टि-ज्ञान-चारित्रम्)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं **(तत्त्वे)** आत्म तत्त्व में **(याथात्म्य-सौस्थित्यम्)** वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान **(आत्मनः)** आत्मा का **(दर्शनं स्मृतम्)** सम्यग्दर्शन माना गया है।

सांसारिक दुखों से छूटने के अंतरंग उपाय

यथावद् वस्तु - निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मा, कथञ्चित् प्रमितेः पृथक्॥१२॥

अन्वयार्थ—(प्रदीपवत्) अपने आपको तथा अन्य पदार्थों को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान **(यथावद्वस्तु-निर्णीतिः)** आत्मा का तथा अन्य पदार्थों का यथार्थ निर्णय करना/जानना **(सम्यग्ज्ञानं)** सम्यग्ज्ञान है। **(तत्)** वह सम्यग्ज्ञान **(स्वार्थव्यवसायात्मा)** अपने आत्मतत्त्व का तथा अजीव आदि तत्त्वों का निश्चय करने रूप है। **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से वह सम्यग्ज्ञान **(प्रमितेः)** प्रमिति यानी अज्ञान की निवृत्ति से **(पृथक्)** अलग है।

सांसारिक दुखों से छूटने के अन्तरंग उपाय

दर्शन - ज्ञान - पर्यायेषूत्तरोत्तर - भाविषु।
स्थिरमालम्बनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुख-दुःखयोः॥१३॥

अन्वयार्थ—(उत्तरोत्तर-भाविषु) आगे-आगे या उन्नत-उन्नत होने वाली **(दर्शन-ज्ञान-पर्यायेषु)** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की पर्यायों में **(स्थिरं)** अचल **(आलम्बनं)** आलम्बन करना-ठहरना **(यद्वा)** अथवा **(सुख-दुःखयोः)** कर्मोदय से होने वाले सुख-दुख में **(माध्यस्थ्यं)** माध्यस्थ भाव होना (ही चारित्र है)।

सांसारिक दुखों से छूटने के अन्तरंग उपाय

ज्ञाता द्रष्टाहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवा परम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अहं एकः) मैं अकेला हूँ **(च अपरः न)** और दूसरा कोई मेरा नहीं है **(सुखे दुःखे)** सुख-दुख में **(ज्ञाता द्रष्टा)** जानने देखने वाला हूँ **(इति इदं)** इस प्रकार यह **(भावनादार्ढ्यं)** आत्मभावना की दृढ़ता **(अथवा)** या **(परम्)** उत्कृष्ट वीतरागभावमय **(चारित्रं)** सम्यक्चारित्र है।

मुक्ति के बहिरंग उपाय

यदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।
तद्बाह्यं देश-कालादि, तपश्च बहिरङ्गकम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(एतन्मूलहेतोः) इस अंतरंग उपादान मूलकारण का **(यत्)** जो **(देशकालादि)** देश, काल आदि **(बाह्य)** बाहरी **(च)** और **(तपः)** अनशनादि बाह्य तप **(सहकारकं-कारणं)** सहकारी कारण है **(तत्)** वह **(बहिरङ्गकं कारणं)** बहिरंग उपाय **(स्यात्)** होता है।

सदैव शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(इदं सर्वं आलोच्य)** यह सब आलोचना/गुण-दोष का विचार करके **(सौस्थ्ये च दौःस्थ्ये)** अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में **(शक्तितः)** यथाशक्ति **(नित्यं)** सदा **(राग-द्वेष-विवर्जितम्)** रागद्वेष से रहित **(आत्मानं)** आत्मा को **(भावयेत्)** भावे अर्थात् भावना करे।

शुद्धात्म भावना क्यों आवश्यक है

कषायैः रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते।
नीली-रक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः॥१७॥

अन्वयार्थ—(कषायैः रञ्जितं) क्रोधादि कषायों से रंगा हुआ **(चेतः)** मन **(तत्त्वं)** आत्मा के शुद्धस्वरूप को **(नैव)** नहीं **(अवगाहते)** विचार पाता जैसे कि **(नीलीरक्ते अम्बरे)** नीले रंगे हुए कपड़े पर **(कौंकुमः)** कुंकुम का **(रागः)** रंग **(हि)** निश्चय करके **(दुराधेयः)** दुराधेय है (चढ़ना अत्यन्त कठिन है)।

तत्त्वज्ञानी कैसा हो ?

ततस्त्वं दोष-निर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्वचिन्ता-परो भव ॥१८॥

अन्वयार्थ—(ततः) इस कारण **(दोषनिर्मुक्त्यै)** रागद्वेष, क्षोभ, व्याकुलता, क्रोध आदि दोषों से छूटने के लिए **(सर्वतः)** समस्त इष्ट-अनिष्ट विषयों से **(त्वं)** तुम **(निर्मोहा)** मोह-ममता रहित **(भव)** हो। **(उदासीनत्वं)** संसार, शरीर, भोगों से उदासीनता का **(आश्रित्य)** आश्रय कर **(तत्त्वचिन्ता-परः)** आत्म तत्त्व के चिंतन में तत्पर **(भव)** हो जाओ।

हेय का त्याग, उपादेय का ग्रहण

हेयोपादेय-तत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः।
निरालम्बोऽन्यतः स्वस्मिन्नुपेये सावलम्बनः ॥१९॥

अन्वयार्थ—(हेयोपादेय-तत्त्वस्य) हेय और उपादेय तत्त्व की **(स्थितिं)** स्थिति को—स्वरूप को **(विज्ञाय)** जानकर **(अन्यतः हेयतः)** अपने से भिन्न हेय तत्त्वों से **(निरालम्बः)** आलम्बन रहित होकर (उनका आश्रय छोड़कर) **(उपेये)** उपादेयभूत अथवा ग्रहण करने योग्य **(स्वस्मिन्)** अपने स्वरूप में **(सावलम्बनः)** आलम्बन सहित हो जाओ (उसका आश्रय ग्रहण करो)।

तीव्र तृष्णा त्याग की प्रेरणा

तदाप्यतितृष्णावान्, हन्त! मा भूस्त्वात्मनि।
यावत्तृष्णाप्रभूतिस्ते, तावन्मोक्षं न यास्यसि॥२०॥

अन्वयार्थ—(हन्तः) हे आत्मन्! **(तथापि)** ऐसा (आत्मचिन्तन) होने पर भी **(त्वम्)** तुम **(आत्मनि)** अपने विषय में (भी) **(अतितृष्णावान्)** अत्यन्त तृष्णा से युक्त **(मा भूः)** मत होओ (क्योंकि) **(यावत्)** जब तक **(ते)** तुम्हारे (अन्तस् में) **(तृष्णाप्रभूतिः)** तृष्णा की भावना उत्पन्न होती है। **(तावत्)** तब तक (तुम) **(मोक्षं)** मोक्ष को **(न यास्यसि)** नहीं जा सकोगे।

सम्पूर्ण इच्छाओं का त्याग ही मोक्ष है

मोक्षेऽपि यस्य नाकाङ्क्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, काङ्क्षां न क्वापि योजयेत् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसकी **(मोक्षे)** मोक्ष में **(अपि)** भी **(आकाङ्क्षा न)** अभिलाषा नहीं होती **(सः)** वह भव्य मनुष्य **(मोक्षं अधिगच्छति)** मोक्ष को

प्राप्त कर लेता है **(इति उक्तात्वात्)** ऐसा सर्वज्ञदेव द्वारा कहा होने से **(हितान्वेषी)** अपना हित खोजने वाला व्यक्ति **(क्व अपि)** किसी भी विषय में **(आकाङ्क्षां)** इच्छा को **(न योजयेत्)** न करे।

स्वरूपोपलब्धि का अन्य उपाय

स्वं परञ्चेति वस्त्वित्थं, वस्तुरूपेण चिन्तय।
उपेक्षा-भावनोत्कर्ष-पर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥२२॥

अन्वयार्थ—(स्वं परञ्चेति) अपनी और परायी—ऐसी (समस्त) **(वस्तु)** वस्तुओं को **(वस्तुरूपेण) वस्तुरूप से** (जो वस्तु जैसी है, उसी रूप) **(चिन्तय)** विचार करो (और फिर) **(इत्थम्)** इस प्रकार (विचार होने पर) **(उपेक्षा-भावनोत्कर्ष-पर्यन्ते)** उपेक्षारूप माध्यस्थ भावना का चरम उत्कर्ष प्राप्त होने पर **(शिवम्)** मोक्ष को **(आप्नुहि)** प्राप्त करो।

स्वाधीन सुख के लिए प्रयत्न करो

साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात् सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने फले तात!, यत्नं किं न करिष्यसि॥२३॥

अन्वयार्थ—(सा) वह इच्छा **(अपि)** भी **(यदि)** अगर **(स्वात्म-निष्ठत्वात्)** अपनी आत्मा में ही होने के कारण **(सुलभा चिन्त्यते)** सुलभ समझते हो तो **(तात!)** हे भाई! **(आत्माधीने फले)** स्वाधीन फल में **(यत्नं)** पुरुषार्थ—प्रयत्न **(किं)** क्या **(न करिष्यसि)** नहीं करोगे ? अर्थात् अवश्य करोगे।

शुभोपयोग से शुद्धोपयोग में आने का क्रम

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्दि किन्त्विमम्।
अनाकुलः स्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२४॥

अन्वयार्थ—(स्वं) अपनी आत्मा को **(परं)** शरीर आदि अन्य पदार्थों को **(विद्धि)** समझो **(किन्तु)** लेकिन **(तत्र अपि)** उसमें भी **(इमम्)** इस भेदभावात्मक **(व्यामोहं)** पक्ष को भी **(छिन्दि)** नष्ट कर दो **(केवले)** सिर्फ **(अनाकुल-स्वसंवेद्ये)** निराकुलतारूप अनुभव से जानने योग्य **(स्वरूपे)** अपने स्वरूप में **(तिष्ठ)** ठहर जाओ।

षट्कारकरूप से आत्मद्रव्य

स्वः स्वं स्वेन स्थिरं स्वस्मै, स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरे।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दममृतं पदम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(स्वः) अपना आत्मा **(स्वेन स्थितं)** अपने द्वारा स्थित **(स्वं)** अपने स्वरूप को **(स्वस्मै)** अपने लिए **(स्वस्मात्)** अपने आत्मा से **(स्वस्य)** अपने आत्मा का **(स्वोत्थं)** अपने आत्मा से उत्पन्न हुए **(अविनश्वरे)** अविनाशी **(आनन्दं अमृतं पदं)** आनन्द-अमृतमय पद/मोक्ष को **(स्वस्मिन्)** अपने आत्मा में **(ध्यात्वा)** ध्यान करके **(लभेत्)** प्राप्त करे।

ग्रन्थ के स्वाध्याय का फल

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं,
य एतदाख्याति शृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमात्म - सम्पदम्,
स्वरूपसम्बोधन - पञ्चविंशतिः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(इति) पूर्वोक्त इस प्रकार से **(यः)** जो व्यक्ति **(स्वतत्त्वं)** अपने आत्मतत्त्व को **(परिभाव्य)** परिशीलन/विचार कर **(एतत् वाङ्मयं)** इस वचनरूप शास्त्र को **(आदरात्)** आदर से **(आख्याति)** बाँचता है **(च)** और **(शृणोति)** सुनता है **(तस्मै)** उसके लिए **(स्वरूपसम्बोधन-पञ्चविंशतिः)** स्वरूप-सम्बोधनपञ्चविंशति नाम का शास्त्र **(परमात्म-सम्पदं)** परमात्मारूपी सिद्धि-सम्पत्ति को **(करोति)** प्रदान करता है।

❑ ❑ ❑

- ❑ साधक को प्रवृत्ति में मूलाचार एवं निवृत्ति में समयसार का अवलम्बन लेना चाहिए।
- ❑ भव्यत्व की पहचान भले ही सम्यग्दर्शन के साथ हो सकती है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति रत्नत्रय के साथ ही होगी।
- ❑ कर्म निर्जरा करने वाला साधक महान् है। वह कुछ ही समय में आत्मा को कंचन-सा शुद्ध कर देता है।
- ❑ पञ्चेन्द्रिय के विषम विषयों में रच पचने वाले विषय-कषायी पुरुषों को समयसार शिरोगम तो हो सकता है किन्तु हृदयंगम कदापि नहीं।

इष्टोपदेश

इस अध्यात्म ग्रन्थ में इष्ट आत्मा के स्वरूप का परिचय प्रस्तुत किया है। ५१ श्लोकों में पूज्यपाद स्वामी ने अध्यात्म को गागर में सागर भर देने की कहावत चरितार्थ की है। ईसा की छठवीं शताब्दी में रचित इस ग्रन्थ में संसार की यथार्थ स्थिति का परिज्ञान प्राप्त होने से राग-द्वेष, मोह की परिणति घटती है। इस लघुकाय ग्रन्थ में समयसार की गाथाओं का सार अंकित किया गया है। शैली सरल और प्रवाहमय है।

मंगलाचरण

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै सज्ज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस भगवान् के **(कृत्स्नकर्मणः)** समस्त कर्मों का **(अभावे)** अभाव हो जाने पर **(स्वयं)** अपने आप **(स्वभावाप्तिः)** स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है **(तस्मै)** उस **(संज्ञानरूपाय)** अनन्तज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परमात्मा के लिए **(नमः अस्तु)** नमस्कार हो।

निमित्तोपादान से सिद्धि

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ॥२॥

अन्वयार्थ—(योग्योपादानयोगेन) योग्य उपादान के मिलने से **(दृषदः)** जैसे स्वर्णपाषाण की **(स्वर्णता मता)** स्वर्णरूपता मानी गई है, उसी तरह **(द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तौ)** सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल आदि कारण रूप सामग्री के मिल जाने पर **(आत्मनः अपि)** संसारी आत्मा की भी **(आत्मता)** शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना **(मता)** माना गया है।

व्रतों की सार्थकता

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥३॥

अन्वयार्थ—(व्रतैः) व्रतों के द्वारा **(दैवं पदं)** देवपद पाना **(वरं)** अच्छा है (किन्तु) **(वत)** खेद है! **(अव्रतैः)** अव्रतों के द्वारा **(नारकं)** नरक में उत्पन्न होना **(न)** अच्छा नहीं है क्योंकि **(छायातपस्थयोः)** छाया और धूप में स्थित

व्यक्तियों के समान **(प्रतिपालयतोः)** प्रतीक्षारत पुरुषों में **(महान् भेदः)** बड़ा भारी अन्तर है ।

शिव प्रद भावों से स्वर्ग सहज ही

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ?॥४॥

अन्वयार्थ– (यत्र भावः) जहाँ भाव **(शिवं दत्ते)** मोक्ष को देता है [वहाँ] **(द्यौः)** स्वर्ग की प्राप्ति **(कियद्दूरवर्तिनी)** कितनी दूर है ? **(यः गव्यूतिं)** जो मनुष्य दो कोश तक **(आशु नयति)** [भार को] शीघ्र ले जाता है। **(सः)** वह **(क्रोशार्धे)** आधा कोश ले जाने में **(किं सीदति)** क्या दुखी हो सकता है ? अर्थात् नहीं।

स्वर्ग सुख का कथन

हृषीकज-मनातङ्कं दीर्घ-कालोपलालितम् ।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ॥५॥

अन्वयार्थ– (नाके) स्वर्ग में **(नाकौकसाम्)** देवों का **(हृषीकजं)** इन्द्रियों से उत्पन्न **(अनातङ्कं)** दुख रहित और **(दीर्घकालोपलालितम्)** दीर्घकाल तक सेव्य **(सौख्यं)** सुख **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम् इव)** देवों के समान ही होता है।

इन्द्रिय सुख-दुख भ्रान्ति मात्र

वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम् ।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते भोगा रोगा इवापदि ॥६॥

अन्वयार्थ– (देहिनाम्) संसारी जीवों के **(एतत् सुखं)** ये इन्द्रिय सुख **(च)** और **(दुःखं)** दुख **(वासनामात्रं एव)** भ्रम मात्र ही हैं **(तथा हि)** इसलिए **(एते भोगाः)** ये इन्द्रियों के भोग **(आपदि)** आपत्ति के समय **(रोगाः इव)** रोगों की तरह **(उद्वेजयन्ति)** व्याकुल करते हैं।

मोहावृत ज्ञान वस्तु - स्वरूप नहीं जानता

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ॥७॥

अन्वयार्थ–(मोहेन) मोह से **(संवृतं ज्ञानं)** ढका हुआ ज्ञान **(स्वभावं)** आत्म स्वभाव को **(न हि लभते)** नहीं जान पाता **(यथा)** जैसे **(मदनकोद्रवैः)**

नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्तः पुमान्)** मूर्च्छित/बेखबर मनुष्य **(पदार्थानां)** पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता।

मोही, पर पदार्थ को अपना मानता है

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते ॥८॥

अन्वयार्थ– (वपुः गृहं) शरीर, घर **(धनं दाराः)** धन, स्त्रियाँ **(पुत्राः मित्राणि)** पुत्र, मित्र और **(शत्रवः)** शत्रु **(सर्वथा)** सब तरह से **(अन्य-स्वभावानि)** अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु **(मूढः)** मोही प्राणी इन्हें **(स्वानि प्रपद्यते)** अपना समझता है।

संसारी जीव का कुटुम्ब परिवार कैसा है?

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य संवसन्ति नगे नगे ।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ॥९॥

अन्वयार्थ– (नगे नगे) वृक्ष-वृक्ष पर **(दिग्देशेभ्यः)** दिशाओं और देशों से **(एत्य)** आकर **(खगाः)** पक्षी [संध्या के समय] **(संवसन्ति)** ठहर जाते हैं तथा **(प्रगे प्रगे)** प्रातः **(स्वस्वकार्यवशात्)** अपने-अपने कार्य के वश से **(देशे दिक्षु)** भिन्न-भिन्न देश, दिशाओं में **(यान्ति)** चले जाते हैं।

अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ

विराधकः कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ– (विराधकः) अपकार करने वाला मनुष्य **(हन्त्रे जनाय)** मारने वाले मनुष्य के लिए **(कथं परिकुप्यति)** क्यों क्रोध करता है **(त्र्यङ्गुलं)** तीन अँगुली वाले उपकरण को **(पद्भ्यां)** पैरों के द्वारा **(पातयन्)** गिराता हुआ मनुष्य **(स्वयं दण्डेन)** स्वयं लकड़ी के बेंट (डंडे) द्वारा **(पात्यते)** गिराया (झुकाया) जाता है।

संसार में जीव किस तरह घूमता है

रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षण - कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥११॥

अन्वयार्थ– (असौ) यह **(जीवः)** संसारी प्राणी **(संसाराब्धौ)** इस संसार-समुद्र में **(अज्ञानात्सुचिरं)** अज्ञान के कारण अनादिकाल से **(रागद्वेषद्वयी-**

दीर्घ-नेत्राकर्षण-कर्मणा) राग-द्वेष रूपी दो लम्बी डोरियों के खींचने रूप कार्य से अर्थात् घुमायी जाती हुई मथानी की तरह **(भ्रमति)** घूम रहा है।

कोई न कोई विपत्ति मौजूद ही रहती है

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुराः विपदः पुरः॥१२॥

अन्वयार्थ— (भव-पदावर्ते) संसाररूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में **(पदिका इव)** रहट के डण्डे के समान **(यावत्)** जब तक **(विपद्)** एक विपत्ति **(अतिवाह्यते)** समाप्त की जाती है **(तावत्)** तब तक **(अन्याः प्रचुराः)** दूसरी बहुत सी **(विपदः)** विपत्तियाँ **(पुरः भवन्ति)** सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

हर स्थिति में धन दुखकर

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा ॥१३॥

अन्वयार्थ—(दुरर्ज्येन) बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा **(असुरक्ष्येण)** सुरक्षित न रहने वाले **(नश्वरेण)** विनश्वर **(धनादिना)** धन, पुत्रादिकों के द्वारा **(स्वस्थंमन्यः)** अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानने वाला **(कः अपि जनः)** कोई भी मनुष्य **(सर्पिषा)** घी को खाकर **(ज्वरवान् इव)** ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

संसारी प्राणी दूसरों का दुख देखता है

विपत्तिमात्मनो मूढः परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान - मृगाकीर्ण - वनान्तर - तरुस्थवत् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(दह्यमान-मृगाकीर्ण-वनान्तर-तरुस्थवत्) अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों से भरे वन के मध्य वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान **(मूढः)** मूर्ख प्राणी **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिम् इव)** विपत्ति के समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

लोभी को धन इष्ट है

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष - हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(कालस्य निर्गमम्) समय का व्यतीत होना **(आयुर्वृद्धि-**

क्षयोत्कर्ष-हेतुं) आयु क्षय और धनवृद्धि का कारण है **(वाञ्छतां धनिनां)** धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(सुतराम्)** अधिक तरह **(धनं इष्टम्)** धन इष्ट होता है।

त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति ॥१६॥

अन्वयार्थ—(त्यागाय) दान करने के लिए तथा **(श्रेयसे)** अपने सुख प्राप्त करने के लिए **(यः अवित्तः)** जो निर्धन मनुष्य **(वित्तं सञ्चिनोति)** धन को संग्रहीत करता है **(सः)** वह (मनुष्य) **(स्नास्यामि)** मैं स्नान करूँगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पङ्केन विलिम्पति)** कीचड़ से लिप्त करता है।

हर स्थिति में भोग कष्टकर

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः॥१७॥

अन्वयार्थ—(आरम्भे) प्रारम्भ में **(तापकान्)** सन्ताप देने वाले **(प्राप्तौ)** प्राप्त हो जाने पर **(अतृप्ति- प्रतिपादकान्)** तृष्णा को बढ़ाने वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटने योग्य **(कामान्)** विषय भोगों को **(कः सुधीः)** कौन बुद्धिमान् पुरुष **(कामं)** बड़ी रुचि से **(सेवते)** सेवन करता है।

अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्तापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यत्सङ्गं प्राप्य) जिसका संयोग पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(स कायः)** वह शरीर **(सन्तापायः)** सदा विनाशीक बना रहता है अतः **(तदर्थं)** उसके लिए **(प्रार्थना वृथा)** पवित्र करने की कामना व्यर्थ है।

उपकारक/अपकारक

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(यत् जीवस्य) जो कार्य आत्मा के **(उपकाराय)** उपकार के लिए है **(तत् देहस्य)** वह शरीर का **(अपकारकम्)** अपकार करने वाला है तथा **(यत्)** जो **(देहस्य उपकाराय)** शरीर के उपकार के लिए है **(तत्)** वह **(जीवस्य अपकारकम्)** आत्मा का अपकार करने वाला है।

विवेकी किसमें आदर करे

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥२०॥

अन्वयार्थ— (इतःदिव्यः) एक तरफ दिव्य **(चिन्तामणिः)** चिन्तामणि रत्न और **(इतः)** दूसरी तरफ **(पिण्याकखण्डकम्)** खली का टुकड़ा **(चेत् उभे)** यदि ये दोनों **(ध्यानेन लभ्ये)** ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो **(विवेकिनः)** बुद्धिमान् मनुष्य **(क्व)** किसमें **(आद्रियन्तां)** आदर करे ?

आत्मा का स्वरूप

स्वसंवेदन - सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥२१॥

अन्वयार्थ—(आत्मा) यह आत्मा **(स्वसंवेदन-सुव्यक्तः)** आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रकट होता है/जाना जाता है **(तनुमात्रः)** शरीर के बराबर है **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्तसौख्यवान्)** अनन्त सुख वाला है तथा **(लोकालोक- विलोकनः)** लोक और अलोक को जानने देखने वाला है।

आत्मध्यान करने का उपाय

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(आत्मवान्) आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रिय समूह को **(संयम्य)** संयमित कर [पंचेन्द्रिय के विषयों से रोककर] **(चेतसः)** चित्त की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मानं)** अपने आत्मा को **(आत्मना एव)** अपने आत्मा द्वारा ही **(ध्यायेत्)** ध्यावे।

जो है उसी का दान

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥२३॥

अन्वयार्थ— (अज्ञानोपास्तिः) अज्ञानी की उपासना/सेवा **(अज्ञानं)** अज्ञान को **(ददाति)** देती है **(ज्ञानिसमाश्रयः)** ज्ञानियों की उपासना/सेवा **(ज्ञानं)** ज्ञान को, **(तु)** क्योंकि **(इदम् वचः)** यह बात **(सुप्रसिद्धम्)** अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि **(यस्य)** जिसके पास **(यत् अस्ति)** जो होता है, [उसी को वह] **(ददाति)** देता है।

आत्म-ध्यान का फल

परीषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अध्यात्मयोगेन) अध्यात्म के योग से/चिन्तन से **(परीषहाद्य-विज्ञानात्)** परीषह आदि का अनुभव/ज्ञान नहीं होने से **(आस्त्रवस्य)** आस्त्रव को **(निरोधिनी)** रोकने वाली **(कर्मणाम्)** कर्मों की **(निर्जरा)** निर्जरा **(आशु जायते)** शीघ्र होती है।

एकत्व में सम्बन्ध नहीं

कटस्य कर्त्ताहमिति सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥२५॥

अन्वयार्थ—(अहम्) मैं **(कटस्य कर्त्ता)** चटाई का कर्ता हूँ **(इति सम्बन्धः)** इस प्रकार कर्ता-कर्म सम्बन्ध **(द्वयोर्द्वयोः)** भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में **(स्यात्)** होता है, परन्तु **(यदा ध्यानं ध्येयं)** जब ध्यान ध्येय **(आत्मा एव)** आत्मा ही हो **(तदा)** तब **(कीदृशः सम्बन्धः)** सम्बन्ध कैसा?

बन्ध और मुक्ति के कारण

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(सममः) ममता सहित और **(निर्ममः)** ममता रहित **(जीवः)** जीव **(क्रमात्)** क्रम से [कर्मों से] **(बध्यते)** बँधता है तथा **(मुच्यते)** छूटता है **(तस्मात्)** इस कारण **(सर्वप्रयत्नेन)** सर्व प्रयत्न से **(निर्ममत्वं)** निर्ममत्व को **(विचिन्तयेत्)** ध्यावे।

निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥२७॥

अन्वयार्थ– (अहम् एकः) मैं एक हूँ **(निर्ममः)** ममता रहित **(शुद्धः)** शुद्ध हूँ **(ज्ञानी)** ज्ञानी हूँ तथा **(योगीन्द्रगोचरः)** योगियों /मुनियों द्वारा जानने योग्य हूँ **(सर्वे अपि)** सभी **(संयोगजाः)** संयोग से उत्पन्न होने वाले **(भावाः)** पदार्थ **(मत्तः)** मुझसे **(सर्वथा)** सब तरह से **(बाह्याः)** भिन्न हैं।

सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा

दुःखसंदोहभागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२८॥

अन्वयार्थ–(इह) इस संसार में (**देहिनाम्**) जीवों के **(संयोगात्)** संयोग से **(दुःख-संदोहभागित्वं)** दुख समूह का भागीदार बनना पड़ता है **(ततः)** इस कारण **(एनं सर्वं)** इन सभी [शरीर और कर्म के] संयोग को **(मनोवाक्काय-कर्मभिः)** मन, वचन, काय की क्रिया/चेष्टा से **(त्यजामि)** छोड़ता हूँ।

पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥

अन्वयार्थ–(मे) मेरी **(मृत्युः न)** मृत्यु नहीं होती [इस कारण] **(भीतिः)** भय **(कुतः)** किससे (हो सकता है?) **(मे)** मुझे **(व्याधिः न)** कोई रोग नहीं होता [इसलिए] **(कुतःव्यथा)** दुख किससे (हो सकता है?) **(अहम्)** मैं **(बालः न)** बालक नहीं हूँ **(वृद्धः न)** बूढ़ा नहीं हूँ **(युवा न)** जवान नहीं हूँ **(एतानि)** ये सब अवस्थायें **(पुद्गले)** पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥३०॥

अन्वयार्थ– (सर्वे अपि) सभी **(पुद्गलाः)** पुद्गल परमाणु **(मया मोहात्)** मेरे द्वारा मोह से **(मुहुः)** बार-बार **(भुक्तोज्झिता)** भोगे और छोड़े जा चुके हैं अतः **(अद्य)** अब **(उच्छिष्टेषु इव)** जूठन के समान **(तेषु)** उन पुद्गलों में **(मम विज्ञस्य)** मुझ बुद्धिमान की **(का स्पृहा)** क्या लालसा हो सकती है?

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

कर्म कर्म - हिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति ॥३१॥

अन्वयार्थ—(कर्म) कर्म **(कर्महिताबन्धि)** अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा **(जीवः)** आत्मा **(जीवहितस्पृहः)** अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है **(स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे)** अपने-अपने शक्तिशाली प्रभाव के होने पर **(को वा स्वार्थं)** कौन-सा व्यक्ति अपना हित **(न वाञ्छति)** नहीं चाहता ?

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(परोपकृतिं) परोपकार को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(स्वोपकारपरः)** अपने उपकार करने में तत्पर **(भव)** हो, **(दृश्यमानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** इस जगत् की तरह **(अज्ञः)** अज्ञानी जीव **(परस्य)** पर का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

भेदविज्ञान का उपाय और फल

गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥३३॥

अन्वयार्थ— (यः) जो मनुष्य **(गुरूपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से तथा **(संवित्तेः)** आत्म-ज्ञान से **(स्वपरान्तरम्)** स्व और पर पदार्थों के अन्तर को **(जानाति)** जानता है **(सः)** वह **(निरन्तरम्)** सतत् **(मोक्ष-सौख्यं)** मोक्ष के सुख को **(जानाति)** जानता है।

निजात्मा ही गुरु है

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥३४॥

अन्वयार्थ— (स्वस्मिन्) अपने में ही **(सदभिलाषित्वात्)** प्रशस्त [मोक्ष सुख की] अभिलाषा करने से **(अभीष्टज्ञापकत्वतः)** अपने प्रिय पदार्थ का जानने वाला होने से तथा **(स्वयं हितप्रयोक्तृत्वात्)** अपने हित में अपने आपको लगाने से **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(आत्मनः गुरुः)** अपना गुरु है।

निमित्त सहायक मात्र है

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अन्वयार्थ— गुरु आदि के उपदेश से **(अज्ञः)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** विज्ञानता

(ज्ञान दशा) को **(न आयाति)** प्राप्त नहीं होता और **(विज्ञः)** ज्ञानी **(अज्ञत्वं)** अज्ञानता को **(न ऋच्छति)** प्राप्त नहीं होता है **(अन्यः)** अन्य अध्यापक, गुरु आदि **(तु)** तो (ज्ञान प्राप्ति में) **(गतेः)** चलने में **(धर्मास्तिकायवत्)** धर्मास्तिकाय की तरह **(निमित्तमात्रम्)** केवल सहायक मात्र हैं।

निजात्म चिन्तन कौन, कैसे करे?

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥३६॥

अन्वयार्थ– (चित्तविक्षेपः अभवत्) जिसके चित्त में क्षोभ नहीं है **(तत्त्व-संस्थितः)** तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी **(योगी)** ऐसा योगी /मुनि **(एकान्ते)** निर्जन स्थान में **(अभियोगेन)** आलस्य, निद्रा को त्याग कर/ सावधानी से **(निजात्मनः)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** स्वरूप-चिन्तन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

आत्मसंवित्ति की पहचान

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि ॥३७॥

अन्वयार्थ– (यथा-यथा) जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** आता है **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभा-अपि)** सुलभता से प्राप्त हुए भी **(विषयाः)** विषय भोग **(न रोचन्ते)** रुचते नहीं हैं।

आत्म - संवित्ति की पहिचान

यथा यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ॥३८॥

अन्वयार्थ– (यथा यथा) जैसे-जैसे **(सुलभाः)** सुलभ **(विषयाः अपि)** पञ्चेन्द्रिय के विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को अच्छे नहीं लगते **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** प्रतिभासित होने लगता है।

अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥३९॥

अन्वयार्थ—(निश्शेषं) जब समस्त **(जगत्)** संसार **(इन्द्रजालोपमं)** जादूगर के खेल जैसा [निःसार] **(निशामयति)** देखते है, तब **(आत्मलाभाय)** आत्मस्वरूप पाने के लिए **(स्पृहयति)** इच्छा करता है, उस समय यदि **(अन्यत्र)** आत्मा से भिन्न अन्य पदार्थों में **(गत्वा)** जाता है तो **(अनुतप्यते)** सन्तप्त/व्याकुल होते हैं।

योगी की निर्जन प्रियता

इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ॥४०॥

अन्वयार्थ— (निर्जनं) निर्जन स्थान **(जनितादरः)** जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा पुरुष **(एकान्तसंवासं इच्छति)** एकान्त में रहना चाहता है **(निजकार्य-वशात्)** अपने कार्यवश से **(किञ्चित् उक्त्वा)** कुछ कह करके **(द्रुतम्)** शीघ्र **(विस्मरति)** भूल जाता है।

स्वरूप निष्ठ योगी की विशेषता

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥४१॥

अन्वयार्थ— (स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु) किन्तु आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न हि ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न गच्छति)** नहीं चलता है और **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

योगी की निर्विकल्प दशा

किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥४२॥

अन्वयार्थ—(योगपरायणः) आत्मध्यान में लगा हुआ **(योगी)** योगी साधक **(इदम्)** यह **(किम्)** क्या है **(कीदृशं)** कैसा है **(कस्य)** किसका है **(कस्मात्)** किस कारण से है **(क्व)** कहाँ है **(इति)** इस तरह **(अविशेषयन्)** विशेष विचार न करता हुआ **(स्वदेहम् अपि)** अपने शरीर को भी **(न अवैति)** नहीं जानता है।

जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥४३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो [जीव] **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन् आस्ते)** रहता है **(स तत्र)** वह वहाँ [उस स्थान पर] **(रतिम् कुरुते)** प्रीति करता है और **(यः यत्र)** जो जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(स)** वह **(तस्मात्)** उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्य जगह **(न गच्छति)** नहीं जाता।

साम्यभावी योगी कर्मों से छूटता है

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु बध्यते न विमुच्यते ॥४४॥

अन्वयार्थ— (तद्विशेषाणाम्) उन [शरीर आदि पर पदार्थों के] विशेषणों [विशेषताओं] को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजान **(जायते)** बन जाता है **(च)** और **(अज्ञाततद्विशेषः)** उन शरीरादि की विशेषताओं पर ध्यान न देने वाला **(न बध्यते)** कर्म से नहीं बँधता **(तु)** किन्तु **(विमुच्यते)** छूट जाता है।

सुख दुख के आधार

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥४५॥

अन्वयार्थ—(परः) अन्य पदार्थ (आत्मा से) **(परः)** अन्य हैं अतः **(ततः)** उस अन्य पदार्थ से **(दुःखम्)** दुख होता है और **(आत्मा)** आत्मा अपना **(आत्मा एव)** आत्मा ही है अतः **(ततः)** उस (आत्मा) से **(सुखम्)** सुख होता है **(अतएव)** इसी कारण **(महात्मानः)** महापुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा की प्राप्ति के निमित्त **(कृतोद्यमाः)** उद्यम किया था।

पर के अनुराग का फल

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोःसामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति ॥४६॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(अविद्वान्)** मूर्ख/बहिरात्मा **(पुद्गलद्रव्यम्)** पुद्गल द्रव्य का **(अभिनन्दति)** आत्मीय भाव से समादर करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्म प्राणी का **(तत्)** वह [शरीर आदि पुद्गल द्रव्य] **(जातु)** कभी भी **(चतुःगतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं न मुञ्चति)** साथ नहीं छोड़ता।

स्वरूप निष्ठता

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥४७॥

अन्वयार्थ– (व्यवहारबहिःस्थितेः) व्यवहारचारित्र से बाहर ठहरे हुए **(आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य)** आत्मध्यान में लवलीन **(योगिनः)** मुनि के **(योगेन)** आत्मध्यान के द्वारा **(कश्चित्)** कोई अपूर्व **(परमानन्दः)** परम आनन्द **(जायते)** उत्पन्न होता है।

आनन्द का कार्य

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥४८॥

अन्वयार्थ–(आनन्दः) आत्मानन्द **(अनारतम्)** निरन्तर **(उद्धं)** बहुत से **(कर्मेन्धनम्)** कर्मरूपी ईंधन को **(निर्दहति)** जलाता है **(च)** तथा **(बहिर्दुःखेषु अचेतनः)** बाहरी [परीषह, उपसर्गादिक] दुखों से अनभिज्ञ **(असौ योगी)** वह योगी/आत्मध्यानी **(न खिद्यते)** खेद-खिन्न/दुखी नहीं होता है।

मुमुक्षु क्या करे?

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥४९॥

अन्वयार्थ–(अविद्याभिदुरं) अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाली **(महत् ज्ञानमयं)** महान् ज्ञानरूप **(परं ज्योतिः)** उत्कृष्ट ज्योति **(मुमुक्षुभिः)** मोक्ष अभिलाषी पुरुषों के द्वारा **(तत् प्रष्टव्यं)** वह पूछने योग्य है **(तत् एष्टव्यं)** वह चाहने योग्य है **(तत् दृष्टव्यं)** वह दर्शनीय या अनुभव करने योग्य है।

तत्त्व का सार

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित् सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥५०॥

अन्वयार्थ–(जीवः अन्यः) जीव अन्य है **(च)** और **(पुद्गलः अन्यः)** पुद्गल अन्य है **(इति)** इस प्रकार **(असौ)** यह **(तत्त्वसंग्रहः)** तत्त्व का सार है, इसके अलावा **(यत्)** जो **(अन्यत् किञ्चित्)** कुछ अन्य बात इस विषय में **(उच्यते)** कही जाती है **(सः)** वह **(तस्य एव विस्तरः)** उसका ही विस्तार **(अस्तु)** हो।

इष्टोपदेश ग्रन्थ के अध्ययन का फल

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः ॥५१॥

अन्वयार्थ—(धीमान् भव्यः) बुद्धिमान् भव्य पुरुष **(इति)** इस प्रकार **(इष्टोपदेशं)** इष्टोपदेश ग्रन्थ को **(सम्यक् अधीत्य)** अच्छी तरह अध्ययन करके **(स्वमतात्)** अपने आत्मज्ञान से **(मानापमानसमतां)** सम्मान और अपमान में समता भाव को **(वितन्य)** विस्तार/ विशेषण करके **(मुक्ताग्रहः)** आग्रह को त्यागता हुआ **(सजने)** गाँव आदि में **(वा)** अथवा **(वने)** निर्जन वन में **(विनिवसन्)** रहता हुआ **(निरुपमां)** अनुपम **(मुक्तिश्रियम्)** मुक्ति लक्ष्मी को **(उपयाति)** प्राप्त करता है।

दर्शन स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥
भव-विकट-वन में कर्म वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तव इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो॥
धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥
छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नाशा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत कोटि रवि छवि को हरैं॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारन तरन जी॥
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर, राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुमभक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी॥

सिद्धिप्रियस्तोत्रम्

५ वीं शताब्दी के उद्भट विद्वान् आचार्य पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित इस स्तोत्र में २६ पद्य हैं और चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। रचना प्रौढ़ और प्रवाहयुक्त है।

(वसन्ततिलका छन्द)

सिद्धि-प्रियैः प्रतिदिनं प्रतिभासमानैः,
जन्म - प्रबन्ध - मथनैः प्रतिभाऽसमानैः।
श्रीनाभिराज - तनुभू-पद-वीक्षणेन,
प्रापे जनै - र्वितनु - भू - पदवी क्षणेन॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीनाभिराज-तनुभू-पद-वीक्षणेन) श्रीनाभिराजा के पुत्र आदिनाथ भगवान् के चरणों का अवलोकन करने से **(सिद्धि-प्रियैः)** सिद्धि-मुक्ति ही जिनको प्रिय है, **(प्रतिदिनं प्रतिभासमानैः)** सदैव सम्यग्दर्शनादि गुणों से जो प्रकाशमान हैं, **(जन्म-प्रबन्ध-मथनैः)** संसार संतति के जो मथन करने वाले हैं तथा **(प्रतिभाऽसमानैः)** अनुपम बुद्धि के जो धारक हैं, ऐसे **(जनैः)** भव्यात्माओं ने **(क्षणेन)** क्षणमात्र में **(वितनु-भू-पदवी)** सिद्ध परमेष्ठी की मोक्ष पदवी **(प्रापे)** प्राप्त की।

येन स्मराऽस्त्र - निकरै - रपराजितेन,
सिद्धिर्वधू ध्रुवमबोधि पराऽजितेन।
संवृद्ध - धर्मसुधिया कविराजमा नः,
क्षिप्रं करोतु यशसा स विराजमानः॥२॥

अन्वयार्थ—(स्मराऽस्त्र-निकरैः अपराजितेन) कामवासनारूपी बाणों के समूह से नहीं हारने वाले **(येन)** जिन द्वितीय तीर्थंकर **(अजितेन)** अजितनाथ भगवान् ने **(परा सिद्धिः वधूः)** सर्वोत्कृष्ट मुक्तिरूपी कामिनी **(ध्रुवं)** निश्चय से **(अबोधि)** पहचानी, **(यशसा विराजमानः)** कीर्ति द्वारा सुशोभित **(सः)** वे अजितनाथ भगवान् **(क्षिप्रं)** शीघ्र ही **(संवृद्ध-धर्म-सुधिया 'सह')** अतिशय कर वृद्धिंगत हुई धर्मबुद्धि के साथ **(कविराजमाः)** कवीश्वरों की शोभा को अथवा कविराज-अर्हन्तदेव उनकी अनंत चतुष्टयादिरूप मा—लक्ष्मी को **(नः)**

हमारे लिए **(करोतु)** प्रदान करें।

श्रुत्वा वचांसि तव शम्भव! कोमलानि,
नो तृप्यति प्रवर-शंभव! कोऽमलानि।
देव - प्रमुक्त - सुमनोऽभवनाऽऽशनानि,
स्वार्थस्य संसृति-मनोभव-नाशनानि॥३॥

अन्वयार्थ—(प्रवर-शं-भव!) हे प्रधान-मोक्ष सुख के उत्पत्ति कारण! **(देव-प्रमुक्त-सुमनो-भवन!)** हे देवों द्वारा की गई पुष्पवृष्टि के स्थान! **(शंभव!)** हे तृतीय तीर्थंकर श्री शम्भवनाथ भगवान्! **(तव)** आपके **(कोमलानि)** अति ही मधुर **(अमलानि)** निर्दोष **(स्वार्थस्य आशनानि)** आत्महित के व्यापक तथा **(संसृति-मनोभव-नाशनानि)** संसार परिभ्रमण व काम व्यथा के नाशक **(वचांसि)** वचनों को **(श्रुत्वा)** श्रवण कर **(कः नो तृप्यति?)** कौन नहीं तृप्त होता?

यस्मिन् विभाति कलहंस-रवैरशोकः,
छिन्द्यात् स भिन्न-भव-मत्सर-वैर-शोकः।
देवोऽभिनन्दन-जिनो गुरु मेऽघ-जालं,
शम्पेव पर्वत-तटीं गुरु-मेघजाऽलं ॥४॥

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिनके समीप समवसरण में **(कलहंस-रवैः)** जाति विशेष मनोज्ञ हंसों की कलरव से **(अशोकः)** अशोक नामक वृक्ष **(विभाति)** शोभित होता है, **(सः)** वे **(भिन्न-भव-मत्सर-वैर-शोकः)** संसार, मात्सर्य, द्वेषभाव तथा शोकभाव के नाशक **(अभिनन्दन-जिनः देवः)** अभिनन्दन नामक चतुर्थ जिनदेव, **(मे)** मेरे **(गुरु)** महान् **(अघजालं)** पाप समूह को, **(पर्वत-तटीं गुरु-मेघजा शम्पा इव)** पर्वत की कटनी को महान् मेघ-बादल से उत्पन्न हुई बिजली के समान **(अलं छिन्द्यात्)** जड़मूल से नष्ट कर दें।

येन स्तुतोऽसि गत-कुन्तल-ताप-हार!,
चक्राऽसि - चाप - शर-कुन्तलताऽपहार!
भव्य-प्रभो! सुमतिनाथ! वरा न तेन,
का माऽऽश्रिता सुमतिनाऽथ वरानतेन ॥५॥

अन्वयार्थ—(गत-कुन्तल-ताप-हार!) हे केशबन्धन-जटा, दुखदाह तथा आभरण, इन तीनों से रहित! **(चक्राऽसि-चाप-शर-कुन्तलताऽपहार!)** हे

चक्र, तलवार, धनुष-बाण, बरछी आदि सकल शस्त्रों के परित्याग वाले! **(भव्य-प्रभो!)** हे भव्य जीवों के स्वामी! **(सुमतिनाथ!)** हे पंचम तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ भगवान्! **(वरानतेन येन सुमतिना)** इष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त नम्रीभूत होने वाले जिस सुबुद्धि के द्वारा **('त्वं' स्तुतः असि)** आप स्तुत्य हुए हैं **(अथ तेन)** उस स्तुति के प्रभाव से उस सुबुद्धि ने **(का वरा मा)** कौन-सी उत्कृष्ट लक्ष्मी **(न आश्रिता?)** नहीं आश्रय की?

मोह - प्रमाद - मद - कोप - रताऽपनाशः,
पञ्चेन्द्रियाऽर्थ - मदकोऽपर - ताप - नाशः।
पद्मप्रभो दिशतु मे कमलां वराणां,
मुक्तात्मनां विगत-शोक-मलाऽम्बराणां॥६॥

अन्वयार्थ—(मोह-प्रमाद-मद-कोप-रताऽपनाशः) मोहनीय कर्म, प्रमाद, मद, क्रोध तथा संभोग परिणाम के निर्दयतापूर्वक नाश करने वाले **(पञ्चेन्द्रियाऽर्थमदकः)** पंच इन्द्रिय विषयों की अनुकूलता उपजाने वाले और **(अपर-ताप-नाशः)** भव्य पुरुषों के संताप का नाश करने वाले **(पद्मप्रभः)** पद्मप्रभ नामक छठे तीर्थंकर **(मे)** मेरे लिए **(विगत-शोक-मलाऽम्बराणां)** शोक, कर्ममल व वस्त्रादि आवरण रहित **(मुक्तात्मनां[1])** मुक्तात्माओं की **(वराणां कमलां)** श्रेष्ठ लक्ष्मी को **(दिशतु)** प्रदान करें।

ये त्वां नमन्ति विनयेन महीं-नभो-गाः,
श्रीमत्सुपार्श्व! विनयेन महीन-भोगाः।
ते भक्त-भव्य-सुरलोक! वि-मान-मायाः,
ईशा भवन्ति सुरलोक-विमान-मायाः॥७॥

अन्वयार्थ—(भक्त-भव्य-सुरलोक!) हे भव्य देवताओं से भक्ति किए जाने वाले! **(श्रीमत्सुपार्श्व!)** हे अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी सुपार्श्व नामक सप्तम तीर्थंकर! **(ये)** जो **(महीं-नभो-गाः)** महीगामी-मनुष्यादिक व नभोगामी-देव विद्याधरादि प्राणी **(विनयेन)** विनयपूर्वक **(त्वां विनयेनं)** आप विविध नय के स्वामी को-अनेकान्तनयवादी को **(नमन्ति)** नमस्कार करते हैं **(ते)** वे भव्य प्राणी **(अहीन-भोगाः)** पूर्ण इन्द्रिय सुख के भोक्ता चक्रवर्ती व **(विमान-मायाः 'सन्तः')** मान-माया रहित होते हुए **(सुरलोक-विमान-**

१. 'सिद्धात्मनां' ऐसा भी पाठ पाया जाता है।

माया: ईशा:) देवलोक के विमान की लक्ष्मी वाले–परम वैमानिक देवों की पदवी पाने वाले ईश–स्वामी **(भवन्ति)** होते हैं।

आकर्ण्य तावक-वचो वनि-नायकोऽपि,
शान्तिं मनः शम-धियाऽवनि-नायकोऽपि।
चन्द्रप्रभ! प्रभजति स्म रमाऽविनाशं,
दोर्दण्ड - मंडित-रति-स्मर-मा-विनाशं ॥८॥

अन्वयार्थ–(चन्द्रप्रभ!) हे चन्द्रमा के समान प्रभा वाले अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान्! **(तावकवचः आकर्ण्य)** आपकी दिव्य वाणी श्रवण कर **(वनि-नायकः अपि)** वन का नायक–सिंह भी–जो कि हिंसादि खोटे कार्य करते रहने से दुष्ट स्वभाव वाला होता है **(शम-धिया मनः शान्तिं)** उपशम बुद्धि द्वारा मन सम्बन्धी शांति को–दुष्ट स्वभाव के प्रभाव को, **(अपि अवनि-नायकः)** तथा राजा–जो कि विषय भोगों में विशेष आसक्त हुआ करता है **(दोर्दण्ड-मंडित-रति-स्मर-मा-विनाशं)** भुजा दंडों में मंडित है रति नामक स्वस्त्री जिसके, ऐसे प्रबल कामदेव की मा–लक्ष्मी–शोभा का विनाश वाले **(रमाऽविनाशं)** अनंत चतुष्टयादिरूप लक्ष्मी के अविनाश–शाश्वतपने को **(प्रभजति स्म)** प्राप्त करता था।

श्री पुष्पदन्त-जिन-जन्मनि का ममाऽऽशा,
यामि प्रिये! वितनुतां च निकाममाशाः।
इत्थं रतिं निगदताऽतनुना सुराणां,
स्थानं व्यधायि हृदये तनुनाऽसुराणां ॥९॥

अन्वयार्थ–(प्रिये!) हे प्रिये! **(श्री पुष्पदन्त-जिन-जन्मनि)** नवमें तीर्थंकर श्री पुष्पदन्त जिन का जन्म हो जाने पर **(मम का आशा?)** मेरे जीवन की क्या आशा? अतः **(निकामं वितनुतां च)** अत्यन्त शरीर रहितपने का और **(आशाः)** दिशाओं को **(यामि)** प्राप्त होता हूँ। **(इत्थं)** इस प्रकार **(रति)** रति नामा अपनी स्त्री को **(निगदता)** कहते हुए **(अतनुना)** कामदेव ने **(तनुना)** शीघ्र ही **(सुराणां असुराणां हृदये)** देवताओं और असुरों के मन में **(स्थानं व्यधायि)** निवास किया।

श्रीशीतलाऽधिप! तवाऽधि-सभं जनानां,
भव्यात्मनां प्रसृति-संसृति-भंजनानाम्।

प्रीतिं करोति विततां सुरसाऽरमुक्तिः,
मुक्तात्मनां जिन! यथा सुरसार! मुक्तिः॥१०॥

अन्वयार्थ—(सुरसार!) हे देवों के देव! **(जिन!)** हे कर्म शत्रुओं के विजेता! **(श्री शीतलाऽधिप!)** हे दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ! **(अधिसभं)** समवसरण में **(तव सुरसा उक्तिः)** आपकी कल्याणकारी मधुरवाणी **(प्रसृति-संसृति-भंजनानां)** दीर्घ संसार के नाशक **(भव्यात्मनां जनानां)** भव्य जीवों के **(अरं विततां)** प्रति विस्तृत **(प्रीतिं करोति)** प्रीति को पैदा करती है। **(यथा मुक्तात्मनां मुक्तिः)** जैसे कि मुक्तात्माओं के मुक्ति।

पादद्वये मुदित-मानसमानतानां,
श्रेयन्! मुने! विगत-मान! समानतानां।
शोभां करोति तव कां च न भा सुराणां,
देवाऽधिदेव! मणिकांचन-भासुराणां ॥११॥

अन्वयार्थ—(देवाधिदेव! विगत-मान! मुने! श्रेयन्!) हे देवाधिदेव! हे मान कषाय रहित! हे प्रत्यक्ष ज्ञान के धारक! हे ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ भगवान्! **(तव पादद्वये मुदित-मानसं 'यथा स्यात् तथा')** आपके चरण युगल में हर्षित चित्त जैसे हो उस प्रकार **(आनतानां)** नम्रीभूत हुए **(समान-तानां)** पूजा विस्तार वाले और **(मणि-कांचन-भासुराणां)** मणि व सुवर्ण से देदीप्यमान **(सुराणां)** देवों के **(तव भा कां च शोभां)** आपकी कांति किस शोभा को **(न करोति ?)** नहीं करती है ?

घोरांऽधकार - नरक - क्षत - वारणानि,
श्री वासुपूज्य! जिनदक्ष! तवाऽरणानि।
मुक्त्यै भवन्ति भव-सागर-तारणानि,
वाक्यानि चित्तभव-सा-गरता-रणानि॥१२॥

अन्वयार्थ—(जिनदक्ष!) हे सामान्य केवलियों में मुख्य जिनेन्द्र! **(श्री वासुपूज्य!)** हे बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान्! **(घोरांऽधकार-नरक-क्षत-वारणानि)** घोर अन्धकार वाले नरक के पीड़ितों की पीड़ा का निवारण करने वाले, **(अरणानि)** कलह-विवाद रहित, **(भव-सागर-तारणानि)** संसार सागर के तारक तथा **(चित्तभव-सा-गरता-रणानि)** कामदेव की लक्ष्मीरूपी जहरपने को दूर करने वाले **(तव वाक्यानि)** आपके वाक्य **(मुक्त्यै)** मुक्ति

प्राप्ति के लिए **(भवन्ति)** होते हैं।

भव्य - प्रजा - कुमुदिनी - विधुरंजनानां,
हंता विभासि दलयन् विधुरं जनानां।
इत्थं स्वरूपमखिलं तव ये विदंति,
राज्यं भजंति विमलेश्वर! ते विदंति ॥१३॥

अन्वयार्थ—(विमलेश्वर!) हे विमलनाथ! **(भव्य-प्रजा-कुमुदिनी-विधुः)** भव्य प्रजारूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्र स्वरूप और **(अंजनानां हंता)** कर्म कालिमा के नाशक **('त्वं')** आप **(जनानां विधुरं दलयन्)** जनसमूह की आपत्ति को विनष्ट करते हुए **(विभासि)** शोभते हो **(इत्थं)** इस प्रकार **(ये)** जो **(तव अखिलं स्वरूपं)** आपके सम्पूर्ण स्वरूप को **(विदंति)** जानते हैं **(ते)** वे भव्य जीव **(विदंति राज्यं)** विशिष्ट हाथियों वाले राज्य को **(भजंति)** भोगते हैं।

स्वर्गाऽपवर्ग-सुख-पात्र! जिनाऽतिमात्रं,
यस्त्वां स्मरन् भुवन-मित्र! जिनाति मात्रं।
श्रीमन्ननंत वर-निवृति-कांत! कांतां,
भव्यः स याति पदवीं व्रतिकांऽतकांतां ॥१४॥

अन्वयार्थ—(स्वर्गाऽपवर्ग-सुख-पात्र!) हे स्वर्ग व मोक्ष सुख के आधारभूत! **(जिन!)** हे राग-द्वेष के विजेता! **(भुवन-मित्र!)** हे त्रिभुवन के बन्धु! **(श्रीमन्!)** हे उभय लक्ष्मी के स्वामी! **(वर-निवृतिकांत!)** हे श्रेष्ठ मुक्ति के भर्ता! **(व्रतिक!)** हे व्रतों के धारक! **(अनंत!)** अनंत नामक चौदहवें तीर्थंकर! **(यः मात्रं त्वां)** जो भव्य जीव केवल आपको **(अतिमात्रं स्मरन्)** निरन्तर स्मरण करता हुआ **(जिनाति)** जीर्ण होता है **(स भव्यः)** ऐसा वह भव्य जीव **(कांतां अंतकांतां पदवीं)** मनोज्ञ व मरण का मरण करने वाली मोक्ष पदवी को **(याति)** पाता है।

जन्माऽभिषेकमकरोत् सुर-राज-नामा-
यस्याऽऽश्रितो गुण - गणैः सु-रराज नाऽमा।
धर्मः करोत्वनलसं प्रतिबोधनानि,
सिद्ध्यै स नः सपदि सम्प्रति वो धनानि॥१५॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन धर्मनाथ भगवान् का **(सुरराजनामा)** इन्द्र ने

(जन्माऽभिषेकं) जन्माभिषेक **(अकरोत्)** किया **('पुन यस्य')** और जिनके **(आश्रितः ना)** आश्रित हुआ व्यक्ति **(गुण-गणैः अमा)** अनेक गुणों सहित **(सु-राज)** सुशोभित हुआ **(स धर्मः)** वे धर्मनाथ तीर्थंकर **(सपदि)** अति शीघ्र **(नः सिद्ध्यै)** हमारे मोक्ष प्राप्ति के लिए **(अनलसं 'यथा स्यात् तथा')** आलस्य रहित जिस प्रकार हों वैसे **(प्रतिबोधनानि)** सदुपदेश सूचक सम्बोधन वाक्यों को तथा **(वः)** तुम्हारे लिए **(सम्प्रति)** शीघ्र **(धनानि)** नाना विभूतियों को **(करोतु)** करें।

नाऽस्तानि यानि महसा विधुनाऽमितानि,
चेतस्तमांसि तपसा विधुनोमि तानि।
इत्याऽऽचरन् वर-तपो गत-कामि-नीति,
शान्तिः पदं दिशतु मेऽगत-कामिनीति॥१६॥

अन्वयार्थ-(यानि) जिन **(अमितानि)** प्रचुर **(चेतस्तमांसि)** मन सम्बन्धी अन्धकार को **(महसा विधुना)** तेजस्वी चन्द्रमा द्वारा **(न अस्तानि)** नहीं नाश कराया जा सका **(तानि तपसा विधुनोमि)** उनको तपश्चर्या के बल से मैं नष्ट करता हूँ, **(इति)** इस हेतु **(गत-कामि-नीति वर-तपः)** विषयी पुरुषों की प्रवृत्ति रहित श्रेष्ठ तप को **(आचरन्)** आचरण करने वाले **(शान्तिः)** शान्तिनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिए **(अगत-कामिनीति पदं)** कामिनी व कष्टों की पहुँच रहित पद को **(दिशतु)** प्रदान करें।

कुन्थुः क्षितौ क्षिति-पतिर्गत-मान-सेनः,
पूर्वं पुनर्मुनिरभूद्धत-मानसेनः।
योऽसौ करोतु मम जंतु-दया-निधीनां,
संवर्द्धनानि विविधर्द्ध्युदयानि धीनां॥१७॥

अन्वयार्थ-(यः) जो **(क्षितौ)** पृथ्वी पर **(पूर्वं)** पहले तो **(गत-मानसेनः)** अपरिमित सेना के धारक **(क्षिति-पतिः)** चक्रवर्ती **(पुनः)** पश्चात् **(हत-मानसेनः)** कामदेव के नाशक **(मुनिः)** मुनि **(अभूत्)** हुए **(असौ कुन्थुः)** ऐसे वे कुन्थुनाथ भगवान् **(मम)** मेरे **(जन्तु-दया-निधीनां धीनां)** प्राणिमात्र के प्रतिपालना की निधानरूप बुद्धियों के **(विविधर्द्ध्यदयानिं)** बहुत प्रकार अणिमा, महिमा, गरिमा आदि ऋद्धियों का उदय वाली **(संवर्द्धनानि)** सम्यक् वृद्धियों को **(करोतु)** करें।

या ते ऋणोति नितरामुदितानि दानं,
यच्छत्य-भीप्सति न वा मुदिता निदानं।
सा नो करोति जनताऽजन-कोपिताऽपि,
चित्तं जिनाऽर! गुणभाजन! कोपि तापि॥१८॥

अन्वयार्थ—(गुण-भाजन!) हे गुणों के निधान! **(जिनाऽर!)** हे जिनेन्द्र अरनाथ! **(या जनता)** जो जनता **(नितरां)** अत्यन्त **(मुदिता सतीं)** हर्षित होती हुई **(ते उदितानि)** आपके वाक्यों को **(ऋणोति)** श्रवण करती है **(दानं यच्छति)** दान देती है **(वा)** और **(निदान)** निदान **(न अभीप्सति)** नहीं चाहती है **(अजन-कोपिता अपि)** दुष्टों से क्रोधित भी **(सा)** वह जनता **(चित्तं)** अपने चित्त को **(कोपि तापि)** कोप युक्त व संताप युक्त **(नो करोति)** नहीं करती है।

मल्लेर्वचांस्यनिकृतीनि स-भावनानि,
धर्मोपदेशन-कृतीनि सभाऽवनानि।
कुर्वन्तु भव्य-निवहस्य नभोगतानां,
मंक्षु श्रियं कृत-मुदं जन-भोग-तानां ॥१९॥

अन्वयार्थ—(मल्लेः) मल्लिनाथ भगवान् के **(अनिकृतीनि)** मायाचार रहित, **(स-भावनानि)** भावना से परिपूर्ण, **(धर्मोपदेशन-कृतीनि)** धर्म की शिक्षा देने वाले तथा **(सभाऽवनानि वचांसि)** सभा रक्षक वचन **(भव्य-निवहस्य)** भव्य समूह के **(मंक्षु)** शीघ्र ही **(जन-भोग-तानां नभो-गतानां)** मनुष्य के सुखों का विस्तार वाले तीर्थंकरों-अर्हन्तों की **(कृतमुदं श्रियं)** आनन्ददायिनी लक्ष्मी को **(कुर्वन्तु)** करें।

संस्तूयसे शुभवता मुनि-नायकेन,
नीतो जिनाऽऽशु भवता मुनिनायकेन!
नाथेन-नाथ! मुनिसुव्रत! मुक्त-मानां,
मुक्तिं चरन् स मुनिसुव्रतमुक्तमानां ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे पूर्ण इन्द्रिय विजेता! **(मुनि-नायकेन!)** हे गणधरों के स्वामी! **(नाथेन-नाथ!)** हे चक्रवर्तियों के स्वामी तीर्थंकरदेव! **(मुनि-सुव्रत!)** हे मुनिसुव्रत भगवान्! **('येन')** जिस **(शुभवता)** पुण्यशाली **(मुनि-नायकेन)** मुनीश्वर के द्वारा **('त्वं' संस्तूयसे)** आप स्तुति किए जाते हैं **(स)** वह मुनीश्वर

(आशु) शीघ्र ही **(मुनिसुव्रतं चरन्)** मुनियों के महाव्रतों का आचरण करता हुआ **(मुक्तमानां)** मुक्तात्माओं का जहाँ आदर है तथा **(उक्त-मानां)** कही गई है मान मर्यादा जिसकी, ऐसी **(मुक्तिं)** मुक्ति को **(भवता)** आप द्वारा **(नीतः)** पहुँचाया जाता है।

चित्तेन मेरु-गिरि-धीर! दयालुनाऽसि,
सर्वोपकार-कृत-धीरदया लुनासि।
इत्थं स्तुतो नमि-मुनि र्ममताऽपसानां,
लक्ष्मीं करोतु मम निर्मम! तापसानां ॥२१॥

अन्वयार्थ—(मेरु-गिरि-धीर!) हे सुमेरु पर्वत के समान निष्कम्प! **(निर्मम!)** हे निर्मोही! **('त्वं')** आप **(सर्वोपकार-कृत-धीः)** सर्वोपकारी बुद्धि वाले **(असि)** हैं। तथा **(दयालुना चित्तेन)** दयालु चित्त के द्वारा **(अदयाः)** हिंसाओं को **(लुनासि)** नष्ट करते हैं। **(इत्थं स्तुतः)** इस प्रकार स्तुति किए गए **(नमि-मुनिः)** नमि नामक मुनिराज **(मम)** मेरे **(ममताऽपसानां)** ममत्व बुद्धि के नाशक **(तापसानां)** महर्षियों की **(लक्ष्मीं)** लक्ष्मी को **(करोतु)** प्रदान करें।

येनोद्यत्ऋंगगिरनारगिराविनाऽपि
नेमिः स्तुतोऽपि पशुनाऽपि गिरा विनाऽपि।
कंदर्प-दर्प-दलनः क्षत-मोह-तानः,
तस्य श्रियो दिशतु दक्षतमोऽहता नः॥२२॥

अन्वयार्थ—(कंदर्प-दर्प-दलनः) कामदेव के घमण्ड को नष्ट करने वाले, **(क्षत-मोह-तानः)** मोह के विस्तार को नष्ट करने वाले तथा **(दक्ष-तमः)** अतिशय निपुण **(नेमिः)** नेमिनाथ भगवान् **(येन इना अपि)** जिस प्रद्युम्न कामदेव के द्वारा तथा **(गिरा विना अपि)** वाणी रहित **(पशुना अपि)** पशु के द्वारा भी **(उद्य ऋंगगिरनार-गिरौ)** ऊँचे श्रेष्ठ शिखर वाले गिरनार पर्वत पर **(स्तुतः अपि)** स्तुति किए गए हैं **(नः)** हमारे लिए **(तस्य अहताः श्रियः)** उन स्वयं की अविनाशी लक्ष्मियों को **(दिशतु)** प्रदान करें।

गन्धर्व - यक्ष - नर - किन्नर-दृश्यमानः,
प्रीतिं करिष्यति न किं नर-दृश्यमानः।
भानु - प्रभा - प्रविकसत्कमलोपमायां,
पार्श्वः प्रसूत-जनता-कमलोऽपमायां॥२३॥

अन्वयार्थ—(प्रसूत-जनता-कमलः) उत्पन्न हुई है जनता के लक्ष्मी जिनसे,

(अमानः) गर्व रहित तथा **(गन्धर्व-यक्ष-नर-किन्नर-दृश्यमानः)** गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों व किन्नरों द्वारा दर्शन किए गए **(पार्श्वः)** पार्श्वनाथ भगवान् **(भानुप्रभा-प्रविकसत्कमलोपमायां)** सूर्य के प्रकाश में प्रफुल्लित हुए कमलों की उपमा वाली **(नर-दृशि)** मनुष्यों की दृष्टि में **(किं)** क्या **(अपमायां प्रीतिं)** माया रहित प्रीति को **(न करिष्यति?)** नहीं करेंगे?

श्रीवर्द्धमान-वचसा पर—मा-करेण,
रत्नत्रयोत्तम-निधेः परमाऽऽक्रेण।
कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हि तानि,
वृत्तानि सन्तु सततं जनता-हितानि॥२४॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से **(पर-मा-करेण)** उत्कृष्ट मोक्षरूपी लक्ष्मी को करने वाले तथा **(रत्नत्रयोत्तम-निधेः परमाऽऽकरेण)** रत्नत्रयरूपी उत्तम निधि के उत्कृष्ट उत्पत्ति स्थान ऐसे **(श्री- वर्द्धमान-वचसा)** श्री वर्द्धमान भगवान् के वचन द्वारा **(अजनताः मुनयः)** लोकोत्तर मुनिराज **(यानि वृत्तानि कुर्वन्ति)** जिन अहिंसादि महाव्रतरूप आचरणों को करते हैं **(तानि)** वे आचरण **(सततं)** निरन्तर **(जनता-हितानि)** प्रजा का कल्याण करने वाले **(सन्तु)** हों।

वृत्तात्समुल्लसित - चित्त - वचः प्रसूतेः,
श्रीदेवनंदिमुनि - चित्त - वचः प्रसूतेः।
यः पाठकोऽल्पतर-जल्प-कृतेस्त्रिसन्ध्यं,
लोकत्रयं समनुरंजयति त्रिसन्ध्यं ॥२५॥

अन्वयार्थ—(वृत्तात्समुल्लसित-चित्त-वचः प्रसूतेः) वसंततिलका नामक छन्द से प्रति सुन्दर अन्तरंग वचनों की-भक्ति भरे वचनों की उत्पत्ति वाली तथा **(अल्पतर-जल्पकृतेः)** संक्षेप में कही गई **(श्रीदेवनंदि-मुनि-चित्त-वचः प्रसूतेः)** श्री देवनंदी नामक मुनिराज की निर्दोष रचना का-इस चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति का **(यः)** जो भव्यात्मा **(त्रिसंध्यं पाठकः)** त्रिकाल पाठ करने वाला है **('स' त्रि-संध्यं)** वह तीनों काल में-तीनों संध्याओं में-हमेशा **(लोकत्रयं)** तीनों लोकों को **(समनुरंजयति)** भली प्रकार आकर्षित करता है।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

तुष्टिं देशनया जनस्य मनसो येन स्थितं दित्सता,
सर्वं वस्तु-विजानता शमवता येन क्षता कृच्छ्रता।

भव्याऽऽनंद-करेण येन महती तत्त्व-प्रणीतिः कृता,
तापं हन्तु जिनः स मे शुभधियां तातः सतामीशिता॥२६॥

अन्वयार्थ—(येन) जिनके द्वारा **(देशनया)** धर्मोपदेश से **(जनस्य मनसः)** जनता के मन-की **(तुष्टिं दित्सता)** प्रसन्नता को प्रदान करते हुए **(स्थितं)** प्रवर्तित हुआ गया, **(येन शमवता)** जिन शान्त स्वभावी के द्वारा **(सर्वं वस्तु-विजानता)** समस्त वस्तुस्वरूप को जानते हुए **(कृच्छता क्षता)** दुख दूर किया गया तथा **(येन भव्याऽऽनंदकरेण)** जिन भव्य जीवों को आनंदित करने वाले के द्वारा **(महती तत्त्व-प्रणीतिः कृता)** सम्यक् तत्त्व-प्ररूपण किया गया। **(सतां ईशिता)** सत्पुरुषों के स्वामी और **(शुभधियां तातः)** निष्पाप बुद्धि के उत्पादक **(सः जिनः)** वे जिनेन्द्र भगवान् **(मे तापं हन्तु)** मेरे संताप को दूर करें।

❑ ❑ ❑

देव स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञानभानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास ॥१॥
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा ॥२॥
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिन धर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें ॥३॥
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार ॥४॥
सुख दुःख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय मार्ग का लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल ॥५॥
अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सबही टल जाय ॥६॥
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहीं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा ॥७॥
हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े ॥८॥

द्रव्यसंग्रह

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव द्वारा प्राकृत भाषा की ५८ गाथाओं में रचित यह ग्रन्थ संक्षेप में जैनदर्शन के प्रमुख द्रव्यों/तत्त्वों/पदार्थों का कथन करने वाला है। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ की शैली का इसमें उपयोग किया गया है। तीन अधिकारों में विभक्त इस ग्रन्थ में जीव-अजीव द्रव्य का, आस्रवादि तत्त्वों का तथा द्विविध मोक्षमार्ग का कथन करते हुए अन्त में जपने योग्य मंत्रों और ध्यान का स्वरूप बतलाया गया है।

मंगलाचरण गाथा-सूत्र

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ—(जेण जिणवरवसहेण) जिन जिनवर वृषभ ने **(जीवं अजीवं दव्वं)** जीव और अजीव द्रव्य को **(णिद्दिट्ठं)** कहा है **(देविंदविंदवंदं)** देवेन्द्रों समूह से वन्दनीय हैं **(तं)** उनको **(सव्वदा)** सदा **(सिरसा)** मस्तक से **(वंदे)** मैं नमस्कार करता हूँ।

जीव के नव अधिकार

जीवो उवओग-मओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

अन्वयार्थ—(सो) वह आत्मद्रव्य **(जीवो)** जीने वाला है **(उवओगमओ)** उपयोग वाला है **(अमुत्ति)** अमूर्तिक है **(कत्ता)** कर्मों का कर्ता है **(सदेह-परिमाणो)** अपने शरीर के प्रमाण अर्थात् बराबर है **(भोत्ता)** कर्मों का भोक्ता है **(संसारत्थो)** संसार में स्थित है **(सिद्धो)** सिद्ध है **(विस्ससा उड्ढगई)** स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो, णिच्छय-णयदो दु चेदणा जस्स॥३॥

अन्वयार्थ—(ववहारा) व्यवहार नय से **(जस्स)** जिसके **(तिक्काले)** तीनों कालों में **(इंदियबलमाउ य आणपाणो)** इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास

ये **(चदुपाणा)** चार प्राण **(दु)** तथा **(णिच्छय-णयदो)** निश्चय नय से जिसके **(चेदणा)** चेतना हो **(सो जीवो)** वह जीव है।

दर्शनोपयोग के भेद

उवओगो दुवियप्पो, दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं॥४॥

अन्वयार्थ—(उवओगो दुवियप्पो) उपयोग दो प्रकार का है **(दंसणणाणं)** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग **(च)** तथा **(दंसणं चदुधा)** दर्शनोपयोग चार प्रकार का **(चक्खु अचक्खू ओही अध केवलं दंसणं)** चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन **(णेयं)** जानना चाहिए।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च॥५॥

अन्वयार्थ—(मदिसुदओही अणाणणाणाणि) मति, श्रुत, अवधि ये तीनों अज्ञान/मिथ्याज्ञानरूप और ज्ञान/सम्यग्ज्ञानरूप हैं तथा **(मणपज्जयकेवलं अवि)** मनःपर्यय और केवलज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप ही हैं इस तरह यह सभी **(अट्ठवियप्पं णाणं)** आठ प्रकार का ज्ञान है **(च)** और **(पच्चक्ख परोक्ख भेयं)** प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से वह ज्ञान दो प्रकार का भी है।

जीव का लक्षण

अट्ठ चदु णाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं॥६॥

अन्वयार्थ—(ववहारा) व्यवहार नय से **(अट्ठ णाण)** आठ प्रकार का ज्ञान **(चदु दंसण)** चार प्रकार का दर्शन **(सामण्णं)** सामान्य से **(पुण)** और **(सुद्धणया)** शुद्ध निश्चयनय से **(सुद्धं दंसणं णाणं)** शुद्धदर्शन व शुद्धज्ञान **(जीवलक्खणं)** जीव का लक्षण **(भणियं)** कहा है।

जीव का लक्षण

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो॥७॥

अन्वयार्थ—(णिच्छया) निश्चयनय से **(जीवे)** जीव में **(पंच वण्ण रस दो गंधा अट्ठ फासा)** पाँच वर्ण व पाँच रस, दो गंध तथा आठ स्पर्श **(णो)** नहीं

(संति) हैं **(तदो)** इसलिए **(अमुत्ति)** जीव अमूर्तिक है **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(बंधादो)** कर्मबन्ध होने के कारण **(मुत्ति)** जीव मूर्तिक है।

कर्तृत्व अधिकार

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं॥८॥

अन्वयार्थ—(आदा) आत्मा **(ववहारदो)** व्यवहार नय से **(पुग्गलकम्मादीणं)** पुद्गल कर्म–ज्ञानावरणादि का **(णिच्छयदो)** अशुद्ध निश्चयनय से **(चेदण-कम्माण)** चेतनकर्म–रागद्वेष आदि का **(सुद्धणया)** शुद्ध निश्चयनय से **(सुद्धभावाणं)** शुद्ध भाव–शुद्ध ज्ञान-दर्शन का **(कत्ता)** कर्ता है।

भोक्तृत्व अधिकार

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

अन्वयार्थ—(आदा) आत्मा **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(सुहदुक्खं)** सुख-दुखरूप **(पुग्गलकम्मप्फलं)** पुद्गल कर्म के फल को **(पभुंजेदि)** भोगता है **(खु)** और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से **(आदस्स चेदणभावं)** आत्मा के चेतनभाव–ज्ञान, दर्शन, सुख आदि को भोगता है।

जीव का परिमाण

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा,णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अन्वयार्थ—(चेदा) आत्मा **(व्यवहारा)** व्यवहारनय से **(असमुहदो)** समुद्घात के सिवाय अन्य सब समयों में **(उवसंहारप्पसप्पदो)** संकोच विस्तार गुण के कारण **(अणुगुरुदेहपमाणो)** अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर **(वा)** और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से **(असंखदेसो)** असंख्यात प्रदेशों वाला अर्थात् लोक के बराबर असंख्यात प्रदेशी है।

संसारी जीव के दो भेद

पुढविजलतेउवाऊ,-वणप्फदी विविह-थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

अन्वयार्थ—(पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक **(विविह-थावरेइंदी)** ये विविध प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय

हैं और **(संखादी विग-तिग-चदु-पंचक्खा)** शंख आदि द्वीन्द्रिय, चींटी आदि त्रीन्द्रिय, भौंरा आदि चतुरिन्द्रिय और मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव **(तसजीवा)** त्रस जीव **(होंति)** होते हैं।

चौदह जीवसमास

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादर सुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वयार्थ—(पंचिंदिय) पंचेन्द्रिय जीव **(समणा)** मन सहित और **(अमणा)** मन रहित **(णेया)** जानना चाहिए **(परे सव्वे)** शेष सभी जीव याने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव **(णिम्मणा)** मन रहित हैं **(एइंदी बादर सुहुमा)** एकेन्द्रिय जीव बादर व सूक्ष्म के भेद से दो-दो प्रकार के हैं **(सव्वे पज्जत्त य इदरा)** ये सभी सातों प्रकार के जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं इस प्रकार ये १४ जीवसमास हो जाते हैं।

मार्गणा और गुणस्थान से जीव के भेद

मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

अन्वयार्थ—(तह) तथा **(संसारी)** संसारी जीव **(असुद्धणया)** अशुद्धनय से **(मग्गण गुणठाणेहि चउदसहि)** मार्गणा व गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद वाले **(हवंति)** होते हैं **(य)** और **(सुद्धणया)** शुद्धनय से **(सव्वे)** सभी जीव **(सुद्धा)** शुद्ध **(हु)** ही **(विण्णेया)** जानना चाहिए।

सिद्धों का स्वरूप

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पाद-वएहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वयार्थ—(णिक्कम्मा) आठकर्मों से रहित **(अट्ठगुणा)** आठगुणों से सहित **(चरमदेहदो किंचूणा)** अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाले **(लोयग्ग-ठिदा)** ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित **(णिच्चा)** विनाश रहित और **(उप्पाद-वएहिं संजुत्ता)** उत्पाद व व्यय से संयुक्त हैं वे **(सिद्धा)** सिद्ध भगवान् हैं।

अजीव द्रव्य

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अन्वयार्थ—(पुण) और **(पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो)** पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँचों को **(अज्जीवो)** अजीव द्रव्य **(णेयो)** जानना चाहिए **(रूवादिगुणो पुग्गलमुत्तो)** रूप/वर्ण, स्पर्श, रस, गंध आदि गुण वाला पुद्गल मूर्तिक द्रव्य है **(दु)** परन्तु रूपादि गुण वाले न होने से **(सेसा)** शेष पाँच द्रव्य **(अमुत्ति)** अमूर्त्तिक हैं।

पुद्गल द्रव्य की पर्यायें

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण-भेद-तम-छाया।
उज्जोदादव-सहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वयार्थ—(सद्दो) शब्द **(बंधो)** बंध **(सुहुमो)** सूक्ष्म **(थूलो)** स्थूल **(संठाण-भेद-तम-छाया)** संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया **(उज्जोदादव-सहिया)** उद्योत व आतप सहित **(पुग्गलदव्वस्स पज्जाया)** पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

धर्मद्रव्य

गइ परिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वयार्थ—(गइपरिणयाण) गमन करते हुए **(पुग्गल-जीवाण)** पुद्गल और जीवों के **(गमणसहयारी)** जो गमन में सहकारी/निमित्त है **(धम्मो)** वह धर्मद्रव्य है **(जह तोयं मच्छाणं)** जैसे जल मछलियों के गमन में सहकारी है **(सो)** वह धर्मद्रव्य **(अच्छंता)** ठहरने वाले जीव या पुद्गल को **(णेव णेई)** नहीं ले जाता है।

अधर्मद्रव्य

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वयार्थ—(ठाणजुदाण पुग्गलजीवाण) ठहरे हुए पुद्गल और जीवों के **(ठाण सहयारी)** ठहरने में सहकारी कारण **(अधम्मो)** अधर्मद्रव्य है **(जह पहियाणं छाया)** जैसे पथिकों के ठहरने में छाया सहकारी कारण है **(सो)** वह अधर्मद्रव्य **(गच्छंता)** गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को **(णेव धरई)** नहीं

धरता/ठहराता है।

आकाश द्रव्य

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वयार्थ—जो **(जीवादीणं)** जीव आदि समस्त द्रव्यों के **(अवगासदाण-जोग्गं)** अवकाश देने में समर्थ है उसे **(आयासं)** आकाशद्रव्य **(वियाण)** जानो वह **(जेण्हं)** जिनेन्द्रदेव ने **(लोगागासं अल्लोगागासं)** लोकाकाश और अलोकाकाश **(इदि)** इस प्रकार **(दुविहं)** दो प्रकार का कहा है।

आकाश द्रव्य

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जावदिये आयासे) जितने आकाश में **(धम्माधम्मा)** धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य **(कालो)** कालद्रव्य **(पुग्गलजीवा)** पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य **(संति)** हैं **(सो लोगो)** वह लोकाकाश है **(य)** तथा **(तत्तो परदो)** उसके आगे/बाहर **(अलोगो उत्तो)** अलोकाकाश कहा गया है।

काल द्रव्य

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जो दव्व-परिवट्टरूवो) द्रव्यों के परिवर्तनरूप और **(परिणामादी-लक्खो)** परिणाम यानि समय आदि पर्याय लक्षण वाला है **(सो ववहारो कालो)** वह व्यवहारकाल है **(य)** और **(वट्टणलक्खो)** जिसका वर्तना ही लक्षण है **(परमट्ठो)** वह परमार्थ काल अर्थात् निश्चयकाल **(हवेइ)** होता है।

काल द्रव्य के प्रदेश

लोयायासपदेसे, इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंख-दव्वाणि ॥२२॥

अन्वयार्थ—(इक्किक्के लोयायासपदेसे) एक-एक लोकाकाश के प्रदेशों पर **(रयणाणं रासीं इव)** रत्नों की राशि के समान **(इक्किक्का)** एक-एक **(कालाणू)** कालद्रव्यरूप अणु **(ठिया)** स्थित है **(ते)** वे कालाणु **(हु)** निश्चय से **(असंख-दव्वाणि)** असंख्यात द्रव्यरूप हैं।

अस्तिकाय के भेद

एवं छब्भेय-मिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार **(जीवाजीवप्पभेददो)** जीव और अजीव के भेद से **(इदं दव्वं)** यह द्रव्य **(छब्भेयं उत्तं)** छह भेद वाला कहा गया **(दु)** परन्तु **(कालविजुत्तं)** कालद्रव्य को छोड़कर **(पंच अत्थिकाया णादव्वा)** शेष पाँच द्रव्यों को अस्तिकाय जानना चाहिए।

अस्तिकाय का स्वरूप

संति जदो तेणेदे, अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अन्वयार्थ—(जदो एदे संति) क्योंकि ये पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश पाँच द्रव्यें हैं **(तेण)** इसलिए **(अत्थि)** अस्तित्ववान/विद्यमान हैं **(इत्ति)** ऐसा **(जिणवरा)** जिनेश्वरदेव **(भणंति)** कहते हैं **(य)** और **(जम्हा काया इव)** क्योंकि ये काय/शरीर के समान **(बहुदेसा)** बहुप्रदेशी हैं **(तम्हा काया)** इसलिए ये काय हैं **(य)** और अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से **(अत्थिकाया)** पाँचों द्रव्य अस्तिकाय होते हैं।

द्रव्यों की प्रदेश संख्या

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जीवे धम्माधम्मे) एक जीवद्रव्य में, धर्म व अधर्मद्रव्य में **(असंखा)** असंख्यात प्रदेश हैं **(आयासे)** आकाशद्रव्य में **(अणंत)** अनन्त प्रदेश हैं **(मुत्ते)** मूर्त पुद्गलद्रव्य में **(तिविह पदेसा)** संख्यात, असंख्यात और अनन्त ये तीनों प्रदेश **(होंति)** होते हैं **(कालस्स एगो)** कालद्रव्य का एक ही प्रदेश है **(तेण)** इस कारण से **(सो काओ ण)** वह कायवान्/बहुप्रदेशी नहीं है।

परमाणु उपचार से कायवान है

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एयपदेसो वि अणू) एक प्रदेश वाला भी पुद्गलरूप अणु **(णाणा-खंधप्पदेसदो)** अनेक स्कन्धरूप प्रदेशों का कारण होने से **(बहुदेसो)**

बहुप्रदेशी **(होदि)** होता है **(य)** और **(तेण)** इसी कारण से **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञदेव परमाणु को **(उवयारा काओ)** उपचार/व्यवहार से कायवान/बहुप्रदेशी **(भणंति)** कहते हैं।

प्रदेश का स्वरूप

जावदियं आयासं, अविभागीपुग्गलाणुवट्टुद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(जावदियं आयासं) जितना आकाश **(अविभागी-पुग्गलाणु-वट्टुद्धं)** पुद्गल के अविभाजित परमाणु से व्याप्त/रोका गया है **(तं)** उसको **(खु)** निश्चय से **(सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं)** सर्व परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ **(पदेसं)** प्रदेश **(जाणे)** जानना चाहिए।

पदार्थ नाम निर्देश

आसवबंधणसंवर,-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वयार्थ—(जीवाजीवविसेसा) जीव और अजीव के विशेष/भेद **(सपुण्ण-पावा)** पुण्य और पाप सहित **(जे)** जो **(आसव-बंधण-संवर-णिज्जर-मोक्खा)** आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं **(ते वि)** उनको भी **(समासेण)** संक्षेप से **(पभणामो)** कहता हूँ।

भावास्रव एवं द्रव्यास्रव

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अप्पणो) आत्मा के **(जेण)** जिस **(परिणामेण)** परिणाम से **(कम्मं आसवदि)** कर्म आता है **(स जिणुत्तो)** वह जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ **(भावासवो)** भावास्रव **(विण्णेओ)** जानना चाहिए और **(कम्मासवणं)** ज्ञानावरणादि कर्मों का आना **(परो होदि)** वह उस भावास्रव से भिन्न द्रव्यास्रव होता है।

भावास्रव के भेद

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओथ विण्णेया।
पण-पण-पणदह तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वयार्थ—(अथ) अब **(पुव्वस्स)** पहले भावास्रव के **(मिच्छत्ताविरदि-**

पमादजोगकोधादओ) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग व क्रोधादि कषाय भेद हैं **(दु)** और उनके **(कमसो)** क्रम से **(पण-पण)** पाँच, पाँच **(पणदह)** पंद्रह **(तिय चदु)** तीन और चार **(भेदा)** भेद **(विण्णेया)** जानने चाहिए।

द्रव्यास्रव का स्वरूप

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वयार्थ—(णाणावरणादीणं जोग्गं) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य **(जं पुग्गलं)** जो पुद्गलद्रव्य **(समासवदि)** आता है अर्थात् कर्मरूप होता है **(स)** वह **(जिणक्खादो)** श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया **(अणेयभेओ)** अनेक भेद वाला **(दव्वासवो)** द्रव्यास्रव **(णेओ)** जानना चाहिए।

बन्ध तत्त्व का स्वरूप

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदण-भावेण भावबंधो सो।
कम्माद-पदेसाणं, अण्णोण्ण-पवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वयार्थ—(जेण) जिस **(चेदण-भावेण)** आत्मा के परिणाम से **(कम्मं बज्झदि)** कर्म बंधता है **(सो)** वह **(भावबंधो)** भाव बंध है **(दु)** और **(कम्माद-पदेसाणं)** कर्म व आत्मप्रदेशों का **(अण्णोण-पवेसणं)** परस्पर एकमेक हो मिलकर रहना **(इदरो)** उस भावबंध से अन्य, द्रव्यबंध है।

बन्ध के भेद और कारण

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविहो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वयार्थ—(पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से **(बंधो)** बंध **(चदुविहो)** चार प्रकार का होता है, उनमें से **(पयडिपदेसा)** प्रकृति और प्रदेश बंध तो **(जोगा)** मन-वचन-कायरूप योग से होते हैं **(दु)** तथा **(ठिदि-अणुभागा)** स्थिति और अनुभागबंध **(कसायदो)** कषाय से **(होंति)** होते हैं।

भाव संवर - द्रव्य संवर

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासव-णिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासव-रोहणे अण्णो ॥३४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(चेदणपरिणामो)** आत्मा का परिणाम **(कम्मस्सासव-**

णिरोहणे) कर्म के आस्रव के रोकने में **(हेदू)** कारण हैं **(सो)** वह **(खलु)** निश्चय से **(भावसंवरो)** भाव संवर है तथा **(दव्वासव-रोहणे**/णो) द्रव्यास्रव का रुकना **(अण्णो)** अन्य है अर्थात् भाव संवर से भिन्न द्रव्य संवर है।

भाव संवर के भेद

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

अन्वयार्थ—(वदसमिदीगुत्तीओ) व्रत, समिति, गुप्ति, **(धम्माणुपेहा)** धर्म, अनुप्रेक्षा, **(परीसहजओ)** परीषहजय **(य)** और **(बहुभेया)** बहुत प्रकार वाला **(चारित्तं)** चारित्र ये सभी **(भावसंवरविसेसा)** भावसंवर के भेद **(णायव्वा)** जानना चाहिए।

निर्जरा तत्त्व का स्वरूप

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

अन्वयार्थ—(जहकालेण) कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से **(भुत्तरसं)** जिसका फल भोगा जा चुका है ऐसा **(कम्मपुग्गलं)** कर्मरूप पुद्गल **(जेण भावेण)** जिस आत्म परिणाम से **(सडदि)** झड़ता/छूटता है, वही परिणाम सविपाक भावनिर्जरा है **(य)** और **(तवेण)** तपस्या के द्वारा **(जेण भावेण)** जिस आत्म परिणाम से **(कम्मपुग्गलं)** कर्मरूप पुद्गल **(सडदि)** झड़ता/छूटता है, वही परिणाम अविपाक भावनिर्जरा है तथा **(जहकालेण)** कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से **(य)** अथवा **(तवेण)** तपस्या के द्वारा जो **(कम्मपुग्गलं)** ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मरूप पुद्गल **(सडदि)** झड़ता/छूटता है वह सविपाक- द्रव्यनिर्जरा और अविपाक-द्रव्यनिर्जरा है **(इदि णिज्जरा दुविहा)** इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की **(णेया)** जाननी चाहिए।

मोक्ष तत्त्व का स्वरूप

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

अन्वयार्थ—(हु) निश्चय से **(अप्पणो)** आत्मा का **(जो परिणामो)** जो परिणाम **(सव्वस्स कम्मणो)** समस्त कर्मों के **(खयहेदू)** क्षय का कारण है **(स)** वह **(भावमोक्खो)** भावमोक्ष है **(य)** और **(कम्मपुहभावो)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों

का पृथक् हो जाना **(दव्वविमोक्खो)** द्रव्यमोक्ष **(णेओ)** जानना चाहिए।

पुण्य-पाप

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से **(सुहअसुहभावजुत्ता)** शुभ व अशुभ भाव से युक्त **(जीवा)** जीव **(पुण्णं पावं)** पुण्य और पापरूप **(हवंति)** होते हैं **(सादं)** सातावेदनीय **(सुहाउ णामं गोदं)** शुभ आयु, शुभनाम तथा उच्चगोत्र ये सब कर्म प्रकृतियाँ **(पुण्णं)** पुण्यरूप हैं **(च)** और **(पराणि पावं)** अन्य शेष सब कर्म प्रकृतियाँ पापरूप हैं।

मोक्ष का कारण

सम्मद्दंसण-णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तिय-मइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

अन्वयार्थ—(ववहारा) व्यवहारनय से **(सम्मद्दंसण-णाणं चरणं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को तथा **(णिच्छयदो)** निश्चयनय से **(तत्तिय-मइओ)** इन तीनों स्वरूप वाले **(णिओ अप्पा)** निज आत्मा को ही **(मोक्खस्स कारणं)** मोक्ष का कारण **(जाणे)** जानो।

रत्नत्रयात्मक आत्मा मोक्ष का कारण

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वयार्थ—(रयणत्तयं) रत्नत्रयरूप धर्म **(अप्पाणं मुइत्तु)** आत्मा को छोड़कर **(अण्ण-दवियम्हि)** अन्य द्रव्य में **(ण वट्टइ)** नहीं रहता **(तम्हा)** इस कारण से **(तत्तियमइयो आदा)** इन तीनों मय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र सहित आत्मा ही **(हु)** निश्चय से **(मोक्खस्स कारणं)** मोक्ष का कारण **(होदि)** होती है।

सम्यग्ज्ञान

जीवादी-सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जीवादी-सद्दहणं) जीवादि सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व है **(तं)** वह **(अप्पणो रूवं)** आत्मा का स्वभाव है **(तु)**

और **(जम्हि)** जिस सम्यग्दर्शन के **(सदि)** होने पर **(णाणं)** ज्ञान **(खु)** निश्चय से **(दुरभिणिवेसविमुक्कं)** विपरीत अभिप्राय अर्थात् संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित होता हुआ **(सम्मं होदि)** सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

संसय-विमोह-विब्भम,-विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं, सायार-मणेय-भेयं च ॥४२॥

अन्वयार्थ—(संसयविमोहविब्भम-विवज्जियं) संशय—अनेक कोटि को स्पर्श करने वाला संदेहात्मक ज्ञान, विपर्यय—वस्तु धर्म के विपरीत परिचय कराने वाला ज्ञान और अनध्यवसाय—पदार्थ के विषय में कुछ भी निर्णय नहीं होने रूप ज्ञान इन तीन दोषों से रहित **(अप्पपरसरूवस्स)** अपने आत्मा के तथा पर पदार्थों के स्वरूप का **(गहणं)** ग्रहण करना **(सम्मण्णाणं)** सम्यग्ज्ञान है यह ज्ञान **(सायारं)** साकार/सविकल्प **(च)** और **(अणेयभेयं)** अनेक भेद वाला है।

दर्शन का स्वरूप

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

अन्वयार्थ—(अट्ठे) पदार्थों के विषय में **(आयारं)** आकार/विकल्प/भेद को **(णेव कट्टु)** न करके **(जं)** जो **(अविसेसिदूण)** काला-नीला, छोटा-बड़ा, घट-पट आदि विशेषताओं से रहित **(भावाणं)** पदार्थों का **(सामण्णं)** सामान्य **(गहणं)** ग्रहण करना **(समए)** शास्त्र में **(दंसणं)** दर्शन **(इदि)** इस प्रकार **(भण्णए)** कहा गया है।

ज्ञान-दर्शन का साहचर्य

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलि,-णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

अन्वयार्थ—(छदुमत्थाणं) छद्मस्थ जीवों के **(दंसणपुव्वं णाणं)** दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है **(जम्हा)** क्योंकि छद्मस्थों के **(दुण्णि)** दोनों **(उवओगा)** उपयोग **(जुगवं)** एक साथ **(ण)** नहीं होते हैं **(तु)** किन्तु **(केवलिणाहे)** केवलीभगवान् में **(ते दो वि)** वे दोनों ही उपयोग **(जुगवं)** एक साथ होते हैं।

व्यवहार चारित्र

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(ववहारणया) व्यवहारनय से **(असुहादो विणिवित्ती)** अशुभ क्रियाओं से निवृत्तिरूप **(य)** और **(सुहे पवित्ति)** शुभ क्रियाओं में प्रवृत्तिरूप **(जिणभणियं)** जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ **(चारित्तं जाण)** चारित्र जानो **(दु)** और वह चारित्र **(वदसमिदिगुत्तिरूवं)** व्रत, समिति और गुप्तिरूप है।

निश्चय चारित्र

बहिरब्भंतर-किरिया,-रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अन्वयार्थ—(भवकारणप्पणासट्ठं) संसार के कारणों का नाश करने के लिए **(णाणिस्स)** ज्ञानीजीव के **(बहिरब्भंतर-किरिया-रोहो)** बाह्य तथा आभ्यंतर क्रियाओं का निरोध **(जं जिणुत्तं)** जो जिनेन्द्रदेव ने कहा है **(तं परमं सम्मचारित्तं)** वह परम निश्चय सम्यक्चारित्र है।

ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

अन्वयार्थ—(जं) जिस कारण से **(मुणी)** आत्मज्ञानी मुनि **(दुविहं पि)** दोनों प्रकार के ही **(मोक्खहेउं)** मोक्ष के कारणों को **(झाणे)** ध्यान में **(णियमा)** नियम से **(पाउणदि)** प्राप्त कर लेता है **(तम्हा)** उस कारण से **(पयत्तचित्ता)** प्रयत्नचित्त होते हुए **(जूयं)** तुम सब **(झाणं)** ध्यान का **(समब्भसह)** अच्छे प्रकार से अभ्यास करो।

ध्यान की एकाग्रता का उपाय

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह (हि) जइ चित्तं, विचित्त-झाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

अन्वयार्थ—(विचित्त-झाणप्पसिद्धीए) अनेक प्रकार के ध्यानों की सिद्धि के लिये **(जइ चित्तं)** यदि चित्त को **(थिरं इच्छह (हि))** स्थिर करना चाहते हो तो **(इट्ठणिट्ठअत्थेसु)** इष्ट, अनिष्ट पदार्थों में **(मुज्झह मा)** मोह मत करो **(रज्जह मा)** राग मत करो और **(दुस्सह मा)** द्वेष मत करो।

मन्त्र जाप्य

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठि-वाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥

अन्वयार्थ—(गुरूवएसेण) गुरुओं के उपदेश से **(परमेट्ठि-वाचयाणं)** परमेष्ठियों के वाचक **(पणतीस)** पैंतीस **(सोल)** सोलह **(छप्पण)** छह, पाँच **(चदु दुगं)** चार, दो **(च)** और **(एगं)** एक अक्षर के मन्त्र को तथा **(अण्णं च)** अन्य भी मन्त्रों को **(जवह झाएह)** जपो और ध्यान करो।

अरिहन्त परमेष्ठी

णट्ठ-चदुघाइ-कम्मो, दंसण-सुह-णाण-वीरिय-मइओ।
सुह-देहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

अन्वयार्थ—(णट्ठ-चदुघाइकम्मो) नष्ट कर दिये हैं चार घातिया कर्म जिन्होंने ऐसे **(दंसणसुहणाणवीरियमइओ)** अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तज्ञान व अनन्तवीर्य से सहित **(सुह-देहत्थो)** शुभ, परम औदारिक शरीर में स्थित **(सुद्धो अप्पा)** अठारह दोषों से रहित शुद्ध, आत्मा **(अरिहो)** अरिहन्त परमेष्ठी हैं वे **(विचिंतिज्जो)** विशेष चिंतन/ध्यान के योग्य हैं।

सिद्ध परमेष्ठी

णट्ठट्ठ-कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोय-सिहरत्थो ॥५१॥

अन्वयार्थ—(णट्ठट्ठ-कम्मदेहो) नष्ट हो गए हैं आठकर्म और औदारिक आदि शरीर जिनका **(लोयालोयस्स)** लोक और अलोक को **(जाणओ दट्ठा)** जानने देखने वाला **(लोयसिहरत्थो)** लोक के शिखर पर स्थित **(पुरिसायारो)** जिस पुरुष देह से मोक्ष हुआ है उस पुरुष के आकार वाला **(अप्पा)** आत्मा **(सिद्धो)** सिद्ध परमेष्ठी है उसका **(झाएह)** ध्यान करो।

आचार्य परमेष्ठी

दंसणणाणपहाणे, वीरिय-चारित्त-वर-तवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

अन्वयार्थ—जो **(मुणी)** मुनि **(दंसणणाणपहाणे)** दर्शनाचार और ज्ञानाचार की प्रधानता वाले **(वीरिय-चारित्त-वर-तवायारे)** वीर्याचार, चारित्राचार व श्रेष्ठ तपाचार में **(अप्पं च परं)** अपने को व दूसरों को **(जुंजइ)** जोड़ता/लगाता

है **(सो आइरिओ)** वह आचार्य परमेष्ठी **(झेओ)** ध्यान करने योग्य है।

उपाध्याय परमेष्ठी

जो रयणत्तय-जुत्तो, णिच्चं धम्मोवदे (ए) सणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(रयणत्तयजुत्तो)** रत्नत्रय से युक्त **(णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो)** हमेशा मुनि आदि को धर्म का उपदेश करने में निरत/तत्पर है **(सो जदिवरवसहो)** वह मुनिवरों में प्रधान **(अप्पा)** आत्मा **(उवझाओ)** उपाध्याय परमेष्ठी है **(तस्स णमो)** उसको नमस्कार हो।

साधु परमेष्ठी

दंसण-णाण-समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥५४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(मुणी)** मुनि **(मोक्खस्स मग्गं)** मोक्ष के मार्गभूत **(दंसण-णाण-समग्गं)** सम्यग्दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण **(णिच्चसुद्धं)** सदा शुद्ध अर्थात् रागादि रहित **(चारित्तं)** चारित्र को **(हु)** निश्चय से **(साधयदि)** साधता है **(सो साहू)** वह साधु परमेष्ठी है **(तस्स णमो)** उसको नमस्कार हो।

निश्चय ध्यान की योग्यता

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूण य एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥५५॥

अन्वयार्थ—(य) और वह **(साहू)** साधु **(जदा)** जिस समय **(जं किंचिवि)** जो कुछ भी **(चिंतंतो)** चिंतन करता हुआ **(एयत्तं)** एकाग्रता को **(लद्धूण)** प्राप्त करके **(णिरीहवित्ती)** इच्छा रहित **(हवे)** होता है **(तदा)** उस समय **(तस्स)** उस साधु का **(तं)** वह **(णिच्छयं झाणं)** निश्चय ध्यान है ऐसा **(आहु)** तीर्थंकरदेव कहते हैं।

आत्मलीनता का उपाय

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

अन्वयार्थ—(किंवि) कुछ भी **(चिट्ठह मा)** चेष्टा मत करो **(जंपह मा)** बोलो मत **(चिंतह मा)** चिंतन/विचार मत करो **(जेण)** जिससे **(अप्पा अप्पम्मि)** आत्मा आत्मा में **(रओ)** रत होता हुआ **(थिरो हवे)** स्थिर होवे **(इणं एव)** यह

ही **(परं झाणं)** परम ध्यान **(होइ)** होता है।

ध्यान के साधन

तव-सुद-वदवं चेदा, झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तिय-णिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

अन्वयार्थ—(जम्हा) जिस कारण से **(तवसुदवदवं)** तप, श्रुत और व्रत वाली **(चेदा)** आत्मा **(झाणरहधुरंधरो)** ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने वाली **(हवे)** होती है **(तम्हा)** उस कारण से **(तल्लद्धीए)** उस ध्यान की प्राप्ति के लिये **(सदा)** हमेशा **(तत्तियणिरदा)** तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में निरत **(होह)** होओ।

ग्रन्थकर्ता की लघुता

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा (या) सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

अन्वयार्थ— (तणुसुत्तधरेण) अल्पश्रुत को धारण करने वाले **(णेमिचंदमुणिणा)** मुझ नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा **(जं इणं दव्वसंगहं भणियं)** जो यह द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ कहा गया है इसको **(दोससंचयचुदा**(या)**)** दोषों के समूह से रहित **(सुदपुण्णा)** श्रुत में परिपूर्ण **(मुणिणाहा)** मुनियों के नाथ बहुश्रुत ज्ञाता गुरुजन **(सोधयंतु)** शुद्ध करें।

❑ ❑ ❑

भजन

हे प्रभु आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक, वीर व्रतधारी बनें।
प्रेम से हम गुरुजनों की, नित्य ही सेवा करें।
सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस में करें।
निंदा किसी की हम किसी से, भूलकर भी ना करें।
धैर्य बुद्धि मन लगाकर ईश गुण गाया करें।

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

ईसा की ९ वीं शताब्दी में राजर्षि अमोघवर्ष द्वारा रचित प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका लघु कृति नहीं वरन् सारगर्भित ग्रन्थ है। संस्कृत भाषा के आर्या छन्द में लिखे गये मात्र २९ श्लोक ही जगत् और जीवन की पारदर्शिता प्रस्तुत करते हैं। भाषा सौष्ठव के साथ प्रश्नोत्तर मणियों को श्लोक माला में जिस तरह पिरोया गया है, उसे देखकर आत्मार्थी बरवस ही उसे धारण करने को तैयार हो जाते हैं। कृति के २९ श्लोकों के मात्र २५ श्लोकों में ६६ प्रश्न बनाकर रचयिता ने अपनी रचना की आकृति दी है। कृति में जो भी सार दिया गया है, वह गृहस्थ और साधक दोनों के लिए ही यथार्थता का परिचय कराने के लिए परिपूर्ण है।

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(नागनरामरवन्द्यं) नागेन्द्र, मनुष्य और देवों से वंदनीय **(देवं)** स्वयं देवस्वरूप **(देवाधिपम्)** देवों के अधिपति **(वीरम्)** वीर **(वर्द्धमानं)** वर्द्धमान भगवान् को **(प्रणिपत्य)** नमस्कार करके **(प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां)** प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को **(वक्ष्ये)** कहूँगा।

कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थ - साधनपटीयान्।
कण्ठस्थितया विमलप्रश्नोत्तररत्नमालिकया ॥२॥

अन्वयार्थ—(कण्ठस्थितया) कण्ठ में स्थित **(विमल प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिकया)** अच्छे प्रश्न-उत्तर की रत्नमाला से **(दृष्टा-दृष्टार्थ साधन-पटीयान्)** दृष्ट और अदृष्ट अर्थ को साधने में प्रवीण **(कः)** कौन व्यक्ति **(न खलु अलंक्रियते)** विभूषित नहीं होगा? अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति होगा।

भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्वः सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(भगवन्) हे भगवन्! **(किम्)** क्या **(उपादेयम्)** उपादेय है? **(गुरुवचनम्)** गुरु वचन उपादेय हैं **(च)** और **(हेयम् अपि)** हेय भी **(किम्)** क्या है? **(अकार्यम्)** नहीं करने योग्य कार्य हेय हैं **(गुरुः)** गुरु **(कः)** कौन है?

(अधिगत तत्त्वः) जिसने तत्त्वों को समझ लिया है, वह तथा **(सततम्)** जो निरंतर **(सत्त्व-हिताभ्युद्यतः)** सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है।

त्वरितं किं कर्त्तव्यं विदुषा संसार-सन्ततिच्छेदः।
किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रियासहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(विदुषा) बुद्धिमान् व्यक्ति के द्वारा **(त्वरितं)** शीघ्र **(किम्)** क्या **(कर्त्तव्यम्)** करना चाहिए ? **(संसार सन्ततिच्छेदः)** संसार सन्तति का छेद करना चाहिए **(मोक्षतरोः)** मोक्ष रूपी वृक्ष का **(बीजम्)** बीज **(किम्)** क्या है? **(सम्यग्ज्ञानम्)** वह सम्यग्ज्ञान जो **(क्रिया सहितम्)** क्रिया से सहित है।

किं पथ्यदनं धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरिता गुरवः ॥५॥

अन्वयार्थ—(पथि) मार्ग में **(अदनम्)** भोजन **(किम्)** क्या है? **(धर्मः)** धर्म है। **(इह)** इहलोक में **(शुचिः)** पवित्र **(कः)** कौन है? **(यस्य)** जिसका **(मानसं शुद्धम्)** मानस शुद्ध है। **(कः पण्डितः)** पण्डित कौन है **(विवेकी)** विवेकी जीव, **(किं विषम्)** जहर क्या है? **(गुरवः अवधीरिताः)** गुरुओं का तिरस्कार।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥६॥

अन्वयार्थ—(संसारे) संसार में **(सारं किम्)** सार क्या है? **(बहुशः अपि)** बहुत बार भी **(विचिन्त्यमानम्)** चिन्तन करते हुए **(इदम् एव)** यह ही है कि **(मनुजेषु जन्म)** मनुष्य जन्म पाकर **(दृष्ट तत्त्वम्)** तत्त्वदर्शी होते हुए **(स्व-पर-हिताय)** स्व-पर हित के लिए **(उद्यतं)** उद्यत रहना।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषया।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी नन्वनुद्योगः ॥७॥

अन्वयार्थ—(मदिरा इव) मदिरा के समान **(मोहजनकः)** मोह उत्पन्न करने वाला **(कः)** कौन है? **(स्नेहः)** स्नेह है। **(के च दस्यवः)** और लुटेरे कौन हैं? **(विषयाः)** विषय हैं। **(भववल्ली)** संसार की लता **(का)** क्या है? **(तृष्णा)** तृष्णा है **(वैरी कः)** कौन वैरी है **(ननु)** वास्तव में **(अनुद्योगः)** पुरुषार्थ (उद्योग) नहीं करना ही अपना दुश्मन है।

कस्माद्भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणैर्न च व्यथितः ॥८॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में **(कस्मात् भयम्)** भय किससे है ? **(मरणात्)** मरण से है। **(अन्धात् अपि)** अंधे से भी **(कः)** कौन **(विशिष्यते)** बढ़कर है ? **(रागी)** रागी जीव। **(कः शूरः)** शूर कौन है ? **(यः)** जो **(ललना-लोचन-बाणैः)** स्त्री के नेत्ररूपी बाणों से **(न च व्यथितः)** पीड़ित नहीं हुआ।

पातुं कर्णाञ्जलिभिःकिममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ॥९॥

अन्वयार्थ—(कर्णाञ्जलिभिः) कर्णरूपी अञ्जलि से **(पातुम्)** पीने के लिए **(अमृतम् इव)** अमृत के समान **(किम् बुध्यते)** क्या जाना जाता है **(सदुपदेशः)** सदुपदेश। **(गुरुतायाः मूलम्)** बड़प्पन का मूल कारण **(किम्)** क्या है ? **(एतत् यत्)** यह कि **(अप्रार्थनम् नाम)** अयाचकवृत्ति।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्र्यमसंतोष एव किं लाघवं याञ्चा ॥१०॥

अन्वयार्थ—(किं गहनम्) जानने में जटिल क्या है? **(स्त्री-चरितम्)** स्त्री का चरित्र। **(कःचतुरः)** कौन चतुर है? **(यः)** जो **(तेन)** उस स्त्री के चरित्र से **(न खण्डितः)** टूटा नहीं। **(किं दारिद्र्यम्)** दरिद्रता क्या है? **(असंतोषः)** असंतोष है। **(एवं)** इसी प्रकार **(किं लाघवम्)** लघुता क्या है? **(याञ्चा)** याचना।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः ॥११॥

अन्वयार्थ—(किं जीवितम्) जीवन क्या है? **(अनवद्यम्)** दूषण रहित होना। **(जाड्यं किम्)** जड़ता क्या है? **(पाटवे अपि अनभ्यासः)** चतुर होने पर भी अभ्यास नहीं करना। **(कः जागर्ति)** कौन जाग्रत है? **(विवेकी)** विवेकी जीव। **(का निद्रा)** निद्रा क्या है? **(जन्तोः)** प्राणी की **(मूढता)** मूढ़ता।

नलिनीदलगतजललवतरलं किं यौवनं धनमथायुः।
के शशधरकरनिकरा-नुकारिणः सज्जना एव ॥१२॥

अन्वयार्थ—(नलिनी-दल-गत-जल-लव-तरलम्) कमल के पत्ते पर छोटी बूँदों के समान क्षणभंगुर **(किम्)** क्या है? **(यौवनम्)** यौवन **(धनम्)** धन **(अथ)** और **(आयुः)** आयु है। **(शश-धर-कर-निकरा-नुकारिणः)** चन्द्रमा की किरणों के समूहों का अनुकरण करने वाले **(के)** कौन हैं? **(सज्जना एव)** सज्जन पुरुष ही हैं।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(कः नरकः) नरक क्या है? **(परवशता)** पराधीन होना। **(सौख्यं किम्)** सुख क्या है? **(या)** जो **(सर्व-संग-विरतिः)** समस्त परिग्रह से विरति है, वह सुख है। **(सत्यं किम्)** सत्य क्या है? **(भूतहितम्)** प्राणियों का हित करना। **(प्रेयः किम्)** प्रिय वस्तु क्या है? **(प्राणिनाम् असवः)** प्राणियों को अपने प्राण।

किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।
कोऽलंकारः शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(दानं किम्) दान क्या है? **(अनाकाङ्क्षम्)** आकांक्षा से रहित होकर देना ही दान है। **(मित्रं किम्)** मित्र कौन है? **(यत् पापात्)** जो पाप से **(निवर्तयति)** रोकता है। **(अलंकारः कः)** आभूषण क्या है? **(शीलम्)** शील है। **(वाचां)** वचनों का **(मण्डनं किम्)** आभूषण क्या है? **(सत्यम्)** सत्य है।

किमनर्थफलं मानसमसंगतं का सुखावहा मैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(अनर्थ फलम् किम्) अनर्थ का फल क्या है? **(असंगतं मानसम्)** मन का व्यथित होना। **(सुखावहा का)** सुख देने वाली चीज क्या है? **(मैत्री)** मैत्री भावना। **(सर्व-व्यसन-विनाशे)** समस्त दुखों के नाश में **(कः दक्षः)** कौन समर्थ है? **(सर्वथा त्यागः)** सर्व प्रकार से त्याग करना।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अन्धः कः) अन्धा कौन है? **(यः)** जो **(अकार्यरतः)** अयोग्य/निंद्य कार्य में लगा है। **(कः बधिरः)** बहरा कौन है? **(यः)** जो **(हितानि)** हित को **(न शृणोति)** नहीं सुनता है। **(मूकः)** गूंगा **(कः)** कौन है? **(यः)** जो **(काले)** समय पर **(प्रियाणि वक्तुम्)** प्रिय बोलना **(न जानाति)** नहीं जानता है।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम् ॥१७॥

अन्वयार्थ—(मरणम् किम्) मरण क्या है? **(मूर्खत्वम्)** मूर्खपना **(च)** और

(अनर्घ्यम् किम्) बहुमूल्य क्या है? **(यदवसरे दत्तम्)** जो अवसर पर दिया जाये। **(आमरणात् किं शल्यम्)** मरण समय तक शल्य क्या है? **(यत् अकार्यम्)** जो नहीं करने योग्य कार्य **(प्रच्छन्नं कृतम्)** गुप्त रीति से किया गया हो।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु ॥१८॥

अन्वयार्थ–(यत्नः) प्रयत्न **(कुत्र)** कहाँ **(विधेयः)** करना चाहिए? **(सदा)** हमेशा **(विद्याभ्यासे)** विद्या के अभ्यास में, **(औषधे दाने)** औषध दान में। **(अवधीरणा)** अनादर **(क्व)** कहाँ **(कार्या)** करना चाहिए? **(खल-परयोषित्-परधनेषु)** दुष्ट, परस्त्री और पर धन में।

काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री ॥१९॥

अन्वयार्थ–(अहर्निशम्) रात-दिन **(का)** क्या **(अनुचिन्त्या)** चिन्तन करना चाहिए? **(संसारासारता)** संसार की असारता का **(न च प्रमदा)** स्त्री का नहीं। **(प्रेयसी विधेया का)** प्रेमिका किसे बनाना चाहिए? **(करुणा-दाक्षिण्यम् अपि)** करुणा, कुशलता और **(मैत्री)** मैत्री भाव को।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥२०॥

अन्वयार्थ–(कण्ठगतैः असुभिः अपि) कण्ठगत प्राण होने पर भी **(आत्मा)** अपने को **(कस्य)** किसे **(जातु न)** कभी भी **(समर्प्यते)** समर्पित **(न)** नहीं करना चाहिए? **(मूर्खस्य)** मूर्ख को **(विषादस्य च)** खेद-खिन्न पुरुष को **(गर्वस्य)** घमण्डी को **(तथा)** तथा **(कृतघ्नस्य)** कृतघ्न को।

कः पूज्यः सद्वृत्तः कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।
केन जितं जगदेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥२१॥

अन्वयार्थ–(पूज्यः कः) पूज्य कौन है? **(सद्वृत्तः)** सम्यक्चारित्र वाला। **(अधनम् कम् आचक्षते)** निर्धन किसे कहते हैं? **(चलितवृत्तम्)** जिसका चारित्र अस्थिर है। **(केन जितम् एतत् जगत्)** यह संसार किसने जीता? **(सत्य-तितिक्षावता पुंसा)** सत्य और सहनशील पुरुष ने।

कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दया प्रधानाय।
कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥२२॥

अन्वयार्थ—(सुरैः अपि) देवों के द्वारा **(कस्मै)** किसके लिए **(सुतराम्)** अच्छी तरह **(नमः क्रियते)** नमस्कार किया जाता है? **(दया प्रधानाय)** दया प्रधान पुरुष के लिए। **(सुधिया)** बुद्धिमान् को **(कस्मात्)** किससे **(उद्विजितव्यम्)** भीति होना चाहिए? **(संसार-रण्यतः)** संसाररूपी जंगल से।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाय ॥२३॥

अन्वयार्थ—(प्राणिगणः) प्राणी **(कस्य)** किसके **(वशे)** वश में होते हैं। **(सत्य-प्रिय-भाषिणः)** सत्य और प्रिय बोलने वाले के तथा **(विनीतस्य)** विनीत पुरुष के। **(दृष्टादृष्टलाभाय)** दृष्ट-अदृष्ट लाभ के लिए **(क्व)** कहाँ **(स्थातव्यम्)** रहना चाहिए? **(न्याय्ये पथि)** न्याय पथ में।

विद्युत्विलसितचपलं किं दुर्जनं संगतं युवतयश्च।
कुलशैलनिष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः ॥२४॥

अन्वयार्थ—(विद्युत् विलसितचपलम् किम्) बिजली के समान चंचल क्या है ? **(दुर्जनम् संगतम्)** दुर्जन के साथ मैत्री **(च)** तथा **(युवतयः)** स्त्रियाँ हैं। **(कलिकाले अपि)** कलिकाल में भी **(कुलशैल-निष्प्रकम्पाः के)** कुलाचल पर्वत के समान निश्चल कौन है ? **(सत्पुरुषाः)** सज्जन पुरुष हैं।

किं शौच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतरवित्तस्य तथा प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(किं शौच्यम्) शोचनीय क्या है? **(कार्पण्यम्)** कृपणता **(सति विभवे किं प्रशस्यम्)** वैभव होने पर भी क्या प्रशंसनीय है? **(औदार्यम्)** उदारता **(तनुतरवित्तस्य)** निर्धन को भी क्या प्रशंसनीय है? **(तथा)** वही उदारता **(प्रभविष्णोः)** समर्थ पुरुष को क्या प्रशंसनीय है? **(यत् सहिष्णुत्वम्)** जो सहनशीलता है।

चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूत तमसो विशेषेण ॥२६॥

दानं प्रियवाक्यसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्यागसहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(चिन्तामणिः इव दुर्लभम्) चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ **(इह)** इस संसार में **(किम्)** क्या है? **(ननु)** निश्चय से **(चतुर्भद्रम्)** चार भद्र हैं। **(विधूततमसः)** अज्ञान अंधकार से रहित जन **(विशेषेण)** विशेष रूप से **(तद् वदन्ति)** उसी का कथन **(भूयः)** खूब करते हैं **(कथयामि)** उसी को मैं कहता हूँ। **(प्रियवाक्यसहितम्)** प्रिय वचनों के साथ **(दानम्)** दान, **(अगर्वं)** गर्व रहित **(ज्ञानम्)** ज्ञान, **(क्षमान्वितम्)** क्षमा सहित **(शौर्यम्)** शौर्य **(च)** और **(त्यागसहितम्)** त्याग के साथ **(वित्तम्)** धन **(एतत्)** यह **(चतुर्भद्रम्)** चार कल्याणप्रद **(दुर्लभम्)** दुर्लभ हैं।

इति कण्ठगता विमला प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥२८॥
विवेकात् त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥२९॥

अन्वयार्थ– (इति) इस प्रकार **(येषाम्)** जिन व्यक्तियों को **(विमला)** यह निर्मल **(प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका)** प्रश्नोत्तर रत्नमाला **(कण्ठगता)** कण्ठगत हो जाती है **(ते)** वे लोग **(मुक्ताभरणाः अपि)** आभरण से रहित होते हुए भी **(विद्वत्समाजेषु)** विद्वानों की सभा में **(विभान्ति)** सुशोभित होते हैं। **(विवेकात्)** विवेक से **(त्यक्त राज्येन)** जिन्होंने राज्य छोड़ दिया है **(राज्ञा)** उस राजा **(अमोघवर्षेण)** अमोघवर्ष के द्वारा **(सुधियाम्)** बुद्धिमानों के लिए **(सत् अलंकृतिः)** उत्तम आभूषण रूप **(इयम्)** यह कृति **(रचिता)** रची है।

❑ ❑ ❑

समाधितंत्र

ईसा की छठवीं शताब्दी में रचित आचार्य पूज्यपाददेव द्वारा रचित इस ग्रन्थ का दूसरा नाम समाधिशतक है, क्योंकि इसमें १०५ श्लोक हैं। अध्यात्म विषय का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। इस ग्रन्थ में आत्मा की तीन दशाओं–बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का सविस्तार वर्णन है। लघु समयसार के रूप में इस ग्रन्थ की महनीयता सर्वविदित है। बहिरात्मभाव-मिथ्यात्व का त्याग कर अन्तरात्मा बनकर परमात्म पद की प्राप्ति के लिए प्रयास करना साधक का परम कर्तव्य है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और कर्मसंयोग का इस ग्रन्थ में संक्षेप में हृदयग्राही विवेचन किया गया है।

मंगलाचरण

सिद्ध परमात्मा का मंगल

येनात्माबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥१॥

अन्वयार्थ– (येन) जिसके द्वारा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मा एव)** आत्मारूप से ही **(च)** और **(अपरं)** दूसरे पदार्थ/कर्मजनित मनुष्य आदि पर्यायरूप पुद्गल को **(परत्वेन एव)** पररूप से ही **(अबुध्यत)** जाना गया है **(तस्मै)** उन **(अक्षयानन्तबोधाय)** अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप **(सिद्धात्मने)** सिद्धात्मा के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

अरहंत परमात्मा का मंगल

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती-
विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः ।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे
जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥

अन्वयार्थ– (तीर्थकृतः अपि) तीर्थंकर होते हुए भी **(अनीहितुः)** इच्छा रहित **(अवदतः अपि)** नहीं बोलते हुए भी–तालु, ओष्ठ आदि के शब्दों का उच्चारण न करते हुए भी **(यस्य)** जिनकी **(भारतीविभूतयः)** वाणीरूपी विभूतियाँ–वाणी और छत्र त्रयादिक विभूतियाँ **(जयन्ति)** जय को प्राप्त होती हैं **(तस्मै)** उन

(शिवाय) कल्याणस्वरूप शिव के लिए **(धात्रे)** विधाता– ब्रह्मरूप– सन्मार्ग के उपदेश द्वारा लोक के उद्धारक के लिये **(सुगताय)** सुगतरूप–सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त/सर्वज्ञ के लिए **(विष्णवे)** विष्णुरूप–केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने वाले/ जानने वाले के लिए **(जिनाय)** जिनरूप–संसार परिभ्रमण के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जीतने वाले/जिन के लिए **(सकलात्मने)** अरिहंत परमेष्ठी के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

ग्रन्थ प्रतिज्ञा

श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्तःकरणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्य-सुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

अन्वयार्थ–(श्रुतेन) शास्त्र के द्वारा **(लिङ्गेन)** अनुमान वा हेतु के द्वारा **(यथात्मशक्ति)** अपनी शक्ति के अनुसार **(समाहितान्तःकरणेन)** मन की एकाग्रता से **(सम्यक्)** अच्छी तरह **(समीक्ष्य)** परीक्षा/अनुभव करके **(कैवल्य-सुखस्पृहाणां)** केवलज्ञान और सुख की इच्छा करने वालों को **(अथ)** अब मैं पूज्यपाद आचार्य **(विविक्तं आत्मानं)** पर द्रव्यों से पृथक्–कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को **(अभिधास्ये)** कहूँगा।

आत्मा के तीन प्रकार

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥४॥

अन्वयार्थ–(सर्वदेहिषु) सभी देहधारियों में **(बहिः)** बहिरात्मा **(अन्तः)** अन्तरात्मा **(च)** और **(परः)** परमात्मा **(इति)** इस प्रकार **(त्रिधात्मा)** तीन प्रकार की आत्मा है **(तत्र)** उसमें–आत्मा के उन तीन भेदों में से **(मध्योपायात्)** मध्यम अर्थात् अन्तरात्मा के उपाय द्वारा **(परमं)** उत्कृष्ट अर्थात् परमात्मपने को **(उपेयात्)** प्राप्त होओ और **(बहिः)** बहिरात्मा को **(त्यजेत्)** त्याग दो।

तीन प्रकार के आत्मा के लक्षण

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥५॥

अन्वयार्थ–(शरीरादौ) शरीर आदि में **(जातात्मभ्रान्तिः)** जिसे आत्म भ्रान्ति उत्पन्न हुई है वह **(बहिरात्मा)** बहिरात्मा है **(चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः)** चित्त के, रागद्वेषादि दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहने वाला–उनका

ठीक विवेक रखने वाला अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करने वाला–अन्तरात्मा कहलाता है **(अति-निर्मलः परमात्मा)** अति निर्मल/सर्व कर्म मल से रहित परमात्मा है।

परमात्मा के नामान्तर

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः॥६॥

अन्वयार्थ– (निर्मलः) निर्मल–कर्मरूपी मल रहित है **(केवलः)** केवल–शरीरादि परद्रव्यों के सम्बन्ध से रहित है **(शुद्धः)** शुद्ध–द्रव्यकर्म व भावकर्म से रहित है **(विविक्तः)** विविक्त–शरीर और कर्मादि के स्पर्श से रहित है **(प्रभुः)** प्रभु–इन्द्रादिकों का स्वामी है **(अव्ययः)** अव्यय–अपने अनंत चतुष्टयरूप स्वभाव से च्युत न होने वाला **(परमेष्ठी)** परमपद में स्थित है **(परात्मा)** परात्मा–संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा **(ईश्वरः)** ईश्वर–इन्द्रादिकों में नहीं पायी जाने वाली अन्तरंग व बहिरंग परमैश्वर्य से सदा सम्पन्न **(जिनः)** ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्म शत्रुओं को जीतने वाले **(इति परमात्मा)** इस प्रकार ये परमात्मा के नाम हैं।

बहिरात्मा की मान्यता

बहिरात्मेन्द्रियद्वारै - रात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति॥७॥

अन्वयार्थ– (बहिरात्मा) बहिरात्मा जीव **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(स्फुरितः)** बाह्य पदार्थों में लगा हुआ **(आत्मज्ञानपराङ्मुखः)** आत्मज्ञान से विमुख रहता है इसलिए **(स्वात्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(आत्मत्वेन)** आत्मरूप से **(अध्यवस्यति)** निश्चय करता है–अपनी आत्मा जानता है।

नरदेहस्थमात्मान - मविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं सुराङ्गस्थं सुरं तथा ॥८॥
नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनन्तानन्तधीशक्तिः स्वसंवद्योऽचलस्थितिः॥९॥

अन्वयार्थ– (अविद्वान्) अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(नरदेहस्थं)** मनुष्य देह में स्थित **(आत्मानं)** आत्मा को **(नरं)** मनुष्य, **(तिर्यगङ्गस्थं)** तिर्यंच शरीर में रहने

वाली आत्मा को **(तिर्यञ्चं)** तिर्यंच, **(सुराङ्गस्थं)** देव के शरीर में रहने वाली आत्मा को **(सुरं)** देव **(तथा)** तथा **(नारकाङ्गस्थं)** नारकी देह में स्थित आत्मा को **(नारकं)** नारकी **(मन्यते)** मानता है **(तत्त्वतः)** वस्तुतः–शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से **(तथा)** उस प्रकार **(स्वयं न)** वह आत्मा स्वयं नहीं होता है वह तो **(अनन्तानन्तधीशक्तिः)** अनन्तज्ञान और अनन्तशक्तिरूप वीर्य का धारक है, **(स्वसंवेद्यः)** स्वानुभवगम्य है–अपने द्वारा आप अनुभव किए जाने योग्य है **(अचलस्थितिः)** अपने उक्त स्वभाव से कभी च्युत न होने वाला–उसमें सदा स्थिर रहने वाला है।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥१०॥

अन्वयार्थ– (मूढः) अज्ञानी–बहिरात्मा **(परात्माधिष्ठितं)** अन्य की आत्मा सहित **(अचेतनं)** चेतना रहित **(परदेहं)** दूसरे के शरीर को **(स्वदेहसदृशं)** अपने शरीर के समान इन्द्रिय व्यापार तथा वचनादि व्यवहार करता हुआ **(दृष्ट्वा)** देखकर **(परत्वेन)** पर की आत्मारूप से **(अध्यवस्यति)** मान लेता है/जान लेता है।

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः॥११॥

अन्वयार्थ– (देहेषु) सभी के शरीरों में **(स्वपराध्यवसायेन)** अपनी और पर की आत्म मान्यता से **(अविदितात्मनां)** आत्मा के स्वरूप को नहीं जानने वाले **(पुंसां)** पुरुषों के **(पुत्रभार्यादिगोचरः)** पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी **(विभ्रमः)** भ्रांति **(वर्तते)** होती है।

एकत्व अध्यवसानभाव ही अज्ञान है।

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात् संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते॥१२॥

अन्वयार्थ– (तस्मात्) उस विभ्रम से **(अविद्यासंज्ञितः)** अविद्या नाम का **(संस्कारः)** संस्कार **(दृढः)** दृढ़–मजबूत **(जायते)** हो जाता है **(येन)** जिसके कारण **(लोकः)** यह संसारी जीव–अज्ञानी जीव **(पुनरपि)** जन्मान्तर में भी **(अङ्गं एव)** शरीर को ही **(स्वं)** आत्मा **(अभिमन्यते)** मानता है।

संसार का संयोग और वियोग का कारण

देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम्॥१३॥

अन्वयार्थ– (देहे) शरीर में **(स्वबुद्धिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला बहिरात्मा **(निश्चयात्)** निश्चय से **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(एतेन)** शरीर के साथ **(युनक्ति)** जोड़ता–बाँधता है किन्तु **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला अन्तरात्मा **(देहिनं)** अपनी आत्मा को **(तस्मात्)** शरीर के सम्बन्ध से **(वियोजयति)** पृथक् करता है।

देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत्॥१४॥

अन्वयार्थ– (देहेषु) अपने या दूसरों के शरीर में **(आत्मधिया)** आत्मबुद्धि होने से **(पुत्रभार्यादिकल्पनाः)** (मेरा) पुत्र, (मेरी) स्त्री आदि की कल्पनायें **(जाताः)** उत्पन्न होती हैं **(हा)** खेद है कि **(जगत्)** बहिरात्मरूप प्राणिगण **(ताभिः)** उन्हीं कल्पनाओं के कारण **(सम्पत्तिं)** (स्त्री, पुत्रादि की) समृद्धि को **(आत्मनः)** अपनी समृद्धि **(मन्यते)** मानता है और इस प्रकार यह जगत् **(हतम्)** नष्ट हो रहा है।

बहिरात्मपना का उपसंहार

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त - र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः॥१५॥

अन्वयार्थ– (देहे) इस जड़ शरीर में **(आत्मधीः एव)** आत्मरूप बुद्धि का होना ही **(संसारदुःखस्य)** संसार के दुःखों का **(मूलं)** मूल कारण है **(ततः)** इस कारण **(एनां)** शरीर में आत्मत्व की मिथ्या कल्पना को–इस आत्मबुद्धि को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(अव्यापृतेन्द्रियः)** इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता हुआ **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में–आत्मा ही में **(प्रविशेत्)** प्रवेश करे।

अंतरात्मा की बाह्य प्रवृत्ति से उदासीनता

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम्।
तान् प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः॥१६॥

अन्वयार्थ– (अहं) मैं **(पुरा)** अनादिकाल से **(मत्तः)** अपने आत्मस्वरूप से

(च्युत्वा) स्खलित होकर **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(विषयेषु)** विषयों में **(पतितः)** गिरा हुआ इस कारण **(तान्)** उन इन्द्रिय विषयों को **(प्रपद्य)** प्राप्तकर मैंने **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(मां)** अपने स्वरूप–आत्मा को **(अहं इति)** मैं ही आत्मा हूँ इस रूप से **(न)** नहीं **(वेद)** जाना/विचारा–उस समय शरीर को ही आत्मा समझने के कारण मुझे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान नहीं हुआ।

स्व में आत्मत्व बुद्धि ही समाधि

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः॥१७॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार **(बहिर्वाचं)** बाहरी वचनों को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अशेषतः)** पूर्ण रूप से **(अन्तर्)** अंतरंग वचन जल्पों को **(त्यजेत्)** त्याग देवें **(एषः)** यह **(योगः)** योग–स्वरूप में चित्तनिरोध–लक्षणात्मक समाधि **(समासेन)** संक्षेप से **(परमात्मनः)** परमात्मा के स्वरूप का **(प्रदीपः)** प्रकाशक है।

वचन व्यापार से निवृत्त होने की भावना

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्॥१८॥

अन्वयार्थ– (मया) मेरे द्वारा **(यत् रूपं)** जो इन्द्रियगोचर शरीरादिरूपी पदार्थ **(दृश्यते)** दिखाई देता है **(तत्)** वह अचेतन होने से **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(न)** नहीं **(जानाति)** जानता है **(जानन्)** जानने वाले आत्मा का **(रूपं)** रूप **(न दृश्यते)** दिखाई नहीं देता है **(ततः)** इसलिए **(अहम्)** मैं **(केन)** किससे **(ब्रवीमि)** बोलूँ।

सुनने के व्यापार से निवृत्त होने की भावना

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥१९॥

अन्वयार्थ– (यत्) जो कुछ **(परैः)** दूसरों से **(प्रतिपाद्यः अहम्)** मैं समझने योग्य हूँ **(यत्)** या जो कुछ **(परान्)** दूसरों को **(प्रतिपादये)** मैं समझाता हूँ **(तत्)** वह सब कुछ **(मे)** मेरी **(उन्मत्तचेष्टितं)** पागलों के समान चेष्टाएँ हैं **(यत्)** क्योंकि **(अहं)** मैं **(निर्विकल्पकः)** विकल्पों से रहित स्वभाव वाला हूँ।

दान-आदान व्यवहार से निवृत्त होने की भावना

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥२०॥

अन्वयार्थ– (यत्) जो शुद्धात्मा **(अग्राह्यं)** ग्रहण में न आने योग्य को **(न)** नहीं **(गृह्णाति)** ग्रहण करता है **(गृहीतं)** जो ग्रहण किये गए अनन्तज्ञानादिक गुणों को **(नैव)** निश्चित ही नहीं **(मुञ्चति)** छोड़ता है जो **(सर्वं)** सभी चेतन-अचेतन पदार्थों को **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(जानाति)** जानता है **(तत्)** वह **(स्वसंवेद्यं)** अपने ही द्वारा अनुभव में आने योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

ज्ञानी पूर्व जीवन का पश्चाताप करता है

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात्॥२१॥

अन्वयार्थ– (यद्वत्) जिस प्रकार **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः)** उत्पन्न हुआ पुरुषपने का भ्रम जिसको हुआ है उसकी **(विचेष्टितम्)** अनेक प्रकार की चेष्टायें होती हैं **(तद्वत्)** उसी प्रकार **(पूर्वं)** पहले **(आत्मविभ्रमात्)** आत्मा के विषय में विभ्रम/विपरीतता होने से **(देहादिषु)** शरीर आदि में **(मे)** मेरी **(चेष्टितं)** चेष्टा थी।

अब ज्ञानी उन चेष्टाओं से निवृत्त होता है

यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथा चेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः॥२२॥

अन्वयार्थ– (असौ) वही पूर्वोक्त पुरुष **(यथा)** जिस तरह **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(पुरुषाग्रहे)** यह पुरुष है ऐसा मिथ्याग्रह **(निवृत्ते)** दूर हो जाने पर **(चेष्टते)** योग्य चेष्टायें करता है **(तथा)** उसी तरह **(देहादौ)** शरीर आदि में **(विनिवृत्तात्मविभ्रमः)** आत्मपने की भ्रांति दूर हो जाने पर **(चेष्टोऽस्मि)** देहादिक में अपने उपकारादि की बुद्धि को छोड़ने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

ज्ञानी का आत्मानुभव कैसा होता है

येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनाऽऽत्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥२३॥

अन्वयार्थ– (येन) जिस **(आत्मना)** आत्म स्वरूप से **(अहम्)** मैं **(आत्मनि)**

आत्मा में **(आत्मना)** अपने आपके द्वारा **(आत्मना एव)** अपने से ही **(अनुभूये)** अनुभव करता हूँ **(सः)** वही **(अहं)** मैं हूँ **(न तत्)** वह नपुंसक नहीं है **(न सा)** न वह स्त्री रूप है **(न असौ)** न वह पुरुष है **(न एको)** न वह एक है **(न द्वौ)** न दो है **(वा)** अथवा **(न बहुः)** न बहुत है।

स्वसंवेदन ही आत्मानुभूति है

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥२४॥

अन्वयार्थ– (यत् अभावे) जिस आत्म अनुभव के अभाव में **(अहं)** मैं **(सुषुप्तः)** अज्ञान में सोता रहा **(पुनः)** तथा **(यत् भावे)** जिसका अनुभव हो जाने पर **(व्युत्थितः)** जागृत हुआ हूँ **(तत्)** वह **(अतीन्द्रियं)** इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण के अयोग्य **(अनिर्देश्यं)** शब्दों से नहीं कहने योग्य **(स्वसंवेद्यं)** स्वसंवेदन के योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

आत्मानुभूति से रागादि स्वयं नष्ट होते हैं

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रियः॥२५॥

अन्वयार्थ– (तत्त्वतः) शुद्ध दृष्टि से **(मां)** अपने **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूप आत्मा को **(प्रपश्यतः)** देखने वाले के **(रागाद्याः)** रागादि विकारी भाव **(अत्र एव)** इसी समय **(क्षीयन्ते)** क्षय हो जाते हैं **(ततः)** इसलिए **(मे)** मेरा **(न कश्चित्)** न कोई **(शत्रुः)** शत्रु है **(च)** और **(न प्रियः)** न कोई मित्र है।

शत्रु-मित्र कल्पना माया-मिथ्यात्व है

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥२६॥

अन्वयार्थ– (मां) मुझको **(अपश्यन्)** नहीं देखने वाला **(अयं)** यह **(लोकः)** प्राणी/लोग **(न मे)** न मेरा **(शत्रुः)** शत्रु है **(न च)** और न **(प्रियः)** मित्र है। **(मां)** मुझको **(प्रपश्यन्)** देखता हुआ **(अयं)** यह **(लोकः)** प्राणी/प्रबुद्धगण **(न)** न तो **(मे)** मेरे **(शत्रुः)** शत्रु हैं **(न च)** और न **(प्रियः)** मित्र है।

अंतरात्मा अधिकार

त्यक्त्वैवं बहिरात्मान - मन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम्॥२७॥

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार कहे गए तरीके से **(बहिरात्मानं)** बहिरात्मपने को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अन्तरात्मव्यवस्थितः)** अन्तरात्मा में स्थित होता हुआ **(सर्वसङ्कल्पवर्जितं)** समस्त संकल्पों से रहित **(परमात्मानं)** परम आत्मा की **(भावयेत्)** भावना भावें।

परमात्मभावना ही परमात्मपद का कारण है

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(तस्मिन्) उस परमात्म स्वरूप में **(भावनया)** भावना के बल से **(सोऽहम्)** वह मैं **(इति)** इस प्रकार **(आत्तसंस्कारः)** जिसने संस्कार प्राप्त कर लिया है **(पुनः)** फिर **(तत्रैव)** उसी परमात्मस्वरूप में ही **(दृढसंस्कारात्)** मजबूत संस्कार हो जाने से **(हि)** निश्चित ही **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितिम्)** स्थिरता को **(लभते)** प्राप्त कर लेता है।

आत्मा का भावना भयस्थान और अभयस्थान सम्बन्धी विपरीत मान्यता

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥२९॥

अन्वयार्थ— (मूढात्मा) बहिरात्मा पुरुष **(यत्र)** जिन विषयों में **(विश्वस्तः)** विश्वस्त हो जाता है **(ततः अन्यत्)** उसके सिवाय दूसरा कोई **(भयास्पदम्)** भय का स्थान **(न)** नहीं है तथा **(यतः)** जिससे **(भीतः)** डरता है **(ततः)** उससे **(अन्यत्)** दूसरा कोई **(आत्मनः)** आत्मा के लिए **(अभयस्थानम्)** निडरता का स्थान **(न)** नहीं है।

आत्मा ही परमात्मा है

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः॥३०॥

अन्वयार्थ— (सर्वेन्द्रियाणि) सभी इन्द्रियों को **(संयम्य)** संयमित करके **(स्तिमितेन)** स्थिरीभूत **(अन्तरात्मना)** अन्तरात्मा/अन्तःकरण से **(क्षणं)** क्षण मात्र **(पश्यतः)** स्वरूप को देखने वाले के **(यत्)** जो स्वरूप **(भाति)** प्रकट/प्रतिभासित होता है **(तत्)** वह **(परमात्मनः)** परमात्मा का **(तत्त्वं)** स्वरूप है।

निर्विकल्प आत्मानुभूति में उपास्य उपासक भाव नहीं रहता है

यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥३१॥

अन्वयार्थ– (यः) जो कोई **(परात्मा)** उत्कृष्ट आत्मा या परमात्मा **(स एव)** वह ही **(अहं)** मैं हूँ **(यः)** तथा जो **(अहं)** मैं आत्मा हूँ **(सः)** वह **(परमः)** परम/उत्कृष्ट आत्मा है **(ततः)** इसलिए **(मया)** मेरे द्वारा **(अहम्)** मैं **(एव)** ही **(उपास्यः)** उपासना योग्य हूँ **(कश्चित्)** कोई **(अन्यः न)** दूसरा नहीं **(इति)** इस प्रकार (अपने में ही आराध्य आराधक भाव की) **(स्थितिः)** स्थिति/व्यवस्था है।

बिना संयम के आत्मानुभूति नहीं

प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम् ॥३२॥

अन्वयार्थ– (अहम्) मैं **(माम्)** अपने को **(विषयेभ्यः)** विषयों से **(प्रच्याव्य)** हटाकर **(मया एव)** अपने द्वारा ही **(मयि)** अपने में **(स्थितम्)** स्थित **(परमानन्दनिर्वृतम्)** उत्कृष्ट आनंद से युक्त **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूपी आत्मा को **(प्रपन्नः)** प्राप्त **(अस्मि)** होता हूँ।

आत्मज्ञान के बिना तप व्यर्थ है

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः ॥३३॥

अन्वयार्थ– (यः) जो कोई **(एवम्)** उक्त प्रकार कहे हुए **(अव्ययं)** अविनाशी **(आत्मानं)** आत्मा को **(देहात्)** शरीर से **(परं)** भिन्न **(न)** नहीं **(वेत्ति)** जानता है **(सः)** वह **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप को **(तप्त्वा अपि)** तप करके भी **(निर्वाणं)** मोक्ष को **(न लभते)** प्राप्त नहीं होता/करता है।

आत्मज्ञानी तप में खेद-खिन्न नहीं होता

आत्मदेहान्तरज्ञान - जनिताह्लादनिर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३४॥

अन्वयार्थ–(आत्मदेहान्तरज्ञान-जनिताह्लादनिर्वृतः) आत्मा और शरीर के भेद से उत्पन्न होने वाले आह्लाद से युक्त जीव **(तपसा)** तप के द्वारा [द्वादश प्रकार के तप द्वारा उदय में लाये हुए] **(घोरं)** दुःसह/भयानक **(दुष्कृतं)**पाप कर्म

को **(भुञ्जानः अपि)** भोगता हुआ भी **(न खिद्यते)** खेद को प्राप्त नहीं होता है।

समाधि में ही आत्मानुभव होता है

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं सत्त्वं नेतरो जनः ॥३५॥

अन्वयार्थ– (यन्मनोजलं) जिसका मनरूपी जल **(रागद्वेषादिकल्लोलैः)** रागद्वेष आदि रूप तरंगों से **(अलोलं)** चंचल नहीं है **(सः)** वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(तत्त्वं)** यथार्थ स्वरूप को **(पश्यति)** देखता है **(तत्)** उस **(तत्त्वं)** आत्मस्वरूप को **(इतरः जनः न)** दूसरा कोई मनुष्य नहीं **(पश्यति)** देखता है/देख सकता है।

सविकल्प अवस्था हेय है, निर्विकल्प अवस्था उपादेय है

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः ॥३६॥

अन्वयार्थ– (अविक्षिप्तं मनः) क्षोभरहित मन **(आत्मनः)** आत्मा का **(तत्त्वं)** वास्तविक स्वरूप है **(विक्षिप्तं)** क्षुब्धमन **(आत्मनः)** आत्मा का **(भ्रान्तिः)** विभ्रम है **(ततः)** इसलिए **(तत् अविक्षिप्तं)** उस अविक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से रहित मन को **(धारयेत्)** धारण करें **(विक्षिप्तं)** विक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से क्षुब्ध मन को **(न आश्रयेत्)** आश्रय न दें।

अज्ञान अस्थिरता का कारण ज्ञान स्थिरता का कारण

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेवज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥३७॥

अन्वयार्थ– (अविद्याभ्याससंस्कारैः) शरीरादि को शुचि, स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या के अभ्यास वाले संस्कारों से **(अवशं)** आत्मा के वश में न रहने वाला **(मनः)** मन **(क्षिप्यते)** क्षुब्ध हो जाता है **(तदेव)** वही मन **(ज्ञानसंस्कारैः)** आत्म-देह के भेदविज्ञानरूप ज्ञान के संस्कारों से **(स्वतः)** अपने आप ही **(तत्त्वे)** आत्मस्वरूप में **(अवतिष्ठते)** ठहर जाता है।

मान-अपमान ये सब कल्पनाभ्रम है

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥३८॥

अन्वयार्थ– (यस्य चेतसः) जिसके मन का **(विक्षेपः)** क्षोभ–रागद्वेषादिरूप परिणमन होता है **(तस्य)** उसी के **(अपमानादयः)** अपमान आदि होते हैं। **(यस्य चेतसः)** जिसके मन का **(क्षेपः न)** क्षोभ–रागद्वेषादिरूप परिणमन नहीं होता **(तस्य)** उसके **(अपमानादयः)** अपमान आदि **(न)** नहीं होते हैं।

आत्मभावना से रागद्वेष नष्ट होते हैं

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

अन्वयार्थ– (यदा) जब **(तपस्विनः)** तपस्वी के **(मोहात्)** मोह के कारण से **(रागद्वेषौ)** रागद्वेष **(प्रजायेते)** उत्पन्न होते हैं **(तदैव)** उसी समय **(स्वस्थं आत्मानं)** स्वस्थ आत्मस्वरूप को **(भावयेत्)** भावें जिससे **(क्षणात्)** क्षणभर में ही **(शाम्यतः)** रागद्वेष शान्त हो जाते हैं।

शरीर पर का प्रेम हटाने का उपाय

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनं।
बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत् प्रेम नश्यति ॥४०॥

अन्वयार्थ– (यत्र काये) जिस शरीर में **(मुनेः)** मुनि का **(प्रेम)** प्रेम है **(ततः)** उस शरीर से **(बुद्ध्या)** भेदज्ञान से **(देहिनम्)** आत्मा को **(प्रच्याव्य)** छुड़ाकर **(तदुत्तमे काये)** उस उत्तम चैतन्यस्वरूप आत्मा में **(योजयेत्)** लगायें **(प्रेम)** जिससे प्रेम **(नश्यति)** नाश को प्राप्त हो जाता है।

आत्मज्ञान के बिना तप निरर्थक है

आत्म - विभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः॥४१॥

अन्वयार्थ– (आत्मविभ्रमजं) शरीरादिक में आत्मबुद्धिरूप विभ्रम से उत्पन्न हुआ **(दुःखं)** दुख **(आत्मज्ञानात्)** शरीरादि से भिन्नरूप आत्मज्ञान से **(प्रशाम्यति)** शांत होता है **(तत्र)** उस आत्मस्वरूप में **(अयताः)** जो यत्न नहीं करते हैं, वे **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप **(कृत्वा अपि)** करके भी **(निर्वान्ति न)** निर्वाण नहीं प्राप्त करते हैं।

अज्ञान तप और ज्ञान तप में अंतर

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिं ॥४२॥

अन्वयार्थ— (देहे) शरीर में **(उत्पन्नात्ममतिः)** जिसे आत्मबुद्धि पैदा हुई है वह **(शुभं शरीरं)** अच्छा शरीर **(च)** और **(दिव्यान् विषयान्)** स्वर्गीय भोग विषयों को **(अभिवाञ्छति)** चाहता है **(तत्त्वज्ञानी)** किन्तु आत्मस्वरूप का ज्ञाता जीव **(ततः)** इन विषयों और शरीर से **(च्युतिम्)** मुक्ति को चाहता है।

अज्ञानी बद्ध होता है ज्ञानी मुक्त होता है

परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः॥४३॥

अन्वयार्थ— (परत्र) शरीरादि पर पदार्थों में **(अहम्मतिः)** अपनेपन/आत्मपन की बुद्धि रखने वाला **(स्वस्मात्)** अपने स्वरूप से **(च्युतः)** दूर हो **(असंशयम्)** निश्चित ही **(बध्नाति)** कर्मबंध को प्राप्त होता है **(स्वस्मिन्)** अपने आप में **(अहम्मतिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(बुधः)** ज्ञानी **(परस्मात्)** शरीरादि पर द्रव्यों से **(च्युत्वा)** छूटकर **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

अज्ञानी और ज्ञानी में अंतर

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥४४॥

अन्वयार्थ— (मूढः) अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(दृश्यमानं)** दिखाई देने वाले **(इदम्)** इस जगत् को **(त्रिलिङ्गम्)** स्त्री-पुरुष-नपुंसक के भेद से तीन लिंग रूप **(अवबुध्यते)** जानता है। **(तु)** किन्तु **(अवबुद्धः)** ज्ञानी **(इदम्)** इस जगत् को **(निष्पन्नम्)** परिपूर्ण **(शब्दवर्जितम्)** नामादिक शब्द विकल्प से रहित **(इति)** इस प्रकार जानता है।

केवल आत्मज्ञान भी कार्यकारी नहीं है

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति ॥४५॥

अन्वयार्थ— (आत्मनः) आत्मा के **(तत्त्वं)** चैतन्य स्वरूप को **(जानन् अपि)** जानता हुआ भी तथा **(विविक्तं)** शरीरादि अन्य पदार्थों से भिन्न **(भावयन् अपि)** भावना करता हुआ भी **(पूर्वविभ्रमसंस्कारात्)** पूर्व के अज्ञान जनित संस्कारों के कारण **(भूयः अपि)** फिर भी **(भ्रान्तिं)** भ्रांति को **(गच्छति)** प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानी का माध्यस्थभाव

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः॥४६॥

अन्वयार्थ– (इदं दृश्यं) यह दिखाई देने वाला सब कुछ **(अचेतनं)** जड़ है **(चेतनं)** चेतना **(अदृश्यं)** दिखाई न देने वाली वस्तु है **(ततः)** इसलिए **(क्व)** किस विषय में **(रुष्यामि)** रोष करूँ **(क्व)** और किस विषय में **(तुष्यामि)** संतुष्ट होऊँ **(अतः)** इसलिए **(अहं)** मैं **(मध्यस्थः)** तटस्थ **(भवामि)** होता हूँ।

अज्ञानी और ज्ञानी का ग्रहण भिन्न-भिन्न होता है

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः॥४७॥

अन्वयार्थ– (मूढः) मोही व्यक्ति **(बहिः)** बाहरी विषयों में **(त्यागादाने)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् राग के उदय से जिन्हें इष्ट समझता है उन्हें ग्रहण कर लेता है तथा द्वेष के उदय से जिनको अनिष्ट समझता है उनको छोड देता है **(आत्मवित्)** आत्म ज्ञानी **(अध्यात्मं)** अन्तरंग विषय को **(करोति)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् अन्तरंग रागद्वेष का त्याग करता है और अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप निजभावों का ग्रहण करता है परन्तु **(निष्ठितात्मनः)** शुद्ध स्वरूप में स्थित जो कृतकृत्य परमात्मा के **(अन्तर्बहिः)** अन्तरंग और बहिरंग विषय में **(न)** न तो **(उपादानं)** ग्रहण होता है और **(न त्यागः)** न त्याग ही होता है।

ज्ञानी का निष्काम कर्मयोग

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥४८॥

अन्वयार्थ– (आत्मानम्) आत्मा को **(मनसा)** मन के साथ **(युञ्जीत)** सम्बन्धित/ संयोजित करे–चित्त और आत्मा का अभेदरूप से अध्यवसाय करे **(वाक्कायाभ्यां)** वचन और काय से आत्मा को **(वियोजयेत्)** पृथक् करें **(तु)** तथा **(वाक्काययोजितम्)** वचन और शरीर से जुड़े **(व्यवहारं)** व्यवहार को **(मनसा)** मन से **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

अज्ञानी और ज्ञानी का विश्वासस्थान

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ॥४९॥

अन्वयार्थ– (देहात्मदृष्टीनां) शरीर में आत्मदृष्टि रखने वाले मिथ्यादृष्टि बहिरात्माओं को **(जगत्)** यह संसार **(विश्वास्यं)** विश्वास योग्य **(च)** और **(रम्यं)** मनोरंजक/रमणीय **(एव)** ही लगता है। **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मदृष्टीनाम्)** आत्मदृष्टि रखने वाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्माओं को **(क्व)** कहाँ **(विश्वासः)** भरोसा **(वा)** अथवा **(क्व)** कहाँ **(रतिः)** राग होता है अर्थात् नहीं होता है।

ज्ञानी की चर्या

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥५०॥

अन्वयार्थ– (आत्मज्ञानात्) आत्मज्ञान से **(परं कार्यं)** भिन्न दूसरे कार्य को **(चिरं)** बहुत समय तक **(बुद्धौ)** बुद्धि में **(न)** नहीं **(धारयेत्)** धारण करना चाहिए **(अर्थवशात्)** स्वपर के उपकारादिरूप प्रयोजन के वश **(अतत्परः)** उस कार्य में तत्परता न दिखाते हुए **(वाक्कायाभ्याम्)** वचन और काय से **(किञ्चित्)** कुछ **(कुर्यात्)** करें।

ज्ञानी की दृष्टि

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम्॥५१॥

अन्वयार्थ– (यत्) जो कुछ शरीरादिक बाह्य पदार्थ **(इन्द्रियैः)** इन्द्रियों के द्वारा **(पश्यामि)** मैं देखता हूँ **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(नास्ति)** नहीं है **(नियतेन्द्रियः)** संयत इन्द्रिय होकर **(यत्)** जो **(उत्तमं)** उत्कृष्ट अतीन्द्रिय **(सानन्दं ज्योतिः)** आनंदमय ज्ञान प्रकाश को **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में **(पश्यामि)** मैं देखता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ **(तत्)** वही मेरा वास्तविक स्वरूप **(अस्तु)** होना चाहिए।

ज्ञानी के सुख-दुख की झलक

सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽत्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः ॥५२॥

अन्वयार्थ– (आरब्धयोगस्य) आत्मध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करने वाले के

(बहिः) बाह्य विषयों में **(सुखं)** सुख मालूम होता है **(अथ)** और **(आत्मनि)** आत्मा के विषय में **(दुःखं)** कष्ट होता है **(भावितात्मनः)** किन्तु आत्मा की भावना के अभ्यासी जन के **(बहिः)** बाहर **(एव)** ही **(असुखं)** दुख तथा **(अध्यात्मं)** अपनी आत्मा में **(सौख्यं)** सुख भासता है।

ज्ञानी का व्यापार

तद् ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥

अन्वयार्थ– (तत् ब्रूयात्) उस आत्मस्वरूप का कथन करे–उसे दूसरों को बतलावे **(तत् परान् पृच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को दूसरे आत्मानुभवी पुरुषों–विशेष ज्ञानियों से पूछे **(तत् इच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को चाहे **(तत्परः भवेत्)** उस आत्मस्वरूप में लीन हो **(येन)** जिससे **(अविद्यामयं रूपं)** अज्ञानमय बहिरात्मस्वरूप को **(त्यक्त्वा)** छोड़ करके **(विद्यामयं)** ज्ञानमय/परमात्म-स्वरूपमय **(व्रजेत्)** हो जावे।

अज्ञानी और ज्ञानी का व्यापार

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक्शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते ॥५४॥

अन्वयार्थ– (वाक्शरीरयोः) वचन और शरीर में **(भ्रान्तः)** भ्रांत आत्मा–बहिरात्मा **(शरीरे)** शरीर **(च)** और **(वाचि)** वचन में **(आत्मानं)** आत्मा को **(सन्धत्ते)** आरोपित करता है–अर्थात् वचन को तथा शरीर को आत्मा मानता है **(पुनः)** परन्तु **(अभ्रान्तः)** अभ्रान्त आत्मा–ज्ञानी पुरुष **(एषां)** इन शरीर और वचन के **(तत्त्वं)** स्वरूप को **(पृथक्)** आत्मा से भिन्न **(निबुध्यते)** समझता है।

अज्ञानी का विषयभोग निरर्थक

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥५५॥

अन्वयार्थ– (इन्द्रियार्थेषु) पाँचों इन्द्रियों के विषयों में **(तत् न अस्ति)** वह कुछ भी नहीं हैं **(यत्)** जो **(आत्मनः)** आत्मा के **(क्षेमङ्करं)** हित में हो **(तथापि)** फिर भी **(बालः)** मोही अज्ञानी जीव **(अज्ञानभावनात्)** अज्ञान भावना से चिरकालीन मिथ्यात्व के संस्कारवश **(तत्र एव)** उन्हीं विषयों में **(रमते)** रमण

करता है।

अज्ञानी जीवों का दुरवस्था

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥५६॥

अन्वयार्थ– (मूढात्मानः) ये मूर्ख अज्ञानी जीव **(तमसि)** मिथ्यात्वरूपी अंधकार के उदय वश **(चिरं)** अनादिकाल से **(कुयोनिषु)** नित्य निगोदादि कुयोनियों में **(सुषुप्ताः)** सो रहे हैं–अतीव जड़ता को प्राप्त हो रहे हैं यदि कदाचित् संज्ञी प्राणियों में उत्पन्न होकर कुछ जागते भी हैं तो **(अनात्मीयात्मभूतेषु मम अहं)** अनात्मीयभूत स्त्री–पुत्रादिक में ये मेरे हैं और अनात्मभूत शरीरादिकों में मैं ही इन रूप हूँ **(इति जाग्रति)** ऐसा अध्यवसाय करने लगते हैं।

आत्मभावना में सचेत रहने का उपदेश

पश्येन्निरन्तरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।
अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः ॥५७॥

अन्वयार्थ– (आत्मतत्त्वे) आत्म स्वरूप में **(व्यवस्थितः)** अच्छी तरह लीन होता हुआ **(आत्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(अनात्मचेतसा)** ''यह शरीर मेरा नहीं है'' इस अनात्मबुद्धि से तथा **(अन्येषां)** दूसरों की देह को भी **(अपरात्मधिया)** यह शरीर उनकी आत्मा नहीं है, इस बुद्धि से **(निरन्तरं)** लगातार **(पश्येत्)** देखें।

आत्मा बतलाया नहीं जा सकता

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥५८॥

अन्वयार्थ– (यथा) जैसे **(मूढ़ात्मानः)** मोही आत्मायें **(अज्ञापितं)** बिना समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को **(न जानन्ति)** नहीं जानते हैं **(तथा)** वैसे ही **(ज्ञापितं)** समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को नहीं समझते हैं **(ततः)** इसलिए **(तेषां)** उनको **(ज्ञापनश्रमः)** समझाने का परिश्रम **(मे)** मेरा **(वृथा)** निष्फल है।

आत्मा क्यों नहीं बतलाया जा सकता ?

यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये ॥५९॥

अन्वयार्थ– (यत्) जिसे **(बोधयितुं)** समझाने के लिए **(इच्छामि)** मैं इच्छा

करता हूँ **(तत्)** वह **(अहं)** मैं **(न)** नहीं हूँ **(पुनः)** तथा **(यत् अहं)** जो मैं हूँ **(तत् अपि)** वह भी **(अन्यस्य)** अन्य के **(ग्राह्यं)** ग्रहण करने योग्य **(न)** नहीं है **(तत्)** इसलिए **(अन्यस्य)** दूसरे को **(किम्)** क्या **(बोधये)** समझाऊँ।

अज्ञानी और ज्ञानी की रुचि

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः॥६०॥

अन्वयार्थ— (अन्तरे) अन्तरंग में **(पिहितज्योतिः)** जिसकी ज्ञान ज्योति मोह से आवृत है **(मूढात्मा)** ऐसा मूढ़ात्मा **(बहिः)** बाह्य शरीरादि विषयों में **(तुष्यति)** संतोष करता है **(प्रबुद्धात्मा)** किन्तु जिसकी आत्मा में ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है वह **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(व्यावृत्तकौतुकः)** उत्सुकता से रहित हो **(अन्तः)** अपनी आत्मा में **(तुष्यति)** सन्तुष्ट होता है।

अज्ञानी के श्रम वृथा है

न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥६१॥

अन्वयार्थ— (शरीराणि) औदारिक आदि शरीर **(सुखदुःखानि)** सुख और दुख को जड़ होने से **(न)** नहीं **(जानन्ति)** अनुभव करते हैं। **(तथापि)** फिर भी **(अबुद्धयः)** अज्ञानीजन **(अत्र एव)** इन शरीरों में ही **(निग्रहानुग्रहधियं)** अपकार और उपकार की बुद्धि को **(कुर्वते)** करते हैं।

संसार और मोक्ष का कारण

स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥६२॥

अन्वयार्थ— (यावत्) जब तक **(कायवाक्चेतसां त्रयं)** शरीर, वचन और मन इन तीनों का **(स्वबुद्ध्या)** यह मैं हूँ इस प्रकार की आत्म बुद्धि से **(गृह्णीयात्)** ग्रहण है **(तावत्)** तब तक **(संसारः)** संसार है **(तु)** परन्तु **(एतेषां)** इन तीनों के **(भेदाभ्यासे)** भेदज्ञान का अभ्यास होने पर **(निर्वृतिः)** मुक्ति है।

पुष्ट शरीर से आत्मा पुष्ट नहीं कहा जाता

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः॥६३॥

जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः॥६४॥
नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः॥६५॥
रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः॥६६॥

अन्वयार्थ– (यथा) जैसे कोई मनुष्य **(वस्त्रे घने)** मोटे वस्त्र पहन लेने पर **(आत्मानं)** अपने को **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(स्वदेहे घनेऽपि)** अपनी देह के मोटे होने पर भी **(आत्मानं)** अपने को **(बुधः)** ज्ञानी पुरुष **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे जीर्णे)** वस्त्र के पुराना होने पर **(आत्मानं)** अपने को **(जीर्णं)** पुराना **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहेअपि जीर्णे)** अपनी देह के भी पुरानी हो जाने पर **(आत्मानं)** आत्मा को **(जीर्णं)** जीर्ण **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे **(वस्त्रे नष्टे)** वस्त्र के फट जाने पर कोई **(आत्मानं)** अपने को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** बुद्धिमान **(स्वदेहे अपि नष्टे)** अपनी देह के नष्ट होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है। **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे रक्ते)** लाल कपड़े पहनने पर **(आत्मानं)** अपनी देह को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहे रक्ते अपि)** अपनी देह के लाल होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है।

ज्ञानी का समभाव

यस्य सस्पन्दमाभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः॥६७॥

अन्वयार्थ– (यस्य) जिसको **(सस्पन्दं)** स्पन्दन सहित **(जगत्)** यह संसार **(निःस्पन्देन समं)** स्पन्दनरहित के समान **(अप्रज्ञम्)** ज्ञानरहित **(अक्रियाभोगं)** क्रिया तथा भोग रहित **(आभाति)** मालूम होता है **(सः)** वह **(शमं)** शम भाव को **(याति)** प्राप्त होता है **(इतरः न)** अन्य पुरुष नहीं।

संसार भ्रमण का कारण

शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृतज्ञानविग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे ॥६८॥

अन्वयार्थ– (शरीरकञ्चुकेन) कार्माण शरीररूपी काँचली से **(संवृतज्ञान-विग्रहः)** जिसका ज्ञानरूपी शरीर ढका है, **(आत्मा)** वह आत्मा **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(न)** नहीं **(बुध्यते)** जानता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(अतिचिरं)** चिरकाल तक वह **(भवे)** संसार में **(भ्रमति)** भ्रमण किया करता है।

अज्ञानी शरीर को ही अपना घर मानता है

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥६९॥

अन्वयार्थ–(अबुद्धयः) अज्ञानी जीव **(प्रविशद्गलतां)** प्रवेश करने और गलने वाले **(अणूनां)** अणुओं की **(व्यूहे देहे)** समुदायात्मक शरीर में **(समाकृतौ)** समान आकृति बनी रहने पर **(स्थितिभ्रान्त्या)** यह देह बनी रहेगी इस भ्रम से **(तम्)** उस देह को **(आत्मानम्)** आत्मा ही **(प्रपद्यन्ते)** समझ लेते हैं।

आत्मा का शरीर केवलज्ञान है

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥७०॥

अन्वयार्थ– (अहं) मैं **(गौरः)** गोरा हूँ **(स्थूलः)** मोटा हूँ **(वा)** अथवा **(कृशः)** पतला हूँ **(इति)** इस प्रकार की मान्यता को **(अङ्गेन)** शरीर के साथ **(अविशेषयन्)** विशेष रूप से न लगाकर **(केवलज्ञप्तिविग्रहम्)** केवलज्ञान शरीरी **(आत्मानं)** आत्मा को **(नित्यं)** हमेशा **(धारयेत्)** धारण करें।

मुक्ति और संसार का एकान्त कारण

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥

अन्वयार्थ– (यस्य) जिसके **(चित्ते)** चित्त में **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** नियम से अवश्य है। **(यस्य)** जिसके **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य **(नास्ति)** नहीं है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** एकान्तरूप से आवश्यक **(न)** नहीं हैं।

पूर्व अवस्था में सविकल्प अवस्था आवश्यक है

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥७२॥

अन्वयार्थ– (जनेभ्यः) मनुष्यों से **(वाक्)** वचन प्रवृत्ति होती है **(ततः)** उस वचन विलास से **(मनसः)** मन की **(स्पन्दः)** चंचलता होती है **(तस्मात्)** उससे **(चित्तविभ्रमाः)** मन में अनेक विकल्प **(भवन्ति)** होते हैं **(ततः)** इसलिए **(योगी)** योगी, भेदविज्ञानी पुरुष **(जनैः)** लोगों के साथ **(संसर्गं)** मिलना जुलना **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

निर्विकल्प योगी का वासस्थान आत्मा ही है

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः ॥७३॥

अन्वयार्थ– (अनात्मदर्शिनाम्) जिन्होंने आत्मा का अनुभव नहीं किया है, उन्हीं को **(ग्रामः)** यह गाँव है **(अरण्यं)** यह वन है **(इति)** ऐसा **(द्वेधा)** दो तरह का **(निवासः)** निवास होता है **(तु)** किन्तु **(दृष्टात्मनां)** जिन्होंने आत्मा का अनुभव किया है उनको **(निश्चलः)** अचल **(विविक्तात्मा एव)** पवित्र आत्मा ही **(निवासः)** निवास होता है।

संसार और मुक्ति का कारण

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥७४॥

अन्वयार्थ– (अस्मिन् देहे) इस शरीर में **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(देहान्तरगतेः)** अन्य देह की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है और **(आत्मनि)** आत्मा में **(एव)** ही **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(विदेहनिष्पत्तेः)** शरीर रहित आत्मा की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है।

आत्मा ही आत्मा का गुरु है

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥७५॥

अन्वयार्थ– (आत्मा एव) आत्मा ही **(आत्मानं)** अपने आप को **(जन्म)** जन्म **(च)** और **(निर्वाणं)** निर्वाण में **(एव)** वस्तुतः **(नयति)** ले जाता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(परमार्थतः)** वस्तुतः **(आत्मा)** आत्मा ही **(आत्मनः)**

आत्मा का **(गुरुः)** गुरु है **(अन्यः न अस्ति)** दूसरा कोई नहीं है।

अज्ञानी का मरणभय

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद् भृशम् ॥७६॥

अन्वयार्थ—(देहादौ) शरीर आदि पर द्रव्यों में **(दृढात्मबुद्धिः)** जिसकी आत्म बुद्धि मजबूत है वह **(आत्मनः)** अपने **(नाशं)** विनाश को **(च)** और **(मित्रादिभिः)** मित्र आदि जनों से **(वियोगं)** विछोह को **(उत्पश्यन्)** देखता हुआ **(मरणात्)** मरण से **(भृशं)** बहुत **(बिभेति)** डरता है।

ज्ञानी को मरणभय नहीं है

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रान्तरग्रहम् ॥७७॥

अन्वयार्थ— (आत्मनि एव) आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(निर्भयं)** बिना किसी भय के **(शरीरगतिं)** शरीर की दशा को **(आत्मनः)** अपने से **(अन्यां)** अन्य किसी की **(वस्त्रं)** एक वस्त्र को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(वस्त्रान्तरग्रहम्)** अन्य वस्त्र को ग्रहण करने के समान **(मन्यते)** मानता है।

ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे॥७८॥

अन्वयार्थ— (यः) जो पुरुष **(व्यवहारे)** लोक व्यवहार में **(सुषुप्तः)** सोता है **(सः)** वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(जागर्ति)** जागृत रहता है **(च)** तथा जो **(अस्मिन् व्यवहारे)** इस लोक व्यवहार में **(जागर्ति)** जागता है वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(सुषुप्तः)** सोता है।

भेदविज्ञान ही मुक्ति का कारण है

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत्॥७९॥

अन्वयार्थ— (अन्तरे) अन्तरंग में **(आत्मानं)** आत्मतत्त्व को **(दृष्ट्वा)** देखकर और **(देहादिकं)** शरीर आदि को **(बहिः)** बाहर **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तयोः)** शरीर और आत्मा उन दोनों के **(अन्तर-विज्ञानात्)** भेदविज्ञानरूप **(अभ्यासात्)** अभ्यास से **(अच्युतः)** मुक्त **(भवेत्)** हो जाता है।

ज्ञानी को जगत् काष्ठपाषाण की तरह भासता है

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत्॥८०॥

अन्वयार्थ– (दृष्टात्मतत्त्वस्य) आत्मतत्त्व का अनुभव करने वाले के **(पूर्वं)** पहले **(जगत्)** यह जगत् **(उन्मत्तवत्)** पागल व्यक्ति की तरह **(विभाति)** प्रतिभासित होता है **(पश्चात्)** बाद में **(स्वभ्यस्तात्मधियः)** आत्मतत्त्व के अभ्यास में परिपक्व बुद्धि वाले अन्तरात्मा के **(काष्ठ-पाषाणरूपवत्)** यह जगत् काष्ठ या पत्थर के समान चेष्टा रहित मालूम पड़ता है।

भेदज्ञान के बिना मोक्ष नहीं

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक्॥८१॥

अन्वयार्थ– (अन्यतः) अन्य गुरु आदि से **(कामं)** अत्यधिक इच्छानुसार **(शृण्वन् अपि)** सुनने पर भी **(वदन् अपि)** तथा बतलाते हुए भी **(यावत्)** जब तक **(आत्मानम्)** आत्मा को **(कलेवरात्)** शरीर से **(भिन्नं)** भिन्न **(न भावयेत्)** नहीं भाता है **(तावत्)** तब तक **(मोक्षभाक् न)** मोक्ष का पात्र नहीं होता है।

स्वप्न में भी देह में आत्मत्व बुद्धि नहीं होनी चाहिए

तथैव भावयेद्देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥८२॥

अन्वयार्थ– (देहात्) शरीर से **(आत्मानं)** आत्मा को **(व्यावृत्य)** हटाकर **(आत्मनि)** आत्मा में **(तथैव)** उस प्रकार से ही **(भावयेत्)** भावना करें **(यथा)** जिससे **(पुनः)** फिर **(स्वप्नेऽपि)** स्वप्न में भी **(देहे)** शरीर में **(आत्मानं)** आत्मा को **(न)** न **(योजयेत्)** जोड़े ।

मोक्ष के लिए पाप-पुण्य हेय है

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥८३॥

अन्वयार्थ–(अव्रतैः) हिंसा आदि पाँच अव्रतों के द्वारा **(अपुण्यम्)** पाप होता है तथा **(व्रतैः)** अहिंसा आदि पाँच व्रतों से **(पुण्यं)** पुण्य होता है **(तयोः)** इन पुण्य और पाप दोनों का **(व्ययः)** विनाश **(मोक्षः)** मोक्ष है **(ततः)** इसलिए

(मोक्षार्थी) मोक्ष का इच्छुक भव्य **(अव्रतानि इव)** अव्रतों के समान **(व्रतानि अपि)** व्रतों को भी **(त्यजेत्)** छोड़े।

पाप-पुण्य के त्याग का क्रम

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥८४॥

अन्वयार्थ— (अव्रतानि) हिंसादि पाँच अव्रतों को **(परित्यज्य)** छोड़कर **(व्रतेषु)** अहिंसादि पाँच व्रतों में **(परिनिष्ठितः)** निष्ठावान रहे अर्थात् उनका दृढ़ता के साथ पालन करे **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं पदं)** सर्वोत्कृष्ट पद/वीतराग पद को **(संप्राप्य)** प्राप्त करके **(तानि)** उन व्रतों को **(अपि)** भी **(त्यजेत्)** त्यागे।

अंतरंग विकल्प ही दुख का कारण है

यदन्तर्जल्पसम्पृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥८५॥

अन्वयार्थ— (यत्) जो **(उत्प्रेक्षाजालं)** कल्पनाओं का जाल **(अन्तर्जल्पसम्पृक्तं)** अन्तर्जल्प के साथ चलता रहता है वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(दुःखस्य)** दुख का **(मूलं)** मुख्य कारण है **(तन्नाशे)** उस अन्तर्जल्प के नाश होने पर **(परं पदं)** आत्मा का उत्कृष्ट पद **(इष्टं)** जो कि इष्ट है **(शिष्टं)** कहा गया है।

शुभ-अशुभ विकल्पों का नाश करने का क्रम

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत् ॥८६॥

अन्वयार्थ— (अव्रती) व्रत रहित जीव **(व्रतं)** व्रतों को **(आदाय)** ग्रहण करके **(व्रती)** व्रत सहित हो **(ज्ञानपरायणः)** आत्मज्ञान में कुशल होवे। **(परात्म-ज्ञानसम्पन्नः)** उत्कृष्ट आत्म ज्ञान से सम्पन्न होता हुआ **(स्वयं एव)** स्वयं ही **(परः)** उत्कृष्ट आत्मा **(भवेत्)** होवे।

बाह्य लिंग मुक्ति का कारण नहीं है

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गकृताऽऽग्रहाः ॥८७॥

अन्वयार्थ— (लिङ्गं) लिङ्ग **(देहाश्रितं)** शरीर के आश्रित **(दृष्टं)** देखा गया है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है **(तस्मात्)** इसलिए **(ये)** जो लोग **(लिङ्गकृताऽऽग्रहाः)** लिंगधारण से ही मोक्ष है, ऐसा

आग्रह करते हैं **(ते)** वे लोग **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

विशिष्ट जाति भी मुक्ति का कारण नहीं है

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥८८॥

अन्वयार्थ– (जातिः) जाति **(देहाश्रिता)** शरीर के आश्रित **(दृष्टा)** देखी गयी है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है। **(तस्मात्)** इस कारण से **(ये)** जो पुरुष **(जातिकृता-ग्रहाः)** जाति कृत आग्रह करने वाले हैं **(ते)** वे **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

धर्मपंथ का आग्रह भी मुक्ति का कारण नहीं है

जातिलिङ्गविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः॥८९॥

अन्वयार्थ– (येषां) जिनका **(च)** भी **(जातिलिङ्गविकल्पेन)** जाति और लिङ्ग के विकल्प से **(समयाग्रहः)** आगम सम्बन्धी आग्रह है **(ते)** वे **(अपि)** भी **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं)** उत्कृष्ट **(पदं)** पद को **(न एव)** नहीं **(प्राप्नुवन्ति)** प्राप्त करते हैं।

अज्ञानी जीव की प्रीति और द्वेष की विरुद्ध प्रक्रिया

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः॥९०॥

अन्वयार्थ– (यत् त्यागाय) जिस शरीर आदि के त्याग के लिए **(यत् अवाप्तये)** तथा जिस परम पद की प्राप्ति के लिए **(भोगेभ्यः)** भोगों से जीव **(निवर्तन्ते)** दूर हटते हैं पुनः **(मोहिनः)** मोही जीव **(तत्र एव)** उन त्याग की हुई वस्तुओं में ही **(प्रीतिं)** प्रेम **(कुर्वन्ति)** करते हैं **(अन्यत्र)** और परमपद के विषय में **(द्वेषम्)** द्वेष करते हैं।

अज्ञानी का भ्रम

अनन्तरज्ञः सन्धत्ते दृष्टिं पङ्गोर्यथाऽन्धके।
संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि सन्धत्ते तद्वदात्मनः॥९१॥

अन्वयार्थ– (अनन्तरज्ञः) दो वस्तुओं के अन्तर को न जानने वाला **(यथा)** जिस प्रकार **(पङ्गोः)** पंगु की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धके)** अन्धे पुरुष में **(संयोगात्)** संयोग सम्बन्ध से **(सन्धत्ते)** मान लेता है **(तद्वत्)** वैसे ही **(आत्मनः)**

आत्मा की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अङ्गे अपि)** शरीर में भी **(सन्धत्ते)** धारण कर लेता है।

ज्ञानी का भ्रम निराश

दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद् देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः ॥९२॥

अन्वयार्थ– (यथा) जैसे **(दृष्टभेदः)** लंगड़े और अन्धे के भेद को देखने वाला **(पङ्गोः)** लंगड़े की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धे)** अन्धे पुरुष में **(न योजयेत्)** नहीं लगाता है **(तथा)** वैसे ही **(दृष्टात्मा)** शरीर और आत्मा को देखने वाला **(आत्मनः)** आत्मा के **(दृष्टिं)** दर्शन ज्ञानस्वरूप को **(देहे)** शरीर में **(न योजयेत्)** नहीं जोड़ता है।

अज्ञानी और ज्ञानी का भ्रम की मान्यता में अंतर

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः ॥९३॥

अन्वयार्थ–(अनात्मदर्शिनां) आत्मस्वरूप का वास्तविक परिज्ञान जिन्हें नहीं है ऐसे बहिरात्माओं को **(सुप्तोन्मत्तादि अवस्था एव)** केवल सोने व उन्मत्त होने की अवस्था ही **(विभ्रमः)** भ्रम रूप मालूम होती है, किन्तु **(आत्मदर्शिनः)** आत्मानुभवी अन्तरात्मा को **(अक्षीणदोषस्य)** मोहाक्रान्त बहिरात्मा की **(सर्वावस्थाः)** सर्व ही अवस्थाएँ–सुप्त और उन्मत्तादि अवस्थाओं की तरह जागृत, प्रबुद्ध और उन्मत्तादि अवस्थाएँ भी **(विभ्रमः)** भ्रमरूप मालूम होती हैं।

अज्ञानी को जागते हुए भी मुक्ति नहीं, ज्ञानी को सोते हुए भी मुक्ति होती है

विदिताऽशेषशास्त्रोऽपि जाग्रदपि न मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते ॥९४॥

अन्वयार्थ–(देहात्मदृष्टिः) देह में आत्मदृष्टि रखने वाला **(विदिताशेष-शास्त्रः अपि)** समस्त शास्त्रों का जानकार होकर भी **(जाग्रत् अपि)** जागता हुआ भी **(न मुच्यते)** नहीं मुक्त होता है **(ज्ञातात्मा)** आत्मस्वरूप का ज्ञाता **(सुप्तोन्मत्तः अपि)** सोया हुआ या उन्मत्त हुआ भी **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

जहाँ श्रद्धा वहाँ चित्त की स्थिरता

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ॥९५॥

अन्वयार्थ— (यत्र एव) जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(आहितधीः)** बुद्धि लग जाती है **(तत्र एव)** उसी विषय में **(श्रद्धा)** उसकी श्रद्धा **(जायते)** उत्पन्न हो जाती है **(यत्र एव)** जिस विषय में ही **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(जायते)** पैदा हो जाती है **(तत्र एव)** उसी में ही **(चित्तं)** मन **(लीयते)** लीन हो जाता है।

आत्मज्ञान के बिना चित्त की स्थिरता नहीं

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥९६॥

अन्वयार्थ— (यत्र) जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(अनाहितधीः)** बुद्धि नहीं लगती है **(तस्मात्)** उस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है। **(यस्मात्)** जिस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है **(कुतः)** फिर कैसे **(चित्तस्य)** चित्त की **(तत् लयः)** उस विषय में लीनता हो।

भिन्न परमात्मा की उपासना के लिए वर्तिका का दृष्टान्त

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥९७॥

अन्वयार्थ— (यथा) जिस प्रकार **(भिन्ना वर्तिः)** वर्तिका दीपक से भिन्न होकर भी **(दीपं)** दीपक की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशी)** उस दीपक रूप **(भवति)** हो जाती है उसी प्रकार **(आत्मा)** यह आत्मा **(भिन्नात्मानम्)** अपने से भिन्न अरहन्त सिद्ध परमात्मा की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशः)** उन जैसा ही **(परः)** परमात्मा **(भवति)** हो जाती है।

अभिन्न आत्मा की उपासना के लिए वृक्ष का दृष्टान्त

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः॥९८॥

अन्वयार्थ— (अथवा) अथवा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मानम् एव)** अपने को ही **(उपास्य)** ध्यान कर **(परमः)** परमात्मा **(जायते)** हो जाता है **(यथा)** जैसे **(तरुः)** वृक्ष **(आत्मानं)** अपने को ही **(मथित्वा)** रगड़ खाकर **(आत्मा एव)** अपने आप ही **(अग्निः)** अग्नि स्वरूप **(जायते)** हो जाता है।

मुक्त होने पर आत्मा पुनः संसार में लौटता नहीं

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥९९॥

अन्वयार्थ— (इति) ऊपर कहे ढंग से **(इदं)** इन **(अवाचांगोचरं)** वचनों के अगोचर **(पदं)** पद की **(नित्यं)** हमेशा **(भावयेत्)** भावना करनी चाहिए। **(स्वतः एव)** अपने आप ही **(तत्)** उस पद की **(आप्नोति)** प्राप्त होती है **(यतः)** जिस पद से **(पुनः)** फिर **(न आवर्तते)** लौटना नहीं पड़ता है।

मोक्ष अयत्नसाध्य नहीं है, योगसाध्य है

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्त्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित् ॥१००॥

अन्वयार्थ— (यदि) यदि **(चित्तत्वं)** चैतन्यपना **(भूतजं)** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों से उत्पन्न है तो **(निर्वाणं)** निर्वाण की प्राप्ति **(अयत्नसाध्यं)** के लिए किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से निर्वाण होता है **(तस्मात्)** इसलिए **(योगिनां)** योगियों के **(योगतः)** योग साधना से **(क्वचित्)** किसी भी प्रकार का **(दुःखं)** कष्ट **(न)** नहीं होता है।

शरीर नष्ट होते हुए भी ज्ञानी दुखी नहीं होता।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे **(स्वप्ने)** स्वप्न **(दृष्टे)** देखने पर **(विनष्टे अपि)** उसके विनष्ट होने पर भी **(आत्मनः)** अपना **(नाशः)** विनाश **(न अस्ति)** नहीं होता **(तथा)** उसी प्रकार **(जागरदृष्टे अपि)** जागृत अवस्था में भी शरीर आदि का विनाश देखने पर भी अपना नाश नहीं होता देखता है **(विपर्यासा-विशेषतः)** क्योंकि विरोध दोनों में समान है।

ज्ञानी उपसर्ग-परीषह सहन करने का अभ्यास करता है

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः ॥१०२॥

अन्वयार्थ—(अदुःखभावितं ज्ञानं) दुख का अनुभव किए बिना जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह **(दुःखसन्निधौ)** दुखों के सामने आने पर **(क्षीयते)** नाश को प्राप्त हो जाता है **(तस्मात्)** इसलिए **(मुनिः)** मुनि **(यथाबलं)** यथाशक्ति **(दुःखैः)** दुखों से **(आत्मानं)** आत्मा की **(भावयेत्)** भावना करे।

प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयन्त्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु ॥१०३॥

अन्वयार्थ– (आत्मनः) आत्मा के **(इच्छाद्वेषप्रवर्तितात्)** इच्छा और द्वेष से होने वाले **(प्रयत्नात्)** प्रयत्न से **(वायुः)** वायु चलती है **(वायोः)** उस वायु से **(शरीरयन्त्राणि)** शरीर के यंत्र **(स्वेषु कर्मसु)** अपने-अपने कार्यों में **(वर्तन्ते)** वर्तने लगते हैं।

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥१०४॥

अन्वयार्थ– (जडः) मूर्ख अज्ञानी जीव **(साक्षाणि)** इन्द्रियों से सहित **(तानि)** इन शरीर यंत्रों को **(आत्मनि)** आत्मा में **(समारोप्य)** आरोपित करके **(असुखं आस्ते)** दुखी रहता है **(पुनः)** पर **(विद्वान्)** अन्तरात्मा **(आरोपं)** इस आरोप को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(परमं पदं)** उत्कृष्ट पद को **(प्राप्नोति)** प्राप्त कर लेता है।

उपसंहार

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियञ्च,
संसारदुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठस्,
तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम् ॥१०५॥

अन्वयार्थ– (तन्मार्गं) उस परमपद की प्राप्ति का उपाय बताने वाले **(एतत् समाधितन्त्रम्)** इस 'समाधितन्त्र' शास्त्र को **(अधिगम्य)** जानकर **(संसार-दुःखजननीं)** संसार के दुखों को उत्पन्न करने वाली **(परत्र)** शरीर आदि पर पदार्थों में **(परबुद्धिं)** अपनेपन की ममकार बुद्धि **(च)** और **(अहंधियं)** अहंकार बुद्धि को **(मुक्त्वा)** छोड़कर **(परात्मनिष्ठः)** उत्कृष्ट आत्मा में लीन होता हुआ **(जननात् विमुक्तः)** संसार से छूटकर **(ज्योर्तिमयं सुखं)** ज्ञान ज्योतिमय सुख को **(उपैति)** जीव प्राप्त कर लेता है।

❑ ❑ ❑

मृत्यु महोत्सव

अज्ञात लेखक की यह रचना १८ श्लोक प्रमाण मृत्यु को महोत्सव बताने वाली है। मृत्यु से भय नहीं करना चाहिए। सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे।
समाधि-बोधि-पाथेयं यावन्मुक्ति-पुरी पुरः॥१॥

अन्वयार्थ—(यावत्) जब तक **(मुक्ति-पुरी)** मुक्तिरूपी नगरी **(पुरः)** सम्मुख न आ जाये, **(वीतरागः)** वीतराग भगवान् **(मृत्युमार्गे)** मृत्यु-मार्ग पर **(प्रवृत्तस्य मे)** प्रवृत्ति करने वाले मेरे लिए **(समाधि-बोधि-पाथेयं)** समाधि और बोधिरूपी पाथेय/नास्ता **(ददातु)** प्रदान करें।

अब मैं अपने आत्मा को समझाता हूँ

कृमि - जाल - शताकीर्णे, जर्जरे देह - पञ्जरे।
भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञान-विग्रहः ॥२॥

अन्वयार्थ—(कृमिजालशताकीर्णे) सैकड़ों कीड़े-मकोड़े/कीटाणुओं के समूहों से व्याप्त **(जर्जरे)** जीर्ण-शीर्ण **(देह-पञ्जरे भज्यमाने)** देहरूपी पिंजरे के नष्ट होने पर **(भेतव्यं न)** भयभीत नहीं होना चाहिए **(यतः)** क्योंकि **(त्वं)** तुम **(ज्ञान विग्रहः)** ज्ञान-शरीरी हो।

देहान्तर में गमन करने से भय नहीं करो

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु-महोत्सवे।
स्वरूपस्थः पुरं याति, देही देहान्तर-स्थितिम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन्!) हे ज्ञानी जीव! **(मृत्यु-महोत्सवे)** मृत्यु महोत्सव के **(प्राप्ते)** प्राप्त होने पर **(भयं)** भय **(कस्मात्)** किससे **(भवेत्)** होवे? **(स्वरूपस्थः)** स्वरूप-स्थित **(देही)** जीवात्मा **(देहान्तरणस्थितिं पुरं)** अन्य देह में स्थितिरूप नगर को **(याति)** प्राप्त होता है।

समाधिमरण उपकारक है

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद्, दृश्यते पूर्व-सत्तमैः।
भुज्यते-स्वर्भवं सौख्यं मृत्यु-भीतिः कुतः सताम्॥४॥

अन्वयार्थ—(सतां) सत्पुरुषों के **(मृत्युभीतिः)** मृत्यु का भय **(कुतः)** कैसे **(दृश्यते)** देखा जा सकता है **(यस्मात्)** जिस मृत्यु के कारण **(पूर्वसत्तमैः)** पूर्ववर्ती सत्पुरुषों के द्वारा **(सुदत्तं)** सुपात्रों को प्रदत्त दान **(प्राप्यते)** प्राप्त होता है **(स्वर्भवं)** स्वर्ग में होने वाला **(सौख्यं)** सुख **(भुज्यते)** भोगा जाता है।

समाधि राजा बन्दीगृह से मुक्त कराता है

आगर्भाद्दुःख - सन्तप्तः प्रक्षिप्तो देह-पिञ्जरे।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु-भूमिपतिं विना ॥५॥

अन्वयार्थ—(आगर्भात्) गर्भावस्था के प्रारम्भ से **(देह-पिञ्जरे)** देहरूपी पिञ्जरे में **(प्रक्षिप्तः)** डाली गयी **(दुःखसन्तप्तः आत्मा)** दुःखों से सन्तप्त आत्मा **(मृत्युभूमिपतिं विना)** मृत्युरूपी राजा के बिना **(अन्येन)** अन्य द्वारा **(न विमुच्यते)** नहीं छोड़ी जाती।

सुख देने वाला मित्र समाधिमरण है

सर्व - दुःखं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः।
मृत्यु-मित्र-प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख-सम्पदः ॥६॥

अन्वयार्थ—(मृत्यु-मित्रप्रसादेन) मृत्युरूपी मित्र के प्रसाद/कृपा से **(सर्वदुःखप्रदं पिण्डं)** सर्व दुखों को प्रदान करने वाले शरीर को **(दूरीकृत्य)** दूर करके **(आत्मदर्शिभिः)** आत्मदर्शी-जनों द्वारा **(सुख-सम्पदः)** सुख-सम्पदाएँ **(प्राप्यन्ते)** प्राप्त की जाती हैं।

समाधिमरण कल्पवृक्ष हैं

मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः।
निमग्नो जन्म-जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसके द्वारा **(मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते)** मृत्युरूपी कल्पवृक्ष के प्राप्त होने पर **(आत्मार्थः)** आत्महित **(न साधितः)** नहीं साधा गया **(सः)** वह **(जन्म-जम्बाले)** संसाररूपी कीचड़ में **(निमग्नः)** निमग्न **(पश्चात्)** आगामी काल में **(किं करिष्यति)** क्या करेगा ?

समाधिमरण उत्तम दातार है

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा ॥८॥

अन्वयार्थ—(यतः) जिससे **(जीर्ण देहादिकं)** जीर्ण शरीरादि **(सर्वं)** सर्व **(नूतनं)** नवीन **(जायते)** हो जाते हैं, **(सः मृत्युः)** वह मृत्यु **(किं)** क्या **(सतां)** सत्पुरुषों के **(मोदाय)** हर्ष के लिए **(न)** न होगी, **(यथा)** जिस प्रकार **(सातोत्थितिः)** साता अर्थात् पुण्य का उदय होता है ?

ज्ञानी भय रहित होता है

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्।
मृत्यु-भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥९॥

अन्वयार्थ—(देहस्थः) शरीर में स्थित जीव **(सदा)** सदा **(सुखं दुःखं)** सुख-दुख को **(वेत्ति)** जानता है **(च)** और **(स्वयं)** स्वयं **(व्रजेत्)** प्रयाण करें **(तदा)** तब **(परमार्थतः)** परमार्थ से **(मृत्यु-भीतिः)** मृत्यु का भय **(कस्य)** किसे **(जायते)** हो सकता है ?

समाधिमरण आनन्द देने वाला है

संसारासक्त-चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञान-वैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(संसारासक्तचित्तानां नृणां) संसार में आसक्त है चित्त जिनका, ऐसे मनुष्यों की **(मृत्युः)** मृत्यु **(भीत्यै)** भय के लिए **(भवेत्)** होती है **(पुनः)** और **(सः अपि)** वही **(ज्ञानवैराग्यवासिनां)** ज्ञान एवं वैराग्यवासियों के **(मोदायते)** आनन्द का विषय होती है।

आत्मा को परलोक जाने से कोई नहीं रोग सकता है

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्सया।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्च-भौतिकैः॥११॥

अन्वयार्थ—(यदा) जब **(पुराधीशः)** जीव **(सुकृत्यस्य)** पुण्य के **(बुभुत्सया)** भोगने/जानने की इच्छा से **(याति)** प्रयाण करता है, **(तदा)** तब **(असौ)** वह **(पाञ्चभौतिकैः प्रपञ्चैः)** पंचभूतों के समूह से **(केन)** किसके द्वारा **(वार्यते)** रोका जा सकता है?

समाधिमरण निर्वाण देने वाला है

मृत्यु-काले सतां दुःखं यद् भवेद् व्याधि-संभवम्।
देह-मोह-विनाशाय मन्ये शिव-सुखाय च ॥१२॥

अन्वयार्थ—(सतां) सत्पुरुषों के **(मृत्युकाले)** मृत्युकाल में **(व्याधिसंभवं)** व्याधियों से उत्पन्न **(यत्)** जो **(दुःखं)** दुख **(भवेत्)** होता है, **(मन्ये)** मैं समझता हूँ वह **(देहमोहविनाशाय)** देह सम्बन्धी मोह नष्ट करने के लिए **(च)** और **(शिवसुखाय)** मोक्ष-सुख के लिए होता है।

समाधिमरण तो अमृत देने वाला है

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

अन्वयार्थ—(अस्मिन् लोके) इस लोक में **(यथा)** जिस प्रकार **(आमकुम्भस्य)** कच्चे घड़े की **(पाकविधिः)** पाकविधि, **(ताप-करः सन् अपि)** तापकारी होते हुए भी **(अमृतसङ्गाय)** जल के समागम के लिए **(भवेत्)** होती है, उसीप्रकार **(ज्ञानिनः)** ज्ञानी की **(मृत्युः)** मृत्यु **(अमृतसङ्गाय)** अमरत्व के समागम के लिए होती है।

समाधिमरण महान् तप-मुक्ति का सरल उपाय

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायास - विडम्बनात्।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु-काले समाधिना ॥१४॥

अन्वयार्थ—(सद्भिः) सत्पुरुषों द्वारा **(व्रतायास-विडम्बनात्)** व्रतों के पुरुषार्थ सम्बन्धी क्लेश से **(यत् फलं)** जो फल **(प्राप्यते)** प्राप्त किया जाता है **(मृत्युकाले)** मृत्यु-काल में **(समाधिना)** समाधि के द्वारा **(तत् फलं)** वह फल **(सुखसाध्यं)** सुखपूर्वक साधने-योग्य **(स्यात्)** हो सकता है।

समाधिधारक उत्तम गति में ही जाता है

अनार्तः शान्तिमान् मर्त्यो न तिर्यग्नापि नारकः।
धर्म्य-ध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(अनार्तः) मरण के समय पीड़ा-रहित **(शान्तिमान्)** शान्ति-सम्पन्न अर्थात् रागद्वेष रहित **(मर्त्यः)** मनुष्य **(पुरः)** आगामी जन्म में **(न तिर्यक्)** न तिर्यञ्च **(नापि)** न ही **(नारकः)** नारक होता है **(धर्म्यध्यानी)** धर्म्यध्यानी एवं **(अनशनी मर्त्यः)** उपवासी मनुष्य **(तु)** तो **(अमरेश्वरः)** देवों का इन्द्र होता है।

समस्त तप समाधि के लिए हैं

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥१६॥

अन्वयार्थ—(तप्तस्य) तपे हुए **(तपसः च अपि)** तप का, **(पालितस्य)** पाले

हुए **(व्रतस्य च)** व्रत का और **(पठितस्य)** पढ़े हुए **(श्रुतस्य)** शास्त्र का **(अपि)** भी **(फलं)** फल **(समाधिना)** समाधि-पूर्वक **(मृत्युः)** मृत्यु है।

जीर्ण शरीर से प्रीति करना अच्छा नहीं है

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन-वादः।
चिरंतर-शरीर-नाशे नवतर-लाभे च किं भीरुः ॥१७॥

अन्वयार्थ—(हि) चूँकि **(इति जनवादः)** ऐसी लोकोक्ति है कि **(अति-परिचितेषु)** अति-परिचितों में **(अवज्ञा)** अवमानना का भाव और **(नवे)** नवीन के प्रति **(प्रीतिः)** प्रीति **(भवेत्)** होती है इसलिए **(चिरंतरशरीरनाशे)** अत्यन्त पुराने शरीर का नाश **(च)** और **(नवतरलाभे)** अतिशय नवीन का लाभ होने पर **(भीरुः)** भीरु **(किं)** क्या होना ?

समाधिमरण से उत्तमगति की प्राप्ति होती है

स्वर्गादेत्य पवित्र-निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्ति-विधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्!
भुक्त्वा भोगमहर्निशं पर-कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेश-विसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(स्वर्गात्) देव-लोक से **(पवित्र निर्मल-कुले)** पवित्र एवं निर्मल कुल में **(एत्य)** आ करके वे भव्य-जन **(भक्ति-विधायिनां)** सेवा करने वाले तथा कुटुम्ब, परिवार, मित्रादि के लिए **(बहुविधं)** अनेक प्रकार का **(वाञ्छानुरूपं)** इच्छानुकूल **(धनं)** धन **(दत्वा)** प्रदान कर **(जनैः)** सर्वजनों के द्वारा **(संस्मर्यमाणाः सन्तः)** संस्मृत होते हुए तथा **(अहर्निशं)** दिन-रात **(पर-कृतं)** पुण्य-प्रदत्त/इन्द्रियजनित **(भोगं)** सांसारिक-सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(मण्डले)** पृथ्वीमण्डल पर **(इव)** मानो **(क्षणं)** क्षण भर **(स्थित्वा)** ठहरकर **(स्वतः)** स्वयं **(पात्रावेश विसर्जनां)** पात्र-सम्बन्धी आवेश का है विसर्जन जिसमें अर्थात् जैसे नृत्य के अखाड़े में नृत्य करने वाला पुरुष लोगों को आनन्द प्रदान कर निकल जाता है ऐसी **(मृतिं)** मृत्यु/निर्वाण को **(सन्तो)** सन्त **(लभन्ते)** प्राप्त कर लेते हैं।

❑ ❑ ❑

रत्नाकर पञ्चविंशतिका

श्री रत्नाकर सूरि द्वारा रचित 'रत्नाकर पञ्चविंशतिका' में २५ श्लोकों के माध्यम से जीवन का सारभूत तत्त्व दिया गया है, जिसे जीवन में उतार कर दुर्लभ मानवदेह की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है। सारभूत तत्त्व प्रस्तुत कृति को पढ़कर जब आप चिंतन की यथार्थता को आत्मसात करेंगे, तब संसार के लाभ-हानि, सुख-दुख आपको प्रभावित नहीं कर पायेंगे।

मंगलाचरण

श्रेयः श्रियां मंगल-केलि-सद्म, नरेन्द्र-देवेन्द्र-नताङ्घ्रि-पद्म!।
सर्वज्ञ! सर्वातिशय! प्रधान!, चिरञ्जय-ज्ञान-कला-निधान!॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रेयः) कल्याणकारी **(श्रियां)** लक्ष्मी के **(मंगलकेलिसद्म)** हे शुभ क्रीड़ा के स्थान **(नरेन्द्र-देवेन्द्र नताङ्घ्रिपद्म)** हे चक्रवर्ती, देवेन्द्र के द्वारा नम्रीभूत चरण वाले **(सर्वज्ञ!)** हे सर्वज्ञ! **(सर्वातिशय)** हे सम्पूर्ण अतिशय वाले! **(प्रधान)** हे प्रधान/मुख्य/स्वामी! **(ज्ञानकलानिधान)** हे ज्ञानकला की खान स्वरूप! **(चिरञ्जय)** आप चिरकाल तक जयवन्त रहें।

प्रतिज्ञा वचन

जगत्त्रयाधार ! कृपावतार!, दुर्वार - संसार - विकार-वैद्यः।
श्री वीतराग! त्वयि मुग्धभावाद्, विज्ञ! प्रभो! विज्ञापयामि किञ्चित्॥२॥

अन्वयार्थ—(जगत्त्रयाधार) हे तीनों जगत् के आधार! **(कृपावतार)** हे दया, अहिंसा के अवतार **(दुर्वार-संसार-विकार-वैद्य)** हे बड़ी कठिनता से दूर किए जाने वाले संसार के विकारों के दूर करने वाले वैद्य! **(श्रीवीतराग!)** हे अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी सहित श्री वीतराग! **(विज्ञ!)** हे ज्ञाता! **(प्रभो!)** हे स्वामिन्! **(त्वयि)** आपके विषय में/आपके सम्मुख **(मुग्धभावात्)** सरल भाव से **(किञ्चित्)** कुछ **(विज्ञापयामि)** निवेदन कर रहा हूँ।

आलोचना

किं बाललीलाकलितो न बालः, पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः।
तथा यथार्थं कथयामि नाथ! निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे॥३॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! जैसे **(बाललीलाकलितः)** बाल क्रीड़ा से

सहित **(बालः)** बालक **(पित्रोः)** माता-पिता के **(पुरः)** आगे **(निर्विकल्पः 'सन्')** निर्विकल्प होकर **(किं)** क्या **(न)** नहीं **(जल्पति)** कहता है? **(सानुशयः 'अहं')** पश्चात्ताप-युक्त मैं **(यथार्थ)** यथार्थ **(निजाशयं)** अपने अभिप्राय को **(तव)** आपके **(अग्रे)** आगे **(कथयति)** कहता हूँ।

जिनवाणी महिमा

दत्तं न दानं परिशीलितं च, न शालिशीलं, न तपोऽभितप्तम्।
शुभो न भावोऽप्यभवद् भवेऽस्मिन्,विभो! मया भ्रान्तमहो मुधैव॥४॥

अन्वयार्थ—(विभो) हे स्वामिन्! **(मया)** मेरे द्वारा **(न दानं)** न दान **(दत्तम्)** दिया गया, **(न परिशीलितं)** न स्वाध्याय, साधर्मियों से मेल-मिलाप किया, **(न शालिशीलं)** न शील का पालन किया **(न तपः अभितप्तम्)** न तप को तपा **(च)** और **(न अस्मिन् भवे)** न इस भव में **(शुभः भावः)** शुभ भाव **(अपि)** भी **(अभवत्)** हुआ **(अहो!)** आश्चर्य है कि मैं **(मुधा एव)** व्यर्थ ही **(भ्रान्तम्)** परिभ्रमण करता हूँ।

कैसे भजूँ

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो, दुष्टेन लोभाख्य-महोरगेण।
ग्रस्तो मदाग्राहग्रहेण माया, जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम्॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! मैं **(क्रोधमयेन अग्निना)** क्रोधरूपी अग्नि के द्वारा **(दग्धः)** जलाया गया हूँ **(दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण)** दुष्ट लोभ नामक विशाल सर्प के द्वारा **(दष्टः)** डसा गया हूँ **(मदग्राहग्रहेण)** अहंकार रूपी मगरमच्छ की पकड़ से **(ग्रस्तः)** पीड़ित/निगला गया/खाया गया हूँ तथा **(मायाजालेन)** मायारूप पास/बंधन से **(बद्धः)** बँधा हुआ **(अस्मि)** हूँ। **(त्वाम्)** आपको **(कथम्)** कैसे **(भजे)** भजूँ।

आत्मकल्याण प्रेरणा

कृतं मयामुत्र हितं न चेह, लोकेऽपि लोकेश! सुखं न मेऽभूत।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म, जिनेश! जज्ञे भवपूरणाय॥६॥

अन्वयार्थ—(लोकेश!) हे जगत् के स्वामिन्! **(मया)** मेरे द्वारा **(अमुत्र च इह)** परलोक और इस लोक में **(हितम् न)** हित नहीं **(कृतम्)** किया गया इसलिए **(लोकेऽपि)** इस लोक में भी **(मे)** मुझे **(सुखम्)** सुख **(न अभूत्)** नहीं हुआ, अतः **(जिनेश!)** हे जिनेन्द्र! **(अस्मादृशां)** हम जैसे लोगों का

(जन्म) जन्म/उत्पत्ति **(केवलम्)** मात्र **(भवपूरणाय)** भवों की पूर्ति के लिए **(एव)** ही **(जज्ञे)** हुआ।

जिनवाणी रसपान

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्तं, त्वदास्य-पीयूष-मयूख-लाभात्।
द्रुतं महानन्दरसं कठोरं, अस्मादृशां देव! तदश्मनोऽपि ॥७॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(यत्)** जो **(अस्मादृशां)** हम जैसों का **(अश्मन अपि)** पत्थर से भी **(कठोरम् मनः)** कठोर मन **(तत्)** वह **(त्वदास्य-पीयूष-मयूखलाभात्)** आपके मुख रूपी चन्द्रमा के लाभ से **(द्रुतं)** शीघ्र **(महानन्दरसम् मनोज्ञवृत्तम् न)** महान् आनन्दरसरूप सम्यक्चारित्र को नहीं प्राप्त होता।

आत्मशत्रु प्रमाद और निद्रा

त्वत्तः सुदुष्प्राप्यमिदं मयाप्तं, रत्नत्रयं भूरिभवभ्रमेण।
प्रमाद-निद्रा-वशतो गतं तत्, कस्याग्रतो नायक! पूत्करोमि ॥८॥

अन्वयार्थ—(नायक!) हे स्वामिन्! **(मया)** मेरे द्वारा **(सुदुष्प्राप्यं)** बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाला **(इदम् रत्नत्रयम्)** यह रत्नत्रय **(त्वत्तः)** आपसे **(आप्तं)** प्राप्त किया गया **(तत्)** वह **(भूरिभवभ्रमेण)** बहुत संसार में भटकने से तथा **(प्रमाद-निद्रा-वशतः)** प्रमाद और निद्रा के वश से **(गतं)** नष्ट हो गया अब मैं आपको छोड़कर **(कस्य अग्रतः)** किसके आगे **(पूत्करोमि)** पुकार करूँ।

हास्यास्पद क्रियाएँ

वैराग्यरङ्गः परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश!॥९॥

अन्वयार्थ—(मे) मेरा **(ईश!)** हे स्वामिन्! **(वैराग्य-रङ्गः)** वैराग्य का अभिनय **(पर-वंचनाय)** दूसरों को ठगने के लिए **(धर्मोपदेशः)** धर्म का उपदेश **(जन-रंजनाय)** लोगों को मनोरंजन के लिए **(च)** और **(विद्याध्ययनं)** विद्या का अध्ययन **(वादाय)** वाद-विवाद के लिए **(अभूत्)** हुआ अब **(हास्य-करम् स्वम्)** हँसी कराने वाले अपने चरित्र को मैं **(कियत्)** कितना **(अब्रुवे)** कहूँ?

आनन, नयन और मन के दूषण

परापवादेन मुखं सदोषं, नेत्रं परस्त्रीजन - वीक्षणेन।
चेतः परापाय-विचिन्तनेन, कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(विभो) हे प्रभु! **(अहम्)** मैंने **(परापवादेन)** दूसरों की निन्दा से **(मे मुखम्)** अपने मुख को **(सदोषम्)** दोष सहित किया **(परस्त्रीजन-वीक्षणेन)** दूसरों की नारियों को रागसहित देखने से **(नेत्रम्)** आँखों को **(सदोषम्)** दोष सहित किया तथा **(परापायविचिन्तनेन)** दूसरों को दुखी करने के विचार करने से **(चेतः)** मन/चित्त को **(सदोषम्)** दोष सहित किया मैं **(कथम्)** कैसे **(कृतम्)** दोष रहित **(भविष्यामि)** होऊँगा?

सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकते मेरे पाप

विडम्बितं यत्स्मरघस्मरार्ति, दशावशात् स्वं विषयान्धलेन।
प्रकाशितं तद् भवतो हियैव, सर्वज्ञ! सर्वं स्वमेव वेत्सि ॥११॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(स्मर-घस्मरार्तिदशावशात्)** कामरूपी राक्षस के द्वारा पीड़ित अवस्था की अधीनता द्वारा **(विषयान्धलेन)** इन्द्रिय विषयों में अन्धा होने से **(स्वम्)** स्वयं को **(विडम्बितं)** ठगा/क्लेशित/संतप्त/हताश किया **(तत्)** उसे **(ह्रिया एव)** लज्जा से ही **(भवतः)** आपसे **(प्रकाशितं)** प्रकट किया **(सर्वज्ञ!)** हे सर्व ज्ञाता! आप **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(सर्वं)** सभी को/सब कुछ **(वेत्सि)** जानते हो।

मिथ्यामंत्र, मिथ्याश्रुत, मिथ्यादेव का त्याग

ध्वस्तोन्य-मन्त्रैः परमेष्ठिमन्त्रः, कुशास्त्र-वाक्यैर्निहतागमोक्तिः।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्गाद्, अवाञ्छि ही नाथ! मतिभ्रमो मे ॥१२॥

अन्वयार्थ—(हे नाथ!) हे स्वामिन्! मैंने **(अन्यमन्त्रैः)** दूसरे खोटे मन्त्रों से **(परमेष्ठिमन्त्रः)** परमेष्ठिमन्त्र **(ध्वस्तः)** नष्ट किया **(कुशास्त्रवाक्यैः)** कुशास्त्रों के वाक्यों से **(आगमोक्तिः)** आगम के वचनों को **(निहतः)** नष्ट किया **(कुदेव-सङ्गात्)** कुदेवों की संगति से **(कर्म-वृथा)** कर्म के उदय को व्यर्थ/अन्यथा **(कुर्त्तुम्)** करने के लिए **(अवाञ्छि)** चाहा **(ही)** निश्चित ही **(मे)** मेरी **(मति-भ्रमः)** बुद्धि का भ्रम हुआ।

मेरी भूल

विमुच्य दृग-लक्ष्य-गतं भवन्तं, ध्याता मया मूढधिया हृदन्तः।
कटाक्षवक्षोज-गभीरनाभी, कटी-तटीयाः सुदृशां विलासाः॥१३॥

अन्वयार्थ—(दृगलक्ष्यगतं) आँखों के प्रत्यक्ष हुए **(भवन्तम्)** आपको **(विमुच्य)** छोड़कर **(मया मूढधिया)** मुझ मूर्खबुद्धि के द्वारा **(हृदन्तः)** हृदय के भीतर/

हृदय में **(सुदृशाम्)** सुन्दर नेत्रों वाली **(कटाक्ष-वक्षोज-गभीरनाभी)** स्त्रियों की तिरछी नजर, स्तन, गहरी नाभि और **(कटी-तटीया)** कूल्हे/नितम्ब और **(विलासाः)** स्त्रियोचित हाव-भावों का **(ध्याता)** ध्यान किया।

सन्मार्ग दर्शाओ

लोलेक्षणा-वक्त्र-निरीक्षणेन, यो मानसे राग-लवो विलग्नः।
न शुद्धसिद्धान्त-पयोधिमध्ये, धौतोऽप्यगात् तारक! कारणं किम्॥१४॥

अन्वयार्थ—(तारक!) हे तरण-तारणहार! **(मानसे)** मेरे मन में **(लोलेक्षणा-वक्त्रनिरीक्षणेन)** चंचल नेत्रों वाली स्त्रियों के मुख के देखने से **(यः)** जो **(रागलवः)** रागांश **(विलग्नः)** लग गया/चिपक गया है वह **(शुद्धसिद्धान्त -पयोधिमध्ये)** शुद्ध सिद्धान्तरूपी समुद्र के मध्य में **(धौतः अपि)** धोया हुआ भी **(न अगात्)** नहीं गया इसका **(किं कारणम्)** क्या कारण है?

अज्ञान अहंकार का जनक

अंगं न चंगं न गणो गुणानाम्, न निर्मलः कोऽपि कलाविलासः।
स्फुरत्प्रधानप्रभुता च कापि, तथाप्यहंकार-कदर्थितोऽहम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(न चंगं अंगं)** न मेरा सुन्दर शरीर है और **(न गुणानाम् गणः)** न मुझमें गुणों का समुदाय है और **(न कः अपि)** न कोई भी **(कला विलासः)** प्रयोगात्मक शिल्प कला, संगीत, गीत, नृत्य आदि बहत्तर कलाओं का सुन्दर अभिनय है **(च)** और **(न)** न **(का अपि)** कोई भी **(स्फुरत्-प्रधानप्रभुता)** स्फुरायमान अधिकार है **(तथापि)** तो भी **(अहम्)** मैं **(अहंकार-कदर्थितः)** अहंकार से पीड़ित हूँ।

मोहबला

आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धिः, गतं वयो नो विषयाभिलाषः।
यत्नश्च भैषज्यविधौ न धर्मे, स्वामिन्! महामोहविडम्बना मे ॥१६॥

अन्वयार्थ—(आशु) शीघ्रता से **(आयुः गलति)** मेरी आयु नष्ट हो रही है किन्तु **(पापबुद्धिः न)** पाप में लगने वाली बुद्धि नहीं हो रही है। **(वयः गतं)** उम्र बीत रही है किन्तु **(विषयाऽभिलाषः न)** पञ्चेन्द्रियों के विषयों की आशा नहीं जा रही है **(च)** और **(भैषज्यविधौ)** औषधि के अनुष्ठान में **(यत्नः कृतः)** प्रयत्न किया किन्तु **(धर्मे न)** धर्म के विषय में प्रत्यत्न नहीं है **(स्वामिन्!)** हे स्वामिन्! यह **(मे)** मेरी **(मोहविडम्बना)** बड़ी मोह की जालसाजी है।

कर्तव्य ही जीवन है

नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं, मया विटानां कटुगीरपीयम्।
अधारि कर्णे त्वयि केवलार्के,पुरःस्फुटे सत्यपि देव! धिङ् माम्॥१७॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे नाथ! **(त्वयि केवलार्के पुरःस्फुटे सति अपि)** आप में केवलज्ञानरूपी सूर्य सामने जगमगाने पर भी **(मया)** मैंने **(न आत्मा)** न आत्मा है **(न पुण्यम्)** न पुण्य है **(न भवः)** न संसार है **(न पापं)** न पाप है इस तरह **(विटानाम्)** धूर्तों और मूर्खों की **(कटुगीः)** खोटी वाणी **(अपीयम्)** पी और **(कर्णे)** कानों में **(अधारि)** धारण की, **(माम्)** मुझे **(धिक्)** धिक्कार है।

दुर्लभ दुष्प्राप्य जैनधर्म

न देव-पूजा न च पात्र-पूजा, न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः।
लब्ध्वापि मानुष्यमिदं समस्तं, कृतं मयाऽरण्यविलापतुल्यम्॥१८॥

अन्वयार्थ—मैंने **(न देव-पूजा)** न देवपूजा की **(च)** और **(न पात्र-पूजा)** न पात्रों का आदर/सत्कार किया **(न श्राद्ध-धर्मः)** न श्रावकधर्म का पालन किया **(च)** और **(न साधुधर्मः)** न साधु धर्म का आचरण किया, **(इदम्)** यह **(मानुष्यं)** मनुष्य पर्याय **(लब्धिं अपि)** पाकर भी **(मया)** मेरे द्वारा **(समस्तं)** सभी कुछ **(अरण्य-विलाप-तुल्यम्)** वन में रोने के समान **(कृतं)** किया गया।

तन, मन, धन का नाश करन

चक्रे मयासत्स्वपि कामधेनु-, कल्पद्रुम-चिन्तामणिषु स्पृहार्तिः।
न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि, जिनेश! मे पश्य विमूढभावम्॥१९॥

अन्वयार्थ—(मया) मैंने **(कामधेनुकल्पद्रुमचिन्तामणिषु असत्सु अपि)** कामधेनु, कल्पवृक्ष तथा चिन्तामणि के नहीं होने पर भी **(स्पृहार्तिः)** पाने की इच्छा **(चक्रे)** की और **(स्फुट-शर्मदे अपि)** प्रकट रूप से सुख देने वाले होने पर भी **(जैनधर्मे)** जैनधर्म में इच्छा **(न चक्रे)** नहीं की **(जिनेश!)** हे जिनेन्द्र **(मे)** मेरे **(विमूढ-भावम्)** मूर्खता को **(पश्य)** देखो।

गुरु मुझे कैसे चाहेंगे

सम्भोगलीला न च रोगकीला, धनागमो नो निधनागमश्च।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते, व्यचिन्ति नित्यं हि मयाधमेन॥२०॥

अन्वयार्थ—(मया) मुझ **(अधमेन)** नीच ने **(नित्यम्)** सदा ही **(चित्ते)** मन

में **(सम्भोगलीला)** सम्भोग की क्रीड़ा का **(व्यचिन्ति)** विचार किया **(च)** किन्तु यह **(रोगकीला)** रोग की ज्वाला है ऐसा विचार नहीं किया **(धनागमः)** धन-उपार्जन का तो **(व्यचिन्ति)** विचार किया किन्तु **(निधनागमः न)** मृत्यु के आने का विचार नहीं किया **(दाराः)** स्त्रियाँ चाहीं परन्तु वे **(नरकस्य काराः)** नरक की घर हैं, ऐसा **(व्यचिन्ति न)** विचार नहीं किया।

रत्नत्रय से जन्म सफल

स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्तात्, परोपकारान्न यशोऽर्जितं च।
कृतं न तीर्थोद्धरणादिकृत्यं, मया मुधा हारितमेव जन्म ॥२१॥

अन्वयार्थ—(साधोः) साधु के **(हृदि)** हृदय में **(साधुवृत्तात्)** उत्तम आचरण से **(स्थितं न)** स्थान को प्राप्त नहीं किया **(च)** और **(परोपकारात्)** परोपकार से **(यशः)** प्रतिष्ठा **(अर्जितं न)** उपार्जित नहीं की **(च)** और **(तीर्थोद्धारणादि-कृत्यं)** तीर्थों के उद्धार करने आदि के कार्य को **(न कृतं)** नहीं किया इस प्रकार **(मया)** मैंने **(मुधा-एव)** व्यर्थ ही **(जन्म)** जन्म को **(हारितम्)** गँवाया।

भवसागर से कैसे पार

वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः।
नाध्यात्मलेशो मम कोऽपि देव, तार्यः कथं कारमयं भवाब्धिः॥२२॥

अन्वयार्थ—(गुरुदितेषु) गुरुजनों के वचनों में, मैं **(न वैराग्यरङ्गः)** वैराग्य के रंग में नहीं रंगा **(दुर्जनानाम्)** दुर्जनों के **(वचनेषु)** वचनों में मैंने **(शान्तिः)** शान्ति **(न)** नहीं रखी **(मम)** मेरे **(कः अपि)** कोई भी **(अध्यात्म-लेशः न)** आत्म सम्बन्धी भावना, ज्ञान, अनुभव का अंश भी नहीं है **(देव!)** हे स्वामिन्! **(अयम्)** यह **(भवाब्धिः)** संसार समुद्र **(कथम् कारम्)** किस तरह **(तार्यः)** तरने योग्य होगा ?

पुण्यहीन का क्या भविष्य ?

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्यं, आगामिजन्मन्यपि नो करिष्ये।
यदीदृशोऽहं मम तेन नष्टा, भूतोद्भवद्भावि-भवत्रयीश ॥२३॥

अन्वयार्थ—(मया) मैंने **(पूर्वे भवे)** पूर्व भव में **(पुण्यं)** पुण्य **(न अकारि)** नहीं किया और **(आगामि-जन्मनि अपि)** आगामी जन्म में भी **(न करिष्ये)** नहीं कर सकूँगा **(यदि)** अगर **(ईदृशः अहम्)** इस प्रकार मैं हूँ तो **(ईश!)** हे स्वामिन् **(तेन)** उस कृत्य/कार्य से **(मम्)** मेरे **(भूतोद्भवद्भावि-भव-त्रयी)**

भूत, वर्तमान और भविष्य ये तीनों भव **(नष्टा)** नष्ट हुए।

व्यथा का अंत कथा से

किं वा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक्, पूज्य त्वदग्रे चरितं स्वकीयम्।
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप, निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥२४॥

अन्वयार्थ—(सुधाभुक्-पूज्य!) हे देवों से पूज्य भगवन्! **(त्वदग्रे)** आपके आगे **(अहम्)** मैं **(स्वकीयम् चरितम्)** अपना आचरण **(मुधा)** व्यर्थ **(किं वा)** क्या **(जल्पामि)** कहूँ? **(यस्मात्)** क्योंकि **(त्वं)** आप तो **(त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकः)** तीनों लोकों के स्वरूप का निरूपण करने वाले हैं **(अत्र)** इस विषय में **(एतत्)** यह चरित्र **(कियत्)** कितना **(जल्पामि)** कहूँ?

रत्नत्रय दान दो

दीनोद्धार-धुरन्धरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-,
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर! तथाप्येतां न याचे श्रियम्।
किन्त्वर्हन्निदमेव केवलमहो, सद्बोधिरत्नं शिव-,
श्रीरत्नाकर! मंगलैकनिलयं! श्रेयस्करं प्रार्थये॥२५॥

अन्वयार्थ—(जिनेश्वरः) हे जिनेन्द्र! **(अत्र जने)** यहाँ संसार में **(दीनोद्धार-धुरन्धरः)** दरिद्रों का उद्धार करने में अग्रणी **(त्वदपरः)** आपके सिवाय दूसरा कोई **(न आस्ते)** नहीं है तथा **(मत् अन्य)** मुझसे दूसरा **(कृपापात्रम्)** कृपा करने के योग्य **(न)** नहीं है **(तथापि)** तो भी **(अहो)** आश्चर्य है कि मैं **(एताम् श्रियम्)** इस सांसारिक धन लक्ष्मी को **(न याचे)** नहीं माँगता हूँ, **(किन्तु)** परन्तु **(अर्हन्!)** हे अर्हन्तदेव! **(मङ्गलैकनिलय!)** हे मंगल के एक मात्र स्थान! **(शिवश्रीरत्नाकर!)** हे मोक्षरूपी अंतरंग लक्ष्मी के सागर! मैं **(इदम् एव)** यह ही एक **(केवलम्)** मात्र **(श्रेयस्करम् सद्बोधिरत्नम्)** कल्याणकारी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय को **(प्रार्थये)** माँगता हूँ।

❑ ❑ ❑

आचार्य वंदना

सिद्ध भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अन्वयार्थ—हे आचार्य देव! **(नमोऽस्तु)** नमस्कार हो **(पौर्वाह्णिक)** प्रातःकालीन **(अपराह्णिक)** सायंकालीन **(आचार्य-वन्दना-क्रियायां)** आचार्य वन्दना की क्रिया में **(पूर्वाचार्यानुक्रमेण)** पूर्व आचार्यों के क्रम के अनुसार **(सकल-कर्म-क्षयार्थं)** सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने के लिए **(भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं)** भावपूजा, वन्दना, स्तवन सहित **(श्री सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं)** श्री सिद्धभक्ति के कायोत्सर्ग को **(अहम्)** मैं **(करोमि)** करता हूँ।

(९ बार णमोकार)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं) क्षायिकसम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, सूक्ष्मत्व **(अवगहणं)** अवगाहनत्व **(अगुरुलहुं)** अगुरुलघुत्व **(तहा)** और **(अव्वावाहं)** अव्याबाधत्व सुख ये **(अट्ठगुणा)** आठ गुण **(एव)** नियम से **(सिद्धाणं)** सिद्धों के **(होंति)** होते हैं।

तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

अन्वयार्थ—(तव-सिद्धे) तप की प्रधानता से सिद्ध **(णय-सिद्धे)** नय की प्रधानता से सिद्ध **(संजम-सिद्धे)** संयम की प्रधानता से सिद्ध **(चरित्त-सिद्धे)** चरित्र की प्रधानता से सिद्ध **(णाणम्मि)** ज्ञान की प्रधानता में **(य)** और **(दंसणम्मि)** दर्शन की प्रधानता में सिद्ध ऐसे **(सिद्धे)** सभी सिद्धों को **(सिरसा)** मस्तक से **(णमंसामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते। सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं अट्ठविह-कम्म-विप्प मुक्काणं अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तव-

सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं अतीदा-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि, णमंस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ–(भंते!) हे भगवन्! **(सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ)** मैंने जो सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया **(तस्स)** उसके दोषों की **(आलोचेउं)** आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं)** जो सिद्ध भगवान् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से युक्त **(अट्ठविह-कम्म-विप्प-मुक्काणं)** आठों प्रकार के कर्मों से सर्वथा रहित **(अट्ठगुण-संपण्णाणं)** सम्यक्त्वादि आठ गुणों से सम्पन्न/ सहित **(उड्ढलोय-मत्थयम्मि)** ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर **(पइट्ठियाणं)** स्वभाव में विराजमान **(तव-सिद्धाणं)** तप की अपेक्षा से सिद्ध **(णय-सिद्धाणं)** नयों की अपेक्षा से सिद्ध **(संजम-सिद्धाणं)** संयम की अपेक्षा से सिद्ध **(चरित्त-सिद्धाणं)** चारित्र की अपेक्षा से सिद्ध **(अतीदा-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं)** भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों में सिद्ध **(सव्वसिद्धाणं)** सभी सिद्धों की मैं **(सया)** हमेशा **(णिच्च-कालं)** नियमित/निश्चित काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पुज्जेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वंदना करता हूँ **(णमंस्सामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** दुखों का नाश **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय **(बोहिलाहो)** रत्नत्रय की प्राप्ति **(सुगइ-गमणं)** श्रेष्ठगति में गमन **(समाहिमरणं)** समाधिमरण और **(जिणगुण-संपत्ति)** जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति **(मज्झं)** मुझे **(होउ)** हो।

श्रुत भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अन्वयार्थ–हे आचार्य देव! **(नमोऽस्तु)** नमस्कार हो **(पौर्वाह्णिक)** प्रातःकालीन **(अपराह्णिक)** सायंकालीन **(आचार्य-वन्दना-क्रियायां)** आचार्य वन्दना की क्रिया में **(पूर्वाचार्यानुक्रमेण)** पूर्व आचार्यों के क्रम के अनुसार **(सकल-कर्म-क्षयार्थं)** सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने के लिए **(भावपूजा-वन्दना-**

स्तव-समेतं) भावपूजा, वन्दना, स्तवन सहित **(श्री श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं)** श्री श्रुतभक्ति के कायोत्सर्ग को **(अहम्)** मैं **(करोमि)** करता हूँ।

(९ बार णमोकार)

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाश-दष्टौ च सहस्र-संख्य-,मेतच्छ्रुतं पञ्च-पदं नमामि ॥१॥

अन्वयार्थ—(कोटिशतं) सौ करोड़ **(च)** और **(द्वादश कोट्यः एव)** बारह करोड़ अर्थात् एक सो बारह करोड़ **(त्र्यधिकानि अशीतिः लक्षानि एव)** तीन अधिक अस्सी लाख अर्थात् तेरासी लाख **(अष्टौ पंचाशत्)** आठ और पचास/अट्ठावन **(सहस्र-संख्यम्)** हजार संख्या वाले **(च)** और **(पंच-पदम्)** पाँच पद प्रमाण **(एतत्)** इस **(श्रुतम्)** श्रुत को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अरहंत-भासियत्थं गणहर-देवेहिँ गंथियं सम्मं
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥२॥

अन्वयार्थ—(अरहंत-भासियत्थं) अरहंत देव द्वारा कहे गये अर्थ/भावरूप और **(गणहर-देवेहिँ)** गणधरदेव द्वारा **(सम्मं गंथियं)** अच्छी तरह से गूँथे/रचे गये ग्रन्थ/द्रव्यरूप **(सुद-णाणमहोवहिं)** श्रुतज्ञानरूपी महासागर को **(भत्ति-जुत्तो)** भक्तिपूर्वक **(सिरसा)** मस्तक से **(पणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

इच्छामि भंत्ते ! सुदभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं-अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव-सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं सया णिच्च-कालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि-दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं समाहि-मरणं जिणगुण संपत्ति होउ-मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! **(सुद-भत्ति-काउस्सग्गो कओ)** मैंने जो श्रुतभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया **(तस्स)** उसके दोषों की **(आलोचेउं)** आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया)** श्रुतज्ञान के जो बारह अंग अनेक उपांग, प्रकीर्णक, प्राभृत, परिकर्मसूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत चूलिकाएँ **(च)** और **(सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं)** सूत्रों के अर्थ वाले स्तुतियाँ और धर्मकथा आदि रूप **(सुदं)** श्रुत है उनकी मैं **(सया)** हमेशा **(णिच्च-कालं)** नियमित/निश्चित काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पुज्जेमि)** पूजा करता हूँ

(वंदामि) वंदना करता हूँ **(णमंस्सामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** दुखों का नाश **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय **(बोहिलाहो)** रत्नत्रय की प्राप्ति **(सुगइ-गमणं)** श्रेष्ठगति में गमन **(समाहिमरणं)** समाधिमरण और **(जिणगुण-संपत्ति)** जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति **(मज्झं)** मुझे **(होउ)** हो।

आचार्य भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अन्वयार्थ—हे आचार्य देव! **(नमोऽस्तु)** नमस्कार हो **(पौर्वाह्णिक)** प्रातःकालीन **(अपराह्णिक)** सायंकालीन **(आचार्य-वन्दना-क्रियायां)** आचार्य वन्दना की क्रिया में **(पूर्वाचार्यानुक्रमेण)** पूर्व आचार्यों के क्रम के अनुसार **(सकल-कर्म-क्षयार्थं)** सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने के लिए **(भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं)** भावपूजा, वन्दना स्तवन सहित **(श्री आचार्यभक्ति-कायोत्सर्ग)** श्री आचार्यभक्ति के कायोत्सर्ग को **(अहम्)** मैं **(करोमि)** करता हूँ।

(९ बार णमोकार)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः,स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः॥१॥

अन्वयार्थ—जो **(श्रुतजलधि-पारगेभ्यः)** श्रुतज्ञानरूपी समुद्र के पारगामी **(स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः)** स्वमत और परमत के विशेष विचार करने में कुशल **(सुचरित-तपोनिधिभ्यो)** सम्यक्चारित्र और तप के खजाने **(गुण-गुरुभ्यः)** गुणों में महान् ऐसे **(गुरुभ्यो नमः)** गुरुओं के लिए नमस्कार हो।

छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिये सदा वंदे ॥२॥

अन्वयार्थ—जो **(छत्तीस-गुण-समग्गे)** छत्तीस गुणों से परिपूर्ण **(पंच-विहाचार-करण-संदरिसे)** पाँच प्रकार के आचार और क्रियाओं के पालक/संदर्शक/उपदेशक **(सिस्साणुग्गह-कुसले)** शिष्यों के उपकार करने में चतुर ऐसे **(धम्माइरिये)** धर्माचार्य की मैं **(सदा)** सदा **(वंदे)** वंदना करता हूँ।

गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरन्ति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥

अन्वयार्थ—(गुरु-भक्ति-संजमेण) गुरुभक्ति में मन की एकाग्रता से **(घोरं)** भयंकर **(संसार-सायरं)** संसाररूपी सागर को **(तरन्ति)** तैरते हैं **(अट्ठकम्मं)** आठ कर्मों को **(छिण्णंति)** छेदते हैं **(च)** और **(जम्मण-मरणं)** जन्म-मरण को **(ण पावेंति)** नहीं पाते।

ये नित्यं व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधन-धनाः,साधु-क्रियाः साधवः॥४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो **(नित्यं)** प्रतिदिन **(व्रत-मंत्र-होम-निरताः)** व्रतरूपी मंत्र वाले हवन में लीन **(ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः)** ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी हव्य/साकल्य से व्याप्त अर्थात् ध्यानरूपी अग्नि में यज्ञ करने वाले **(षट्कर्माभिरताः)** सामायिक आदि छः आवश्यक कर्मों में लीन **(तपोधन-धनाः)** तपरूप धन वाले **(साधु-क्रियाः)** साधुओं की क्रियाओं को करने वाले **(साधवः)** साधुगण आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क -तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः॥ ५॥

अन्वयार्थ—(शील-प्रावरणाः) अठारह हजार शीलरूपी वस्त्रों के धारक **(गुण-प्रहरणाः)** चौरासी लाख उत्तरगुणरूपी अस्त्र-शस्त्र वाले **(चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः)** चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेज वाले **(मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः)** मोक्षरूपी महल के द्वारों के दरवाजों को खोलने में सुभट/योद्धा ऐसे **(साधवः)** साधु/साधक आचार्य परमेष्ठी **(मां)** मुझको **(प्रीणंतु)** प्रसन्न/संतुष्ट करें।

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णव - गम्भीरा मोक्ष - मार्गोपदेशकः॥६॥

अन्वयार्थ—जो **(ज्ञान-दर्शन-नायकाः)** ज्ञान और दर्शन के स्वामी **(चारित्रार्णव-गम्भीरा)** चारित्र में सागर के समान गंभीर और **(मोक्ष-मार्गोपदेशकः)** मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले ऐसे **(गुरवः)** दीक्षा दायक गुरु आचार्यदेव **(नः)** हमारी **(नित्यं)** हमेशा **(पान्तु)** रक्षा करें।

इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाउसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वाइरियाणं सया णिच्च-कालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ

बोहिलाहो सुगइ-गमणं-समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! **(आइरियभत्तिकाउसग्गो कओ)** मैंने जो आचार्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया **(तस्स)** उसके दोषों की **(आलोचेउं)** आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं)** सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त **(पंचविहाचाराणं)** पाँच प्रकार के आचारों वाले **(आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं)** आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले **(ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं)** रत्नत्रयरूप गुणों के पालन करने में लीन **(सव्वाइरियाणं)** सभी आचार्यों की मैं **(सया)** हमेशा **(णिच्च-कालं)** नियमित/निश्चित काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पुज्जेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वंदना करता हूँ **(णमंस्सामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** दुखों का नाश **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय **(बोहिलाहो)** रत्नत्रय की प्राप्ति **(सुगइ-गमणं)** श्रेष्ठगति में गमन **(समाहिमरणं)** समाधिमरण और **(जिणगुण-संपत्ति)** जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति **(मज्झं)** मुझे **(होउ)** हो।

(सुबह १८ बार, संध्या ३६ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

❑ ❑ ❑

भजन

सदा संतोष कर प्राणी, अगर सुख से रहा चाहे,
घटा दे मन की तृष्णा को, अगर अपना भला चाहे।
आग में जिस कदर ईंधन, पड़ेगा ज्योति ऊँची हो,
बढ़ा मत लोभ की तृष्णा, अगर दुख से बचा चाहे॥
वही धनवान है जग में, लोभ जिसके नहीं मन में,
वह निर्धन रंक होता है, जो परधन को हरा चाहे॥
दुःखी रहते हैं वह निशदिन, जो आरत-ध्यान करते हैं,
न कर लालच अगर आजाद, रहने का मजा चाहे॥
बिना मांगे मिले मोती, 'न्यामत' देख दुनियाँ में,
भीख मांगे नहीं मिलती, अगर कोई गहा चाहे॥

अभिषेक-पाठ

(आचार्यश्रीमाघनन्दिविरचितः)

श्रीमन्नतामरशिरस्तट - रत्न - दीप्ति-
तोयावभासि-चरणाम्बुज-युग्ममीशम् ।
अर्हन्तमुन्नत - पद - प्रदमाभिनम्य,
तन्मूर्तिषूद्यदभिषेक-विधिं करिष्ये ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमत्-नत-अमर-शिरः-तट-रत्न-दीप्ति-तोय-अवभासि-चरण-अम्बुज-युग्मम्) शोभायमान और नम्रीभूत देवताओं के मस्तकरूपी तट पर स्थित रत्नों की कान्तिरूपी जल में सुशोभित है जिनके चरणकमलों का युगल ऐसे **(ईशम्)** जो देवाधिदेव हैं ऐसे, **(उन्नत-पद-प्रदम्)** जो उत्कृष्ट पद को देने वाले हैं ऐसे, **(अर्हन्तम्)** अर्हन्त भगवान् को **(आभिनम्य)** सम्यक् प्रकार से नमस्कार करके **(तत्-मूर्तिषु)** उनकी प्रतिमाओं पर **(उद्यत्-अभिषेकविधिम्)** अभिषेक की विधि को **(करिष्ये)** करूँगा। [अर्थात् अब मैं अभिषेक रूपी पुण्यकर्म को प्रारम्भ करता हूँ।]

अथ पौर्वाह्णिकदेव-वन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तव-समेतं श्रीपञ्चगुरुभक्तिपुरस्सरं कायोत्सर्गं कुर्वेऽहम्।

अन्वयार्थ—(अथ) अब **(अहम्)** मैं **(पौर्वाह्णिकदेव-वन्दनायां)** प्रातःकालीन देववन्दना के उपक्रम में, **(पूर्वाचार्यानुक्रमेण)** पूर्व आचार्यों के अनुसार, **(सकलकर्मक्षयार्थं)** सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने के लिए, **(भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं)** भावपूजा, वन्दना और स्तव सहित, **(श्रीपञ्चगुरु-भक्तिपुरस्सरं)** श्री पञ्चपरमेष्ठियों की भक्तिपूर्वक, **(कायोत्सर्गं)** कायोत्सर्ग **(कुर्वे)** करता हूँ।

[यह पढ़कर कायोत्सर्ग करें।]

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमाः जिनस्य,
संस्नापयन्ति पुरुहूत - मुखादयस्ताः।
सद्भावलब्धि - समयादि - निमित्तयोगात्,
तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि॥२॥

अन्वयार्थ—(पुरुहूतमुखादयः) इन्द्रादि देव **(जिनस्य)** जिनेन्द्र भगवान् की **(याः कृत्रिमाः)** जिन कृत्रिम **(तत् इतराः प्रतिमाः)** तथा उससे भिन्न अर्थात् अकृत्रिम प्रतिमाओं का **(संस्नापयन्ति)** अभिषेक करते हैं। **(सद्भावलब्धि-**

समयादि-निमित्तयोगात्) शुद्ध भावों की प्राप्ति एवं अनुकूल समय आदि निमित्तों के योग से **(उज्ज्वलधिया)** शुद्ध बुद्धि से **(तत्र)** उन प्रतिमाओं के समक्ष/उस अभिषेक विधि में **(एवं)** इस प्रकार **(कुसुमं)** पुष्पाञ्जलि **(क्षिपामि)** क्षेपण करता हूँ।

श्रीपीठक्लृप्ते विशदाक्षतौघैः, श्रीप्रस्तरे पूर्णशशाङ्क -कल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीतिवार्तां,सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि ॥३॥

अन्वयार्थ—(श्रीपीठक्लृप्ते) शोभायमान चौके पर **(विशद-अक्षत-ओघैः)** पवित्र अक्षतों के समूह से **(श्रीवर्तके चन्द्रमसीतिवार्तां)** शोभा से सम्पन्न चन्द्रमा में लिखी हुई श्री की समानता को **(सत्यापयन्तीं)** प्रकट करती हुई **(पूर्णशशाङ्क-कल्पे)** पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य **(श्रीप्रस्तरे)** शोभायमान शिला पर **(श्रियम् आलिखामि)** श्री लिखता हूँ।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकारलेखनं करोमि।

[यह पढ़कर जिस चौका पर अभिषेक करने का संकल्प किया है, उस पर उज्ज्वल अक्षत बिखेर कर बीच में श्री लिखें।]

कनकादि -निभं कम्रं पावनं पुण्यकारणम्।
स्थापयामि परं पीठं जिनस्नपनाय भक्तितः ॥४॥

अन्वयार्थ—(कनकादि-निभं) सोने आदि के समान **(कम्रं)** सुन्दर **(पावनं)** पवित्र **(पुण्यकारणं)** पुण्य के कारणभूत **(परं पीठं)** उत्कृष्ट सिंहासन को **(भक्तितः)** भक्ति से **(जिनस्नपनाय)** भगवान् जिनेन्द्र का अभिषेक करने के लिए **(स्थापयामि)** में स्थापना करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थापनं करोमि।

[यह पढ़कर श्री से सुशोभित चौका पर सिंहासन अथवा अभिषेक पात्र रखें।]

भृङ्गार - चामर - सुदर्पण - पीठ - कुम्भ-
ताल-ध्वजातप-निवारक - भूषिताग्रे।
वर्धस्व नन्द जय-पाठपदावलीभिः,
सिंहासने जिन!भवन्तमहं श्रयामि ॥५॥

अन्वयार्थ—(वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो **(नन्द)** समृद्धिमान हो **(जय)** जयवन्त हो [इत्यादि] **(पाठ-पद-आवलीभिः)** मंगल पाठ के समूह के साथ **(जिन!)** हे जिनेन्द्रदेव! **(अहं)** मैं **(भवन्तम्)** आपको **(भृङ्गार)** झारी **(चामर)** चँवर

(सुदर्पण) सुन्दर दर्पण **(पीठ)** श्रेष्ठ आसन **(कुम्भ)** कलश **(ताल)** व्यजन अर्थात् पंखा [और] **(ध्वज)** ध्वजा [से] **(आतपनिवारक)** छत्र से **(भूषिताग्रे)** शोभित है जिसका अग्रभाग ऐसे **(सिंहासने)** सिंहासन पर [स्थापित कर] **(श्रयामि)** सेवा करता हूँ।

वृषभादि-सुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान्।
स्थापयाम्यभिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(जन्माप्तौ) जन्म कल्याणक के समय **(जिष्णुचर्चितान्)** इन्द्रादि के द्वारा पूजित **(वृषभादि-सुवीरान्तान्)** वृषभादि महावीरान्त जिनेन्द्र भगवन्तों को **(अभिषेकाय)** अभिषेक करने के लिए [मैं] **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(पीठे)** सिंहासन पर **(स्थापयामि)** विराजमान करता हूँ। **(महोत्सवं)** अहो! यह महान् उत्सव है।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ! भगवन्निह शिलापीठे सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

[यह पढ़कर जय-जय घोष करता हुआ जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें।]

श्रीतीर्थकृत्स्नपन-वर्य-विधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धि - वारिभिरपूरयदुद्ध - कुम्भान्।
तांस्तादृशानिवविभाव्य यथार्हणीयान्,
संस्थापये कुसुमचन्दनभूषिताग्रान् ॥७॥

अन्वयार्थ—(श्रीतीर्थकृत्-स्नपन-वर्य-विधौ) श्री तीर्थंकरों के अभिषेक की उत्कृष्ट विधि में **(सुरेन्द्रः)** इन्द्र ने **(उद्धकुम्भान्)** जिन श्रेष्ठ कलशों को **(क्षीराब्धि-वारिभिः)** क्षीरसागर के जल से **(अपूरयत्)** भरा था **(तादृशान् इव)** उन्हीं के समान कलश है **(विभाव्य)** ऐसा विचार कर मैं **(कुसुमचन्दन-भूषिताग्रान्)** पुष्प तथा चन्दन से सुशोभित अग्रभाग वाले **(यथार्हणीयान्)** यथायोग्य **(तान्)** उन उत्तम कलशों को **(संस्थापये)** स्थापित करता हूँ।

शातकुम्भीय - कुम्भौघान् क्षीराब्धेस्तोयपूरितान्।
स्थापयामि जिनस्नान-चन्दनादि-सुचर्चितान् ॥८॥

अन्वयार्थ—(जिनस्नान-चन्दनादि-सुचर्चितान्) मैं जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक में चन्दनादि से सुशोभित **(क्षीराब्धेः)** क्षीरसागर के **(तोयपूरितान्)** जल से भरे हुए **(शातकुम्भीय-कुम्भ-ओघान्)** स्वर्ण से निर्मित कलशों के

समूह को **(स्थापयामि)** स्थापित करता हूँ।

ॐ ह्रीं चतुःकोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि।

आनन्द - निर्भर - सुर - प्रमदादि - गानै-
र्वादित्र - पूर - जय - शब्द - कलप्रशस्तैः।
उद्गीयमान - जगतीपति - कीर्तिमेनां,
पीठस्थलीं वसु-विधार्चनयोल्लसामि ॥९॥

अन्वयार्थ—(वादित्र-पूर-जय-शब्द-कलप्रशस्तैः) वाद्य-समूह एवं जय-जय की मधुर ध्वनि से सुशोभित **(आनन्द-निर्भर-सुर-प्रमदादि-गानैः)** आनंद से भरी देवांगनाओं आदि के गानों से **(उद्गीयमान-जगतीपति-कीर्तिं)** जहाँ जिनेन्द्रदेव की कीर्ति का गान हो रहा है**(एनां)** ऐसी-इस **(पीठस्थलीं)** पीठस्थली को **(वसु-विध-अर्चनया)** मैं अष्टविध पूजा से **(उल्लसामि)** सुशोभित करता हूँ।

ॐ ह्रीं स्नपनपीठस्थिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[यह पढ़कर अर्घ चढ़ावें तथा वादित्र या घण्टा आदि का शब्द करते हुए जय-जयकार करें]

कर्म - प्रबन्ध - निगडैरपि हीनताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्तिवशतः परमादि-देवम्।
त्वां स्वीयकल्मषगणोन्मथनाय देव!
शुद्धोदकैरभिनयामि महाभिषेकम्[१] ॥१०॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव **(कर्म-प्रबन्ध-निगडैः अपि)** आप यद्यपि कर्म प्रबन्ध रूप बेड़ियों से **(हीनताप्तं)** हीनता को प्राप्त है **(परमादि-देवं)** तथा श्रेष्ठतम देव हैं **(ज्ञात्वापि)** यह जानकर भी **(स्वीय)** स्वयं के **(कल्मष)** पाप **(गणोन्मथनाय)** समूह को नष्ट करने के लिए **(भक्तिवशतः)** भक्ति के वशीभूत हो **(शुद्धोदकैः)** शुद्ध जल से **(त्वां)** आपका **(महाभिषेकम्)** महाभिषेक **(अभिनयामि)** करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं ध्वीं ध्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामीति स्वाहा।

---

१. नयार्थतत्त्वम्- मूल पाठ यह है किन्तु अर्थ की दृष्टि उपर्युक्त पाठ उचित है।

तीर्थोत्तम - भवैर्नीरैः, क्षीर - वारिधि - रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान् ॥११॥

अन्वयार्थ—(तीर्थोत्तम-भवैः) उत्तम तीर्थस्थानों में समुत्पन्न **(क्षीर- वारिधि-रूपकैः नीरैः)** क्षीरसागर के जल के तुल्य जल से **(सुजन्माप्तान्)** उत्तम जन्म को प्राप्त **(सर्वार्थसिद्धिदान्)** सर्वार्थसिद्धिदायक **(जिनान्)** जिनेन्द्र भगवन्तों का **(स्नपयामि)** मैं अभिषेक करता हूँ।

(यह मंत्र ९ या १०८ बार पढ़कर अभिषेक करें।)

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामीति स्वाहा।

सकलभुवननाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै-
रभिषवविधिमाप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन-वारां बिन्दुरेकोऽपि नृणां,
प्रभवति हि विधातुं भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(यदभिषवन-वारां) जिनके अभिषेक सम्बन्धी जल की **(एकः बिन्दुः अपि)** एक बूँद भी **(नृणां)** मनुष्यों को **(भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम्)** भुक्ति और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को **(विधातुं)** प्राप्त कराने में **(हि)** निश्चय से **(प्रभवति)** समर्थ है **(सुरेन्द्रैः)** इन्द्रों के द्वारा **(अभिषवविधिं)** अभिषेक की विधि को **(आप्तं)** प्राप्त हुए **(सकलभुवननाथं)** तीनों लोक के नाथ **(तं)** उन **(स्नातकं जिनेन्द्रं)** अर्हन्त भगवान् का **(स्नापयामः)** हम अभिषेक करते हैं।

(यह पढ़कर उपर्युक्त मंत्र के द्वारा चारों कोनों पर रखें हुए कलशों से अखण्डधारा देते हुए श्रीजिनेन्द्रदेव का अभिषेक करें।)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं ध्वीं ध्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्रः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति बृहच्छान्ति-मन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

पानीयचन्दन-सदक्षत-पुष्प-पुञ्ज-
नैवेद्य - दीपक - सुधूप - फल - व्रजेन।
कर्माष्टकक्रथनवीरमनन्तशक्तिं -
सम्पूजयामि महसा महसां निधानम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(कर्माष्टकक्रथनवीरं) जो आठ कर्मों के नाश करने में शूरवीर हैं

(अनन्तशक्तिं) अनन्त शक्ति से सहित है **(महसां)** आत्मतेज के **(निधानम्)** भण्डार है **(महसा)** [उन जिनेन्द्र भगवान् की मैं] बड़े उत्साह से **(पानीय)** जल **(चन्दन)** चन्दन **(सदक्षत)** अक्षत **(पुष्प पुञ्ज)** पुष्प-पुञ्ज **(नैवेद्य)** नैवेद्य **(दीपक)** दीपक **(सुधूप)** धूप **(फल-व्रजेन)** फलों के समूह से **(सम्पूजयामि)** भलीभाँति पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

हे तीर्थपा निज-यशो-धवली-कृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भवदुःख-महागदानाम्।
सद्भव्यहृज्जनित - पङ्क - कबन्ध - कल्पाः,
यूयं जिनाः सतत-शान्तिकरा भवन्तु ॥१४॥

अन्वयार्थ—(हे तीर्थपा) जो तीर्थ अर्थात् धर्माम्नाय के रक्षक हैं **(निज-यशो-धवली-कृताशाः)** जिन्होंने अपने यश से दिशाओं को सफेद कर दिया है **(भवदुःख-महागदानाम्)** जो सांसारिक दुखरूपी महारोगों के **(सिद्धौषधाः)** अचूक औषध स्वरूप है **(च)** और **(सद्भव्यहृज्जनित-पङ्क-कबन्ध-कल्पाः)** उत्तम भव्य जीवों के मन में उत्पन्न पापरूपी कीचड़ को धोने के लिए जल के तुल्य है **(यूयं जिनाः)** ऐसे आप जिनेन्द्र भगवन्त **(सतत-शान्तिकरा भवन्तु)** सदा शान्ति के करने वाले होवें।

नत्वा मुहुर्निज - करैरमृतोपमेयैः,
स्वच्छैर्जिनेन्द्र ! तव चन्द्र-करावदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्तरम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र **(मुहुः नत्वा)** मैं बार-बार नमस्कार कर **(चन्द्र-करावदातैः)** अमृततुल्य **(निजकरैः)** अपने हाथों से **(नितान्तरम्ये)** अत्यन्त रमणीय **(देहेस्थितान्)** आपके शरीर पर स्थित **(जलकणान्)** जल की बूँदों को **(विमलेन)** निर्मल **(शुद्धांशुकेन)** शुद्ध वस्त्र से **(परिमार्जयामि)** पोंछता हूँ।

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बपरिमार्जनं करोमि।

यह पढ़कर निर्मल वस्त्र से जिन प्रतिमा का मार्जन करें।

स्नानं विधाय भवतोऽष्टसहस्त्रनाम्ना-

मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षुरिष्टिमिन तेऽष्ट-तयीं विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि ॥१६॥

अन्वयार्थ—(इन) हे स्वामिन् **(स्नानं विधाय)** अभिषेक कर **(भवतः)** आपके **(अष्टसहस्त्रनाम्नाम्)** एक हजार आठ नामों के **(उच्चारणेन)** उच्चारण द्वारा **(मनसः)** मन **(वचसः)** और वचन की **(विशुद्धिम्)** विशुद्धता को और अपने **(इष्टं)** इष्ट को **(जिघृक्षुः)** ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ **(ते)** मैं आपकी पूजा **(अष्टतयीं इष्टीं विधातुं)** अष्टविध पूजा करने के लिए **(विधिवत्)** विधिपूर्वक **(अत्र)** यहाँ **(सिंहासने)** सिंहासन पर **(निवेशयामि)** विराजमान करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीसिंहासनपीठे जिनबिम्बं स्थापयामि।

[यह पढ़कर प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें।]

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरुदीपसूधूपकैः ।
फलैर्घैर्जिनमर्चेज्जन्म - दुःखापहानये॥१७॥

अन्वयार्थ—(जन्म-दुःखापहानये) संसार सम्बन्धी दुखों को नष्ट करने के लिए **(जलगन्धाक्षतैः)** जल, चन्दन, अक्षत से **(पुष्पैः)** फूल **(चरुदीप-सूधूपकैः)** नैवेद्य, दीप, धूप **(फलैः)** फल **(अर्घैः)** और अर्घ के द्वारा **(जिनम्)** जिनेन्द्र भगवान की **(अर्चेत्)** पूजा करना चाहिए/ पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थितजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[यह पढ़कर थाली में अर्घ चढ़ाना चाहिए।]

नत्वा परीत्य निज-नेत्र-ललाटयोश्च,
व्यातुक्षणेन[१] हरतादघ-सञ्चयं मे।
शुद्धोदकं जिनपते! तव पादयोगाद्,
भूयाद् भवातपहरं धृतमादरेण॥१८॥

अन्वयार्थ—(जिनपते) हे जिनेन्द्र **(परीत्य नत्वा)** प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार कर **(तव पादयोगात्)** आपके चरणों के संयोग से **(शुद्धोदकं)** पवित्र हुआ गंधोदक **(निज-नेत्र-ललाटयोः)** अपने नेत्र और ललाट में **(व्यातुक्षणेन)** लगाने से/सिंचन से **(मे अघ सञ्चयं हरतात्)** मेरे पाप समूह का हरण **(आदरेण**

१. व्याव्युक्षणेन-भाषा की दृष्टि से यह पाठ शुद्ध है किन्तु मूल पाठ उपर्युक्त है।

धृतं) आदर से धारण किया हुआ गंधोदक **(भवतापहरं भूयात्)** मेरे संसार सम्बन्धी ताप को हरने वाला होवे।

मुक्ति -श्री - वनिताकरोदकमिदं पुण्याङ्-कुरोत्पादकम्,
नागेन्द्र - त्रिदशेन्द्र - चक्रपदवी - राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान - चरित्र - दर्शनलता - संवृद्धि - सम्पादकम्,
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गन्धोदकम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्र **(तव स्नानस्य इदं गन्धोदकम्)** आपके अभिषेक का यह गंधोदक **(मुक्ति-श्री-वनिताकरोदकम्)** मुक्तिरूपी स्त्री के हाथ में छोड़ा हुआ जल है। **(पुण्याङ्-कुरोत्पादकम्)** पुण्यरूपी अंकुरों को उत्पन्न करने वाला है **(नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्रपदवी-राज्याभिषेकोदकम्)** धरणेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रवर्ती का राज्याभिषेक प्राप्त कराने वाला जल है **(सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शनलता-संवृद्धि-सम्पादकम्)** सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यग्दर्शन रूपी लता की वृद्धि करने वाला है। **(कीर्तिश्रीजयसाधकम्)** कीर्ति और लक्ष्मी, विजय का साधक है।

यह पढ़कर गन्धोदक नेत्र तथा ललाट पर लगावें।

इमे नेत्रे जाते सुकृतजलसिक्ते सफलिते,
ममेदं मानुष्यं कृतिजनगणादेयमभवत्।
मदीयाद् भल्लाटादशुभतर-कर्माटनमभूत्,
सदेदृक् पुण्याहः मम भवतु ते पूजनविधौ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(सुकृतजलसिक्ते) पवित्र जल से सींचे गये **(मम)** मेरे **(इमे नेत्रे)** ये नेत्र **(सफलिते जाते)** सफल हो गये हैं **(इदं मानुष्यं)** यह मनुष्य जन्म **(कृतिजनगणादेयम्)** उत्तम मनुष्यों के समूह द्वारा ग्रहण करने योग्य **(अभवत्)** हो गया **(मदीयात्)** मेरे **(भल्लाटात्)** ललाट से **(अशुभतर-कर्माटनम्)** अशुभ कर्मों का निर्गमन **(अभूत्)** हो गया **(ते पूजनविधौ)** और आपकी पूजन विधि से **(मम)** [व्यतीत होने वाला] मेरा **(ईदृक्)** ऐसा **(पुण्याहः)** पवित्र दिन **(सदा भवतु)** सदा प्राप्त होता रहे।

❑ ❑ ❑

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की स्तुति

(मुनि नियमसागर)

विद्यासागर-विश्व-वन्द्य-श्रमणं, भक्त्या सदा संस्तुवे।
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम्॥
ज्ञानध्यानतपोऽभिरक्त -मुनिपं, विश्वस्य विश्वाश्रियं।
साकारं श्रमणं विशाल-हृदयं, सत्यं शिवं सुन्दरम्॥

अन्वयार्थ—(विद्यासागर-विश्व-वन्द्य-श्रमणं) जो परमागम ज्ञान के होने से ज्ञान के सागर हैं व विद्या के सागर होने से विश्ववंदनीय हैं तथा जो रत्नत्रय की साधना में श्रम करने वाले होने से श्रमण हैं। **(परमं यमिनं)** संयम में सर्वश्रेष्ठता होने से **(सर्वोच्चं)** सर्वोच्च हैं, **(सर्वार्थसिद्धिप्रदं)** परमार्थादि अर्थ सिद्धि के जो प्रदाता हैं अर्थात् रत्नत्रय के दाता हैं। **(ज्ञानध्यानतपोभिरक्त)** जो स्वयं ज्ञान में अर्थात् परमागम के श्रुताध्यान में अर्थात् शुद्धोपयोग रूप आत्मा के ध्यान में, तप में अर्थात् अंतरंग व बहिरंगरूप बारह प्रकार से तपाराधना में तल्लीन रहते हैं व मुनि संघ के अधिनायक होकर मुनियों के आगमानुसार परिपालक हैं। **(विश्वस्य विश्वाश्रियं)** तथा जो विश्व अर्थात् लोक में रहकर लोक के आश्रय स्वरूप उपकारी गुरु हैं। **(साकारं श्रमणं)** रत्नत्रयादि समस्त परमार्थ के श्रेष्ठतम गुणों की साधना में सदा श्रमशील होने से साक्षात् श्रमण हैं। **(विशालहृदयं)** अध्यात्म तत्त्व के पारगामी होने से जो सदा विशाल हृदयी हैं। **(सत्यं साकारं)** इन सकल गुणों के आचरण करने वाले होने से साक्षात् सत्य के मूर्तिस्वरूप हैं। **(शिवं साकारं)** इस प्रकार साक्षात् सत्य की मूर्तिस्वरूप होने से जो स्वयं कल्याण के मूर्तिस्वरूप हैं। **(सुन्दरं साकारं)** सत्य व शिव (आत्मकल्याण) इन दोनों का जिनमें एक साथ सद्भाव होने से बाह्य एवं अभ्यंतर सुन्दरता के मूर्तिरूप हैं, **(विश्व-वन्द्य-श्रमणं)** विश्ववन्द्य श्रमणस्वरूप आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागरजी महाराज को **(भक्त्या सदा)** मैं हमेशा भक्ति (सिद्ध-श्रुत-आचार्य) के साथ **(विनम्य)** नमस्कार करके **(संस्तुवे)** उनके समस्त सद्गुणों का गुणोत्कीर्तन करता हूँ अर्थात् मैं रोमांचित होकर उनके उन सद्गुणों की स्तुति करता हूँ।

❑ ❑ ❑